ಪ್ರಮುಖ ಲಿಂಗ ಸಂಗ್ರಹ:

विषय सूची

पुराणमें पुनर्विवाहकी आज्ञा

पद्मपुराण भूमिखण्ड अध्याय ८५ में एक कथा है जिसमें स्पष्ट ही उन दशाओंमें अक्षतयोनि विधवाओंके पुनर्विवाहकी व्यवस्था है जो पराशर स्मृतिके 'नष्टे मृते०' श्लोकमें वर्णित है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हम वह कथा यहां देते हैं।

उज्ज्वल उवाच—

प्लक्षद्वीपे महाराज
आसीत्पुण्यमतिः सदा ।
दिवो दासेति विख्यातः
सत्यधर्मे परायणः ॥ ५० ॥
तस्यापत्यं समुत्पन्नं
नारीणामुत्तमं तदा ।
गुणरूप समायुक्ता
सुशीला चारु-मङ्गला ॥
दिव्या देवीति विख्याता
रूपेणा प्रतिमा भुवि ॥ ५१॥
पित्रा विलोकिता सोतु
रूपलावण्य संयुता ।
प्रथमे वयसि दिव्या
वर्त्तते चारु मंगला ॥ ५२ ॥
स तां दृष्ट्वादि वोदासो
दिव्यादेवी सुतां तदा ।
कस्मै प्रदीयते कन्या
सुवराय महात्मने ॥ ५३ ॥
इतिचिन्ता परोभूत्वा
समालोच्य नृपोत्तमः ।
रूप देशस्य राजानं
समालोक्य महीपतिः॥५४॥
चित्रसेनं महात्मानं
समाहूय नरोत्तमः ।
कन्या ददो महात्माऽसौ
चित्रसेनाय धीमते ॥ ५५ ॥
तस्या विवाह यज्ञस्य
सम्प्राप्ते समये नृप ।
मृतोऽस्तु चित्रसेनस्तु
कालधर्मेण वेष्टितः ॥ ५६ ॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा
चिन्तयामास भूपतिः ।
ब्राह्मणान्समाहूय
पप्रच्छ नृपनन्दनः ॥ ५७ ॥
अस्याविवाह कालेतु
चित्रसेनो दिवंगतः ।
अस्मात्तु कीदृशं कर्म
भविष्यं तद्वदन्तमे ॥ ५८ ॥

अर्थ—उज्ज्वलने कहाः—प्लक्ष द्वीपमें सदा पुण्यमति सच्चे धर्ममें परायण प्रसिद्ध महाराज दिवोदास रहते थे। उनके दिव्या देवी नामकी एक कन्या हुई जो उस समय स्त्रियोंमें उत्तम, गुण और रूपयुक्त, सुशीला चारु मङ्गला और जगद्विख्यात थी। पिताने जब देखा कि वह युवती रूप और लवण्यसे युक्त तथा सुन्दर होगयी तब उन्हें यह चिन्ता हुई कि इसका विवाह किससे किया जाय। रूपदेशके राजा चित्रसेनको देखकर उसी बुद्धिमानके साथ उन्होंने दिव्या देवीका विवाह कर दिया। उसके विवाह यज्ञके प्राप्त होनेके समय कालसे प्रेरित होकर चित्रसेन मर गया। तब धर्मात्मा दिवोदासने ब्राह्मणोंको बुलाके पूछा कि इ. के विवाहके समय चित्रसेन मर गया। अब आपलोग बतावें कि मुझे क्या करना चाहिये

ब्राह्मणा ऊचुः—
वरादो जायते राजन्
कन्यायास्तु विधानतः
पतिमृत्यु प्रत्यास्याम
नो चेत्संगं करोतिच ॥५९॥
महाव्याध्य भिभूतश्च
त्यागं कृत्वा प्रयाति वा ।
प्रव्राजितो भवेद् राजन्
धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६०॥
उद्वाहितायां कन्याया
मुद्वाहः क्रियते बुधैः ।
नस्याद्रजस्वला
यावदन्येऽपि विधीयते
विवाहंतु विधानेन
पिता कुर्यान्न संशयः ॥ ६१॥
एवं राजा समादिष्टो
धर्मशास्त्रार्थ कोविदैः ।
विवाहार्थं समायात,
इन्द्रलक्ष्यं द्विजोत्तमैः ॥ ६२॥
दिवोदासा सुधर्मात्मा
द्विजानांच निदेशतः ।
विवाहार्थं महाराजा
उद्यम कृतवांस्तदा ॥ ६३ ॥
पुनर्दानाद्दानेन
दिव्यादेवी द्विजोत्तमाः ।
रूपसेनाय पुण्याय
तस्मै राज्ञे महात्मने
मृत्युधर्मं गतो राजा
विवाहस्य समीपतः ॥ ६४॥
यदा यदा महाभागो
दिव्या देव्याश्च भूमिपः
चक्रे विवाहं तद् भर्ता
म्रियते तम्र कालतः ॥ ६५॥
एक विंशति भर्त्तारः
काले काले मृतास्तदा ।
ततोराजा महादुःखी
संजात ख्यात विक्रमः ॥६६॥
समालोच्य समाहूय
मन्त्रिभिः सह निश्चितः ।
स्वयंवरे तदा बुद्धिं
चकार पृथिवीपतिः ॥ ६७॥
प्लक्षद्वीपस्य राजानः
समाहूता महात्मना ।
स्वयंवरार्थे माहूता
स्तथाते धर्मतत्पराः ॥ ६८॥
तस्यास्तु रूपं संश्रुत्य
राजनो मृत्यु चोदिताः ।
संग्रामं चक्रिरे मूढास्ते
मृताः समराङ्गणे ॥
एवं तात क्षयोजातः
क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥६९॥
दिव्यादेवी सुदुःखार्त्ता
गता साऽचल कन्दरम् ।
रुरोद् करुणं बाला
दिव्यादेवी मनस्विनी ॥६२॥

अर्थ—ब्राह्मणोंने उत्तर दिया कि हे राजन्! कन्याका विवाह तो विधिके अनुकूल हो सकता है यदि उसका पति मर जाय और पतिके साथ उसका सङ्ग न हुआ हो या पतिको महारोग लग गया हो या पति उसको छोड़कर चला जाय या सन्यासी हो जाय, ऐसा धर्मशास्त्रमें लिखा हुआ है। विवाहिता कन्याका बुद्धिमान लोग फिर दूसरेके साथ विवाह कर देते है जबतक वह रजस्वला नहीं हुई। विधि अनुकूल पिता उसका पुनर्विवाह कर दे इसमें कोई संशय नहीं।

जब धर्मशास्त्र जानने वाले पण्डितोंने राजाको ऐसा उपदेश किया तो धर्मात्मा दिवोदासने उसके विवाहका फिर प्रबन्ध किया और राजा रूपसेनके साथ उसका पुनर्विवाह कर दिया। परन्तु विवाहके समीप ही वह राजा (रूपसेन) भी मर गया। जब जब राजा दिव्यादेवीका विवाह करते तब तब समयपर ही पति मर जाता। इस प्रकार जब दिव्यादेवीके इक्कीस पति मर गये तब राजा बहुत दुखी हुआ और मन्त्रियोंको बुलाकर फिर स्वयंवरकी तैयारी करने लगा और प्लक्षद्वीपके सब राजाओंको निमन्त्रण दिया। जब धर्मात्मा -स्वयंवरमें बुलाये गये तब उस लड़कीके सौंदर्यको सुनकर मृत्युसे प्रेरित हुए राजा लोग आपसमें लड़ पड़े और रणक्षेत्रमें ही मर गये। इस प्रकार हे तात! महात्मा क्षत्रियोंका सर्वनाश हो गया और दुखिया दिव्यादेवी अचलकन्दराको चली गयी और वहां रोने पीटने लगी।

——

विधवा विवाह शास्त्र-संमत है।

[लेखक—श्री हरिप्रसाद पालधि बी० ए०।]

विद्वद्वराः शास्त्रवचोऽभिमर्शिनो
निःपक्षपातात्स्वस्तुति वाश्यतो यदि।
वैधव्यदुःखानुभवात्मजाकृते
पाणिग्रहो मध्यमतोऽपि चिन्त्यताम्॥

श्री रामसेवक शास्त्री महाशयने गत ६ अक्तूबरके "आज" में विधवाविवाह शीर्षक लेख श्री हेमराज शास्त्रीके उस लेखके खंडनमें लिखा है जो गत ४ सितम्बरके "आज" में छपा था। अभाग्यवश मैंने ४ सितम्बरवाला लेख नहीं देखा है और ६ अक्तूबरवाला लेख भी मुझको देरमें मिला, यही कारण है कि मुझको उत्तर देनेमें किंचित देर हुई।

प्रारम्भमें ही शास्त्रीजीने दैव विवाहका लक्षण जैसा कि मनुस्मृतिमें मिलता है, उद्धृत करके यह लिखा है कि मनुके अनुसार कन्याका ही दान मिलता है। शास्त्रीजीके उद्धृत श्लोकमें कन्या शब्द नहीं है, सुता शब्द है। ब्राह्मादि कई विवाहोंके लक्षणोंमें कन्या शब्द मिलता है। पुत्र तथा कन्या, सुत तथा सुता, स्त्री तथा पुरुष ये सब जाति वाचक शब्द हैं और कन्या तथा अकन्याके भेद वाचक नहीं। यदि ऐसा भी हो तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि दान करना तथा उसका ग्रहण करना विवाहका अवश्यम्भावी पूर्व लक्षण है। आर्ष विवाहमें कन्या दान नहीं की जाती परन्तु शुल्क लेकर बिक्री ही की जाती है। असुर विवाहमें धन देकर कन्या क्रय की जाती है। गांधर्व विवाहमें वर-कन्या स्वेच्छया बिना किसीके दान या अनुमतिके परस्पर सम्बन्ध कर लेते हैं। राक्षस विवाहमें कन्या बलपूर्वक हर ली जाती है। इन सबसे यह सिद्ध है कि दान विवाहका अवश्यम्भावी पूर्व लक्षण नहीं है। इसलिये विधवा स्त्री दान की जा सकती है या नहीं इसका प्रश्न ही उठाना व्यर्थ है। यदि ऐसी स्त्रियोंका विवाह शास्त्रानुमोदित हो तो बिना दान किये भी विवाह हो सकता है।

शास्त्रीजीने लिखा है कि हेमराजजीने जितने प्रमाण उद्धृत किये हैं उनमें कहीं विधवा शब्द नहीं आया है मैंने पहलेही लिख दिया है कि मैंने श्री हेमराज शर्माका लेख नहीं देखा है, इसलिये मैं यह नहीं कह सकता कि शास्त्रीजीका उक्त कथन कहां तक ठीक है। विधवा पदका अर्थ क्या है? क्या वे ही विधवा हैं जिनका पति मर गया है? "अपेत धव सम्बन्धा विधवा" इस व्युत्पत्ति के अनुसार उन सब स्त्रियोंको विधवा समझना चाहिये जिनका स्वामीसे संबन्ध होना किसी कारणसे असम्भव हो जाय। शास्त्रीजीने यह कहा है कि "सनातनधर्मके शास्त्रों में विधवा विवाहकी आज्ञा कहीं नहीं है।" यह कैसे ठीक हो सकता है। पराशर, नारद तथा अग्नि पुराणसे निम्नलिखित प्रमाण मिलता है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

स्मृति लिखित पांचो आपत्तियाँ ऐसी हैं जहां पति पत्नी सम्बन्ध या तो हो ही नहीं सकता यथा नष्टे, मृते और क्लीवेमें अथवा सम्बन्ध होनेसे पाप होता है यथा प्रव्रजिते तथा पतितेमें। इसलिये उक्त पांचो प्रकार की स्त्रियां विधवा हैं।

कात्यायनका वचन है—

वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीव एव च।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपि वा।
ऊढापि देया सान्यस्मै सहा भरण भूषणा॥

ये सब स्त्रियां भी विधवा हैं और स्पष्ट प्रमाण पुनर्विवाहका दिया गया है।

वशिष्ठका वचन है—

पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता।
साचेदक्षतयोनिः स्यात् पुनः संस्कार मर्हति॥

इस वचनमें तो मृत पतिका स्त्रीका पुनः मंत्र संस्कारपूर्वक विवाह लिखा है यदि वह अक्षत योनि हो।

कात्यायन और वशिष्ठके वचनानुसार वाग्दानकी अवधि रह नहीं जाती जैसा कि कोई कोई वैयाकरणाचार्य पराशर वचन लिखित "पतौ" पदको "अपतौ" मानकर वाग्दान ही की अवधि निकालना चाहते हैं। ऐसे धुरन्धर विद्वान यह भूल ही जाते हैं कि शास्त्रोंमें आर्षपद बहुत हैं जो पाणिनीय व्याकरणसे सिद्ध नहीं होते। आपलोग 'सीतायाः पतये नमः" को भी भूल जाते हैं जहां "अपतये" व्युत्पत्ति कर ही नहीं सकते।

शास्त्रीजी मनुस्मृतिसे दो श्लोकार्द्धोंका अर्थात्

"नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।"
"नविवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः"

उद्धृत करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि विधवाओंका पुनर्विवाह मनु निषिद्ध है। उक्त दोनो वचनोंका कोई सम्बन्ध विवाहसे नहीं है परन्तु नियोगसे है जिसका कि कोई सम्बन्ध उपस्थित विचारसे नहीं। तथापि यह कह देना अत्यावश्यक है कि इन वचनोंसे नियोग विधि का भी खण्डन नहीं होता। मनुने यदि कुछ किया है तो नियोग प्रथाकी निन्दा की है। [illegible]में तथा निषेधमें आकाश पातालका अ[illegible]र है। गोविन्द राजने मनु प्रोक्त पूर्व वि[illegible] और पर विन्दासे यह अर्थ निकाला है कि नियोग धर्म विकल्प है और नियोगसे अनियोग श्रेय है। कुल्लूक भट्टने बृहस्पतिका प्रमाण देकर यह अर्थ निकाला है कि प्रथम तीन युगोंमें नियोग धर्म था परन्तु कलिवर्ज्य है। मेरा अपना कहना यह है कि "नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः" का वह अर्थ नहीं है जैसा कि प्रायः लोग समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि "देवराद्वा सपिण्डाद्वा ....." इत्यादि वचनके अनुसार देवर तथा सपिण्डको छोड़ कर किसी दूसरेके साथ द्विजाति विधवा स्त्रियोंका नियोग न किया जाय। अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है और पूर्वापर कोई विरोध भी नहीं होता।

शास्त्रीजी देवी भागवतसे छठे स्कन्धके २४ वें अध्यायसे कतिपय श्लोक उद्धृत करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि विधवा विवाह व्यभिचार, पाप तथा कुत्सित कर्म है। ये श्लोक भी विवाहसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते परन्तु नियोग विषयक हैं। जिस प्रकरणके उक्त पांच श्लोक हैं उसी प्रसङ्गके कुछ श्लोक मैं महाभारतके आदि पर्वके १०३ अध्यायसे उद्धृत करता हूं जिससे पाठकोंको तत्वका ज्ञान हो जायगा।

सत्यवतीने भीष्म देवसे कहा है—

इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे।
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत॥
तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्त्तुमिहार्हसि

उत्तरमें भीष्मने कहा है—

असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः

अर्थात् विचित्रवीर्यकी विधवा स्त्रियोंमें सत्यवतीने भीष्मसे, जो विचित्रवीर्यके बड़े भाई थे, नियोगविधिसे पुत्रोत्पादन करनेकी आज्ञा दी और कहा कि वंशरक्षा धर्म है और ऐसा करना चाहिये। भीष्म महाराजने भी कहा कि निःसन्देह यह धर्म है, परन्तु उन्होंने ऐसा करनेमें अपनेको असमर्थ बतलाया और अपनी पूर्वकृत प्रतिज्ञाका ध्यान दिलाया जिसको उन्होंने सत्यवतीके ही आग्रहपर किया था कि मैं न तो राज्य करूंगा और न दार-परिग्रह। जब सत्यवतीने फिर अपनी पूर्वकृत प्रतिज्ञाको तोड़कर भीष्म महाराजसे राज्य करने तथा वंशोत्पादन करनेके लिये कहा तब महाभारतमें यह लिखा मिलता है—

धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयो ब्रवीदिदम्।
राज्ञि धर्मानवेक्षस्व..........
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते॥
शांतनोरपि सन्तानं यथा स्यादक्षयं भुवि।
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम्॥
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः।
आपद्धर्मार्थ कुशलैर्लोकतंत्रमवेक्ष्य च॥

भीष्म महाराजने नियोगको व्यभिचार, पाप तथा कुत्सित नहीं कहा, परन्तु सनातनधर्म कहा। यह तो स्पष्ट है कि पशुधर्म अथवा विगर्हित धर्म जैसा समझिये राजा वेणके कालसे प्रचलित था और स्मृतिकार मनुके कालमें विगर्हित समझा जाने लगा और देवी भागवतकारके मतसे व्यभिचार तथा पाप हो गया परन्तु भीष्मके कालमें न तो पशुधर्म ही समझा जाता था और न व्यभिचार अथवा पाप। यदि भीष्म महाराज इस प्रथाको पाप समझते तो कदापि ऐसा करनेका उपदेश न देते। उनका उपदेश क्या था—

पुनर्भरतवंशस्य हेतुं संतानवृद्धये।
वक्ष्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु॥
ब्राह्मणो गुणवान् कश्चिद्धनेनोपनिमंत्र्यताम्।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः॥

भीष्मने नियोगविधिसे किसी ब्राह्मणसे पुत्रोत्पादन करानेको कहा।

भीष्मके वचनको सुनकर सत्यवतीने कहा कि उनका बड़ा लड़का कृष्ण द्वैपायन व्यास है उनसे पुत्रोत्पादन कराया जाय, अर्थात् देवर रहते हुए किसी और ब्राह्मणसे पुत्रोत्पादन करानेकी आवश्यकता नहीं है।

व्यासजी माताके ध्यान करनेपर उपस्थित हुए और उनसे सत्यवतीने कहा—

अयं शांतनवः सत्यं पालयन्सत्यविक्रमः
बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्याऽनुशासने॥
स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः सन्तानाय कुलस्य च
भीष्मस्य चास्य वचनान्नियोगाच्च ममानघ॥
अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च।
आनृशंस्याच्च यद्ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्त्तुमर्हसि॥
यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे।
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च धर्मतः।
तयोरुत्पादयापत्यं समर्थोह्यसि पुत्रक॥
अनुरूपं कुलस्यास्य सन्तत्याः प्रसवस्य च॥

इसका उत्तर व्यासजीने यों दिया—

वेत्थ धर्मं सत्यवति परं चापरमेव च।
तथा तव महाप्राज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः॥
तस्मादहं त्वन्नियोगाद्धर्ममुद्दिश्य कारणम्
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत्सनातनम्॥

हमने पहले ही कह दिया है कि देवी भागवतसे उद्धृत श्लोकोंपर विचार नहीं करेंगे केवल इस बातको दिखलानेके लिये कि इसी विषयपर महाभारतमें भी प्रमाण मिलता है जिसमें न तो नियोगको पशुधर्म ही कहा है और न व्यासजीने व्यभिचार [illegible] श्लोक उद्धृत कर दिये हैं।

वास्तवमें विचारणीय विषय तो यह है कि विधवाओंका पुनर्विवाह किसी अवस्था विशेषमें हो सकता है कि नहीं। अगर हो सकता है तो कब और कैसे। यदि इस विषयपर कोई लेख शास्त्रीजी लिखें तो उपयुक्त होगा।

नियोगसे तो विधवा विवाह अच्छा ही ज्ञान पड़ता है। सनातनधर्ममें जो बातें विहित हों उनका कहना तो उद्दंडता नहीं है।

हेमराजजीने जो कौरव पांडवका होना कलियुगके ६५३ वर्ष बीतनेपर लिखा है वह महामिथ्या नहीं है। कल्हणने राजतरंगिणीमें तथा वराह मिहिरने भी ऐसा ही लिखा है। ये लोग भी शास्त्रको अवश्य जानते ही रहे होंगे।

> यदा मुकुन्दो भगवान् निमां महीम्
> जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः।
> तदाहरेवाऽप्रतिबुद्धचेतसा-
> मभद्रहेतुः कलिरन्ववर्तत॥

भागवत्के इस श्लोकको—

> "तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः
> यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट्॥
> यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम्।
> तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः।

इससे मिलाकर पढ़िये। आधुनिक शत शास्त्रियोंके कहनेपर भी वराह मिहिर मूर्ख नहीं समझे जायंगे।

इन सब वचनों और बहुतसे और वचनोंका शास्त्रार्थ भी पहले खण्डन करें तब हेमराजजी को वड्डदण्ड इत्यादि उपहारोंसे भूषित करने का साहस करें।

> सम्यग् मयाद्वष्टमिदं विवेकतः
> प्रश्नानुरूपं मम मित्र पालयेः।
> लोकोपकारायपुर्नविमृश्यतां
> रानावधिः सन्ननुतेऽप्रशावधीः॥

विधवा-विवाह और कलियुग !

(लेखक—श्री हेमराज शर्मा पात्रीवाल।)

आजकल विधवा विवाहका विरोध करने के लिये अक्सर यह कह दिया जाता है कि कलियुगमें पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा नहीं है और प्रमाणमें यह श्लोक पेश किया जाता है—

> ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा।
> कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम्॥

विवाहिताका पुनर्विवाह, जेष्ठांश, गोवध, भ्रातृ-पत्नीसे सन्तानोत्पत्ति और सन्यास ये पांच काम कलियुगमें वर्जित हैं। इस श्लोकसे विवाहिताका पुनर्विवाह होना निषिद्ध होता है, किंतु विधवाके पुनर्विवाहका निषेध नहीं होता। इसलिये यह श्लोक विधवाके पुनर्विवाहका निषेध करनेवाला नहीं है, किन्तु किसी खास कारणसे विवाहिता सधवाका पुनर्विवाह होता हो तो उसका निषेध करनेवाला है।

जो मनुष्य श्लोकका यह अर्थ मानते हैं कि कलियुगमें विधवाका पुनर्विवाह न होना चाहिये वे लोग श्लोकके अर्थका अनर्थ करते हैं, क्योंकि श्लोकमें कहीं भी विधवावाची शब्द नहीं है।

यदि थोड़ी देरके लिये उनका अर्थ मान लें तो इससे प्राचीन तीन युगोंमें विधवाका विवाह होना स्वतः सिद्ध होता है और विधवा-विवाह विरोधियोंके अन्य आक्षेप—पुनर्दान, ब्रह्मचारिणी रहना, पातिव्रत धर्मका भंग होना आदि—सब व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि जब पहले पुनर्विवाह होता था तब दुबारा दान भी होता था। आजन्म ब्रह्मचारिणी और पातिव्रतके पचड़े हवामें उड़ जाते हैं।

यह श्लोक यार लोगोंने गढ़ डाला है, क्योंकि हिंदू धर्मशास्त्रमें किसी समयके लिये गोवधकी आज्ञा नहीं है। श्लोकमें गोवधका जिक्र है। इससे स्वतः श्लोक कल्पित सिद्ध होता है।

पुरुषोंके पुनर्विवाहके लिये कलियुगका पचड़ा क्यों नहीं लगाया जाता? तब क्या कलियुगमें भी सतयुग आ जाता है? सनातनधर्म-शास्त्रोंमें कलियुगमें विधवा-विवाह करनेकी स्पष्ट आज्ञा है।

> नष्टे संन्यासमापन्ने व्याधिग्रस्ते च भर्तरि।
> पुनः स्त्रीणां विवाह स्यात्कलावपि न संशयः॥

अत्रि।

कलियुगमें पतिके नष्ट होने या सन्यास लेने या रोगग्रस्तहोनेपर स्त्रियोंका पुनर्विवाह कर देना चाहिये।

> पत्निनाशे यथा पुंसो भर्तृनाशे तथा स्त्रियः।
> पुनर्विवाहः कर्तव्यः कलावपि युगे तथा॥

व्याघ्रपाद।

कलियुगमें स्त्रीके मरनेपर पुरुषोंका पुनर्विवाह हो जाता है वैसे ही पुरुषके मरनेपर स्त्रियोंका पुनर्विवाह करना चाहिये।

> अस्पृष्टलिंगयोनीनामाविंशतिवयः स्त्रियः।
> पुनर्विवाहः कर्तव्यश्चतुर्ष्वपि युगेष्वपि॥

विश्वामित्र।

चारो युगोंमें अक्षतयोनि २० वर्ष तक की विधवाओंका पुनर्विवाह कर देना चाहिये।

लोग इस समय विधवा विवाह का विरोध करते हैं वे भारी भूल करते हैं। सतयुगमें उत्तम समय और श्रेष्ठ संगतिके कारण इन्द्रिय निग्रह सहज था किन्तु कलिकालमें विपरीत अवस्थाके कारण कठिन है। जब इन्द्रिय निग्रह सुगम था तब तो पुनर्विवाहका करना श्रेष्ठ था। जब इन्द्रिय दमन कठिन है तब पुनर्विवाह की मनाही है। बलिहारी है इस विचार शक्ति को!

आजकल कलिकालमें गृहस्थ स्त्री पुरुषोंमें रह कर विधवाओंके लिये इन्द्रिय निग्रह कठिन है। जो स्त्रियां पतिके साथ संभोगका सुख पा चुकी है और विधवा होनेपर गृहस्थ स्त्री पुरुषोंमें रहकर भोग विलासकी सामग्रीको देखती हैं या व्यवहार करती हैं ऐसी स्त्रियोंका इन्द्रिय-दमन कठिन है। सधवा स्त्रियोंका यह हाल है कि पुत्रकी मृत्यु हो जाती है और संसारमें मृत्युके तुल्य और दुःख नहीं है किन्तु शोकातुर सधवाको एक साल भी बीतने नहीं पाता है और पुनः पुत्र पैदा होता है। कामका वेग रोकना कागजी या जबानी जमा खर्चका खेल नहीं है किन्तु लोहेकी चना चबाना है।

बड़े बड़े ऋषियोंका क्या हाल था। तपस्या करते हुए विश्वामित्रके वायु सेवन करनेपर मेनका अप्सराने काम बाण मारा तब विश्वामित्र अपने वशमें न रहे और मेनकासे रमण किया। फल स्वरूप शकुन्तला पैदा हुई। वृद्ध पराशर नदी उतरते समय एक मल्लाहकी कन्याको देखकर कामसे व्याकुल हुए और उसी समय उससे भोग किया। सौभर ऋषि नदी किनारे मछलियोंको कामक्रीड़ा करते देख कामसे पीड़ित हुए और अल्प कालमें उन्होंने कई विवाह कर डाले। आजकल कामसे पीड़ित होकर स्त्रियां व्यभिचार करती हैं। फलस्वरूप गर्भपात होते हैं। सैकड़ों स्त्रियां नौकरों आदिके साथ भाग जाती हैं। हजारों दुष्कर्म हो रहे हैं और लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं। किन्तु केवल हठ वश विधवा-विवाहका विरोध किया जा रहा है। इन्हीं बातोंको विचारकर धर्मशास्त्रोंमें पुनर्विवाहकी आज्ञा है।

> ब्राह्मण्याः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः स्वकुलयोषिताम्।
> पुनर्विवाह कुर्वीरन्नन्यथा पापसम्भवः॥

जाबालि।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्रियोंका पुनर्विवाह करना चाहिये अन्यथा पापकर्म होनेकी सम्भावना है।

> भर्तृभावे वयः क्षीणो पुनः परिणयो मतः।
> न तत्र पापं नारीणामन्यथा सद्गति नहि॥

अगस्त्य।

पतिके अभावमें युवा स्त्रियोंका पुनर्विवाह कर देना चाहिये। इसमें कोई पाप नहीं है और इसके सिवा कोई गति नहीं है।

कलियुगमें पुनर्विवाहका उदाहरण।

> अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान्।
> सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता॥
> ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
> पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना॥

महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ९१

जब सुपर्ण ऐरावतने नागराजकी लड़कीके पतिको मार डाला तो उस बुद्धिमान नागराजने अपनी दुखिया लड़कीका विवाह अर्जुनसे कर दिया। नागराजकी कन्यासे अर्जुनके एक बलवान पुत्र पैदा हुआ, उसका नाम ईरावत था।

यहांपर प्रश्न हो सकता है कि अर्जुन कब हुए। उत्तर यह है कि कलियुगमें।

> शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
> कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः॥

राजतरंगिणी।

कलियुगके ६५३ वर्ष बीतनेपर कौरव पाण्डव हुए। इन प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सनातन धर्मशास्त्रोंमें सर्वदा सब कालके लिये विधवा विवाहकी आज्ञा है। जो लोग कलियुगकी टट्टी खड़ी करते हैं वे जनताको धोखा देते हैं।

विधवाविवाह-मीमांसा ।*

[लेखक—श्री हरिप्रसाद पालधि बी० ए० ।]

(१)

चतुर्विंशति मतसंग्रहकी व्याख्याके संस्कार-प्रकरणमें भट्टजी दीक्षितने स्त्रियोंका पुनर्विवाह हो सकता है या नहीं, इसका निर्णय निम्नलिखित रीतिसे किया है। उन्होंने याज्ञवल्क्य-स्मृतिका एक वचन उद्धृत करके कहा है कि केवल "अनन्य-पूर्विका" स्त्रियोंका ही विवाह हो सकता है। फिर बौधायनके नामका एक वचन उद्धृत कर सिद्ध किया है कि वाग्दत्ता स्त्रियाँ "अनन्य-पूर्विका" हो जाती हैं। इससे आपने यह सिद्धांत निकाल लिया है कि अब वाग्दत्ता स्त्रियोंका भी विवाह नहीं हो सकता, तब मन्त्र-संस्कृताओंका तो कुछ कहना ही नहीं।

आपने यह कहा ही नहीं कि याज्ञवल्क्य का वचन उस प्रथम विवाहसे सम्बन्ध रखता है जो ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके समय करता है। याज्ञवल्क्य-स्मृतिने पर-पूर्वा स्त्रियोंका जो लक्षण दिया है उसको आपने छिपाकर बौधायनका मत ग्रहण कर लिया है। कारण स्पष्ट है। यदि आपने याज्ञवल्क्यका लक्षण लिया होता और उसीके आधारपर याज्ञवल्क्यके वचनका अर्थ किया होता तो आपको यह कहनेका अवसर ही न मिलता कि वाग्दत्ता स्त्रियां 'अनन्यपूर्वा' हो जाती हैं। स्मृतिकारने कोई वचन किस अर्थमें लिखा, इसका ठीक विचार तभी हो सकता है जब उसी स्मृतिमें दिया हुआ लक्षण भी मान लिया जाय।

मैंने अपने विचारमें यह दिखलाया है कि बौधायनके नामका जो वचन दीक्षितजीने उद्धृत किया है, वह प्रचलित बौधायन-स्मृतिमें नहीं है। इसके विपरीत, एक दूसरा ही लक्षण प्रचलित स्मृतिमें मिलता है जो याज्ञवल्क्य स्मृतिमें दिये हुए लक्षणके सदृश है। ऐसा संभव नहीं हो सकता कि एक ही स्मृतिकार एक ही स्मृतिमें दो भिन्न प्रकारके लक्षण दे।

जहां कहीं किसी वचनमें "दत्ता" पद मिलता है, उसका अर्थ दीक्षितजीने वाग्दत्ता और मनोदत्ता किया है। कहीं कहीं तो ऐसा अर्थ करना ठीक है परन्तु सब स्थानोंमें ऐसा करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करनी प्रकरणविरुद्ध हो जाता है, और उन्हीं वचनोंका अर्थ अन्य व्यवस्था-दाताओंने कहीं "सम्प्रदत्ता" और कहीं "ऊढ़ा" किया है, और ऐसा करनेके कारण भी अपने अपने ग्रन्थोंमें स्पष्ट लिख दिये हैं। इसलिये जहां जहां 'दत्ता' पद आवे, वहां वहां यह देखना होगा कि पूर्वापर तथा प्रकरणके अनुसार कौनसा अर्थ ठीक है। दीक्षितजीने कहीं यह नहीं बताया है कि दत्ताका अर्थ क्यों वाग्दत्ता ही किया जाय, क्यों "सम्प्रदत्ता" अथवा "ऊढ़ा" न किया जाय।

दीक्षितजीने नारदस्मृतिसे कई वचन उद्धृत किये हैं, जिनमेंसे एकमें यह लिखा है कि जो पुरुष न्यायपूर्वक दी हुई कन्या उसके वरको नहीं देता उसको राजा चोर का दण्ड दे। यह तो ठीक है और व्यवहारकी बात है। आज किसीको दान किया, कल किसीको दान किया—ऐसे झगड़ा पैदा करनेवालेको अवश्य दण्ड मिलना ही चाहिये। परन्तु दीक्षितजीने कहीं किसी वचनसे यह सिद्ध नहीं किया है कि वाग्दत्ता स्त्रियोंका विवाह हो ही नहीं सकता। जबतक यह सिद्ध न हो तबतक कुछ भी नहीं हुआ। जबतक यह स्थिर न हो जाय कि 'न्यायपूर्वक' दान किसको कहते हैं तबतक यह कहना कि "दत्ता" पदका अर्थ वाग्दत्ता ही है युक्तिसंगत नहीं हो सकता। यदि कोई यह दे कि न अपनी लड़की ... और इसीपर यह मान लेना कि वह लड़की न्यायपूर्वक 'दत्ता' हो गयी, अंधेर ही होगा।

* यह महत्वपूर्ण लेखमाला हमें काशी शुद्धि सभाके प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई है।—सम्पादक।

मान्यवर धर्मशास्त्रोंमें वचन उपस्थित हैं जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि वाग्दत्ता, मनोदत्ता और यहां तक कि संकल्प करके दानकी हुई लड़कियां भी कुमारी रह जाती हैं, और उनका फिरसे दान हो सकता है। विचारमें मैंने यथास्थान इन सब बातोंको स्पष्ट कर दिया है।

नारदस्मृतिका एक और वचन उद्धृत करके दीक्षित जीने यह लिखा है कि यदि वर कन्याको ग्रहण करके परदेश चला जाय तो कन्या तीन ऋतुओं तक अपेक्षा करके स्वयम् दूसरा वर स्वीकार कर ले। इस वचनमें भी दीक्षित जीने "वाचादत्तां वरीकृत्य" अर्थ किया है। क्यों ऐसा किया—इसका कुछ प्रमाण नहीं दिया। फिर इसके विपरीत कन्याको स्वयम् वर ग्रहण करनेका अधिकार कैसे मिल गया? यह अधिकार कन्याको तभी मिलता है जब कन्यादाता उसका दान न करे और वह ऋतुमती हो जाय, तभी राजाकी आज्ञासे वह स्वयम् वर ग्रहण कर सकती है।

दीक्षित जीने नारदका एक और वचन उद्धृत किया है जिसमें लिखा है कि जब वर शुल्क देकर चला जाय तो वह एक वर्ष तक प्रतीक्षा कर ले। इसको भी वाग्दत्ताके संबंधमें कहा है। यदि ऐसा ही हो, तो भी यह वचन व्यवहार-संबंधी है। इससे यह सिद्धांत कैसे निकलेगा कि ऐसी कन्याका विवाह नहीं हो सकता? अर्थ तो स्पष्ट है—यदि एक वर्षके पहले कन्यादाता उसको वरान्तरको दे दे तो राजा उसको दण्ड दे सकता है। एक वर्षके बाद वर केवल अपना दिया हुआ शुल्क ही पा सकता है।

सबसे विचित्र बात यह है कि जिस अध्यायसे दीक्षितजीने नारदके वचनोंको उद्धृत किया है वहीं ऐसे वचन भी मिलते हैं जिनमें वाग्दत्ता अर्थ करना दीक्षितजीके सरीखे वैयाकरणके लिये भी असाध्य है। इसीलिये दीक्षितजीने उनका उल्लेख नहीं किया है

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्च स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥"३०

पराशरके इस वचनका अर्थ दीक्षित जीने वाग्दत्ता कन्याओंके संबंधमें ही किया है। यही वचन नारद स्मृति के १२ वें अध्यायमें मिलता है. जिसमें-से दीक्षितजीने प्रमाण उद्धृत किये हैं। इस वचनके ठीक पहले (अव्यवहित पूर्व) निम्नलिखित वचन मिलता है—

अज्ञातदोषेगोढ़ या निर्दोषा नान्यभार्यगता।
बन्धुभिः साभियोक्तव्या निर्बन्धुः स्वयमाश्रयेत्॥९६॥

इसका अर्थ यह है—(विवाह होनेसे पहले) "अज्ञातदोष युक्त वरसे यदि निर्दोष कन्याका विवाह हो जाय, और उसने पर पुरुषका आश्रय न किया हो, तो उसके बन्धुओंको चाहिये कि उसका विवाह किसी दूसरे वरके साथ कर दे, और जिस स्त्रीका कोई बन्धु न हो, वह स्वयम् दूसरा पति ग्रहण कर ले।" इस वचनके अव्यवहित-पर ही "नष्टे मृते" वचन मिलता है जिसमें यह लिखा है कि स्त्रियां कब कब पत्यन्तर ग्रहण कर सकती हैं। पूर्ववचनमें "ऊढ़ा" पद आया है जिसका अर्थ "विवाहिता" है इसलिये नारद-स्मृति वाले "नष्टेमृते" वचनका अर्थ वाग्दत्ताके संबंधमें नहीं हो सकता। यदि दीक्षितजी दुराग्रही न होते, तो उसी वचनका, जो पराशरमें भी मिलता है, वाग्दत्ता अर्थ न करते

फिर इसी "नष्टे मृते" वचनके अव्यवहित पीछे नारद-स्मृतिमें चार और वचन मिलते हैं (देखिये ९८ से १०१ श्लोक तक) जिनमें यह लिखा है कि पतिके निरुद्देश होनेपर किन किन जातियोंकी स्त्रियां कितना कितना समय बिताकर पुनर्विवाह कर सकती हैं। इन वचनों ... और अव-... ... भी ... पति ... सम्भावना है? यही कारण है कि दीक्षितजीने इन

अपने विचारमें मैंने यथास्थान दिखाया है कि इसी प्रश्नका निर्णय किस रीतिसे पराशर-माधवीयमें किया गया है। पाठक देखेंगे कि वहां उन्हीं वचनोंका अर्थ "ऊढ़ा" किया गया है जिनका अर्थ दीक्षित जीने वाग्दत्ता किया है। निर्णयकारोंने उप-पुराणोंके वचनोंसे स्मृतियोंके वचनोंका खण्डन किया है, जो हो ही नहीं सकता।

पाठकोंको चाहिये कि दीक्षितजीकी व्यवस्था तथा उसपर मेरे विचार दोनोंको ध्यानपूर्वक पढ़ें, और स्वयं इस प्रश्नकी मीमांसा करें कि अक्षतयोनि बाल विधवाओंका पुनर्विवाह मंत्रसंस्कारपूर्वक हो सकता है या नहीं। पाठकोंको इसपर भी विचार करना पड़ेगा कि जो अक्षतयोनि स्त्रियां ब्रह्मचर्यका निर्वाह नहीं कर सकतीं उनका स्वजातिके किसी योग्य पुरुषके साथ विवाह कर देना उचित होगा कि नहीं? क्या ऐसी सगाई समाजके हितके लिये गुप्त व्यभिचारों तथा भ्रूणहत्याओंसे अच्छी न होगी? समाजके नियमानुसार अधम पक्षका धर्म भी व्यभिचारसे अच्छा है; क्योंकि एक नियन्त्रित है और दूसरा अनियन्त्रित होनेके कारण वर्णसङ्करोंका उत्पादक और समाजको दूषित करनेवाला है। अलमिति विस्तरेण।

विधवाविवाह-मीमांसा।

[लेखक—श्री हरिप्रसाद पालधि बी० ए०]

(२)

दीक्षितजीकी व्यवस्था।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।

—इति याज्ञवल्क्यः।

व्याख्या—अविप्लुतं ब्रह्मचर्यं यस्य सः। विप्लुते सति तु कृतप्रायश्चित्त इति बोध्यम्। अनन्येति। या दानेनोपभोगेन वा पुरुषांतर पूर्विका न भवति ताम्। अनेन सप्तपुनर्भ्वो व्यावर्त्यन्ते। तथा चाह बौधायनः

वाग्दत्ता, मनोदत्ता, अग्निपरिगता, सप्तमं पदं नीता, भुक्ता गृहीतगर्भा, प्रसूता चेति सप्तविधाः पुनर्भूस्तां गृहीत्वा न प्रजां न धर्मं विन्देदिति

व्यवस्था—अत्र वाग्दत्ता मनोदत्तया निषेधः पुंवस्य निर्दोषत्वे बोध्यम्। अतएव नारद—

दत्तां न्यायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम्।
अदुष्टश्चेद्वरो राज्ञा स दण्ड्यस्तत्र चोरवत्॥

इति।

व्यवस्था—नत्रैव दण्डं विधत्ते, दुष्टे तु पूर्ववरे वाग्दत्तापि वरांतराय देया।

तथाच पराशर—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्च स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।

इति।

अस्यार्थ—वाग्दानानन्तरं पाणिग्रहणात्प्राक् पतौ, सम्भावितोत्पत्तिरूपनिश्चे पूर्वं स्थित वरे नष्टे सति तस्य दुरदेशगमनेनाऽपरिज्ञात वृत्तान्ते सति।

तथाच नारदः

परिगृह्य तु यत्कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत्।
त्रीन् ऋतून् समतिक्रम्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्।
कौपुंस्य तु सम्बन्धाहरणं प्रातिबोधितं।
वरणाद्ग्रहणाद्वा पाणेः संस्कारादपि विचक्षणैः॥
तयोरनियतं प्रोक्तं वरणं दोषदर्शनादिति।

व्याख्या—परिगृह्य वाचा दत्तां स्वीकृत्य। त्रीनृतूनिति। इदं च कन्याया अधार्मिकत्वे बोध्यम्। धार्मिकत्वे तु—

प्रदाय शुल्कं कन्याया गच्छेद्यः क्षोभने तथा।
धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः॥ इति

व्याख्या—नारदे नैव वर्षं प्रतीक्षाया अभिधानात्। अन्यपुरुषाय दिशादेयमर्थः। अत्र पुनर्वाः संस्कारात् प्राक् त्रितयं क्रियते, वरणम् पाणिग्रहणम् सप्तपदीक्रमणञ्चेति। तत्र वरणं नाम वरस्य कन्यादानाय कन्याया दातुः प्रार्थनम्। तदेव वाग्दान। एवं स्थिते तयोः पाणिग्रहण-सप्तपदीक्रमणयोः पूर्वं भावि वरणं तदनियमम्। अनियामकमित्यर्थः। तयोरेव भार्यात्वोत्पादकत्वादिति भावः। तथा च मनुः—

पाणिग्रहणमंत्रेषु नियतं दारलक्षणं।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे।
इति।

व्याख्या—दोषदर्शनादिति वाक्यस्यायमर्थः। वरणस्यानियामकत्वेऽपि पूर्ववरस्य दोषे सत्येवेति। यदि तु अन्यस्मै दत्तायां पूर्ववरोऽप्यायाति तदाऽनूढां तां लभते। ऊढायां तु स्वदत्तं द्रव्यमेव लभते न तु कन्यां। तदाह कात्यायनः—

अनेकेभ्योऽपि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै।
पुरागतस्य सर्वेषां लभते तमिमां सुताम्।
अथागच्छेत् पोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्। इति।

व्याख्या—तद्वैव नष्टे इति व्याख्यातं।
एवं मृतेऽपि। तथा च वशिष्ठः—

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेताऽदौ वरो यदि।
न च मंत्रोपनीता स्यात् कुमारी पितुरेव सा॥ इति

व्याख्या—मंत्रोपनयनं पाणिग्रहणादिकं विना वाग्दानमात्रादि दानं न भार्यात्वोत्पादकमित्यर्थः। अतएव यमः—

नोदकेन न वा वाचा कन्यायाः पतिरुच्यते।
पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे॥ इति

व्याख्या—तथा प्रव्रजिते कृतसन्यासे। क्लीबे चेति। चकारादन्यजातीयादेः ग्रहणम्। तथा च कात्यायनः—

स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव वा।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा।
ऊढापि देया सान्यस्मै सहाभरणभूषणा॥ इति

व्याख्या—मनोढापीत्यपि शब्दः कैमुतिक न्यायेन वाग्दत्ताया एवान्यस्मै दानमाचष्टे न ऊढायाः अन्यथा सगोत्रोढाया अपि पुनर्विवाह पक्षे 'मातृवत्परिपालयेदिति' शास्त्रं विरुध्यते। यत्तु—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

इति मनुनोक्तं। यच्च—

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात्॥
आगर्भसम्भवाद्गच्छेदन्यथा पतितो भवेत्।

इति याज्ञवल्क्येनोक्तम्।

व्याख्या—तद्देवराच्च सुतोत्पत्तिरिति कलौ निषिद्धेषु प्रोक्त परिगणनम्। यदपि—

उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्सम्प्राप्तमैथुना।
पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा॥

इति नारदेनोक्तम् तदपि कलौ निषिद्धम्। ऊढायाः पुनरुद्वाहं इति। न च कलिनिषिद्धस्यापि युगान्तरीय धर्मस्यैव नष्टे मृत इत्यादि पराशरवाक्यं प्रतिपादकमस्त्विति वाच्यम्।

कलावनुष्ठेयान् धर्मान् वक्ष्यामीति प्रतिज्ञाय तद्ग्रन्थप्रणयनादिति दिक्। तदेवमनन्यपूर्विकामिति पदं व्याख्यातम्।

हिन्दी उल्था।

ऐसा पुरुष जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हुआ हो सुलक्षणा स्त्रीसे विवाह करे जो अनन्यपूर्विका हो, अर्थात् जिसका संबंध केवल दान अथवा उपभोगसे किसी दूसरे पुरुषसे न हुआ हो, देखनेमें सुन्दरी हो, असपिण्डा हो, अपनेसे कम उमरवाली हो, रोगिणी न हो, जिसके भाई हो और जिसका गोत्र और प्रवर अपनेसे भिन्न हो। यदि ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया हो तो प्रायश्चित्त कर ले।

इससे सातों प्रकारकी पुनर्भू स्त्रियोंका पुनर्विवाह रुक जाता है। जैसा कि बौधायनने कहा है—वाग्दत्ता, किसीको कन्यादान करेंगे जिस कन्याके विषयमें ऐसा अपने मनमें स्थिर कर चुके हों, अग्नि समीपमें लाई हुई, जिसकी सप्तपदी हो चुकी हो, जिसका पतिसे समागम हुआ हो, जिसने गर्भ धारण कर लिया हो, जिसको बच्चा पैदा हो चुका हो—ये सात प्रकारकी पुनर्भू स्त्रियां हैं। इनको ग्रहण करके न उनसे प्रजा उत्पादन करे और न उनके साथ कोई यज्ञादिक धर्मकृत्य करे। वाग्दत्ता और मनोदत्ता स्त्रियोंका निषेध तभी लागू होता है जब कि पूर्ववर निर्दोष हो। इसीलिये नारदने कहा है—"जो न्याय पूर्वक दी हुई कन्याको उसके वरको नहीं देता, यदि वह अपराधरहित हो तो, राजा उसको चोरका दण्ड दे" और इसका नियम भी तभी किया गया है।

यदि पूर्ववर दोषयुक्त हो तो वाग्दत्ता भी दूसरे वरको दी जा सकती है।

पराशरने कहा है—"वाग्दानके अनन्तर और पाणिग्रहणके पहले उस वर होनेवाले पूर्वपुरुषके नष्ट हो जानेपर अर्थात् दूर देशमें जानेके कारण जिसका पता न लगे।"

नारदने कहा है—'वाग्दत्ता कन्याको स्वीकार करके यदि पुरुष देशान्तरको चला जाय तो तीन ऋतुतक अपेक्षा करके कन्या दूसरा वर वरण कर ले" यह वचन तभी लागू होता है जब कन्या अरक्षणीया हो गयी हो। यदि कन्या रखी जा सकती हो तो यदि कन्यादाताका [illegible] हक तथा धन देकर कोई चला जाय तो उस कन्याको एक वर्ष पर्यन्त अविवाहित रखनेके बाद दूसरेको विधानपूर्वक दे दे। जैसा कि नारदने ही एक वर्ष प्रतीक्षा करनेका नियम कर दिया है।

स्त्री और पुरुषका संसर्ग होनेके पूर्व तीन काम किये जाते हैं—वरण, पाणिग्रहण तथा सप्तपदी गमन। वरण शब्दका अर्थ है कन्यादाताका कन्यादानके लिये वरसे प्रार्थना करना। इसीको वाग्दान कहते हैं। इस अवस्थामें पाणिग्रहण तथा सप्तपदीगमन, इन दोनोंके पहले होनेवाला जो वरण है वह अनियत है अर्थात् केवल वरणहीसे पति पत्नी सम्बन्ध पक्का नहीं हो जाता, जिसके लिये केवल पिछले दोनों ही आवश्यक हैं।

मनुने कहा है—"पाणिग्रहण करनेके जो नियामक मन्त्र हैं उन्हींसे दारात्व उत्पन्न होता है और उनकी समाप्ति सप्तम पदमें होती है।" 'दोषदर्शनात्' इस वाक्यशेषसे यही अर्थ निकलता है। वरणकृत्यका अनियामकत्व भी पूर्ववरके दोषी होनेकी अवस्थामें है। यदि किसी दूसरेको वाग्दान कर देनेके पीछे पूर्ववर आ जाय तो यदि कन्या अविवाहिता रहे तो उसको वह पाता है, यदि कन्याका विवाह दूसरेके साथ हो गया हो तो अपना दिया हुआ द्रव्य ही पाता है न कि कन्या।

कात्यायनने कहा है—"यदि कन्या बहुतोंको दी गयी हो परंतु उसका विवाह किसीसे न हुआ हो तो जो वर सबसे पहले आवे वही उस कन्याको पाता है—यदि विवाह हो जानेके पश्चात् कोई वर आवे तो स्वदत्त शुल्क ही पा सकता है।" नष्टे पदकी व्याख्या इसी प्रकार है। मृते पदका भी इसी प्रकार अर्थ समझना चाहिये।

वशिष्ठने कहा है—"हाथमें जल लेकर संकल्प करके दान की हुई कन्याका वर यदि पहले मर जाय और उस कन्याका मंत्र संस्कार न हुआ हो तो वह कन्या कुमारी है और अपने पिताकी ही है।"

बिना मंत्रसंस्कार और पाणिग्रहणके केवल वाग्दान तथा संकल्प पढ़कर दान करनेसे ही भार्यात्व उत्पन्न नहीं होता यही अर्थ है। इसीलिये यमने कहा है—"न जल लेकर दान और न वाग्दानसे कन्याका पति कहा जाता है, पाणिग्रहण संस्कार होसे पतित्व सप्तम पदमें उत्पन्न होता है।"

इसी प्रकारका अर्थ संन्यास लेनेके सम्बन्धमें समझना चाहिये। क्लीब होनेमें भी यही। च पदसे वर यदि अन्य जातीय इत्यादिक हो, समझना चाहिये।

कात्यायनने कहा है—"वह वर यदि अन्यजातीय हो, पतित हो, क्लीब हो, कुकर्मी हो, सगोत्र हो, दास हो, अथवा चिररोगी हो तो यदि कन्या ऊढा भी हो तो दूसरेको वस्त्रालंकारसे भूषित करके दी जावे। यहां कैमुतिक न्यायसे ऊढा पदका अर्थ वाग्दत्ता ही करना चाहिये न कि विवाहिता। यदि ऐसा अर्थ न करें तो सगोत्रासे विवाह हो जानेपर जब पुनर्विवाहका प्रश्न उठता है तो उस "कन्याको माताके तुल्य प्रतिपालन करें" इस शास्त्रसे विरुद्ध हो जाता है।

मनुने कहा है—"जिस वाग्दत्ता कन्याका वर मर जाय उससे निम्न प्रकारसे उसका देवर पुत्रोत्पादन करे।"

याज्ञवल्क्यने कहा है—'अपुत्रा स्त्रीसे उसका देवर, सपिण्ड और सगोत्र उसके गुरुजनोंसे अनुज्ञात होकर, यदि उस स्त्रीको पुत्रलाभ करनेकी इच्छा हो तो, अपनी देहमें घृत लगाकर हर एक ऋतुमें एक एक बार गमन करे जबतक कि उस स्त्रीको गर्भ न हो जाय यदि इसके अन्यथा करे तो पतित हो जाय।"

परन्तु देवरसे पुत्रोत्पत्ति कलिमें निषिद्ध है, यह पहले कह चुके हैं। नारदने जो कहा है कि "यदि कन्या विवाहिता भी हो परन्तु उसका स्वामिसे संबंध न हुआ हो तो उसका फिरसे मंत्रसंस्कार हो सकता है क्योंकि वह कन्या तुल्य ही है।" यह भी कलिमें निषिद्ध है—'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्" इस वचनके अनुसार।

जो युगान्तरीय धर्म कलिमें निषिद्ध किये गये हैं नष्टे मृते इत्यादि पराशर वचन को उनका पुनः प्रतिपादक नहीं समझना चाहिये, क्योंकि पराशरने यही प्रतिज्ञा करके अपनी स्मृति लिखी कि वे कलियुगके धर्म ही कह रहे हैं। इसलिये हम (दीक्षित) ने अनन्यपूर्विकाका अर्थ ऊपर लिखे हुए प्रकारसे किया है।

२ 7-11-28

विधवाविवाह-मीमांसा ।

[लेखक—श्री हरिप्रसाद पालधि बी० ए० ।]

(३)

व्यवस्थापर विचार ।

उपोद्घात प्रकरणमें मैंने संक्षेप रूपमें दीक्षित जी की व्यवस्थाको दीखी दिखा दी है। अब विस्तारपूर्वक मैं उन सब प्रमाणोंपर विचार करूंगा जिनको दीक्षित जीने अपनी व्यवस्थाकी पुष्टिमें उद्धृत किये हैं।

दीक्षित जी का उद्धृत किया हुआ याज्ञवल्क्यका वचन उस प्रथम विवाहसे संबन्ध रखता है जो गुरु घरमें रहकर, विद्योपार्जन करके, गुरुको दक्षिणा देकर, स्नान करके गुरुसे अनुज्ञा लेकर अपने घर लौट आनेके पश्चात् और गृहस्थाश्रम धारण करनेके पहले किया जाता है देखिये ५१वां श्लोक—

गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा ॥

इसका अर्थ मित क्षराके अनुसार यह है—

(पूर्वोक्त प्रकारसे) मंत्र और ब्राह्मण सहित वेद पढ़कर, अथवा ब्रह्मचारियोंके लिये जो कथित धर्म्म हैं उनको पूरा करके, अथवा दोनोंको पूरा करके, गुरुकी इच्छानुसार यथाशक्ति दक्षिणा देकर, स्नान करे अथवा अशक्त होनेके कारण गुरुकी अनुमतिसे बिना दक्षिणा दिये भी स्नान करे।

याज्ञवल्क्यने जैसे स्त्रियोंके लक्षण दिये हैं वैसे ही पुरुषके लिये भी अविप्लुत "ब्रह्मचर्य" होना इत्यादि लक्षण लिखे हैं। देखिये ५२ श्लोकसे ५५ तक—

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः॥

इसका अर्थ यह है कि जो लक्षण स्त्रियोंके निमित्त लिखे हैं वे तथा सवर्ण होना, श्रोत्रिय होना, क्लीव न होना, युवा होना, बुद्धिमान होना और जनप्रिय होना वरके लक्षण लिखे हैं। जैसे कन्याके लिये अनन्यपूर्विका होना शुभ लक्षण है वैसे ही वरके लिये भी किसी दूसरी कन्यासे असम्बन्धित होना भी कथित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त वचन प्रथम विवाहसे सम्बन्ध रखते हैं।

फिर यह देखना है कि याज्ञवल्क्यका वचन ५२ श्लोकसे ५५ श्लोक तक विधि-निषेध सूचक है अथवा प्रशंसावाद ही है। मेरा कहना है कि यह वचन प्रशंसा-वाद ही है। विचार फिरसे किया जायगा। उपस्थित इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि अनन्यपूर्विका के पश्चात् ही कान्ता पद मिलता है जिसका अर्थ मिताक्षराकारने कमनीया और विवाह करनेवालेके मन और नयनको आनन्द देनेवाली किया है। क्या यही अर्थ है कि जो सुन्दर नहीं है उसका विवाह ही नहीं हो सकता? यदि ऐसा नहीं है तो अनन्यपूर्विका भी वही बात है और दोनों ही प्रशंसासूचक हैं।

यहां यह कह देना अत्यावश्यक है कि इन लक्षणोंमें ऐसे लक्षण भी हैं जिनपर और और दृष्टियोंसे भी ध्यान देना उचित है, जैसे अपनेसे कम उमरवाली होना, अरोगिणी होना, विख्यात कुलकी होना, इत्यादि। इन लक्षणोंमें असपिण्डा होना, समान गोत्र और प्रवर वाली न होना भी लिखा है ये लक्षण प्रशंसा वाद नहीं हैं क्योंकि ऐसे लक्षणवाली कन्याका विवाह निषिद्ध किया गया है और कहा गया है कि यदि विवाह हो जाय तो उस कन्याका त्याग दे अथवा उसका प्रतिपालन माताके तुल्य करे और प्रायश्चित्त करे। जहां ऐसा निषेधसूचक वचन नहीं मिलता वहां प्रथम विवाहके लिये प्रशंसा वाद ही समझना चाहिये।

अनन्यपूर्विकाका अर्थ दीक्षित जीने किया है 'जो दान अथवा उपभोगसे दूषित न हो' और प्रमाणमें बोधायनका वचन उद्धृत किया है। प्रचलित बौधायन स्मृतिमें उद्धृत वचन नहीं मिलता, उलटे आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलीमें छपी हुई बौधायन स्मृतिमें पुनर्भू स्त्रीका लक्षण यों दिया है—"क्लीबं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत् तस्यां पुनर्भ्वां यो जातः स पौनर्भवः"। इस वचनमें वाग्दत्ता अथवा मनोदत्ता मात्रका कुछ उल्लेख नहीं है, किंतु यह लिखा है कि 'जो स्त्री अपने पूर्व पतिको, जो क्लीब हो या पतित हो, छोड़कर किसी दूसरे पतिके साथ विवाह कर लेती है वही पुनर्भू होती है।

एक ही स्मृतिमें यह सम्भव नहीं है कि एक ही पुनर्भू पदके दो लक्षण स्मृतिकार दे। इससे यह स्पष्ट है कि एक वचन तो अवश्य क्षेपक है। अब विचार यह करना है कि कौनसा वचन क्षेपक है। इसपर विचार करनेके पहिले यह देखना आवश्यक है कि याज्ञवल्क्य स्मृतिमें इस सम्बंधमें क्या मिलता है क्योंकि याज्ञवल्क्य स्मृतिके वचन का यथार्थ तभी मिल सकता है जब उसी स्मृतिमें दिया हुआ लक्षण भी माना जाय। देखिये आचाराध्याय ६७ वां श्लोक—

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः ।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ॥

मिताक्षराकारने टीकामें लिखा है—

"अन्यपूर्वा द्विविधा, पुनर्भूः स्वैरिणी चेति। पुनर्भूरपि द्विविधा, क्षताक्षता च। तत्र क्षता संस्कारात् प्रागेव पुरुषसम्बन्ध दूषिता। अक्षता पुनः संस्कारदूषिता। या पुनः कौमारं पतिं त्यक्त्वा कामतः सवर्णमाश्रयति सा स्वैरिणी।"

इसका अर्थ यह है—अन्यपूर्वा दो प्रकार की हैं, पहिली पुनर्भूः और दूसरी स्वैरिणी। पुनर्भूः भी दो प्रकारकी है, एक क्षतयोनि और दूसरी अक्षतयोनि। क्षता वे हैं जो मन्त्र-संस्कार होनेके पहले ही पुरुष सम्बंधसे दूषित है। अक्षता वे हैं जिनका एक बार मंत्रसंस्कार हुआ हो परन्तु स्वामिसम्बन्ध न होनेके कारण अभी अक्षता ही हैं, और उनका फिर किसी दूसरेके साथ मन्त्र-संस्कार हुआ है। और स्वैरिणी वे हैं जो अपने कम उमरवाले पतिको छोड़कर अपनी इच्छासे किसी दूसरे सवर्ण पुरुषका आश्रय लेती हैं।

याज्ञवल्क्यके मतानुसार वाग्दत्ता और मनोदत्ता अन्यपूर्वा नहीं कही जा सकती, क्योंकि न तो वे संस्कारके पहले क्षता हैं और न उनका मन्त्रसंस्कार ही हुआ है। पुनर्भू तो तभी होगी जब दुबारा मन्त्रसंस्कार होगा। दीक्षितजी द्वारा उद्धृत यह बौधायन वचन याज्ञवल्क्यके वचनसे विरुद्ध होनेके कारण क्षेपक समझा जा सकता है, और आनन्दाश्रम ग्रंथावली तथा अन्य प्रचलित बौधायन स्मृतिका उद्धृत वचन ही बौधायनका मत समझा जा सकता है। भेद केवल इतना है कि याज्ञवल्क्यने जिसका स्वैरिणी कहा है बौधायनने उसको पुनर्भूः कहा है।

अब याज्ञवल्क्य स्मृतिमें ही अन्यपूर्वाका लक्षण मिलता है तो दीक्षित जीका कर्तव्य था कि अन्यपूर्वाका वह अर्थ करते जो कि स्मृतिकारने किया है। उस अर्थको छिपाकर एक बौधायनके नामसे वचनके अनुसार अर्थ करना न केवल अनुचित है किंतु विचार-विभ्राट् उत्पन्न करनेवाला है।

याज्ञवल्क्यके अनुसार ही व्यास और गौतमका मत है—

अनन्यपूर्विकां लध्वीं शुभलक्षणसंयुताम्। —व्यास
गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीं। —गौतम

वशिष्ठ स्मृतिमें विषय स्पष्ट कर दिया गया है—"गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः, स्नात्वाऽसमानार्षामस्पृष्टमैथुनां, यवीयसीं, सदृशीं, भार्यां विन्देत पाठांतर" "असमानार्षेयामस्पृष्टमैथुनामवरवयसीं" भी मिलता है। अर्थ एक ही है। केवल क्षता ही होना ही दोष है। वाग्दत्ता तथा मनोदत्ता का उल्लेख भी नहीं है।"

हारीत, सम्वर्त्त और शंख स्मृतियोंमें कन्याके लक्षण दिये हैं परन्तु अन्यपूर्वाका उल्लेख नहीं है। नारद स्मृतिमें भी जो मनुस्मृति हीका रूपान्तर है, वशिष्ठ स्मृतिके अनुसार "असंसृष्टमैथुना" लिखा है—

"दीर्घकुत्सितरोगार्त्ता व्यंगा संसृष्टमैथुना।
दुष्टान्यगतभावा च कन्या दोषाः प्रकीर्तिताः॥"

मनुस्मृतिमें कन्या लक्षण विस्तारपूर्वक दिया हुआ है—देखिये अध्याय ३—

उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।४
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥५

यह कहकर किन कुलोंकी कन्या न लेनी चाहिये यह बताया गया है। फिर लिखा है—

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥८
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥९
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥१०

मनु महाराजने इतने सुलक्षण और कुलक्षण लिखनेपर भी वाग्दत्ता और मनोदत्ताका उल्लेख नहीं किया।

पहले कह चुके हैं कि उक्त लक्षण समूह प्रायः प्रशंसा वा निंदावाद ही हैं, विधि-निषेधात्मक नहीं हैं। तथापि यहां फिरसे इस विषयपर विचार किया जाता है। क्या जिनके दशपूर्व पुरुष विख्यात नामवाले न हों उनकी कन्या अविवाह्या है? क्या जिनके नाम किसी नक्षत्रके नामके अनुसार हों, यथा कृत्तिका, विशाखा; किसी वृक्षके नामपर हो यथा मालती, माधवी; किसी नदीके नाम हो यथा गंगा, यमुना, सरस्वती; किसी अन्त्य जातिके नामपर हो यथा मातंगी; पर्वतके नामपर हो यथा विन्ध्या वा हैमी; किसी पक्षीके नामसे हो जैसे सुग्गी, कबुतरी, मैना, वे सब अविवाह्या हैं? ऐसा कौन कहेगा। इसीसे स्पष्ट है कि प्रायः उक्त लक्षण स्तुति वा निंदासूचक ही हैं विधि निषेधात्मक नहीं। केवल सपिण्ड और समान प्रवरवालीके विषयमें निषेध मिलता है, इसलिये केवल वे ही अविवाह्या हैं, अन्य नहीं।

अब देखिये बौधायन स्मृति, आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावलीमें छपी हुई, जिसमें ग्रंथान्तरोंसे मिलाकर पाठ भेद भी दिये हुए हैं, उक्त बौधायन वचन इस स्मृतिमें नहीं है और पुनर्भूः का लक्षण द्वितीय प्रश्नके द्वितीय अध्यायमें यों दिया है—

क्लीबं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत् तस्यां पुनर्भ्वां यो जातः स पौनर्भवः ॥३१

इस वचनमें वाग्दत्ता अथवा मनोदत्ता मात्रका कुछ उल्लेख नहीं है, परन्तु यह उल्लेख है कि जो स्त्री अपने पूर्व पतिको, जो क्लीब हो वा पतित हो, छोड़कर किसी दूसरे पतिके साथ विवाह कर लेती है वह पुनर्भूः कहलाती है। इस वचनमें और याज्ञवल्क्य स्मृतिके वचनमें केवल इतना अन्तर है कि जिसको याज्ञवल्क्यने स्वैरिणी कहा है उसीको बौधायनने पुनर्भूः कहा है, परंतु हैं दोनों ही अन्यपूर्वा। न याज्ञवल्क्यने और न बौधायनने वाग्दत्ता मात्रको अन्यपूर्वा कहा है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि दीक्षितजीका उद्धृत किया हुआ वचन क्षेपक है और जो वचन उपरिलिखित बौधायन स्मृतिमें मिलता है वही यथार्थ वचन है क्योंकि वही याज्ञवल्क्यके वचनके सदृश है। (अपूर्ण)

[गतांकसे आगे]

क्या यह दीक्षितजीका दुराग्रह नहीं है कि वशिष्ठ और नारद स्मृतिके वचनोंके रहते हुए भी यहां केवल पाठ होना ही दोष लिया है, और याज्ञवल्क्य और बौधायन स्मृतिमें दिए हुए वचनोंको भुलाकर वाग्दत्ता मात्रको अन्यपूर्वा कह दिया है, और प्रशंसा तथा निंदावाचक लक्षणोंको विधि तथा निषेधका पद प्रदान कर दिया है।

और भी देखिये मनुस्मृति पांचवा अध्याय १६३ वां श्लोक—

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते॥

"जो स्त्री अपने विवाहित पतिको अपकृष्ट समझकर छोड़ दे और किसी उत्कृष्ट पुरुषका आश्रय कर ले वह इस लोकमें निंदित होती है और उसको लोग परपूर्वा कहते हैं।" मनुने 'पति' शब्दका अर्थ "मंत्रसंस्कारकृत्पतिः" किया है। परपूर्वा और अन्यपूर्वा का अर्थ एक ही है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि यदि विवाहिता स्त्री अपने पतिको छोड़कर पर पुरुषका आश्रय करे तभी वह परपूर्वा होती है। अर्थात् जिसको मिताक्षराकारने स्वैरिणी कहा है उसीको मनुने परपूर्वा कहा है और अक्षता परंतु पुनः संस्कृताको परपूर्वा नहीं कहा है। वाग्दत्ता और मनोदत्ताओंसे तो कोई संबंध ही नहीं है।

मनुने परपूर्वा और पुनर्भूःमें भेद किया है। देखिये अध्याय ९ श्लोक १७५।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥

इसका अर्थ यह है कि जिस स्त्रीको उसके पतिने त्याग दिया हो अथवा जिस विधवा स्त्रीने अपनी इच्छासे फिरसे स्वामि ग्रहण कर लिया हो वही पुनर्भूः होती है। इस वचनमें मंत्रसंस्कारका कुछ उल्लेख नहीं है, इसलिये ऐसी स्त्रियां तो अवश्य दोषयुक्त हैं परन्तु इनसे और वाग्दत्ताओंसे क्या सम्बन्ध है?

दीक्षितजीने जो नारदका वचन उद्धृत किया है वह असंबद्ध है, क्योंकि व्यवहार विषयक है। सबसे विचित्र बात यह है कि दीक्षितजीने इस वचनसे, चाहे वह वाग्दत्ता मात्रसे क्यों न सम्बन्ध रखता हो, यह अर्थ कैसे निकाल लिया कि उस कन्यासे फिर किसीका विवाह हो ही नहीं सकता? पिताने दोष किया, राजाने उसको दंड दिया, कन्या अनृत अर्थात् अविवाह्या कैसे हो गयी? यदि किसी वचनमें कुछ अस्पष्टता हो तो वचनांतरसे यह स्थिर करना चाहिये कि पूर्वकथित वचनका वास्तविक अर्थ क्या है।

नारदके वचनका अर्थ यह है कि न्यायपूर्वक दत्ता कन्याको यदि कन्यादाता वरको न दे तो राजा उसको दण्ड दे। दीक्षितजीने वाग्दत्ता और मनोदत्ताओंको न्यायपूर्वक दान की हुई कन्या मान लिया है। सम्प्रदत्ता अर्थ क्यों न करें, जो संकल्पपूर्वक हाथमें जल लेकर समर्पण की गयी हो? देखिये व्यास स्मृति अध्याय २ श्लोक ८ जो इसी सम्बन्धमें है—

तुभ्यं दास्यामहमिति गृहीष्यामीति यस्तयोः।
कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दण्डभाक्॥

मैं तुझे कन्या दूंगा और मैं ग्रहण करूंगा—ऐसी प्रतिज्ञा यदि देनेवाला और लेनेवाला परस्पर कर लें तो उन दोनोंमेंसे जो अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रहे वही दण्डका भागी होता है।" वरणके समय वरसे यह नहीं कहलाया जाता कि मैं ग्रहण करूंगा, इसलिये नारदके वचनका अर्थ वाग्दत्ता नहीं है, मनोदत्ता तो हो ही नहीं सकता। कन्यादानकी पद्धतिमें "अमुक शर्मणे वराय मदीयां कन्यां वाचा सम्प्रदद इति ब्रूयात्" के अनन्तर वह नहीं कहलाया जाता कि "प्रतिगृह्णामि, वरसे प्रतिगृह्णामि तब कहलाया जाता है, देखिये कन्यादानकी पद्धति। जब कन्याका पिता

कन्यां कनकसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया॥

कहकर संकल्प करता है तभी वर "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि..." इत्यादि कहकर कन्याका हाथ ग्रहण करता है। यह तो ठीक ही है कि ऐसी दान की हुई कन्याको यदि कन्यादाता अदुष्ट वरको न दे तो राजा उसको दण्ड दे, परंतु इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि वह कन्या अनृत हो गयी? वह तो फिर भी अविवाहिता ही है। दीक्षितजीके कथनके विरुद्ध ऐसा साक्षात् वचन भी मिलता है कि ऐसी कन्या अनृत नहीं होती। देखिये वशिष्ठ स्मृति, अध्याय १७ ७२ श्लोक।

अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतादौ वरो यदि।
न च मन्त्रोपनीता स्यात् कुमारी पितुरेव सा॥

इस वचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी दान की हुई कन्या कुमारी ही रहती है और उसका पिता उसका दान फिरसे कर सकता है। सम्प्रदानके पीछे लाजाहवन और सप्तपदी गमन होता है, तभी कन्या विवाहिता कहलाती है। वशिष्ठजीके साक्षात् वचनके रहते हुए भी यदि दीक्षितजीके अनुसार यह मान भी लिया जाय कि वाग्दत्ता और मनोदत्ता अन्यपूर्वा हैं, पहले सिद्ध हो चुका है कि ये अन्यपूर्वा नहीं हैं, तो भी दीक्षितजीको बलिष्ठ प्रमाण उद्धृत करना चाहिये था जिससे वशिष्ठके प्रमाणका खण्डन हो जाता। इसके विरुद्ध देखिये कात्यायनका वचन—

स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव वा।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा॥
ऊढापि देया सान्यस्मै सहाभरणभूषणा॥

वह वर जिससे कि कन्याका विवाह हो गया है यदि अन्यजातीय, पतित, क्लीब, कुकर्मी, सगोत्र, दास अथवा चिररोगी सिद्ध हो जाय तो विवाहिता कन्या भी आभरण और भूषण पहिनाकर फिर दूसरे योग्य वरको दी जा सकती है।

फिर देखिये नारदका वचन—

उद्वाहितापि सा कन्या नचेत्सम्प्राप्तमैथुना।
पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव सा॥

"जिस कन्याका विवाह हो चुका है और जो ऋतुकाल भी आ चुका है, यदि वह अक्षत योनि हो तो उसका पुनःसंस्कार होना चाहिये क्योंकि वह कन्यातुल्य ही है।" (इस वचनको कात्यायनके वचनके साथ मिलाकर अर्थ करना चाहिये। अर्थात् यदि विवाहान्तर वरके दोष विदित हो जायं और वह कन्या अक्षतयोनि हो तभी उसका पुनर्दान हो सकता है, अन्यथा नहीं।)

जब विवाहिता कन्याका भी पुनर्दान अवस्था विशेषमें हो सकता है तो वाग्दत्ता के विषयमें तो कहना ही क्या।

दीक्षितजीके सारे विचारका आधार निम्नलिखित पराशर वचन है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

पतौका अर्थ दीक्षित जीने "सम्भावितोत्पत्तिकपतित्वे" किया है, अर्थात् जो अभी पति नहीं बना है परन्तु पति बननेवाला है। और यह विचित्र अर्थ करनेके लिये आपने नारद स्मृतिसे कुछ वचन उद्धृत किये हैं जो सब असम्बद्ध हैं और जिनसे कुछ सिद्ध भी नहीं होता।

"जो कन्याको ग्रहण करके देशान्तरको चला जाय तो तीन ऋतु तक अपेक्षा करके कन्या वरांतर ग्रहण कर सकती है।" क्या इससे यह सिद्ध हो गया कि पराशर वचनका 'नष्टे' भी 'दत्ता' से सम्बन्ध रखता है? क्या तीन ही महीनेमें वरको निरुद्दिष्ट समझ लेना चाहिये? 'जो शुल्क देकर तथा स्त्रीधन देकर चला जाय तो एक वर्ष तक अपेक्षा कर ले।" नारदके वचनोंमें तो निरुद्देश होना नहीं लिखा है। नारदके उद्धृत वचन सब असंबंध हैं। वे केवल व्यवहार विषयक हैं जिनमें यह दिखाया गया है कि दत्ता कन्याको किस कालतक अविवाहिता रखना चाहिये। इनका संबंध नष्टे मृतेसे हो ही नहीं सकता क्योंकि बरस छः महीनेसे गये हुए पुरुषको कोई निरुद्देश नहीं कह सकता। आगे चलकर यह दिखाया जायगा कि यही वचन नारद स्मृतिमें मिलता है जहांसे दीक्षित जीने कुछ वचन प्रमाणस्वरूप उद्धृत किये हैं और जहां वे 'सम्भावितोत्पत्तिकपतित्वे" अर्थ कर ही नहीं सकते थे।

पराशर स्मृतिके वचनमें "पतौ" शब्दका प्रयोग हुआ है और यमके वचनानुसार—

नोदकेन न वा वाचा कन्यायाः पतिरुच्यते।
पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे॥

पुरुष स्त्रीका पति न वाग्दान और न हाथमें जल लेकर दान करनेसे बनता है, किंतु पाणिग्रहणके संस्कारकी समाप्ति अर्थात् सप्तम पदके अनंतर ही पतित्व उत्पन्न होता है। मनुने भी स्पष्ट कर दिया है कि बिना मंत्रसंस्कार, जिसकी समाप्ति सप्तम पदमें होती है, पुरुष स्त्रीका पति नहीं बनता। फिर भी दीक्षित जीने लिख दिया कि पतौका अर्थ सम्भावितोत्पत्तिक पति है न कि वह जो पति बन चुका है। दीक्षित जीकी ढिठाई ध्यान देने योग्य है। (अपूर्ण)

व्यवस्थापर विचार।

(गतांकसे आगे)

ऊपर कह आये हैं कि नष्टे मृते वचन नारद स्मृतिमें भी मिलता है। किस प्रसंगमें यह वचन मिलता है इसे दिखानेके लिये हम पूर्वापर वचन भी उद्धृत कर देते हैं।

१२ वें अध्यायमें २० वें श्लोकसे विषयका प्रारम्भ होता है। कन्यादाता कौन है उसका उल्लेख है। यदि कन्यादाता दान न करे तो कन्याका क्या कर्तव्य है, यदि कन्याको ग्रहण करके वर देशांतरको चला जाय तो क्या करना चाहिये, यदि कन्यादाता दान न करे तो उसको क्या पाप होता है, यदि दत्तशुल्का कन्याके वरसे कोई दूसरा श्रेष्ठ वर आ जाय तब क्या करना चाहिये, अदुष्टा कन्याको ग्रहण करके यदि उससे विवाह न करे तब क्या होना चाहिये यह सब बताया गया है। कन्या और वरके दोषोंका उल्लेख किया गया है। आठ प्रकारके विवाह बताकर फिर इनमेंसे कौन प्रशंसनीय और कौन निंदित हैं, यह कहा गया है। फिर परपूर्वा स्त्रियोंके लक्षण दिये गये हैं, इत्यादि।

इसको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ३७ श्लोक तक तो दत्ताओंसे संबंध है, और ३८ श्लोकसे, जहां आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है विवाह प्रसंग प्रारम्भ होता है। नारदने परपूर्वा स्त्रियोंका लक्षण ४५ वें श्लोकसे ... वें श्लोक तक दिया है और इस विस्तृत लक्षणमें कहीं भी अविवाहिता कन्या परपूर्वा नहीं कही गयी है।

विस्तारभयसे ऊपर वचनोंका सारांश मात्र दिया गया है। विचारवान् पुरुष मूल ग्रन्थ पढ़ लें। नष्टे मृतेका साक्षात् सम्बन्ध दिखानेके लिये निम्नलिखित वचन उद्धृत किये जाते हैं—

अनुकूलामवाग्दुष्टां दक्षां साध्वीं प्रजावतीम् ।
त्यजन्भार्यामवस्थाप्यो राज्ञा दण्डेन भूयसा ॥९५॥
अज्ञातदोषेणोढ़ाया निर्दोषानान्यमाश्रिता ।
बन्धुभिः साभियोक्तव्या निर्बन्धुः स्वयमाश्रयेत् ॥९६॥
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥९७॥
अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषिते पतौ ।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत् ॥९८॥
क्षत्रिया षट् समास्तिष्ठेदप्रसूता समाद्वयम् ।
वैश्या प्रसूता चत्वारि द्वे वर्षे त्वितरावसेत् ॥९९॥
न शूद्रायाः स्मृतः काल एष प्रोषितयोषिताम् ।
जीवति श्रूयमाणे तु स्यादेषद्विगुणो विधिः ॥१००॥
अप्रवृत्तौ तु भूतानां दृष्टिरेषा प्रजापतेः ।
अतोऽन्यगमने स्त्रीणामेषदोषो न विद्यते ॥१०१॥

इन वचनों का भावार्थ यह है—

"जो पुरुष ऐसी स्त्रीका जो उसके इच्छानुसार काम करती है, परुष वचन नहीं बोलती और न कलह करती है, घरके काम करनेमें निपुण है, सच्चरित्रा है और पुत्रवती है—त्याग करता है राजाको चाहिये कि उस पुरुषको बार बार दण्ड देकर उस स्त्रीको अपने घरमें रखनेके लिये उसे बाध्य करे ॥" ९५

(विवाह होनेसे पहले) "अज्ञात दोषयुक्त वरसे यदि निर्दोष कन्याका विवाह होजाय, और उस कन्याने परपुरुषका आश्रय ग्रहण न किया हो तो उसके बंधुओंको चाहिये कि उसका विवाह किसी दूसरे वरके साथ कर दें। जिस स्त्रीका कोई बंधु न हो वह स्वयम् दूसरा पति ग्रहण कर ले ॥" ९६

यह व्यवस्था देनेके पश्चात् नारदजी लिखते हैं—

"जिस स्त्रीका पति निरुद्देश हो गया हो, मर गया हो, परिव्राजक हो गया हो, क्लीब हो, अथवा पतित हो गया हो—इन पांचो आपत्तियोंमें उसके लिये पत्यंतर ग्रहण करनेका विधान किया गया है ॥" ९७

(परन्तु) "ब्राह्मणी ८ वर्ष अपने परदेश गये हुए पतिके फिरनेकी राह देख ले यदि वह संतानवाली हो, अन्यथा केवल ४ वर्ष प्रतीक्षा कर ले। उक्त समय बिता कर तब पत्यन्तर ग्रहण करे।" ९८

(इसी प्रकारसे) "क्षत्रिया यदि सन्तान वाली हो तो ६ वर्ष अन्यथा ३ वर्ष, वैश्या सन्तानवाली हो तो ४ वर्ष अन्यथा दो वर्ष बिता ले।" ९९

"जिसका पति परदेश चला गया हो ऐसी शूद्रा स्त्रियोंके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। यदि पति जीवित है ऐसा समाचार मिलता हो तो ऊपर कहे हुए समय से द्विगुण समय बिताना नियम है।" १००

"यदि पतिके पास जानेकी प्रवृत्ति (अर्थाभाव अथवा और किसी कारणसे) न हो तो प्रजापतिका यही विधान है कि पत्यन्तर ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं है।" १०१

पाठक स्वयम् समझ लें कि यहां नष्टे मृतेका अर्थ वाग्दत्ता ओंसे सम्बंध रख सकता है या नहीं। पहले भी विवाहिता स्त्रियोंका उल्लेख है पीछे भी, तब फिर वाग्दत्ता कहांसे घुस पड़ीं? दत्ताओंके विषयमें तो नारदजीने "परिगृह्य तु यत्कन्यां" तथा "दत्वाय शुल्कं" नियम बना दिये हैं जो अधिकसे अधिक एक वर्षव्यापी हैं तब फिर उन्हीं दत्ताओंके लिये स्वयम् बहु वर्ष व्यापी नियम कैसे बना सकते हैं? क्या वाग्दत्ताओंसे भी कलियुगमें संतानोत्पत्तिकी संभावना है? व्यभिचारके लिये तो कोई नियम नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन वचनोंका अर्थ अभिभावक ग्रहण करनेका है? क्या अभिभावक ग्रहण करनेमें कोई पाप है? स्त्रियोंको तो स्वतंत्रता दी ही नहीं गयी है इसलिये जिस दिन उनका पति परदेश चला जाय उसी दिनसे उनको योग्य अभिभावक ग्रहण करना चाहिये।

दीक्षितजीने इसी १२वें अध्यायसे असम्बद्ध नारद वचन तो उद्धृत किये परन्तु ऊपर लिखे हुए वचनोंपर हरताल फेर दिया। क्या यह दुराग्रह नहीं है? (अपूर्ण)

विधवाविवाह-मीमांसा ।

[लेखक—श्री हरिप्रसाद पालधि बी॰ ए॰ ।]

(३)

व्यवस्थापर विचार ।

[गतांकसे आगे]

दीक्षितजीने माधवाचार्य-कृत-पराशर माधवीयको देखा था जिसमें निम्नलिखित वचन मिलता है। देखिये अध्याय २—

"यत्तु ऊढायाः पुनरुद्वाहो यमशातातपाभ्यां दर्शितः।
वरश्चेत् कुलशीलाभ्यां न युज्येत कथञ्चन।
न मंत्राः कारणं तत्र न च कन्यानृतं भवेत् ॥
समाच्छिद्यतु तां कन्यां बलादक्षतयोनिकाम्।
गुणवते दद्यादिति शातातपो ब्रवीत् ॥
हीनस्य कुलशीलाभ्यां हरन् कन्यां न दोषभाक्।
न मंत्राः कारणं तत्र न च कन्यानृतं भवेत् ॥
कात्यायनोऽपि—
स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव वा।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपि वा ॥
ऊढ़ापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा ॥
मनुरपि—
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते तथा।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।
"सोऽयं पुनरुद्वाहो युगान्तर विषयः।
तथाचादित्यपुराणम्—
ऊढ़ायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा।
कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् ॥"

इसका अर्थ यह है—"विवाहिता स्त्रियोंका पुनर्विवाह यम और शातातपने इस प्रकार लिखा है। वर यदि कुल और शीलसे हीन हो तो उसका संयोग कन्यासे न होने दें। मंत्रसंस्कार कोई कारण नहीं है (अर्थात् पुनर्दानमें बाधक नहीं है) और न कन्या दूषित होती है। ऐसी कन्याको वस्त्रालंकारसे आच्छादित करके, यदि वह अक्षतयोनि हो, बलपूर्वक पूर्ववरसे छुड़ाकर फिर किसी दूसरे गुणवान वरको दे, ऐसा शातातपने कहा है। जो कुलशीलसे हीन हो उससे कन्या छीन लेनेमें कोई दोष नहीं होता? ऐसी अवस्थामें मंत्रसंस्कार किसी प्रकारसे बाधक नहीं होता और न कन्या दूषित होती है।

"कात्यायनने भी कहा है—वह वर यदि अन्य जातीय हो, पतित हो, अथवा क्लीव हो, कुकर्मी हो, सगोत्र हो, दास हो अथवा चिररोगी हो तो विवाहिता कन्या भी दूसरे वरको वस्त्रालङ्कारसे भूषित करके दी जा सकती है।

"मनुने भी कहा है—यदि पति निरुद्देश हो गया हो, मर गया हो, परिव्राजक हो गया हो, क्लीव हो तथा पतित हो—तो इन पांच विपत्तियोंमें स्त्रियोंके लिये पत्यंतर ग्रहण करनेका विधान किया गया है।

"सो यह पुनर्विवाह कलियुगेतर विषय है जैसा कि आदित्यपुराणमें लिखा है—

विवाहिता स्त्रीका पुनर्विवाह, बड़े भाईको अधिक भाग देना, यज्ञमें गोवध, भाईके स्त्रीमें नियोगविधिसे पुत्रोत्पादन, और कमण्डलु धारण—ये पांच कृत्य कलिमें न करना चाहिये।"

फिर देखिये पराशर-माधवीय अध्याय ४ श्लोक ३० की टीका—"परिवेदन पर्याधान-योरिव स्त्रीणां पुनरुद्वाहस्यापि प्रसंगात् कचित् अभ्यनुज्ञां दर्शयति—
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥
'नष्टे' देशान्तरगमनेनापरिज्ञातवृत्तान्तः।
अयं च पुनरुद्वाहो युगान्तरविषयः।
तथाचादित्य पुराणम्—
ऊढ़ायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा।
[illegible]
"अत्र ऊढाशब्देन विधिवदूढा ग्राह्या अन्यथैव पुनरुद्वाहस्याप्यङ्गीकृतत्वात्।"

इसका अर्थ यह है—

"जैसे बड़े भाईके अविवाहित रहने तथा अग्न्याधान करनेसे पहले अवस्था-विशेषमें छोटा भाई ऐसा कर सकता है उसी प्रकारसे प्रसंगवश अवस्था विशेषमें पुनर्विवाहकी अनुज्ञा (पराशर मुनि) देते हैं—'नष्टे मृते इत्यादि (अर्थ पहले लिख चुके हैं।) यह पुनर्विवाह युगान्तरविषय है जैसा कि आदित्यपुराणमें लिखा है—'ऊढायाः पुनरुद्वाहं' इत्यादि। (अर्थ पहले लिख चुके हैं।

"यहां ऊढ़ा शब्दसे विधिवत् ऊढ़ा अर्थात् मंत्रसंस्कृता समझना चाहिये क्योंकि अन्य स्मृतियोंमें पुनरुद्वाह अङ्गीकार कर लिया गया है और इस पराशरवचनमें भी अंगीकृत हुआ है।"

दीक्षितजीने इस माधवकृत व्यवस्थामें यह भूल देखी कि पराशर-वचनका खण्डन जो कलिकालके लिये विशेष स्मृति है, आदित्य-पुराणके वचनसे नहीं हो सकता और उनको यह आग्रह था ही कि पुनर्विवाह सिद्ध न हो, इसलिये उन्होंने यह युक्ति निकाली कि पराशरके वचनका अर्थ ही वाग्दत्ताकी संबंधमें कर दिया, जिसका फल आपने यह समझा कि अन्य युगोंमें वाग्दत्ताओंका पुनर्विवाह नहीं हो सकता था वह पराशरके नष्टे मृते वचनसे कलिमें सिद्ध हो जायगा, जो शिष्ट व्यवहार भी है। परन्तु आपने यह नहीं देखा कि हमने तो अबतक यह सिद्ध ही नहीं किया है कि वाग्दत्ताओंका पुनर्विवाह कभी भी निषिद्ध था। इसके विरुद्ध ऊपर स्पष्ट वचन दिखाये गये हैं कि हाथमें जल लेकर सङ्कल्पपूर्वक दान की हुई कन्या भी कुमारी ही रहती है और उसीको फिरसे दान करनेका अधिकार उसके पिताको रहता है। ऐसे वचन भी दिखाये गये हैं जहां ऊढ़ा और उद्वाहिताओंका पुनर्विवाह लिखा है। परन्तु आपको इससे क्या। आप तो असाधारण वैयाकरण थे ही, आपने वचनमें "पतिते पतौ" का पद विच्छेद "पतिते अपतौ" कर दिया, क्योंकि पाणिनि व्याकरणसे 'पतौ' पद सिद्ध नहीं होता, 'पत्यौ' होता है। फिर क्या था, अपतौका अर्थ "सम्भावितोत्पत्तिक" पतिरूपे हो गया। दीक्षित जीने इसी नष्टे मृते वचनको, जो नारदस्मृतिमें भी मिलता है और जिसका खींच खांच कर भी अपतौ अर्थ नहीं किया जा सकता, हड़प कर लिया। आपको यह भी भूल गया कि माधवाचार्यने इसी वचनको मनुका भी कहा है और उसमें 'पतिते पतौ' के स्थानमें "पतिते तथा" लिखा है।

आर्ष वचनोंमें यह देखा ही नहीं जाता कि उनमें आये हुए पद व्याकरणसे सिद्ध होते हैं या नहीं। वाल्मीकीय रामायणमें हजारों पद मिलते हैं जो पाणिनीय व्याकरणसे सिद्ध नहीं होते। टीकाकार ऐसे पदोंको आर्ष कह कर छोड़ देते हैं। कौन कहेगा कि मुनि कुकवि थे? कौन कह सकता है कि पराशरके समय कौन सा व्याकरण प्रचलित था? पाणिनि तो उस समय पैदा भी नहीं हुए थे। फिर व्याकरण लिखनेवाले भी तो ऋषि लोग ही थे और जो पद वे लिख गये उनको अशुद्ध कहनेका अधिकार आधुनिक मनुष्योंको कहांसे मिल गया? भाषा व्याकरणाधीन नहीं है, उलटे व्याकरण ही भाषाके आदर्शपर बनाया जाता है जिसमें नव सिखुओंको सहायता मिले।

आजभी समग्र संसारमें सुलेखक अपने अपने ढंगसे लिखते जाते हैं और व्याकरण बेचारा मुंह देखता ही रह जाता है, फिर दूसरे वैयाकरण उत्पन्न होते हैं जो ऐसा नियम लिखते हैं जिससे नये ढंगसे लिखे हुए पद भी सिद्ध होंय। ऐसा देखा गया है कि जीवित भाषाओंमें सुलेखक सब शब्दों के अर्थोंको बदल देते हैं, जिसका फल यह होता है कि प्राचीन भाषा एक भिन्न भाषा जान पड़ती है।

क्या कोई भी यह कहनेका साहस करेगा कि "स तावाः पतये नमः" अशुद्ध है ? पतयेके स्थानमें पत्ये होना चाहिये था !

देवीभागवत ६ ठा स्कन्ध ८ वें अध्याय में कथा है कि एक समय किसी कारणसे इन्द्र गुप्त हो गये, देवताओंने राजा नहुषको इन्द्रपद दिया। नहुषने कहा कि इन्द्राणी भी मिलनी चाहिये। इसपर देवताओंने नहुषको धर्मशास्त्रका उपदेश देते हुए कहा—

शक्रपत्नी सदासाध्वी जीवमाने पतौ पुनः ।
कथमन्यं पतिं कुर्यात् सुभगाविपश्चिता ॥

इस श्लोकमें "पतौ" पद आया है और इन्द्रके सम्बन्धमें आया है इसलिये "जीव माने—पतौ" पद विच्छेद हो ही नहीं सकता और नहीं कोई कह सकता है कि 'पतौ' अशुद्ध है।

ऊपर लिखे हुए श्लोकसे यह बात सिद्ध होती है कि देवताओंने नहुषसे कहा था कि साध्वी शची "जीव माने पतौ पुनः कथमन्यं पतिं कुर्यात्"-अर्थात् यदि इन्द्रका मर जाना सिद्ध होता तो कदाचित् शचि पुनर्विवाह भी कर ले सकती थी। इससे भी वाग्दानकी अवधि नहीं रह जाती।

फिर देखिये इसी प्रसंगमें धर्मशास्त्र-प्रणेता बृहस्पति महाराजने शचिको क्या उपदेश दिया है—

करोतु समयं वाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥२२॥
इन्द्रे जीवति मे कान्ते कथमन्यं करोम्यहम् ।
अन्वेषणार्थं गन्तव्यं मया तस्य महात्मनः ॥२३॥
....

किञ्चित् कालं प्रतीक्षस्व यावत् कुर्वे विनिर्णयम्
इन्द्रोऽस्तीति नवास्तीति सन्देहो मे हृदि स्थितः ॥२९
ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ।
तावद् क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥३०॥

बृहस्पति महाराज शचीको उपदेश देते हैं कि वह नहुषसे कहे कि मुझको कुछ समय दिया जाय कि मैं निर्णय कर लूं कि इन्द्र जीते हैं या नहीं। क्या इस कथासे नष्टे मृतेका अर्थ स्पष्ट नहीं हो गया कि यदि पतिका पता न लगे अथवा वह मर जाय तभी स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है ? यही धर्म सनातन था और अब भी है।

दीक्षितजी भूल ही गये कि यदि पराशर वचन न भी होता तो भी नारद, कात्यायन, वशिष्ठादि स्मृतिवचनोंका खण्डन पुराण वचनोंसे नहीं हो सकता, उपपुराणोंकी बात तो जाने ही दीजिये। देखिये व्यास स्मृति—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
श्रौतं तत्र प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

और देखिये—

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विरुद्धेषु परस्परं ।
पूर्वं पूर्वं बलीयःस्यादिति न्यायविदो विदुः ॥

समान बलवाले वचनोंमें यदि विरोध हो तो विकल्प माना जाता है, यदि दोनोंके लिये अवकाश न मिले। परन्तु बलवान वचनका खण्डन किसी अवस्थामें भी निर्बल वचनसे नहीं हो सकता। प्रायः सभी उप-पुराण आधुनिक हैं. हजार पन्द्रह सौ वर्षके अंतरके लिखे हुए जान पड़ते हैं। इसलिये उनके प्रमाणपर स्मृति वाक्योंका खंडन हो ही नहीं सकता। (अपूर्ण)

दीक्षितजीके कथनानुसार वाग्दत्ता कन्या अन्यपूर्वा हो जाती है। परंतु वे स्वयं यह भी कहते हैं कि यदि वाग्दान करके कन्या बहुतोंको दी जाय तो जो उनमेंसे पहले आ जाय उसीसे कन्याका विवाह कर दे। यदि विवाह हो जानेके पीछे कोई पूर्व वर आवे तो वह अपना दिया हुआ धन ही पा सकता है, न कि कन्या। यदि वाग्दत्ता कन्याका विवाह हो ही नहीं सकता था, क्योंकि वह अन्यपूर्वा हो जाती है तो दीक्षितजीके उद्धृत वचनमें ऊढ़ा और अनूढ़ाका उल्लेख क्यों किया गया ? दुष्ट और अदुष्ट वरका झगड़ा भी नहीं है, यहां तो पहले पीछे आनेका झगड़ा है। इससे भी स्पष्ट है कि वाग्दान कोई चीज नहीं है।

"तदेव नष्टे इति व्याख्यातम्।" उन्होंने यों ही नष्टे मृतेका यह विचित्र अर्थ इसलिये किया कि उनके किये हुए अनन्य-पूर्विकाके अर्थसे विरुद्ध न हो जाय। क्या ही सुन्दर न्याय है ! एक स्थानमें दुराग्रह वश अशुद्ध अर्थ कर दिया तो एकवाक्यता करनेके लिये जहां जहां काम पड़े अनर्थ करना ही चाहिये। यहांतक आपने ढिठाई की है कि वशिष्ठ, यम, कात्यायनका वचन स्वयं दिखाकर, जिनमें यह स्पष्ट कहा है कि संकल्पपूर्वक दान की हुई कन्याका वर-यदि मर जाय तो वह कन्या ही रहती है, सप्तपदी गमनान्तर ही वर कन्याका पति होता है इसके पूर्व नहीं, आपने यह लिखा है कि कैमुतिक न्यायसे ऊढ़ा शब्दका अर्थ वाग्दत्ता ही करना चाहिये। जहां माधवाचार्य, कमलाकर भट्ट, नीलकण्ठ, मिश्र मिश्र इत्यादि आचार्योंने बाध्य होकर ऊढ़ा शब्दका अर्थ ऊढ़ा ही लिया है, वहां दीक्षितजीने कैमुतिक न्याय लगाकर ऊढ़ा शब्दका अर्थ वाग्दत्ता कर दिया, फिर क्या चाहिये।

कैमुतिक न्यायका लक्षण शब्दकल्पद्रुममें यों दिया हुआ है—"यद्भारवहन दुर्बलस्यापि साध्यं तद्भारवहनं सबलस्य साध्यं।" यदि विचारणीय यह होता कि वाग्दत्ताका पुनर्विवाह हो सकता है कि नहीं तब यह दिखाकर कि "ऊढ़ापि देया साम्यस्मै" यह कहा जा सकता था कि जब ऊढ़ाका पुनर्विवाह हो सकता है तब कैमुतिक न्यायसे वाग्दत्ताओंका तो हो अवश्य हो सकता है। दीक्षितजीने तो केवल यह किया है कि जहां औरोंने विवाहिता अर्थ किया है और जहां अन्य अर्थ हो ही नहीं सकता था, वहां आपने वाग्दत्ता अर्थ किया। परन्तु आपने सिवाय अपने मुखसे कहनेके कहीं भी किसी वचनसे यह सिद्ध नहीं किया, कि वाग्दत्ताका पुनर्विवाह किसी अन्य वरसे नहीं हो सकता। यदि उन्होंने ऐसा सिद्ध किया होता तो कैमुतिक न्यायसे यह कह सकते थे कि जब वाग्दत्ताओंका भी विवाह नहीं हो सकता तो ऊढ़ाका कैसे हो सकता है। यहाँ तो उन्हींके उद्धृत वचनोंहीसे यह सिद्ध हो जाता है कि वाग्दान विवाह नहीं है और "ऊढ़ापि देया साम्यस्मै सहाभरण भूषणा" फिर कैमुतिक न्याय कहांसे घुस आया ?

आपका यह भी कहना है कि यदि ऊढ़ा शब्दका अर्थ वाग्दत्ता नहीं किया जाता तो सगोत्राके विषयमें जो यह कहा गया है कि उसका माताके तुल्य पालन करे उससे विरुद्ध हो जाता है। दीक्षितजीकी दृष्टि शातातप वचनकी ओर है जो निम्नलिखित है। यह वचन भी माधव भाष्यमें दिया हुआ है और सम्भव है कि दीक्षितजीने देखा हो। "सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेद् मातृवदेनां बिभृयात्।" इसीके पास ही शातातपका वचन भी दिया है जो इस भांति है—

परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
कृत्वा तस्याः समुत्सर्गं तप्तकृच्छ्र विशोधनम्।

अर्थात् यदि कोई भ्रमवश सगोत्रा अथवा समानप्रवरासे विवाह कर ले तो उसका पालन माताके तुल्य करे अथवा उसको त्याग दे और तप्तकृच्छ्र करके शुद्ध हो। यदि उसका त्याग किया जाय तो कात्यायनके वचनानुसार उसका फिरसे विवाह हो सकता है। यथा—

वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव च।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपिवा ॥
ऊढ़ापि देया साम्यस्मै सहाभरणभूषणा ॥

कोई विरोध नहीं। इसलिये न तो कैमुतिक न्याय ही लगता है, और न ऊढ़ाका विचित्र अर्थ वाग्दत्ता करनेकी ही आवश्यकता पड़ती है। ऊढ़ाका अर्थ ऊढ़ा ही बना रहता है जैसा कि और और व्यवस्थादाताओंने किया है।

आगे चलकर दीक्षितजीने कहा है—"यदपि उद्वाहितापि सा कन्या नचेत्सम्प्राप्त-मैथुना। पुनः संस्कार मर्हत यथा कन्या तथैव सा। इति नारदेनोक्तम् तदपि कलौ निषिद्धम्। ऊढायाः पुनरुद्वाह मिति।"

यहां दीक्षितजी ठिकाने आ गये। उद्वाहिता पदपर कैमुतिक न्याय न लगा सके। यहां आकर अन्य व्यवस्थादाताओंने, यथा माधव, नीलकण्ठ, कमलाकर और मिश्र मिश्रने जो किया था उनको भी करना पड़ा, अर्थात् कलिवर्ज्यकी दोहाई देनी पड़ी। परन्तु यह सिद्ध हो चुका कि नष्टे-मृते वाग्दत्तापर नहीं है, परन्तु ऊढापर ही है, और पराशरस्मृति कलिधर्मोंके लिये ही लिखी गयी है इसलिये कलियुगमें भी अन्य युगोंकी भांति पुनर्विवाह हो ही सकता है। पराशर-वचनका खंडन आदित्यपुराणके वचनसे नहीं हो सकता और न किसी भी स्मृतिके वचनका किसी पुराणके वचनसे हो सकता है।

दीक्षितजी तो उस दलके हैं जिसका कहना है—

वयमिह पदशास्त्रं तर्कमान्विक्षिकिम्वा
यदि पथि विपथे वा योजयामः सपन्था।

यदि वाग्दत्ता सिद्ध करनेके लिये ऊढा, उद्वाहिताका अर्थ वाग्दत्ता करना पड़े तो वे तो पदशास्त्रमें धुरन्धर पण्डित हैं, कर ही दे सकते हैं। यदि कैमुतिक न्याय लगाना हो तो केवल वाग्जाल फैलाकर निःशंक असिद्ध प्रमाणोंसे भी यह सिद्ध कर लेते हैं कि जब वाग्दत्ताका भी पुनर्विवाह नहीं हो सकता तो फिर ऊढा और उद्वाहिताका कैसे हो सकता है। काम निकालनेके लिये आप स्मृतिवचनोंका खंडन उपपुराणके वचनसे कर देते हैं। आपका तो यह कहना है कि यदि नष्टे मृतेका अर्थ यह न करें कि वह वाग्दत्ता-विषयक है तो उससे कलिवर्ज्योंका खण्डन हो जाता है। इसीलिये उन्होंने अनन्यपूर्विकाका अर्थ वाग्दत्ता किया है।

जिन अन्य आचार्य लोगोंको भी यह दुराग्रह था कि स्त्रियोंका पुनर्विवाह सिद्ध न किया जाय वे दीक्षितजीके समान दुस्साहसी नहीं थे। उन्होंने वचनोंका अर्थ तो ठीक ठीक किया परन्तु कलिवर्ज्यकी दोहाई देकर शान्त रहे उनकी आंखोंपर यह परदा पड़ गया कि स्मृतियोंका वचन उपपुराणके वचनसे काटा नहीं जा सकता। संभव है कि यह परदा जान बूझकर डाल लिया गया हो।

पत्यौ पदका अर्थ करते हुए दीक्षितजीने कहा है कि इसका अर्थ भी वाग्दत्तासे सम्बन्ध रखता है। नारद-स्मृतिके १२ वें अध्यायमें यहांसे दीक्षितजीने वचन उद्धृत किये हैं १४ प्रकारके पण्ड गिनाये गये हैं।

निसर्गपण्डो वध्रिश्च पक्षपण्ड स्तथैव च ।
अभिशापाद् गुरो रोगाद्देवक्रोधात्तथैव च ॥ १२
ईर्ष्यापण्डश्च सेव्यश्च पातरेता मुखे भगः ।
आक्षिप्तो मोघबीजश्च शालीनोऽन्यापतिस्तथा ॥ १३
तत्राद्या व प्रतीकारी पक्षाख्यो मासमाचरेत् ।
अनुक्रमात्त यस्यास्य कालः सम्वत्सरः स्मृतः ॥ १४
ईर्ष्या पण्डादयो येऽन्ये चत्वारः समुदाहृताः ।
त्यक्तव्यास्ते पतितवत् क्षतयोन्या अपि स्त्रिया ॥ १५
आक्षिप्त मोघबीजाभ्यां कृतेपि पतिकर्मणि ।
पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्द्धं प्रतीक्ष्यतु ॥ १६

जैसे नारदने नष्टेके सम्बन्धमें समय निर्धारण कर दिया कि कब स्त्री पत्यन्तर ग्रहण कर सकती है, उसी भांति क्लीवेके सम्बन्धमें भी समय निर्धारण कर दिया है। जहां क्लीवत्वका निवारण असाध्य हैं वहां स्त्री जब चाहे पत्यन्तर ग्रहण कर सकती है। जहां निवार्य है वहां निर्धारित समयतक प्रतीक्षा कर ले और यदि क्लीवत्व न जाय तो पुनर्विवाह कर सकती है। ईर्ष्यापण्डादि चार पण्डोंके सम्बन्धमें कहा है कि उनको सद्यः क्षतयोनि स्त्रियां भी पतितवत् त्याग दें, अर्थात् जिसको पतिसे समागम होनेपर यह ज्ञान पड़े कि वह उक्त चार प्रकारके पण्डोंमें से है वह भी उस पतिको त्याग दे। आक्षिप्त और मोघबीजोंके संबंधमें भी यही लिखा है। यदि उन्होंने अपनी भार्यासे पतिकर्म किया भी हो तब भी छः महीना देखकर उसका अन्य पतिसे विवाह हो सकता है।

ऐसे प्रमाण रहते हुए भी दीक्षितजीका यह अर्थ करना कि नष्टे मृते वचन वाग्दत्ता से ही संबन्ध रखता है दुराग्रह नहीं है तो क्या है?

यह तो पहले ही कह आये हैं कि याज्ञवल्क्यका वचन प्रथम विवाहसे सम्बन्ध रखता है, पुनर्विवाहसे नहीं रखता, इसलिये वह वचन पुनर्विवाहपर लागू नहीं हो सकता। अर्थात् जहां कोई रंडुवा अपना विवाह करना चाहे वहां वह परपूर्वा स्त्रियोंसे कर सकता है, क्योंकि दोनों ही शुभ लक्षणसे हीन हैं, वर विप्लुतब्रह्मचर्य है और स्त्री परपूर्वा है। इतना और कहना है कि जहां जहां पत्यंतर ग्रहण करना लिखा है वहां यह देखना है कि स्त्री क्षतयोनि है कि अक्षतयोनि। यदि अक्षतयोनि है तो वह कुमारी है और उनका पुनर्दान मंत्रसंस्कार-पूर्वक हो सकता है। "कन्यै वाक्षतयोनिर्या ......" इत्यादि। अगर किसी कन्यापर मंत्र संस्कार होनेके पहले ही बलात्कार किया गया हो तो वह भी कन्यातुल्य ही है—

बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मंत्रै-र्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥

परंतु मंत्रसंस्कार हो जानेपर जब कन्याका पतिके साथ संयोग हो जाता है तो वह कन्या नहीं रहती और उसका फिर मंत्र-संस्कार नहीं हो सकता। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है वह भी अवस्था-विशेषमें पत्यंतर ग्रहण कर सकती है, और ऐसा करनेमें पाप भी नहीं होगा, परन्तु वह सगाई होगी और इसको विवाह न कहना चाहिये। मेरा कहना है कि ऐसी सगाई भी उस घृणित अवस्थासे बहुत अच्छी है जिसमें स्त्रियां गुप्त व्यभिचार करती हैं, भ्रूणहत्या करती हैं, घरसे निकल जाती हैं, विधर्मियोंके पंजेमें फंस जाती हैं अथवा वेश्यावृत्तिका अवलम्बन कर लेती हैं।

दीक्षितजीके मतका तो खण्डन हो चुका है। समाजहितैषी विद्वान् लोग भलीभांति सोच लें कि शास्त्र क्या कहता है, और यदि साहस हो और समयोचित समझें तो प्रचलित कुरीतिको छोड़ें और शास्त्रविहित तथा समयानुकूल प्रथाका पुनः प्रचार करके समाजकी रक्षा करें।

मेरा यह नहीं कहना है कि सर्वत्र ही पुनर्विवाह कर दिया जाया करे, परन्तु यह अवश्य कहना है कि देश और कालको देखकर यदि यह आशंका हो कि किसी स्त्रीसे ब्रह्मचर्य न निबहेगा तो अवश्य उसका पुनर्विवाह अथवा सगाई किसी सवर्ण और योग्य पुरुषसे कर दी जाय। यदि स्त्री ब्रह्मचर्य निभा सके तो उत्तम पक्ष है। यदि सहगमन करे तो अत्युत्तम पक्ष है, परन्तु वह कानून विरुद्ध है इस लये असाध्य है। समाजको चाहिये कि स्त्रीशिक्षा तथा उचित व्यवहारसे स्त्रियोंका यथासाध्य ब्रह्मचर्य निबाहनेमें सहायता करे। जिन ससारमें पुरुषों स्वयं दुश्चारित्र हैं वह आशा नहीं कर सकता कि उसके घरोंकी 'स्त्री सच्चरित्रा' रहेगी। स्वयम् बुढ़ौतीमें छठा विवाह करके विधवा कन्या अथवा पुत्रवधूसे यह आशा रखना कि वह ब्रह्मचर्य निबाहेंगी, दुराशा मात्र है।

"ఆంధ్ర" ఆగస్టు 1927

శ్రీమదఖండ ఆంధ్రవీర శైవభక్త మాహేశ్వరసమాజమహాజనసభ

బెజవాడలో మునిసిపల్ హైస్కూలులో జూలై 30, 31 తేదీలలో ఆయుర్వేదడాక్టర్ శ్రీమాన్ [illegible] బసవలింగ దేవరగారి అధ్యక్షతక్రింద అపరిమితానందములో యీ సభ జరుపబడెను. జూలై 30 తేది సాయంత్రం [illegible] గంటలు మొదలు 6 గంటలవరకు సబ్‌కమిటీమీటింగు శ్రీమాన్ [illegible] వీరయ్యగారి అధ్యక్షతను జరుపబడి సమాజ అధ్యక్ష కార్యదర్శులను ఎన్నుకొనిరి.

జూలై 31 తేదీన ఉదయం 8 గంటలకు శ్రీమాన్ [illegible] పత్తి కోటయ్యగారిచేత [illegible] ప్రార్థనలతో మహాసభ ప్రారంభింపబడెను.

అందు అధ్యక్షులు సంఘాభివృద్ధిని గురించి బహు విశాలముగా ఉపన్యసించిరి. తరువాత శ్రీ [illegible] గారు మతము ఆచారమును గురించిన్ని శ్రీమాన్ చెల్లూరి కోటయ్యగారు సంఘాభివృద్ధి విద్యాభివృద్ధినిగురించి శ్రీమాన్ [illegible] వీరయ్యగారున్ను శ్రీమాన్ [illegible] వెంకయ్యగారు బి. ఏ. బి విద్యావిషయము అందులో మాతృభావమునుగురించిన్ని శ్రీమాన్ [illegible] కోటి శంకరయ్యగారు [illegible] కోటి [illegible] గారు సంఘం అభివృద్ధికి తేగలందులకు నిపుణముగా బోధించిరి.

సాయంత్రం 3 గంటలకు తిరిగి సభ ఆరంభింపబడెను. నల్లకొండ ప్రవహాస్తవ్యులయిన ప్రస్తుతం [illegible] మార్వరిద్యనభ్యసించుచున్నటువంటి శ్రీమాన్ [illegible] [illegible] ప్రూర్వకముగా వ్రాసిపంపిన [illegible] ఉపన్యాసము చదువబడెను.

శ్రీమాన్ [illegible] గారు [illegible] విద్యాభివృద్ధినిగురించి [illegible] వ్రాసి ముద్దులొలుకు పలుకులతో [illegible]. శ్రీమాన్ [illegible] కోటి నాగయ్యగారు [illegible] ప్రసంగించిరి. [illegible] శ్రీ [illegible] వ్యాసము వ్రాసి పంపిరి. దానిని ప్రత్యేకముగా ప్రకటించుచున్నాము. ఇంతటితో కరతాళధ్వనులలో [illegible] ముగింపబడెను.

[illegible] కోటయ్య,
తెనాలి [illegible].

స్వరాజ్య ద్వాదశమంజరికా స్తోత్రమ్

[పురాణం సూర్యనారాయణ తీర్థులువారు],

(ఇంజలి [illegible] కవిచేత [illegible] పత్రికలో ప్రకటింపబడినవి. మిగత [illegible] కవిచేతను వ్రాయబడినవి. [illegible] (ప్రార్థితులు)

భజ స్వారాజ్యం భజ స్వారాజ్యం-
స్వారాజ్యం భజ మూఢమతే,
సంప్రాప్తే త్వస్మిన్ స్వారాజ్యే-
నహి నహి తిష్ఠతి మతవైషమ్యమ్ 1.

మాయామోహకవస్త్రవికాశం-
దృష్ట్వా మాగా మోహావేశమ్
ఏతద్వ్యర్థవిచారవిదూరం-
మనసి విచింతయ వారంవారమ్ 2.

సన్తతచిన్తాభరితం దేశం-
వ్యపగతసాత్త్వికకాంతివికాసమ్;
కల్పితసంకులవిద్యాభ్యాసం-
మాకురు మాకురు దుస్సహవాసమ్ 3.

ద్రవ్యవిహీనం ధ్యానవిలీనం-
దాస్యశృంఖల దావనిమగ్నమ్
భారతజననీదుఃఖవిముక్త్యై-
స్వార్థత్యాగం కురు కురు వేగమ్ 4.

శౌర్యం గళితం ధైర్యం పలితం-
స్థైర్యవిహీనం భారతబృన్దమ్
స్వాతంత్ర్యేచ్ఛాశక్తిసమేతం-
తిలకం గాంధిం భజభజ సతతమ్ 5.

నిస్తేజస్త్వం నిర్వీర్యత్వం-
నిర్ధనికత్వం జాతె మహాన్!
పశ్యన్నపిచ న పశ్యతి లోకః-
ఉదరనిమిత్తం బహుకృతశోకః 6.

జీర్ణే వస్త్రే కోఽభ్యాచారః-
క్షీణే విత్తే కో వ్యాపారః;
గళితే శాస్త్రే కశ్చతురంగః-
ప్రాప్తే రాజ్యే కో వా మానః 7.

స్వచ్ఛసుసంస్కృతభాషాద్వేషం-
స్వోదరపూరణభాషావేశమ్
హైందవధర్మవిదారణవేషం-
[illegible] సోదర! మాకురు ద్వేషమ్ 8.

గేయం గాంధీనామసహస్రం-
ధ్యేయం భారతరాష్ట్ర [illegible];
నేయం మాన్య తిలకే చిత్తం-
దేయం [illegible] విత్తమ్ 9.

మానిశ మానిశ [illegible]-
[illegible]
జహి జహి [illegible]-
[illegible] 10.

వసవస సతతం [illegible]-
[illegible]
[illegible]-
భజ భజ [illegible] సౌజన్యమ్, 11.

మాకురు మాకురు [illegible] ద్వేషం-
[illegible] ద్వేషమ్;
అస్తి హి [illegible]-
[illegible] ముక్తిః 12.

कौन कहां हैं ?

भारतके निर्वासित देशभक्त

जो बहुसंख्यक भारतवासी अपनी स्वदेश भक्तिके दण्डस्वरूप बरसेसे, देश और कुटुम्बसे वियुक्त होकर विदेशमें घोर दुःख सहते हुए निर्वासित जीवन बिता रहे हैं उनकी नामावली उर्दू दैनिक "हमदर्द" में "निजाम गजट" नामक मराठी पत्रके हवाले से प्रकाशित हुई है। सूची पूर्ण है या अपूर्ण यह नहीं बताया गया है, पर अधिक संभावना अपूर्ण होनेकी ही है। वह नीचे उद्धृत की जाती है—

नाम	वर्तमान निवास
(१) अब्दुल हफीज	जर्मनी
(२) अमीन फख फर्हखी	"
(३) मनसूर अहमद	"
(४) अब्दुल शकूर सैरी	"
(५) अब्दुल जब्बार	"
(६) श्री धीरेन्द्रनाथ सरकार	"
(७) श्री वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय	"
(८) श्री चम्पकवर्ण पत्वानी	"
(९) श्री हृषीकेशदत्त	"
(१०) श्री नवीनचन्द्र चौधरी	"
(११) श्री करुणा राम सिंह	"
(१२) श्री नाथप्रसाद वर्मा	"
(१३ श्री पांडुरंग अंकोजी	"
(१४) श्री वीरेन्द्रनाथ गुरु	"
(१५) राना	फ्रांस
(१६) श्रीमती पी० आर० कामा	"
(१७) लाला हरदयाल	स्वीडन
(१८) श्री प्रमथनाथ दत्त	रूस
(१९) स्वामी [श्यामजी ?] कृष्ण वर्मा	स्विजलैंण्ड
(२०) श्री रासबिहारी	जापान
(२१) राजा महेन्द्रप्रताप	अफगानिस्तान
(२२) श्री अबू सैयद	तुर्की
(२३) श्री अब्दुल रब	"
(२४) श्री शैलेन्द्रनाथ घोष	अमरीका
(२५) श्री हरि (?) शिवलाल गुप्त	"
(२६) श्री ध्यानेन्द्रनाथ सान्याल	"
(२७) श्री प्रफुल्ल मुकर्जी	"
(२८) श्री धारेन्द्रनाथ सेन	"
(२९) श्री भगवानसिंह	"
(३०) श्री गोपालसिंह	"
(३१) श्री मोहू राम	"
(३२) श्री बिहारीलाल	"
(३३) श्री नन्दीकर	"
(३४) श्री हरद्वारसिंह	अज्ञात
(३५) श्री इकबाल सैदाई	"
(३६) श्री वहीदुल्लाह	"
(३७) श्री नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य	"
(३८) श्री तारकनाथ दास	जर्मनी
(३९) श्री के० के० नायक	अज्ञात
(४०) श्री विभूति आचार्य	जर्मनी
(४१) श्री मीठासिंह	अज्ञात
(४२) सैयद अब्दुश्शाहिद	"
(४३) प्रोफेसर खानखोजे	"

प्राचीन स्वर्ण मुद्रा ।

मेरे पास एक स्वर्ण मुद्रा है जिसके सम्बन्ध में कुछ पुरातत्व वेत्ताओं की राय है कि यह लग भग ५ हजार वर्ष की है और कुछ लोग उसे द्वापर युग के कृष्णावतार के समय की बतलाते हैं। जो कुछ हो यदि कोई उसे अवलोकन करना चाहते हों तो वे निम्नलिखित पते पर उसके सम्बन्ध में मुझसे बात चीत करें।

शिवशंकरप्रसाद घड़ीसाज,
चौक, बनारस।

जीहुजूरमन्त्रजपयोगः

[लेखक—श्री० "घनश्याम"]

मोर्निङ्गस्य पट्ट ओ,क्लाक समये शय्यां त्यक्त्वा, शेविङ्ग कुर्यात्। ततो वेत्रासने स्थित्वा लुकिङ्गग्लास सम्मुखीकृत्य, बालसंवारणं, पाउडरलेपनं, अधरकपोलादिको मलाबयेवपु वेस्लीन स्पर्शनं, धूम्रपान करणादिकं कृत्वा, हैट-बूट-पतलून वास्केनकोटादिभिः जीहुजूर चित्ताकर्षकं फेशनोपयुक्तं स्ववेशं विधाय मन्त्रमारभेत्।

यथा—सोडावाटरं पीत्वा गंगा पुनातु! लेमनेडं पीत्वा विष्णुः पुनातु! आइस्क्रोमेन गंगाविष्णुः मां पुनातु! एवं त्रिविधमाचमनम्। ततो भूतनिस्सारणम्:—

अपसर्पन्तु ते भूता नीचकर्म-विवर्जिताः ॥
ये भूता धर्मसंयुक्तास्ते नश्यन्तु ममाज्ञया॥१॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये च फ़ैशननिन्दकाः॥
ये पापे विघ्न कर्तारस्ते नश्यन्तु ममाज्ञया॥२॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये च फापट्यवर्जिताः॥
ये भूताः सज्जना भूमौ ते नश्यन्तु ममाज्ञया॥३॥
अपसर्पन्तु भूतानि सभ्यानि सर्वतो दिशः॥
सर्वेषां सविरोधेन जी-हुजूर विचिन्तये॥४॥

वामे वम्बैये नमः। पूर्वे इलाहाबादाय नमः। पश्चिमे इंगलैण्डाय नमः। मध्ये अजमेर कलकत्ताय नमः। श्री इष्टदेवजी हुजूराय नमोनमः।

अथ संकल्पः

अत्राद्य अद्य श्रीनवीन सभ्यतायाः प्रथमे प्रहरार्द्धे तदादौ ज्ञानशून्यकल्पे बीसवीं सदीत्याख्ये कर्मयुगे तस्य नवमचरणे गौराङ्गावतारे जेण्टलमेनराज्ये पराधीन देशे हिन्दूलोके सन् एकोनविंशतिशतोपरि अष्टाविंशतितमे वर्षे अप-टू-डेट संवत्सरे फ़ैशनेबलऋतौ करोड़केलेंडरयुक्तमासे अमुकमासे असमञ्जसपक्षे टाइमटेबुलयुक्त अमुक तारीख नाम्नितिमिरतिथौ सण्डमण्डादिकेषु अमुक वासरे परस्पर-विरोधनामर्द-नक्षत्रे भारतीयानां दुर्भाग्य-योग-विधर्मीकृतगर्हितकरणे एवं क्वाइट राइट पञ्चाङ्ग शुद्धौ मम गरीब गोत्रोत्पन्नस्य प्रपंचप्रवरस्य कपटवेदान्तर्गत चपलूसी शाखाध्यायिनः अमुक शर्मणः स्वशरीरं आयुक्षीणार्थं, दुर्बलशरीरार्थं तृष्णावृद्धयर्थं पेन्शनलाभार्थं टाइमविजयार्थं दीनजयार्थं रोगव्याध्याद्यनेकक्लेशकष्ट वृद्धयर्थं तरक्कीप्राप्त्यर्थं दफ़्तर कार्यसिद्धयर्थं आफ़िसरदेवता प्रसन्नार्थं ममचेतोनवीनसभ्यतायां प्रवेशाय जीहुजूर-मन्त्र-जपमहं करिष्ये!

विनियोगः—

अस्य श्रीजीहुजूर महामन्त्रस्य स्वार्थीऋषिः गड़बड़छन्दः फ़ैशनाविभूत जेण्टलमैनदेवता गुलामीशक्तिः गरजबीजं पैसातत्वं नोकरीकीलकं निजकुलगौरवाचार विचारादि-बन्धन-विमुक्तये जीहुजूर महामन्त्र-जपे विनियोगः!

न्यासः

स्वार्थीऋषये नमः फ़ैशनके गुलामीशक्तै नमः! आफ़िसे गरजबीजाय नमः! निजोरीषु नोकरीकीलकाय नमः सर्वत्रैव!! स्वराज्ये अंगुष्ठाभ्यां नमः! सद्योगे तर्जनीभ्यां नमः! असत्याग्रहे मध्यमाभ्यां नमः! देशहिताय अनामिकाभ्यां नमः! सभा सम्मेलनावसरे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः! एवं हृदयादि ततोध्यानम्:—

मुखं कटुचुरुटिकाकलितधूम्रकेतुप्रभम्।
भयावहमशेषदुर्गुणगिरा जनान्दुःखदम्॥
भुजङ्ग इव भीषणं पललभूरिभोगान्वितम्।
सदा मलिन चेतसा जीहुजूर! त्वामाश्रये॥

एवं ध्यात्वा फ़ैशनेबुलोपचारैः सम्पूजयेत्! यथाः—

होटलोत्सुकायनमः साइकलं समर्पयामि! तृपातुराय नमः सोडावाटरं समर्पयामि! फ़टिङ्गकार्यै नमः उस्तरा समर्पयामि! कुटिलालकाय नमः भूतनाथतैलं समर्पयामि! रङ्गीनमिजाजाय नमः पाउडरं समर्पयामि! शौकीनाय नमः सीज़र सिगरेटं समर्पयामि! बत्तमीजाय टुआलं समर्पयामि! कोमलकान्तशरीराय नमः अग्रेलां समर्पयामि! गौरवर्णाये नमः पीयर्सशोप समर्पयामि! फ़ैशनान्धाय नमः चश्मा समर्पयामि! हतभाग्याय नमः नौकरी निवेदयामि! भ्रान्तचित्तायनमः वाचं समर्पयामि।

एवं फ़ैशनोपयुक्तं विदितोपचारैः सम्पूज्य पश्चाज्जीवनपर्यन्तं 'जीहुजूर' मन्त्र जपं कुर्यात्।

इतिश्री कलियुग काण्डे कपोलकल्पित-तन्त्रे पाखण्डपुराणे अनर्गल-अयोग्य-संवादे गड़बड़ाध्याये "घनश्यामप्यारे" इत्युपनामधारिणा गणेशरामशर्मणा—विरचितोऽयं 'जीहुजूर' मन्त्रजपप्रयोगः सम्पूर्णतामगात्।

ఆంధ్రపత్రికానుబంధము 1928-వ సం॥ జూలై నెల 18-వ తేది బుధ

మనదేశమున నాదినుండియు రజస్వలానంతరవివాహములు కలవు.

ప్రస్తుతకాలమున బ్రజలలో నే గాక శాసనసభలో గూడ నొక ప్రశ్నమై యున్న రజస్వలానంతర వివాహవిషయమై పలువురు పండితులు భిన్నభిన్నాభిప్రాయులై యున్నారు. కొందరు కన్యావివాహములే యనాదిసిద్ధములను సదాచారమను చుందురు. కొందరు రజస్వలానంతర వివాహములు కూడ నట్టివే యనియు కాలక్రమమున నశించిననియు చెప్పుదురు. ప్రజలలో నిట్టి యభిప్రాయములు స్వల్పభేదములతో లెక్క విధములుగ గానబడుచున్నవి.

నేను నివసించునది యొకపల్లెటూరగుటచే నెందు ధర్మశాస్త్రగ్రంథములు లేమిం జేసి యీరజస్వలానంతర వివాహనిర్ణయ విషయమై శాస్త్రప్రమాణములను విశేషముగ నీయలేను. ఇది ప్రాచీనాచారమని నిర్ణయించుటకు బ్రాచీనకాలపు మనుష్యు లిప్పటివా రుండరు కావున నాయాకాలములందు వారు రచించిన గ్రంథములను బట్టి దీనిని నిర్ణయింపవలెను. ఇట్లాయాకాలములందలి యాచారములను నిర్ణయించుటకు దక్కిన గ్రంథములకంటెను కావ్యనాటకాదులు లెక్కుడు సహాయమును జేయును. కావున నీవివాహనిర్ణయము విషయమై పురాణాదులకంటెను కావ్యనాటకాదులే యందు విశేషించి ప్రమాణముగా నీయబడును.

1 మనుస్మృతియభిప్రాయము:—మనుస్మృతిలో "బ్రాహ్మో దైవస్తథైవార్షః। ప్రాజాపత్యస్తథాసురః. గాంధర్వో రాక్షసశ్చైవ। పైశాచశ్చాష్టమోఽధమః." అను శ్లోకమున నాకాలమునను 8 వివాహములు ప్రపంచమున నున్నట్లు చెప్పెను. "షడానుపూర్వ్యా విప్రస్య। క్షత్రస్య చతురోఽవరాన్। విట్శూద్రయోస్తు తానేవ। విద్యాద్ధర్మ్యానరాక్షసాన్" అను శ్లోకముచే నాల్గుజాతులవారును గాంధర్వవివాహము చేయవచ్చునని యంగీకరించెను. (గాంధర్వమనగా స్త్రీపురుషులు పరస్పరానురాగముచే రహస్యముగ సంభోగించి పిమ్మట యథావిధిగ వివాహమును జేసికొనుట) రజస్వలావివాహములు చేయగూడదను నభిప్రాయము మనువునకున్నట్లు మనుస్మృతిని బట్టియే తెలియును. అట్టిచో నీరజస్వలానంతర వివాహము (గాంధర్వము) చేయుట యాతనిమతమునకు విరోధించును. ఒక్క మనువుకే గాదు, రజస్వలావివాహమును నిషేధించిన వారందరికిని నిది విరుద్ధమని వారు దీని వదలక ధర్మ్యమే యని వ్రాసిరి. కావున వారికి కూడ నీరజస్వలానంతరవివాహము కొంతవఱకు సమ్మతమనక తీరదు. కావుననే "త్రీణి వర్షాణ్యుదీక్షేత కుమార్యృతుమతీ సతీ" అను నిట్టిచోట్ల దండ్రి వివాహము చేయనిచో మూడు సంవత్సరములు ఋతుమతియయ్యు వేచియుండవలెనని చెప్పెను. అట్లు రజస్వలావివాహము చేయనే కూడదని యాతని యభిప్రాయమైనచో బదునొకండవ సంవత్సరముననే పెండ్లాడ విధించియుండును. కావున మన్వాదిధర్మశాస్త్రకర్తలకును నీరజస్వలానంతరవివాహము కొంతవఱకు సమ్మతమేయని యూహింపవచ్చును.

2 భాగవతము:—భాగవతమున నుషాపరిణయము రజస్వలానంతరవివాహము. ఉష తనయంతఃపురమున నిద్రించుచుండ నామెకు కలలో నొకసుందరుడగు పురుషుడు గన్పించెను. ఆపురుషుని రూపమును చిత్రించి యట్టివానిని వెదకి చెలులు [illegible] వారాతనిని వెంటనే దీసికొనివచ్చిరి. ఆమె వానితో భోగించెను. "సా చ తం సుందరవరం। విలోక్య ముదితాననా। దుష్ప్రేక్ష్యే స్వగృహే పుంభిః। రేమే ప్రాద్యుమ్నినా సమమ్"
భాగవతము 62 అధ్యా.

ఇట్లు రజస్వలానంతరవివాహమును శకుంతలాపరిణయము భాగవతమునందును భారతమునందు గూడ వర్ణింపబడుటచే నీగ్రంథములనాటి కీవివాహములు లోకమున వ్యాపించినట్లు తెలియుచున్నది.

3 కాళిదాసు:—పై భాగవతాదులలోని గాథల ననుసరించి కాళిదాసు తన శాకుంతలమున శకుంతలను రజస్వలానంతరవివాహము (గాంధర్వము) నే గావించెను. మఱియు "గాంధర్వేణ వివాహేన। బహ్వ్యో రాజర్షికన్యకాః। శ్రూయంతే పరిణీతాస్తాః। పితృభిశ్చాభినందితాః." అను శ్లోకముచే నాకాలమునందలి గాంధర్వవివాహముల ప్రాశస్త్య ప్రచారములను వర్ణించెను.

మఱియు కుమారసంభవమున "తమేనమాహ్వయన్నగతా సఖీజనం। శ్రీదానసం నిర్వ్యతితాభిలాష్య" అను నీమొదలుగాగలవానిచే పార్వతి బాల్యమును వర్ణించి "కామస్య పుష్పవ్యతిరిక్తమస్త్రం బాల్యాత్పరం సాథ వయః ప్రపేదే." "అన్యోన్యముత్పీడయదుత్పలాక్ష్యాః స్తనద్వయం పాండు తథా ప్రవృద్ధమ్" అను నీమొదలగు శ్లోకములచే నామె యౌవనమును వర్ణించెను. కాళిదాసుని యీవర్ణనా సందర్భమును తిలకించినచో నామె వివాహమునకు బూర్వమే రజస్వలయైనట్లు స్పష్టముకాగలదు. వర్ణనముచే నామె యింకను రజస్వలకాలేదని శంకించినను నీశ్వరుడు తపస్సుచేయుట, పార్వతి యాతనికి శుశ్రూషచేయుట, ఆసమయమున తారకుడు లోకమునకు విప్లవమును జేయుట, శివుని మన్మథుని నీశ్వరునొద్దకు బంపుట, ఈశ్వరతపోభంగము, పిమ్మట పార్వతి చాలకాలము తపస్సుచేయుట యను నీవిషయములను ఆమె యౌవనవతియైన పిమ్మట చాలకాలమునకు జరుగవలసిన వానినిగ వర్ణించెనుగాన పార్వతి తపముచేయుట పూర్తియగు వఱకైనను (వివాహమునకు ముందుగ) నామె రజస్వలయయ్యెననక తీరదు. కొండఱు కవిచేసిన వర్ణనమునుబట్టి యామె యౌవనవతియేకాని రజస్వలకాదని కొందఱందురు. హిమవంతునకు దనపుత్రికను రజస్వలావివాహ మొనర్చుట యిష్టముకానిచో నట్లు నారదోక్తిని రజస్వలకాబోవు తనపుత్రిక నీశ్వరునకై నిచ్చి వివాహము చేయక యొంటికాలనట్లు తపస్సులో నుండునో తెలిసియుండి యీశ్వరుని శుశ్రూషకామె నంపునా! కావున నీవిషయముకూడ నామె రజస్వలయైన పిమ్మట వివాహమాడెననుట నుపకరించును. అందుచేతనే యష్టమసర్గలోని పార్వతీసంభోగవర్ణనము వివాహమైనవెంటనే జరిగెనని చెప్పుటకు వీలగుచున్నది. ఇట్లు వ్యక్తస్పష్టములైన యీ రసపుష్టికై సార్వజనీనమగు రజస్వలానంతర వివాహము లేదని గ్రంథములనుండి పెక్కులు నిరూపింపవచ్చును గాని గ్రంథవిస్తరభీతిచే వదలితిని.

4. బాణుడు:—బాణుడు తన గ్రంథమున మహాశ్వేతను యౌవనమును వర్ణించి పిమ్మట నామెయు పుండరీకుడును బరస్పరానురాగము కలవారైరని వర్ణించెను. పిమ్మట నొకనాటిరాత్రి పుండరీకుడు మహాశ్వేతావిరహావస్థ పూర్తుడై బాధపడుచుండ నాతని విరహాగ్ని శమనయింప సంభోగింప మహాశ్వేత యాతనియొద్దకు బోవుచుండ నీమె పోవు పరికాలమున స్మృతి నొందెననియు గవి వ్రాసెను. ఇట్లామె వివాహమునకు బూర్వమే సంభోగార్థమై వెళ్లుటచే నామె వివాహమునకు బూర్వమే రజస్వలయయ్యెనని స్థిరపడుచున్నది.

5. శ్రీహర్షుడు:—శ్రీహర్షుడు నైషధకావ్యమున దమయంతిని వివాహమునకు బూర్వము మిక్కిలి యౌవనవతినిగా వర్ణించుటచే నామె రజస్వలయైన పిమ్మటనే నలుని వరించినట్లు స్పష్టమగుచున్నది. నైషధములోని దమయంతీ వర్ణనముల జదివినవారికిది బాగుగ దెలియును. ఈ గ్రంథకర్త యతిశయోక్తిప్రియుడగుటచే వర్ణనములు ప్రమాణములు కాకపోయినను నీతనికంటె ప్రాచీనార్వాచీనులగు కవులు తమ గ్రంథములందు రజస్వలావివాహము నంగీకరించుటచే నీతడును నంగీకరించెననక తీరదు.

ఇట్లే యితరకవులుకూడ నెక్కు డీవివాహములను దమ గ్రంథములలో నంగీకరించుటచే నాయాకాలములందిది సదాచారము కాక నింద్యమైనచో కవులు తమ గ్రంథములందా విషయమును దలపఱుగదా. కావున నిది పూర్వముండెడిదనియు కాలక్రమమున నశించెననియు నంగీకరింపక తీరదు. తురుష్కులు మనదేశము నాక్రమించి యవివాహితలను రజస్వలల నపహరించుచుండగా తల్లిదండ్రులు రజస్వలలగుటకు బూర్వమే వివాహము చేయుట నారంభించిరని చరిత్రకారులు చెప్పుదురు. ఇది నిజమైనచో రజస్వలా వివాహనాశనమునకు దగినకారణముగనే గన్పట్టుచున్నది.

ఇట్లు కల్పితకథలుగల గ్రంథములను బట్టియు బురాణప్రసిద్ధములగు కథలుగల గ్రంథములను బట్టియు నితిహాసములు మొదలగు గ్రంథములను బట్టియు రజస్వలానంతర వివాహములు మనదేశమున జాలకాలమునుండియున్నట్లు స్పష్టమగుచుండగా శ్రీకాశీభట్ట బ్రహ్మయ్యశాస్త్రిగారు కన్యావివాహములు మాత్రమే మనదేశమున నుండెడివని వ్రాయుటకు గారణ మూహింపజాలకున్నాను.

(విద్వాన్) ఇచ్ఛాపురపు వైద్యనాథం.

(ರಾಷ್ಟ್ರಬಂಧುವಿನಿಂದ)

ಹಿಂದೂದೇಶದ ಅವನತಿಯು ಯಾರಿಂದಾಯಿತು?

(ಲೇಖಕರು:— ಬಿ. ವೇಂಕಟಪ್ಪ ಬಂಗೇರಾಯ, ಮಂಗಳೂರು.)

ತಮ್ಮ ಪತ್ರದ ೭ ನೆಯ ಸಂಚಿಕೆಯಲ್ಲಿ ಹಿಂದೂ ದೇಶದ ಅವನತಿಯು ಯಾರಿಂದಾಯಿತು? ಎಂಬ ಶಿರೋಭಾಗದ ಕೆಳಗೆ ಅನಾಮಧೇಯರೊಬ್ಬರು ಬ್ರಾಹ್ಮಣ ಜಾತಿಯು ನಿಸ್ವಾರ್ಥತೆ, ಸಮದೃಷ್ಟಿ, ತ್ಯಾಗ ಇತ್ಯಾದಿ ಗುಣಗಳನ್ನು ಪಡೆದು ಹಿಂದೂ ದೇಶದ ಸರ್ವ ಕಲ್ಯಾಣಕ್ಕೂ ಬ್ರಾಹ್ಮಣ ಜಾತಿಯೇ ಕಾರಣವಾಯಿತೆಂದೂ, ಅವನತಿಗೆ ಇತರ ವರ್ಣದವರೇ ಕಾರಣರಾದರೆಂದೂ ಪ್ರಕಟಿಸಿರುತ್ತಾರೆ.

ಹಿಂದೂ ದೇಶದ ಅವನತಿಗೆ ಕಾರಣವು ಪ್ರಾಚೀನಕಾಲದ ಗುಣಕರ್ಮ ವಿಭಾಗದ ಮೇಲೆ ಆದ ವರ್ಣವ್ಯವಸ್ಥೆಯು ಅಳಿದು ಹೋಗಿ, ಜನ್ಮಮೂಲ ಜಾತಿಭೇದವು ಪ್ರಚಾರಕ್ಕೆ ಬಂದುದೇ ಆಗಿದೆ. ಆಚಾರ್ಯ, ಭಟ್ಟ, ಶಾಸ್ತ್ರಿ, ಮುಂತಾದ ಪಾಂಡಿತ್ಯದ ಬಿರುದುಗಳು ಸ್ವಾಧ್ಯಾಯದ ಕಷ್ಟದಿಂದ ದೊರಕುವುದರ ಬದಲಿಗೆ ಆ ಬಿರುದನ್ನು ಹೊಂದಿದ ಒಬ್ಬನ ವಂಶದಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ಮಾತ್ರದಿಂದಲೇ ಸಿದ್ಧವಾದರೆ, ಆ ಪಾಂಡಿತ್ಯವನ್ನು ಪರಿಶ್ರಮದಿಂದ ಸಂಪಾದಿಸಬೇಕೆಂಬ ಆವಶ್ಯಕತೆ ಏನು?

ಇಂದ್ರಿಯದಮನ, ತಪಸ್ಸು, ಶೌಚ, ಕ್ಷಮಾ, ನಿರಭಿಮಾನತೆ, ತ್ಯಾಗ ಇತ್ಯಾದಿ ಶುಭಗುಣಗಳಿಂದ ಕೂಡಿದ ಬ್ರಹ್ಮಜ್ಞಾನಿಯೇ ಬ್ರಾಹ್ಮಣನೆಂದು ನಮ್ಮ ಧರ್ಮಶಾಸ್ತ್ರಗಳು ಹೇಳುವಾಗ ಒಂದು ಜಾತಿಯಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ಮಾತ್ರದಿಂದಲೇ ಬ್ರಾಹ್ಮಣ ಪದವಿಯೂ, ಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಚಿತ ಮಾನಮರ್ಯಾದೆಯೂ ದೊರೆಯುವುದಾದರೆ, ಬ್ರಾಹ್ಮಣಗುಣಗಳನ್ನು ತನ್ನಲ್ಲಿ ತಂದುಕೊಳ್ಳುವ ಅಗತ್ಯವಾದರೂ ಏನು? ಶೌರ್ಯ, ಧೈರ್ಯ, ತೇಜ, ದಯೆ, ದೀನರಕ್ಷೆ ಮೊದಲಾದ ಗುಣಗಳೇ ಕ್ಷತ್ರಿಯ ಲಕ್ಷಣಗಳಾಗಿರುವಾಗ ಲಕ್ಷೋಪಲಕ್ಷ ಜನ್ಮಜಾತಿಯ ನಾಮಧಾರಿಕ್ಷತ್ರಿಯರಿಗೆ ಈ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಕಡಿಮೆ ಉಂಟೇ? ಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಚಿತ ಗುಣಕರ್ಮ ಸ್ವಭಾವವುಳ್ಳ ಒಬ್ಬ ಜನ್ಮ ಶೂದ್ರನು ಆತನು ಒಂದು ಕುಲದಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ಮಾತ್ರದಿಂದ ಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಚಿತ ಸತ್ಕಾರ ಹೊಂದಲು ಅಯೋಗ್ಯನಾಗುತ್ತಾನೆ! ಕ್ಷಾತ್ರಗುಣಕರ್ಮಗಳಿಂದ ಅಲಂಕೃತನಾಗಿರುವ ಒಬ್ಬನು ಒಂದು ಜಾತಿಯಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ಮಾತ್ರದಿಂದ ಅಸ್ಪೃಶ್ಯನೂ, ಮರ್ಯಾದೆಯ ಮಾತಿನಿಂದ ಕರೆಯಲು ಕೂಡಾ ಅಯೋಗ್ಯನೂ ಆಗುತ್ತಾನೆ. ಎಂಥ ಮಹಾ ಪಾತಕಗಳನ್ನು ಮಾಡಿದರೂ ಉತ್ತಮವೆಂದೆನಿಸುವ ಒಂದು ಕುಲದಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟಿದ ಮಾತ್ರದಿಂದಲೇ ಆತನು ಬ್ರಾಹ್ಮಣನಾಗುತ್ತಾನೆ! ಭೂದೇವತೆ ಎಂದೆನಿಸಿಕೊಳ್ಳುತ್ತಾನೆ!! ಸಮಪಂಕ್ತಿಗೂ ಯೋಗ್ಯನಾಗುತ್ತಾನೆ!!! ಇಂತಹ ಅನ್ಯಾಯ, ಪಕ್ಷಪಾತಗಳಿಂದ ತುಂಬಿದ ರೂಢಿಯು ನಮ್ಮ ದೇಶದಲ್ಲಿ ಯಾವಾಗ ಪ್ರಚಾರಕ್ಕೆ ಬಂದಿತೋ ಅಂದಿನಿಂದ ಯೋಗ್ಯರಿಗೆ ಯೋಗ್ಯತೆ ಇಲ್ಲದೆ ಹೋಗುವುದಾಯಿತು. ಅಯೋಗ್ಯರಿಗೆ ಯೋಗ್ಯತೆಯು ದೊರೆಯುವುದಾಯಿತು. ಇದರಿಂದ ನಿಜಬ್ರಾಹ್ಮಣರ, ನಿಜಕ್ಷತ್ರಿಯರ, ನಿಜವೈಶ್ಯರ ಸಂಖ್ಯೆಯು ಅತ್ಯಂತ ಕಡಿಮೆಯಾಗಿ ನಿಜಶೂದ್ರರ, ನಿಜಚಂಡಾಲರ ಸಂಖ್ಯೆಯೇ ಅಭಿವೃದ್ಧಿಯಾಯಿತು! ಇದರಿಂದಲೇ ಭಾರತ ದೇಶವು ಈಗಿನ ಅಧೋಗತಿಗಿಳಿಯಿತು!!

ಹಿಂದೂ ದೇಶದ ಅವನತಿಯು ಯಾರಿಂದಾಯಿತು? ಎಂಬ ಪ್ರಶ್ನೆಗೆ ಬ್ರಾಹ್ಮಣರಲ್ಲ! ಇತರ ವರ್ಣದವರೇ ಕಾರಣರೆಂದು ಅನಾಮಧೇಯ ಲೇಖಕರು ಉಲ್ಲೇಖಿಸಿರುವುದು, ಅವರ ಜಾತ್ಯಭಿಮಾನವನ್ನು ಪ್ರದರ್ಶಿಸುತ್ತದೆ. ಒಬ್ಬ ವ್ಯಕ್ತಿಯು ತನ್ನ ಪ್ರಯಾಣದಲ್ಲಿ ದಾರಿತಪ್ಪಿ ಒಂದಾನೊಂದು ಹೊಂಡಕ್ಕೆ ಬಿದ್ದರೆ, ಅಥವಾ ಸುಖರೂಪವಾಗಿ ಉದ್ದೇಶಿಸಿದ ಸ್ಥಾನಕ್ಕೆ ಮುಟ್ಟಿದರೆ, ಆ ವ್ಯಕ್ತಿಯ ಜಯಾಪಜಯಕ್ಕೆ ಆತನ ತಲೆಯೇ ಕಾರಣ, ಅಥವಾ ಕಾಲುಗಳೇ ಕಾರಣ ಎಂದು ಹೇಳುವುದು ಎಷ್ಟು ಮೂರ್ಖತನವೋ ಅಷ್ಟೇ ಮೂರ್ಖತನವು ರಾಷ್ಟ್ರದ ನಾಲ್ಕು ಅಂಗಗಳಾದ ಚತುರ್ವರ್ಣದಲ್ಲಿ ಒಂದು ವರ್ಣವು ಇತರ ವರ್ಣಗಳ ಉದ್ಧಾರಕ್ಕೆ ಕಾರಣವಾಯಿತೆಂದೂ, ರಾಷ್ಟ್ರದ ಅವನತಿಗೆ ಒಂದು ವರ್ಣದ ಹೊರತು ಇತರ ವರ್ಣಗಳೇ ಕಾರಣವೆಂದೂ ಹೇಳಿಕೊಳ್ಳುವುದರಲ್ಲಿದೆ.

ಅನಾಮಧೇಯ ಲೇಖಕರ ಅಭಿಪ್ರಾಯದಂತೆ ಪೂರ್ವಕಾಲದ ಜನ್ಮಜಾತಿಯ ಬ್ರಾಹ್ಮಣರಲ್ಲಿ ಸರ್ವ ಸಮದೃಷ್ಟಿಯಾದರು ಸರ್ವತ್ರವಾಗಿತ್ತೆಂದು ನಂಬಲಿಕ್ಕೆ ಆಸ್ಪದವಿರುವುದೇ?

ದ್ರೋಣಾಚಾರ್ಯನು ಬೇಡನಾದ ರಾಜನಾದ ಹಿರಣ್ಯಧನುಷ್ಯನ ಪುತ್ರ ಏಕಲವ್ಯನಿಗೆ ಧನುರ್ವಿದ್ಯೆಯನ್ನು ಕಲಿಸಲು ನಿರಾಕರಿಸಿದ್ದು ಮಾತ್ರವಲ್ಲ. ಏಕಲವ್ಯನು ದ್ರೋಣನಲ್ಲಿ ಗುರುಭಕ್ತಿಯನ್ನಿಟ್ಟು ತನ್ನ ಸ್ವಪ್ರಯತ್ನದಿಂದಲೇ ಅಭ್ಯಾಸಿಸಿ, ಅರ್ಜುನನಂತೆಯೇ ಧನುರ್ವಿದ್ಯಾ ವಿಶಾರದನಾದುದನ್ನು ಕಂಡು, ಮತ್ಸರಪಟ್ಟು ಗುರುದಕ್ಷಿಣೆಯ ನೆವದಿಂದ ಏಕಲವ್ಯನ ಕೈ ಬೆರಳುಗಳನ್ನೇ ತುಂಡುಮಾಡಿಸಿದನು! ಅನಾಮಧೇಯ ಲೇಖಕರು ತಮ್ಮ ಜಾತಿಯವನೆಂದು ಹೊಗಳುವ ಈ ದ್ರೋಣಾಚಾರ್ಯನು ಬ್ರಾಹ್ಮಣನೇ?

ಕರ್ಣನಂತಹ ಕ್ಷಾತ್ರಗುಣಸಂಪನ್ನನಿಗಾದರೂ ಬ್ರಾಹ್ಮಣರು ವಿದ್ಯೆಯನ್ನು ಕಲಿಸಲಿಲ್ಲ. ಇದಕ್ಕಾಗಿ ಕರ್ಣನು ಬ್ರಾಹ್ಮಣ ವೇಷ ತಾಳಿ ಪರಶುರಾಮನಲ್ಲಿ ವಿದ್ಯೆ ಕಲಿಯಬೇಕಾಯಿತು! ಕರ್ಣನ ಜನ್ಮ ಜಾತಿಯು ತಿಳಿದೊಡನೆಯೇ ಪರಶುರಾಮನು ಕರ್ಣನನ್ನು ಶಪಿಸಿ ಕಳುಹಿಸಲಿಲ್ಲವೇ? ಇದೇ ಪರಶುರಾಮನು ತನ್ನ ತಂದೆಗೆ ಯಾರೋ ಒಬ್ಬ ಕ್ಷತ್ರಿಯನು ಅವಮಾನ ಮಾಡಿದನೆಂದು, ನಿರಪರಾಧಿಗಳಾದ ಎಷ್ಟೋ ಕ್ಷತ್ರಿಯ ರಾಜರುಗಳನ್ನು ಸಿಕ್ಕಿ ಸಿಕ್ಕಲ್ಲಿ 21 ಸಾರಿ ಯುದ್ಧಮಾಡಿ ಕೊಡಲಿಯಿಂದ ಕೊಲ್ಲಲಿಲ್ಲವೇ?

ಜನ್ಮ ಬ್ರಾಹ್ಮಣನೊಬ್ಬನು ತನ್ನ ಮಗನ ಅಕಾಲ ಮರಣಕ್ಕೆ ಒಬ್ಬ ಶೂದ್ರನು ಅರಣ್ಯದಲ್ಲಿ ಈಶ್ವರ ತಪಸ್ಸು ಮಾಡುತ್ತಿದ್ದುದೇ ಕಾರಣವೆಂದು ಶ್ರೀ ರಾಮಚಂದ್ರನಿಗೆ ಹೇಳಿ ಆತನಿಂದಲೇ ಆ ಶೂದ್ರನೇ ಆ ನಿರಪರಾಧಿಯಾದ ಶೂದ್ರನನ್ನು ಅನ್ಯಾಯವಾಗಿ ಕೊಲ್ಲಿಸಿದನು! ರಾಮಾಯಣ ಉತ್ತರಕಾಂಡದ ಈ ಕಥೆಯು ಅನಾಮಧೇಯ ಲೇಖಕರ ಲಕ್ಷ್ಯಕ್ಕೆ ಬಂದಿಲ್ಲವೇ? ಶಬರಿಯಂತಹ ಜನ್ಮ ಚಂಡಾಲಿನಿಯ ತಪಸ್ಸಿಗೆ ಮೆಚ್ಚಿ ಅವಳ ಮನೆಗೆ ಹೋಗಿ ಅವಳ ಕೈಯಿಂದ ಅನ್ನ ಫಲ ಸ್ವೀಕರಿಸಿದ ಮರ್ಯಾದಾ ಪುರುಷೋತ್ತಮನಾದ ಆ ಶ್ರೀರಾಮಚಂದ್ರನ ಪವಿತ್ರ ಚರಿತ್ರೆಯಲ್ಲಿ ಕಳಂಕವನ್ನು ಮಾಡುವ ಕಥೆಯನ್ನು ಬರೆಸಲಿಕ್ಕೆ ಹೇತುವಾದವರು ಯಾರು?

"ಒಬ್ಬಾತ ಬ್ರಾಹ್ಮಣನ ಯಾವುದೊಂದು ಕೆಲಸವೂ ಸ್ವಾರ್ಥಕ್ಕಾಗಿರಲಿಲ್ಲ" ಎಂದು ಅನಾಮಧೇಯ ಲೇಖಕರು ಬರೆದಿರುವುದು ಇನ್ನೊಂದು ಮಾತಿನಲ್ಲಿ ಎಷ್ಟರ ಮಟ್ಟಿಗೆ ಸತ್ಯವಿರುವುದೆಂದು ಈ ಕೆಳಗಿನ ಉದಾಹರಣೆಗಳಿಂದ ತಿಳಿಯಬಹುದು:—

आध्यात्मिकताकी आवश्यकता ।

[लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द ।]

कुछ दिन हुए "आज" में श्री शीतला-सहायका एक पत्र छपा था जिसका एक आशय यह था कि इस समय देशमें राजनीति और अर्थशास्त्र संबन्धी ज्ञानके प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है और इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पूर्ण प्रयत्न होना चाहिये। उनके पत्रके इस अंशसे किसी भी समझदार व्यक्तिका मतभेद नहीं हो सकता। पर उसका जो एक दूसरा भाग है वह विवादास्पद है और उसीको सामने रखकर पत्र लिखा भी गया है। इस दूसरे भागका आशय यह है कि इस समय भारतमें आध्यात्मिक या धार्मिक प्रवृत्तियोंका प्राबल्य है पर ऐसी प्रवृत्तियां हमारे लिये अहितकर हैं, अतः हमें उनका त्याग करना चाहिये। यदि शीतलासहायजीका तात्पर्य्य यह हो कि हमारी धार्मिक प्रवृत्तियोंमेंसे कुछ ऐसी हैं जो अनावश्यक या हानिकर हैं तो सिद्धांततः उनके पक्षसे किसीको विरोध न रह जायगा। हां, जब किसी प्रवृत्ति विशेषका प्रश्न उठेगा तब यह विचार करना होगा कि वह स्वरूपतः आवश्यक और हितकर है अथवा अनावश्यक और हानिकर। परन्तु स्यात उनका तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिकता या धार्मिकता ही अनावश्यक और हानिकर है। यही अर्थ उन लोगोंने लिया है जिन्होंने शीतलासहायजीका समर्थन किया है। इसी अर्थको स्वीकार करके मैं भी लिख रहा हूँ। विवादके क्षेत्रको परिमित करनेके लिये मैं यह मान लेता हूँ कि जहांतक कर्तव्यपरायणताका प्रश्न है, शीतलासहायजी उसे आध्यात्मिकता या धार्मिकताके अंतर्गत नहीं मानते। सत्य, अस्तेय, आर्जव, अहिंसा, दाम्पत्यव्रत, परोपकार आदिकी उपादेयता वह भी स्वीकार करते हैं, पर हां, आस्तिक्य, ईश्वर-प्रणिधान, यज्ञ, तीर्थाटन, जप, तप, संतोप और शास्त्रोक्त शौच (साबुन तौलिया तथा फिङ्गन बेल टूथ ब्रश वाले शौचको उभयपक्ष सम्मत माननेमें कोई आपत्ति नहीं है) आदिके वह विरुद्ध हैं। इन सबके प्रति उनका विरोध संभवतः समान नहीं है, यह भी नहीं है कि यह इनमेंसे किसी एक बात या इन सब बातोंके नितान्त विरुद्ध हों। उनको आपत्ति तो उस भाव, उस मनोवृत्तिसे है जिसके अस्तित्वके कारण यह बातें संभव होती हैं और जिसकी यह सब पुष्टि करती हैं।

जहां तक मैं समझता हूं उनका यही आशय है। मुझे खेद है कि राजनीति और अर्थशास्त्र सम्बन्धी ज्ञानके प्रचारका पूर्ण पक्षपाती होता हुआ भी मैं उनसे सहमत नहीं हो सकता। मैं यह मानता हूँ कि आज धार्मिकताके नामपर देशमें बड़ी छीछालेदर मची हुई है, उच्छृंखलताको खुल खेलनेका अवसर मिल गया है और दासता, अकर्मण्यता, नैराश्य,का पुरुषता आदि ने हमारे राष्ट्रीय चित्तको ग्रस लिया है। इसके अनेक कारण हैं, पर कारण कुछ भी हों वस्तुस्थितिमें कोई सन्देह नहीं है। यदि शीतलासहायजी इस दुरवस्थाको दूर करके सच्ची धार्मिकताका पुनः प्रचार करना अपना लक्ष्य रखते तो मैं उनका अनुगामी होता। परन्तु वह धार्मिकताको ही दूर करना चाहते हैं। यह वैसीही बात हुई कि यदि अधिक खाने या किसी अखाद्य द्रव्यके खानेसे किसीको किसी प्रकारका उदर विकार हो जाय तो उसके लिये खाना ही अनावश्यक और हानिकर ठहरा दिया जाय। पर इस बातपर यह कहा जायगा कि इसमें 'अकरणसम" दोष है, यह पाश्चात्य तर्क शास्त्रके शब्दोंमें "रीजनिंग इन सर्कल" है। भोजनकी उपादेयता तो सर्वसम्मत है पर यहां तो धार्मिकताकी उपादेयतामें ही मतभेद है।

...धार्मिकता स्वरूपतः त्याज्य है । ऐसा शीतला सहायजी और उनके समर्थकोंने स्पष्ट शब्दोंमें सिद्ध करनेका प्रयत्न नहीं किया है। सम्भवतः यह इसलिये किया गया है कि शास्त्रार्थ न बढ़े। उनका परामर्श यह है कि कमसे कम इस समय हम भारतीयों को उसका त्याग करना चाहिये, इसके समर्थनमें तीन मुख्य बातें कही गयी हैं—धार्मिकता भरे पेटकी बात है (भारत निर्धन है, वह अनेक भारोंसे आक्रांत है यह मंहगा सौदा (यह 'लक्जरी') उसके लिये उपयुक्त नहीं है), पाश्चात्य देश बिना धार्मिकताके ही उन्नतिशील हैं और हम धर्मभीरुओंको बन्दरोंकी भांति नचाते हैं और प्राचीनकालमें हमारे यहां कोड़िया महात्मा हो गये हैं जिन्होंने धार्मिकतापर बड़े बड़े पोथे तय्यार किये पर उन्होंने श्रद्धालु जनता को ऐहिक उन्नतिका उपदेश न दिया, फलतः लोगोंका परलोक बना हो या न बना हो पर दरिद्रता और दीनतामें तो जनसाधारण जहांका तहां ही रह गया।

मैं यहां पहले इस तीसरे हेतुको ही लेता हूँ, क्योंकि इसके संबंधमें विशेष वक्तव्य नहीं है। यह हो सकता है कि हमारे महात्माओंने ऐहिक उन्नतिके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष उपदेश कम ही दिये हों, उनमेंसे किसीने स्यात् ऐसी या इतनी बातें न कही हों जैसी या जितनी आजकलकी राजनीति अर्थशास्त्र या विज्ञानकी प्रवेशिका पुस्तिकाओंमें भी रहती हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनके उपदेशोंमें एक विशेष प्रकारकी सप्राणता थी। उन्हें स्यात् मनोविज्ञान, या कमसे कम भारतीय मनोविज्ञान का कुछ ऐसा ज्ञान था कि उनको बातें लोगोंके हृदयोंमें चुभ जाती थीं और यद्यपि उनके शब्द मुख्यतः अध्यात्मपरक होते थे पर उनका प्रभाव सर्वतोमुख होता था। स्यात् सच्ची आध्यात्मिकताका यह गुण है कि वह मनुष्योंमें ऐसी शक्ति उद्भूत कर देती है जो उनके प्रत्येक काममें झलकती है और भीतरसे उठकर बाहर छलक पड़ती है। कमसे कम यह एक अखण्डनीय तथ्य है कि जब भारतमें आध्यात्मिकताका पूर्ण प्रभाव था, जब श्रुति आर्योंके धर्मकी जीवित स्रोत थी, जब उपनिषद् प्रकट हुए और सूत्र, स्मृति तथा धर्मशास्त्रोंका निर्माण हुआ और जब सम्भवतः इनका पालन भी पूर्णतया होता था, वही समय आर्योंके पूर्ण अभ्युदय और विकास तथा आर्य संस्कृतिके प्रकाशका था। धार्मिक ह्रासके साथ साथ राजनीतिक तथा आर्थिक ह्रास भी हुआ। कुछ कालके पीछे फिर आध्यात्मिक आकाशमें शक्ति संघर्ष हुआ और तमः पटलको चीरकर दो नवीन सूर्य गौतम बुद्ध और पार्श्वनाथ-उदय हुए। इनके बाद ही महाबलशाली मौर्य्य साम्राज्यका—भारतकी महती राजनीतिक और आर्थिक उन्नतिका—जन्म हुआ। कुछ कालके बाद धार्मिकताका फिर ह्रास हुआ और भारत शक, हूण आदि बर्बर जातियोंकी आखेट-भूमि बना। पर इधर फिर नया धार्मिक जागरण हुआ उधर गुप्त साम्राज्यने भारतीयोंको फिर स्वातंत्र्य और समृद्धिका रसास्वाद कराया। तबसे न फिर वैसा देशव्यापी धार्मिक आंदोलन हुआ न वैसी ऐहिक उन्नति देखनेमें आयी पर यह तो अभी थोड़े दिनोंकी बात है जिसका समर्थन परम विश्वसनीय पाश्चात्य ग्रंथकार भी करते हैं कि इस बिगड़े समयमें भारतमें जो दो बलवान् राज्य स्थापित हुए जिन्होंने अंग्रेज सरकारके भी छक्के छुड़ा दिये वह आध्यात्मिक क्रांतियोंके ही प्रतिफल थे। मेरा संकेत महाराष्ट्र और सिख राज्योंकी ओर है। इन घटनाओंपर जो सहस्रों वर्षोंसे भारतमें होती आयी हैं, ध्यान देनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि कमसे कम हमारे देशमें आध्यात्मिकता और अभ्युदयमें वही सम्बन्ध है जो कारण और कार्य, ... और दुःखमें होता है। अतः इस दृष्टिसे न तो महात्मालोग हास्य या तिरस्कारके पात्र हैं न आध्यात्मिकता ऐसा विषय है जिसकी उपेक्षा

दूसरा तर्क यह है कि बिना आध्यात्मिकताके यूरोप उन्नति कर रहा है। यह तर्क निःसार है। कभी कभी वातग्रस्त मनुष्य इतना बलवान् प्रतीत होता है कि चार चार स्वस्थ मनुष्य उसे थाम नहीं सकते पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वात व्याधि कोई उपादेय वस्तु है। यूरोपकी सभ्यता अभं कल की है पर विनाशोन्मुख हो चली है वह जिस राग, द्वेष, तृष्णा, प्रतिस्पर्धाकी नींवपर खड़ी की गयी है वह उसे खाये डाल रही है। यूरोप स्वयं त्राहि त्राहि कर रहा है। इसीलिये वहां बोल्शेविज्म और फासिज्म जैसे शासन सम्भव हो गये हैं, इसीलिये वहां श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्माजीकी पूछ होने लगी है। यूरोपकी आत्मा व्यथित होकर शान्ति ढूंढ रही है। वह यूरोपके निःस्पृह समझदार जान गये हैं और कहने लगे हैं—ऐसा साहित्य दिनोंदिन वृद्धिपर है—कि या तो यूरोपको अपनी संस्कृतिका आधार परिवर्तित करना होगा, उसे आध्यात्मिक बनाना होगा, या यूरोप शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

दूसरे लेखमें मैं आध्यात्मिकताकी नैसर्गिक उपादेयता और आवश्यकतापर विचार करूंगा।

---

(२)

तन्दुरुस्तीका अंग्रेजी पर्याय है हेल्थ। यह शब्द उसी धातुसे निकला है जिससे हेल और होल निकले हैं। वस्तुतः हेल्थ और होल्थ एक ही शब्दके दो रूप हैं यद्यपि आजकल होल्थ अप्रचलित है। होलका अर्थ है सम्पूर्ण, अतः हेल्थका अर्थ हुआ पूर्णत्व। इसी प्रकार संस्कृतमें तंदुरुस्तीका पर्याय है स्वास्थ्य—स्वस्थ पन अर्थात स्वमें स्थित होनेकी अवस्था। इन व्युत्पत्तियोंपर ध्यान देनेसे प्रतीत होता है कि जिन जातियोंमें इन शब्दोंका प्रयोग होता था उनकी धारणा यह थी कि पूर्ण मनुष्य और स्वरूपमें स्थित मनुष्य ही तन्दुरुस्त मनुष्य है। यह धारणा सर्वथा ठीक है। मनुष्यके किसी एक अंश को लेना उसको पंगु बनाना है। सम्भव है उस अंग विशेषके विस्तृत अध्ययनमें उसके पृथक व्यक्तित्वपर जोर देनेसे सहायता मिलती हो, पर यदि वह उस समष्टिसे, जिसका वह अंश है, पृथक् मान लिया जाय तो उसका स्वरूप हमारी समझमें कदापि पूर्णतया नहीं आ सकता। शरीरमें जो असंख्य घटक (सेल्स) हैं उनमेंसे प्रत्येक पर एक एक विशाल ग्रंथ लिखा जा सकता है पर जबतक इस बातका सदैव ध्यान न रखा जाय कि अमुक घटक विशेष एक विशाल शरीरका अंग है तबतक उसके सम्बन्धमें जो ज्ञान होगा वह अपूर्ण होगा और उसके आधारपर जो क्रिया की जायगी वह सदोष होगी। मनुष्यके शरीर है और अन्तःकरण है। मैं यहां उसकी आत्माको छोड़े देता हूं क्योंकि आत्मा यदि है भी तो निर्लेप, निर्गुण और निष्क्रिय है। अस्तु। अन्तःकरणके अनेक धर्म हैं। बाह्यवस्तुओंके विषयमें ज्ञान प्राप्त करना, स्मृति, कल्पना, संकल्प, कर्तव्याकर्तव्य निश्चय, सौन्दर्यानुभव या रसास्वाद, इन धर्मोंकी सत्ता तो सभी लोग मान लेते हैं पर उसके एक धर्म की सत्ताको कुछ लोग मानना नहीं चाहते। उस धर्मका नाम है आध्यात्मिकता। अनात्मवादी या भौतिकवादी (मैं इन नामों का किसी निन्दात्मक भावसे प्रयोग नहीं कर रहा हूँ वरन इसलिये कि इस समय कोई दूसरा नाम उपस्थित नहीं हो रहा है) कहते हैं कि यदि आध्यात्मिकताकी सत्ता अन्तःकरण या बुद्धिमें है तो विकार रूपसे, अतः उसका उच्छेद करके बुद्धिको परिष्कृत करना मनुष्यका कर्तव्य है।

मेरा निवेदन यह है कि यह धारणा भ्रममयी है। आध्यात्मिकता बुद्धिका एक स्वाभाविक धर्म है। सच तो यह है कि यह बुद्धिका प्रधान धर्म है। यह बात आध्यात्मिकताके स्वरूपपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जायगी। मनुष्य इस जगत्‌में अपनेको अकेला नहीं पाता। वह अनेक जातियोंके बहुसंख्यक जीवों और जड़ पदार्थोंको देखता है। इन सबके साथ उसकी बुद्धि अपना सम्बन्ध स्थिर करना चाहती है। बस इसी प्रवृत्तिका नाम आध्यात्मिकता है। कमसे कम, यही प्रवृत्ति आध्यात्मिकताकी जड़ है। यह प्रवृत्ति एक मूक प्रश्न, एक उत्कण्ठाके रूपमें होती है। कुछ कालमें देश, काल अवस्थाके अनुसार इस प्रश्नका एक उत्तर भी मिल जाता है। यह उत्तर उस मनुष्यके लिये, या उस मनुष्य समुदायके लिये, वही काम करता है जो नौकाके लिये लंगर करता है। उसे सम्हलनेका सहारा मिल जाता है और फिर इसी उत्तरके आधारपर वह मनुष्य या समुदाय अपने सारे जीवनको ढालता है। उसके कर्तव्याकर्तव्यका निर्णायक यही उत्तर होता है। यदि कोई मनुष्य या मनुष्य समुदाय इस प्रकारका कोई उत्तर नहीं ढूंढ़ सका है तो उसका जीवन अनिश्चित रहेगा—वह उस तिनकेकी भांति होगा जो तरंगोंके साथ इधर उधर बहता फिरता है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस नैसर्गिक प्रश्नके जितने उत्तर मनुष्योंने ढूंढ़े हैं सब सत्य हैं या सबमें सत्यका अंश बराबर है। तारतम्य अवश्य है।

उदाहरणोंसे मेरा तात्पर्य स्पष्ट हो जायगा। जंगली मनुष्योंने जगत्‌की जो विवेचना की है उसके अनुसार यह विश्व भांति भांतिके जीवोंसे भरा पड़ा है। प्रत्येक पत्ती, प्रत्येक पत्थरमें एक जीव है। इन जीवोंके वही गुण हैं जो हमारे यहां प्रेतोंके माने जाते हैं। यह सब सक्रिय हैं और इनमेंसे अधिकांश मनुष्योंके लिये हानिकर है। इन्हें तुष्ट करनेके लिये मनुष्यको सदैव तत्पर रहना चाहिये। फिर भी इस बातका कोई विश्वास नहीं है कि सफलता हो ही जायगी। इतने प्रेत हैं, किस किसको कोई मनाये। कुछ थोड़ेसे भले प्रेत भी हैं। बस उन्हींका सहारा है। जो जंगली जातियाँ अत्यन्त गर्म या अत्यन्त ठण्डे देशोंमें रहती हों उनमें ऐसे विचारोंका उठना स्वाभाविक है। प्रकृतिका ज्ञान कम है। हवा, समुद्र, वर्षा, बिजली, बादल, ज्वालामुखी, दावानल, सभी भयावह हैं। घोर वनमें चारों ओर हिंस्र पशु और प्रायः उतने ही हिंस्र मनुष्य हैं। ऐसी जातियोंका जीवन इन्हीं विचारोंके आधार पर बनेगा। सशंकता, अविश्वास, क्रूरता, उद्दण्डता सब—यह इनमें पाया जाना स्वाभाविक होगा। परन्तु जो जातियाँ कृषि करने लगीं, जिन्हें प्राकृतिक नियमोंका कुछ ज्ञान हो गया होगा, जिन्हें प्रकृतिके नियमोंसे काम लेनेकी कुछ सामर्थ्य प्राप्त हो गयी होगी, जो ऐसे देशमें रहती होंगी, जहां न बहुत गर्मी पड़ती हो न बहुत सर्दी, उनका उत्तर दूसरे प्रकारका होगा। उनके जीवनमें आत्मनिर्भरता, समवेदना, विश्वास, दृढ़ता अधिक होगी; उनके जगत्‌में देव अधिक और दैत्य कम होंगे।

जब सभ्यताकी वृद्धि होती है तो जीवनके मूल प्रश्नका जो उत्तर मनुष्य देता है उसका स्वरूप भी बदल जाता है। अब वह प्रकृतिसे यत्किञ्चित् स्वतन्त्र होता है, नगरोंमें रहता है। ऐसा मनुष्य दूसरे प्राणियोंको बहुत कुछ सुखदुःख पहुँचा सकता है। यह उसकी आध्यात्मिक बुद्धि पर निर्भर है कि उसके हाथसे दूसरोंको सुख पहुंचेगा या दुःख। यूरोपको लीजिये। उसने जीवनके मूल प्रश्नका जो उत्तर ठीक समझा है उसे 'अहंवाद' कह सकते हैं। उसका तात्पर्य यह है कि चराचर जगत्‌में जो कुछ है वह सब मनुष्यके उपयोग और उपभोगके लिये है। फूल खिलता है हमारे लिये, गऊके स्तनोंमें दूध है हमारे लिये, भेड़ बकरीके शरीरमें मांस है हमारे लिये, प्रकृतिमें समुद्र, पर्वत, मेघ, तारामण्डल, जो कुछ है वह हमारे लिये। यह तो मनुष्य जातिकी बात हुई। पर इसी आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि जो कुछ है वह मेरे लिये है। मैं जिस वस्तुसे, जिस प्राणीसे, काम नहीं ले सकता उसका अस्तित्व व्यर्थ है। यही भाव वहां प्रत्येक राष्ट्रका है। इस सिद्धान्तके गर्भमें कितना द्वेष, प्रतिस्पर्द्धाभाव, अभिमान भरा है वह स्पष्ट ही है। इसीसे पूंजी और श्रमका संघर्ष होता है, यही पाश्चात्य देशोंको दूरवर्ती जातियोंको दबानेके लिये विवश करता है, यही पाश्चात्य व्यापार-नीतिका मूल है। इसीने सारे संसारको युद्धक्षेत्र और प्रशान्त-सदन बना रखा है।

प्राचीन भारतने इस जीवन समस्याका दूसरा ही उत्तर दिया था। वह उत्तर और तज्जनित भाव ही आध्यात्मिकता है। उसपर अब भी भारतकी श्रद्धा है और विचार करनेसे प्रतीत होता है कि यह श्रद्धा अनुचित नहीं। भारतीय आचार्योंने यह अनुभव किया—अनुभवकी प्रक्रिया क्या थी यह प्रश्न यहां उठाना अनावश्यक है—कि मनुष्य जगत्‌के अन्य चराचर अवयवोंसे पृथक नहीं है। सबका सबके साथ संबंध है, सब एक दूसरेपर आश्रित और निर्भर हैं, चाहे अपने अज्ञान या अधूरे ज्ञानके कारण हमें संबंधसूत्रका पता न चलता हो। दूसरी बात यह है कि अल्पज्ञ बद्ध जीव—अद्वैतवादके सत्य होते हुए भी व्यवहारदृष्ट्या यह कथन ठीक है—अपनी मुक्ति ढूंढ़ रहे हैं, जिसमें जितना ही ज्ञान है वह अपनी चेष्टाके तत्वको उतना ही समझता है, पर है सबका प्रयत्न इसीलिये। इसी मोक्षकी प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर अंकुर पृथ्वीको फोड़कर बाहर निकलता है, इसीके कारण कली चटकती है, इसीके लिये मार्गावरुद्ध कीड़ा भी तड़पता है और इसीके लिये मनुष्य पृथ्वीको रक्तरंजित करता है। अतः प्रत्येक जीवका अपना निजी महत्व मनुष्यसे कम नहीं है, प्रत्येकको जीनेका, अर्थात् अपनी परिस्थितिके अनुसार ज्ञानार्जन करने और मुक्तिलाभ करनेका समान अधिकार है। हां, पारस्परिक संबंधके कारण सब एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, एक दूसरेको लाभ पहुँचाते हैं। यदि बुराई भी करते हैं तो मोहवश। यदि १० मनुष्योंकी आंखोंपर पट्टी बांधकर वे एक अंधेरे कमरेमें डाल दिये जायं और वह बाहर निकलना चाहें तो बहुत सम्भव है कि आपसमें टकरा कर लड़ पड़ें, यद्यपि सबका मूल उद्देश्य अपना मोक्ष है, दूसरे को हानि पहुंचाना नहीं। हां, जो उनमें समझदार होंगे वह समझेंगे कि मिलकर काम करनेसे सबके उद्देश्यकी सिद्धि जल्दी होगी। इसीलिये प्राणी प्राणी, राष्ट्र राष्ट्रमें युद्ध होता है। यह तो देशमूलक संबंध हुआ। जब यह अनुभव हो कि पारस्परिक संबंध कालमूलक भी है—भूत, वर्तमान अनागत आपसमें संबद्ध हैं—तो कर्मसिद्धान्त अनायास ही उपस्थित होता है।

यह निश्चय है कि जिस जातिका यह विश्वास होगा उसमें सहिष्णुता, शांति, सन्तोष, तितिक्षा, परार्थचिन्तन अधिक होगा। उसको "अपना पराया" ऐसा भेद बहुत तीव्रताके साथ प्रतीत न होगा। वह दूसरोंको जीतने, दबाने और उनकी सम्पत्ति हड़प लेनेको जीवनका प्रधान लक्ष्य नहीं मानेगी। उसके अधिकांश युद्ध आत्मरक्षानिमित्तक ही होंगे। यह बातें भारतीयोंमें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं और इसीलिये आध्यात्मिकता आज निन्द्य हो रही है।

पर भारतीयोंकी यह धारणा अनुचित नहीं है। सभी देशोंके प्रमुख दार्शनिक तो इसका समर्थन करते ही हैं, विज्ञान भी इसके पक्षमें है। इस बातको तो विज्ञानने कबका उड़ा दिया कि जगत्‌में जो कुछ है वह मनुष्यके लिये है। जीवशास्त्रका विद्यार्थी भी जानता है कि प्रत्येक पौधे, प्रत्येक कीड़े, प्रत्येक पशुमें जो जीवसत्ता है वह तत्तत् शरीरको प्रस्फुटित करती है। वृक्ष और पशु अपने लिये जीते हैं न कि मनुष्यके लिये और मनुष्य न रहें तब भी जियेंगे। सूर्य, चन्द्र, तारा, ग्रह भी अपनी स्वतन्त्र गतिसे चल रहे हैं, मनुष्य नहीं था तब भी थे, जब वह न रहेगा तब भी रहेंगे। पर हां, सबका सबके साथ संबंध है। मनुष्य इन सबसे लाभ उठाता है और अपने अज्ञानवश इन सबको प्रायः हानि ही पहुँचाता है। संबंधकी जो बातें आज विज्ञान बतलाता है उन्हें देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। हमारे सौरमंडलसे करोड़ों कोस दूरीपर जो नक्षत्र हैं यदि उनकी गतिविधिमें परिवर्तन हो तो हमारे सूर्यकी गतिविधिमें अवश्य परिवर्तन होगा, क्योंकि आकर्षणक्षेत्रमें परिवर्तन होगा। सूर्य, मंगल, बुध आदिके यथास्थान स्थित रहनेपर ही पृथ्वी यथास्थान रह सकती है और तभी पृथ्वीपर जल वायु ऋतु आदिका वह संघात संभव हो सकता है जिसमें मनुष्य और आजकलके वृक्ष पशु पक्षी आदि पल सकते हैं। यही अनुभव फलित ज्योतिषका मूल है। यदि कीटों और पतंगोंकी परिस्थिति या संख्यामें व्यतिक्रम पड़ जाय तो अधिकांश फलफूलोंकी सृष्टि ही बंद हो जाय और कितने प्रकारके प्राणी—संभवतः स्वयं मनुष्य—दानोंके लिये तड़पने लगें। एक एक गोबरैला (अर्थवर्म—सुरक्षित कीट विशेष) सालमें कई मन मिट्टी चाल कर खेतोंको कृषिके योग्य बनाता है। डार्विनने एक जगह इस पारस्परिक सम्बंधका एक रोचक उदाहरण दिया है। उन्होंने इंग्लैण्डमें "ओल्ड मेड्स" (वृद्धा कुमारिकाओं) और "क्लोवर" (एक प्रकारके पौधे) का सम्बंध दिखलाया है। वृद्धा अविवाहित स्त्रियां समय काटनेको बिल्ली पालती हैं। यह प्रथा इंगलैंडमें बहुत प्रचलित है। बिल्ली चूहोंको खाती है। चूहोंको क्लोवर बहुत पसन्द है। फलतः यह देखा गया है कि जहां ऐसी बुड्ढी देवियां अधिक संख्यामें होंगी वहां क्लोवर अधिक उत्पन्न होगा, क्योंकि वहां चूहोंको खानेके लिये बिल्लियां अधिक होंगी। इसके अतिरिक्त विकासवाद, तुलनात्मक मनोविज्ञान, आदि प्राणिमात्रके पारस्परिक संबन्ध और मिथोनिर्भरताको स्पष्ट कर रहे हैं। बस यही आध्यात्मिकता है। जो मनुष्य इस चराचर जगत्‌के साथ अपने संबंध, अपने अखिलत्वका जहां तक अनुभव करता है उसकी आध्यात्मिक बुद्धि उतनी ही परिष्कृत है, उसने जीवनके मूल प्रश्नका उतना ही ठीक उत्तर पाया है। जिसने तादात्म्यका अनुभव कर लिया वह तो जीवनमुक्त है, पूर्ण ज्ञानी है। उसके लिये रागद्वेषस्पर्द्धा सम्भव ही नहीं है, और यदि इसीका नाम ऐहिक उन्नति है तो यह उन्नति उसके लिये नहीं है। इसीलिये आध्यात्मिकताको अनावश्यक और हानिकर नहीं कह सकते।

यह तो एक स्वाभाविक प्रश्नका समुचित उत्तर है। जब यह प्रश्न बुद्धिमें उठता है तो उत्तर ढूंढना ही होगा—प्रत्येक मनुष्य और जाति उत्तरकी तलाशमें है। ऐसी दशा में जो उत्तर सत्य है उसे ग्रहण करना ही होगा, चाहे उससे हमारे मिट्टीके कुछ घरौंदे भले ही गिर पड़ें। किसीको अन्धकार प्यारा हो सकता है—चोरकी आर्थिक उन्नति अंधेरेमें ही होती है—पर इससे सूर्य्यका उदय होना हानिकर और अनावश्यक नहीं कहा जा सकता।

आध्यात्मिकता यदि बीज है तो धार्मिकता वृक्ष है। जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि मेरी ही भांति अन्य जीव भी मोक्षमार्गके पथिक हैं, हम सब एक दूसरेके ऋणी हैं और एक शरीरसे यात्रा जहां समाप्त हो जाती है वहींसे दूसरे जन्म में फिर चलायी जा सकती है और प्रायः चलायी जाती भी है, तो वह अपने धर्मका—अपने कर्तव्योंके समुच्चयका—अनुभव करने लगता है। वह ऐसी क्रियाओंको करता है जिससे उसकी बुद्धि परिष्कृत हो, मार्ग और राह देख पड़ने लगे वह ऐसे जीवोंका साक्षात्कार करना चाहता है जो उससे आगे बढ़े हुए हैं और उसे सहायता दे सकते हैं, वह उनकी यथाशक्तिच्च सेवा करके उनके ऋणको चुकानेका प्रयत्न करता है या यों कहिये कि उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है और जो जीव उससे पीछे हैं उन्हें आगे बढ़नेमें सहायता देनेका प्रयत्न करता है। योगाभ्यास, देवोपासना, पञ्चमहायज्ञ, याग, जप, तप, दान आदिका यही रहस्य है। यही उपदेश गीताके चतुर्थ अध्यायमें दिया हुआ है। इस दृष्टिसे धार्मिकता भी अनावश्यक और हानिकर नहीं कही जा सकती—वह आध्यात्मिकताका व्यावहारिक रूप है और इसलिये परम आवश्यक और हितकर है। जो मनुष्य धार्मिक नहीं है, अर्थात् सब वर्गोंके जीवों—देवों, दैत्यों, पितरों, प्रेतों, मनुष्यों, पशुओं, कीटों, वनस्पतियों आदिके प्रति अपना कर्तव्य पालन नहीं करता, वह बुरा करता है, गीताके शब्दोंमें "स्तेन एव सः," वह चोर है। अपने अपूर्ण ज्ञानके कारण हमको यह पता न हो कि हमारा किस किस से संबन्ध है या हम उनके प्रति क्या आचरण करें या जानकर भी असमर्थ हों, यह दूसरी बात है पर कर्तव्यताको स्वीकार न करना कृतघ्नता है।

इसकी आवश्यकता सबको है। धर्म केवल अमीरोंके लिये नहीं वरन गरीबोंके लिये भी है। गरीब शरीरसे असमर्थ हो सकता है पर भावना उसकी भी बलवती रहनी चाहिये। गरीबका एक पैसा करोड़पतिके एक सहस्रसे कम महत्व नहीं रखता, चाहे उससे काम कम निकले। गरीबका महादेवकी पिण्डीपर चार छींटे गंगाजल डालना और धनिकका महारुद्राभिषेक बराबर हो सकते हैं, यदि श्रद्धामें कमी न हो। यदि भूख प्याससे व्याकुल होकर कोई गरीब आदमी किसीके चार पैसे चुरा लेता है, या किसी लोभवश कोई बालक झूठ बोल देता है तो उसकी अवस्था देखकर हम उन्हें हलका दण्ड भले ही दें या क्षमा ही कर दें पर यह उपदेश कभी नहीं देते कि भूखोंके लिये चोरी और बालकोंके लिये झूठ वैध है। यहां आपत्ति यह है कि यह उपदेश दिया जा रहा है कि गरीबोंके लिये धर्म है ...।

मूल विषयपर मुझे इतना ही कहना था। मैं नहीं कह सकता कि मैं अपना तात्पर्य स्पष्ट कर सका या नहीं। मेरा विश्वास है कि हमें आध्यात्मिकताकी परम आवश्यकता है और उस प्रकारकी व्यापक कर्तव्यबुद्धिकी भी परम आवश्यकता है जो आध्यात्मिकतासे उत्पन्न होती है, जिसे धार्मिकता कहते हैं। मैं यह मानता हूं कि इसका फल यह होगा कि हम वैसी ऐहिक उन्नति न कर सकेंगे जैसी यूरोपने की है, पर हमें उसकी आवश्यकता भी नहीं है। यदि उन्नतिके लिये अपनी चिरसंचित संपत्ति—आध्यात्मिक भाव और धर्म बुद्धि—से हाथ धोना होगा तो यह महंगा सौदा हमें न चाहिये।

यह बिलकुल सच है कि आजकल हमारी धार्मिकता हमारी राजनीतिक और आर्थिक उन्नतिमें बाधक हो रही है। इसका कारण यह है कि वह स्वरूपतः धार्मिकता है ही नहीं। जो मनुष्य चींटीको शक्कर खिलाता फिरता है और एक अंधे वोमको गढ़ेमें गिरता देखकर भी उसे बचानेके लिये हाथ नहीं फैलाता, गऊके नामपर मरने मारनेको तैयार हो जाता है पर देशके सम्मानकी रक्षाके लिये एक अंगुली भी नहीं हिलानी चाहता, वह धार्मिक नहीं है प्रत्युत या तो मूर्ख है या दुष्ट है। यदि दुष्ट है तो उस धर्मके नामको कलंकित करनेवालेको दण्ड देना चाहिये, यदि मूर्ख है तो उसके सामने प्रसिद्ध धर्मात्माओं—श्रीराम, श्रीकृष्ण, जनक, वशिष्ठ, नारद, शंकराचार्य आदिके उदाहरण रखकर उसे चेताना चाहिये। उसे बतलाना चाहिये कि लोक संग्रह धर्मका एक आवश्यक अंग है। संक्षेपतः उसे अधार्मिक बनानेके स्थानमें सच्चा धार्मिक बनाना चाहिये।

मैं जानता हूं कि आजकल धर्मके नामपर क्या गजब ढाया जाता है। सार्वजनिक काम करनेवालोंको धर्मका बड़ा कड़ुआ अनुभव होता है। स्वयं मैंने झुंझलाकर कई बार कहा है कि कमबख्त धर्म संसारसे मिट जाता तो अच्छा होता। पर यह क्षणिक रोष है। देशकालावस्थाके अनुसार धर्मको अधिक विस्तीर्ण करनेकी आवश्यकता अवश्य हो सकती है, पर संकुचित करनेकी नहीं। सबसे बड़ी आवश्यकता ज्ञानवृद्धिकी है। सत्वगुण और तमोगुणका बाह्यरूप कुछ मिलता-जुलता सा है, क्योंकि दोनों निष्क्रिय होते हैं। इसीलिये तामसिकता सात्विकता समझी जाने लगती है। इस तामसिक मोहपटलको फाड़ना है। इसके लिये रजोगुणकी अभिवृद्धि अवश्य होनी चाहिये। पर अकेला रजोगुण अंधा होता है। हमें भारतीयोंको मनुष्य बनाना है, मदोद्धत वृषभ नहीं। अतः हमें सत्व प्रधान रजोगुणको जगाना होगा। यह जागरण हमें ऐहिक अभ्युदय भी देगा और निःश्रेयस सिद्धिमें भी सहायक होगा।

आगामी ब्राह्मण सभाके लिये विचारणीय प्रश्न।

(लेखक—श्री जे० पी० चौधरी, काव्यतीर्थ

काशीमें एक नोटिस बांटी गयी है जिससे पता लगता है कि आगामी नवम्बर महीनेमें भारतवर्षके विद्वान् ब्राह्मणोंकी एक सभा काशीमें धर्मनिर्णयके लिये होगी। इसे सुनकर कौन प्रसन्न न होगा? आजकल धर्मके सम्बन्धमें लोग अलग अलग ढाई चावलकी खिचड़ी पका रहे हैं ऐसी दशामें धर्मके स्वरूपका निर्णय करके हिंदू जनताके सामने रखना धर्मगुरु ब्राह्मणोंका मुख्य कर्तव्य है। परन्तु जब यह सुननेमें आता है कि इसमें सब पण्डित न बुलाये जायंगे (परमात्मा करे, यह अफवाह गलत निकले) तो एक बार चित्त संदेहग्रस्त होकर इस आगामी महासभापरसे विश्वास उठ जाता है। यदि बात सही है तो यह ब्राह्मण महासभाके करनेसे कोई लाभ नहीं है। ब्राह्मण ही ब्राह्मण-सभाके निर्णयको न मानेगा, दूसरे हिंदुओंकी बात तो अभी अलग रहे। अच्छा तो तब होता जब दोनों विचारोंके ब्राह्मण लोग इसमें निमंत्रित किये जाते और खूब आलोचनके पश्चात् धर्मका स्वरूप जनताके सामने रखा जाता। मैंने सुना है और इसी 'आज' के अंकमें पढ़ा भी है कि यहांपर युनिवरसिटीके विद्वानोंपर विरोधी दल गुप्तरूपसे जनतामें विष उगल रहा है। परन्तु उनके लेखको डरके मारे छूना तक भी नहीं। ऐसी दशामें जो ब्राह्मणसभा होगी उसका स्वरूप जनताके सामने अभीसे प्रकट है। उससे हिंदु जातिके लाभकी कुछ भी आशा नहीं है। प्रसन्नताकी बात है कि सनातनधर्मके अंदर बड़े बड़े धुरंधर विद्वान् देशकालकी प्रगति देखकर समझ गये हैं कि यदि हम लोग इस गतिके साथ नहीं चलते तो आगे गुरुत्वके पदसे त्यागपत्र देकर अलग बैठ जानेकी नौबत आये बिना न रहेगी। यही कारण है कि सनातनधर्ममें दो दल हो गये हैं, एक शास्त्रको सामने रखते हुए सुधार करना चाहता है, दूसरा शास्त्रोंमें बिना ननुनच किये सत्ययुगकी व्यवस्था—अपने तथा अपनी जातिपर तो नहीं—अन्य कौमोंपर लादना चाहता है। ऐसी परिस्थितिमें इस दूसरे दलके सामने विचारार्थ कुछ प्रश्न रखना अत्यन्त आवश्यक है। मुझे पूर्ण आशा है कि ब्राह्मणसभा, अछूत विधवाओं के प्रश्नको विचारते समय, इन प्रश्नोंपर प्रकाश डालनेकी कृपा करें।

जो लोग शास्त्रोंपर, बिना किसी ननुनच के, अक्षर अक्षर विश्वास करते हैं और तदनुकूल स्वयं चलते तथा अपने वर्गके लोगोंको चलानेका प्रयत्न करते हैं वे पूजाके पात्र हैं। परन्तु जो लोग ऊपरी मनसे संसारको दिखलानेके लिये शास्त्रोंकी दोहाई देते हैं परन्तु स्वयं नहीं चलते, शास्त्रकी व्यवस्था दूसरे लोगोंपर चलानेका दम भरते हैं परन्तु अपने ऊपरसे शास्त्रकी व्यवस्था हटा लेते हैं, वे मक्कार हैं। इस बीसवीं शताब्दीमें ऐसे लोगोंकी बात कोई मान नहीं सकता, चाहे वे ब्रह्मपुत्र ही क्यों न हों।

आजकल सबसे अधिक महत्वका प्रश्न अछूतोद्धार हो रहा है। हिंदु महा·

सभाने इसे अपने कार्यक्रममें रखा है पर-थोड़ेसे इने गिने पण्डित जन इसका विरोध करते हैं और अपने पक्षकी सिद्धिके लिये शास्त्रोंकी दोहाई देते हैं। उनसे प्रश्न यह है कि क्या शास्त्रोंको बात आप मानते हैं? क्या शास्त्रोंके अनुसार आप चलते हैं? यदि नहीं, तो आपको क्या अधिकार है कि उन्हीं शास्त्रोंकी व्यवस्था दूसरोंपर लादें? यदि हां, तो यह सरासर जनताको धोखा देना है। ब्राह्मणोंमें ९९ सैकड़े लोग शास्त्रोंकी बात नहीं मानते पर औरोंपर उनकी व्यवस्था लादनेके लिये गुरु बनकर मैदानमें आते हैं। इससे बढ़कर धूर्तता क्या होगी? पण्डित समाजने द्विजोंपरसे शास्त्रकी व्यवस्था एकदम उठा दी है।

प्रथम तो प्रार्थना यह है कि आप लोग अपना बिस्तरा बाँध कर इस देशसे निकल कर स्वर्गमें चले जाइये या अन्यत्र कहीं जाइये, क्योंकि आप लोगोंको मनुके अनुसार कमसे कम भारतवर्षमें तो नहीं रहना चाहिये कारण मनु शूद्रके राज्यमें न रहनेकी आज्ञा देते हैं। परन्तु यह तो म्लेच्छ राज्य है। फिर न मालूम आप लोग यहां क्यों पड़े हैं और उन्हीं म्लेच्छोंका रुपया या उपाधि लेते हैं। क्या यह बात उचित है? क्या शास्त्रको आप स्वयं मानते हैं?

२—क्या ऋषियोंकी आज्ञा तथा लेखके अनुसार आजकल द्विजवर्णियोंमें व्रतबन्ध होता है? क्या शास्त्रकी दोहाई देनेवाले तदनुकूल चलते हैं? ३ घंटेमें (उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन संस्कार) २५ वर्षका काम करके दक्षिणा लेकर चम्पत हो जाते हैं। कहिये, यह धोखाबाजी नहीं है? जब शास्त्रकी व्यवस्था अपने लिये नहीं, तो दूसरोंपर कैसी व्यवस्था? ऐसे संस्कारोंसे क्या लाभ?

३—साठ साठ वर्षके बुड्ढोंकी शादी आजकल हो रही है। दो दो चार चार वर्षकी कन्याओंकी शादी पुरोहित लोग करा रहे हैं, क्या यह शास्त्र सम्मत है? यदि नहीं तो इन पुरोहितोंके वास्ते आप लोगोंने कौनसी व्यवस्था निकाली है? इस सम्बन्धमें ब्राह्मणसभामें अवश्य व्यवस्था पास कर दी जानी चाहिये। ताकि देशसे एक बड़ा भारी अनाचार मिट जावे। वैसे तो सरवरिया, कनौजिया ब्राह्मण भी मछली मांस खाते हैं परन्तु मैथिल, बंगाली, उड़िया, आसामी ब्राह्मण तो इसके बड़े ही भक्त होते हैं। इस विषयमें महर्षि मनु क्या कहते हैं सो सुनिये—

चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा।
मत्स्यमांसे सदा लुब्धः विप्रो निषाद उच्यते॥

"चोर डाकू सूचक दंशक तथा मत्स्यमांसके लिये जो सदा लालुप रहते हैं ऐसे विप्र निषाद कहे जाते हैं।" फिर मैथिल, बंगाली आदि ब्राह्मणोंको पण्डित समाजसे निषादकी व्यवस्था क्यों न दी जावे? पुनरपि—

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि॥३८७॥

"बकरीसे जीविका करनेवाला, चित्रकारीसे जीविका करनेवाला, वैद्य, नक्षत्रपाठी (ज्योतिषी) यदि ये बृहस्पतिके भी समान हों तो भी इनकी पूजा न करनी चाहिये।" क्या ऐसी व्यवस्था ऐसे ब्राह्मणोंको दी जाती है? और भी—

मागधो माथुरश्चैव कापट-कौटकानजौ।
पंचविप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि॥३८८॥

"मगध (बिहार)के ब्राह्मण, मथुराके ब्राह्मण, कपट कौटक और अनदेशके उत्पन्न ब्राह्मणों की पूजा कभी न करनी चाहिये।" अब बतलाइये शास्त्रकी इस व्यवस्थासे बेचारे हिंदू क्यों वंचित रक्खे जा रहे हैं? यदि ऐसी व्यवस्था निकाल दी जाती तो बेचारे हिंदू अपात्र ब्राह्मणोंको खिलाकर अपना धन बर्बाद न करते परन्तु दिन दहाड़े बिहारवाले हिंदुओंको धोखा दिया जा रहा है और उसके लिये शास्त्रोंकी दोहाई दी जाती है। ब्राह्मणसभा इसपर विचार करें और इसपर भी—

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीया न कदाचन॥३८५॥
श्राद्धं च पितरं घोरं दानं चैव तु निष्फलम्।
यज्ञे च फलहानिः स्यात्तस्मात्तान् परिवर्जयेत्॥३८६॥

"ज्योतिषी, अथर्ववेदपाठी, शुकके समान बिना समझे बूझे रटनेवाले, तथा पौराणिकोंको श्राद्ध यज्ञ तथा दानमें कभी भी वरण न करे, इससे सब निष्फल हो जाता है। इसलिये इनका सदा त्याग करे।" बस, इसके लिये एक फतवा निकाल दीजिये, तब देखें कौन अछूतोंके लिये वावैला मचाता है?

आजकल श्राद्धमें ऐसी आफत आती है कि बेचारे श्राद्ध करानेवाले यजमान तंग आ जाते हैं। सर्वत्र शास्त्रोंके विरुद्ध आचरण किया जाता है। श्राद्धमें मूर्ख ब्राह्मण खाकर पितरोंको नरकमें डालते हैं, परन्तु कोई पण्डित इस अनाचारको नहीं रोकता। मनुस्मृति अ० ३ श्लो० १५०—१८० तकके अनुसार चोर, पतित, नपुंसक, नास्तिक, संन्यासी, वेदविहीन, खल्वाट् (गंजा) जुवाड़ी, वैद्य, मंदिरका पुजारी, मांसविक्रयी, बनियाके कामसे जीविका करनेवाला, चौकीदार, सिपाही, सूदखोर, पशु पालनेवाला, नाचने गानेसे जीविका करनेवाला, काना, नौकरी लेकर पढ़ानेवाला, बंदी, तेल बेचनेवाला (चमेली आदिका), रस यानी नमकादि बेचनेवाला, ज्योतिषी, हाथी घोड़ा आदिको शिक्षा देनेवाला, पक्षियोंको पालनेवाला, हिंसक, शूद्रवृत्तिक, आचारहीन, याचक, खेतीसे जीविका करनेवाला, फीलपांव वाला, इत्यादि ब्राह्मणोंको श्राद्धमें न जिमाना चाहिये। ऐसे लोगोंको खिलानेसे पितर नरकमें जाते हैं। परंतु आज कल अधिकतर ऐसे ही ब्राह्मण खाते और जनताको लूटते हैं और विद्वान् ब्राह्मणोंकी पूछ नहीं होती। ये शास्त्रविरुद्ध बातें ब्राह्मण समाज, जो सबका गुरु है, क्यों कर रहा है? क्या जनताको धोखा नहीं दिया जा रहा है? यदि आपलोग ऐसी व्यवस्था छपवाकर उसी प्रकार बटवा दें जैसे अछूतोंके लिये करते हैं तो सत्यतः आपलोगोंकी व्यवस्था हिंदू संसार माने। अपने लिये सब हड़प और दलितोंके लिये शास्त्रकी दोहाई! किमाश्चर्यमतः परम्।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥ ७॥

"मांस, लाख तथा लवणसे ब्राह्मण तुरन्त पतित हो जाता है और दूध बेचनेसे तीन दिनमें शूद्र हो जाता है।" क्या इसपर अमल किया जाता है?

स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विजः।
अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत्॥

"अपने कर्मको छोड़कर जो द्विज दूसरा कर्म करता है, चाहे अज्ञानसे हो चाहे लोभसे, वह उससे पतित हो जाता है।" बतलाइये, यदि यह सत्य हो तो अध्यापकका काम छोड़कर और पेशा करनेवाले सब ब्राह्मण पतित हैं या नहीं? क्या इनका प्रायश्चित्त होता है? प्रायश्चित्त तो दूर रहा, ये व्यवस्थापक लोग उनके यहां शादी भी करते हैं। फिर सबके सब प्रायश्चित्ती हुए या नहीं?

यो न संध्यामुपासीत ब्राह्मणो हि विशेषतः।
स जीवन्नेव शूद्रस्तु मृतः श्वा चैव जायते॥
संध्याहीनो ऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥

आजकल ९९ सैकड़ा ब्राह्मण संध्या नहीं करते और ये ही लोग हिंदुओंके सब कर्मोंमें पूजित होते हैं, फिर क्यों हिंदू मात्रको ऐसी व्यवस्था नहीं दी जाती कि वे इस पापाचारसे बचें? ऐसे लोगोंके लिये शास्त्रीय व्यवस्था निकालकर सर्वत्र देहातोंमें बंटवायी जानी चाहिये।

आजकल शूद्रके अन्नकी कौन कहे, म्लेच्छोंके यहां नौकरी करके उनके अन्नसे पेट भरते हैं। तब बतलाइये, शास्त्रकी आज्ञा ये व्यवस्थापक लोग कैसे मानते हैं? इस प्रमाणसे तो अपना पोजीशन साफ करना कठिन पड़ जायगा। ब्राह्मण सभा इसपर भी विचार करके फतवा निकाल दे।

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्।
वेदसंन्यसनाच्छूद्रः तस्माद्वेदं न संन्यसेत्॥

"संन्यासी सर्व कर्मका त्याग भले ही कर दे परंतु वेद न छोड़े, क्योंकि वेदत्यागसे शूद्र हो जाता है इसलिये वेदको न छोड़े।"

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति।
श्वापदेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत्॥
लाभपूजानिमित्तं तु व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः।
एते चान्ये च बहवः प्रपंचा कुतपस्विनाम्॥

"संन्यास लेकर जो अपने धर्मपर नहीं रहता, राजाको चाहिये कि उसे श्वापदसे दागकर देशके बाहर निकाल दे। संन्यास लेकर अपने लाभ तथा पूजा प्रतिष्ठाके लिये व्याख्यान देना या चेलाचेली बनाना तथा ऐसे ही और काम ये सब पतित तपस्वियोंके पाखण्ड हैं।"

अब पहले तो सैकड़े पीछे ९९ संन्यासी वेद पढ़े ही नहीं हैं। कितने संन्यासी वेद पढ़े हैं, यह विषय विचारणीय है। आजकलके संन्यासी अपने धर्मपर स्थिर नहीं हैं, खानेको न मिला—संन्यास ले लिया। चेला चेली बनाते हैं। धन एकत्र करके गृहस्थोंका कान काटते हैं। तब क्या शास्त्रकी व्यवस्था इनके लिये दी जाती है? अब तो इनकी जात ही बनती चली जा रही है। इनमें गृहस्थ भी होने लगे हैं, यथा गिरी आदि। इन लोगोंके समय तो यह व्यवस्थापक मंडली कानमें तेल डाले चुप, परन्तु विधवाओं और अछूतोंके लिये जमीन आसमान एक कर डालती है। क्या ब्राह्मण सभा विचार करके व्यवस्था देगी?

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्।—मनुः।
ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाधाताम्॥ ४४ व०अ०२
ब्रह्महत्यां च वृद्धिं च तुलया समतोलयत्।
अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पयत्॥ ४६

"ब्राह्मण क्षत्रिय सूदका काम न करें। ब्राह्मण क्षत्रिय सूदखारका अन्न न खायें। सूद लेना ब्रह्महत्या तथा भ्रूणहत्याके समान है। (वैश्योंके लिये मना नहीं है।)

बोधायन प्रथम प्रश्ने अ० १ में लिखते हैं—

अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकरयोनयः॥३१॥
आरट्टान् कारस्कान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वंगकलिंगान्
प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा॥
पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिंगान्प्रपद्यते।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरो हविः॥

"अवन्ति, सिन्धु, सौवीर, अंग, मगध, सुराष्ट्र (गुजरात), और दक्षिणापथके रहनेवाले वर्णसंकर हैं। आरट्ट (पञ्जाबके उत्तर पश्चिमके देश), कारस्क, पुण्ड्र, सौवीर, बंगाल, कलिंगमें जाकर यदि लौटे तो पुनः संस्कार करे और यज्ञ करे" जगन्नाथसे लेकर कृष्णा नदीके किनारे तकके देशका नाम कलिंग है, यथा—

जगन्नाथात्समारभ्य कृष्णातीरान्तगः प्रिये।
कलिंगदेशः संप्रोक्तो वाममार्गपरायणः॥

जहां जाकर द्विजोंको पुनः संस्कार करना पड़ता था, उस देशमें ब्राह्मण कहां? आजकल जगन्नाथमें जाकर सबका जूठा खाया जाता है, परन्तु शास्त्रोंमें तो वहां जाना तक निषेध है। निषेध न होता तो प्रायश्चित्तके लिये क्यों आज्ञा होती? अब बंगाली, कलिंगी (द्रविड़) ब्राह्मण लोग अपना अपना पोजीशन साफ करें। या तो उक्त प्रमाणको मानें या यों कहें कि यह मानने योग्य नहीं। अंगिरसस्मृतिमें लिखा है—

तु भुञ्जीत शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम्।
जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वानोऽभिजायते ॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्राः अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम्।
शूद्रात ज्ञानागमः कश्चित ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
स भवेत्सूकरो ग्रामे तस्य वा जायते कुले।
शूद्रान्नरसपुष्टस्य ह्यधीयानस्य नित्यशः।
यजतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वं न विद्यते ॥

"जो शूद्रका अन्न एक मास खावे वह अपने जीवनमें ही शूद्र हो जाता है और मरनेपर कुत्तेका जन्म पाता है। जो शूद्रका अन्न खाकर मैथुन करता है उसका पुत्र उसी शूद्रका पुत्र कहा जाता है क्यों कि अन्नसे वीर्यकी उत्पत्ति है" इत्यादि......

अब बतलाइये, आपलोगोंने कभी ऐसी व्यवस्था निकाली है? निकालना तो दूर रहे, उन्हींके घरका अन्न खाते हैं उन्हींके घर धन लेकर विवाह करते हैं। जिस दिन ऐसी व्यवस्था निकालकर उन्हें पतित करार दे दें उसी दिन अछूतोद्धारका प्रश्न हल हो जायगा। यह प्रश्न भी ब्राह्मण-सभामें पेश हो —

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रधर्माणो भवन्ति ॥ १० ॥
यो न धीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
नानृग्ब्राह्मणो भवति न वणिङ्न कुशीलवः।
न शूद्रप्रेषणं कुर्वन् न स्तेनो न चिकित्सकः ॥

"अश्रोत्रिय, वेद न जाननेवाला, अग्निहोत्र-हीन ब्राह्मण शूद्रधर्मी होते हैं। इनसे शूद्रका काम लें। जो द्विज वेद न पढ़ करके अन्यत्र श्रम करता है वह जीता ही शूद्र हो जाता है। वेदहीन, वाणिज्य करनेवाला, नाटकादि करनेवाला, शूद्रके यहां दूतका काम करनेवाला, चोर, वैद्य, ये ब्राह्मण नहीं होते।"

इन प्रमाणोंका क्यः आदर होता है? इन लोगोंको क्या शूद्रकी व्यवस्था दी जाती है? कितने ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं, कितने अग्निहोत्री हैं? दसहजार पीछे शायद एक मिले! इसलिये इन प्रमाणोंपर भी सभामें विचार होकर फतवा निकालना चाहिये।

वसिष्ठ स्मृति कहती है, "न म्लेच्छभाषा शिक्षेत।' उर्दू-अंग्रेजी-फारसी-आदि भाषा न सीखे। क्या इस शास्त्र वचनके अनुसार व्यवस्था दी जाती है? ब्राह्मणोंको क्यों नहीं मना किया जाता? बौधायन (१-५)

गोरक्षकान् वाणिजकान् तथा कारु कुशीलवान्।
प्रेष्यान् वार्धुषिकान् चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ।९५।

"जो विप्र गोपाल हो, जो बनिया हो, जो कारीगरी करता हो, जो नाचने गानेसे जीविका करता हो, जो दूतका काम करता हो, जो सूदखोर हो, ऐसे ब्राह्मणोंके साथ शूद्रके समान व्यवहार करे।"

सायं प्रातः सदा सन्ध्यां यो विप्रो नोपासते।
कामं तं धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥

"जो ब्राह्मण सांझ सबेरे संध्या न करे धार्मिक राजाको चाहिये कि उसको शूद्रके पेशेमें लगावे।"

चूंकि अब धर्मके रक्षक राजा न रहे और ब्राह्मण ही व्यवस्थापक माने जाते हैं, इसलिये उन्हींको चाहिये कि ऐसे ब्राह्मणोंके लिये व्यवस्थापत्र निकाल सर्वत्र बंटवा दें। यदि यह समझें कि आजकल यह सब पुरानी बातें नहीं चल सकतीं तो सुधारक ब्राह्मणोंके साथ होकर हिंदू जातिके कल्याणके लिये तत्पर हो जावें, और शूद्रों तथा अछूतोंके प्रति अपने पुराने भाव निकाल दें। अब ऊपरके प्रमाणोंसे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि आजकल शास्त्रोंकी सब बात नहीं चल सकतीं तो कोई कारण नहीं कि अपने ऊपरसे व्यवस्था उठाकर गरीब निःसहायके ऊपर शास्त्रोंकी व्यवस्था लादें। यह सरासर अन्याय और अत्याचार है। आशा है कि पण्डित मण्डली इसपर विचार करेगी।

अ॰ १-२१-१-२९

मंत्रदीक्षाका अधिकार।

बंगालके पण्डितोंकी व्यवस्था।

स्त्री शूद्रके मंत्रदीक्षाधिकारके विषयमें बंगाली पण्डितोंकी निम्नलिखित व्यवस्था प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई है—

श्री श्री नवद्वीपेश्वर्यै नमः

ओं नमः शिवायेति पञ्चाक्षरमन्त्रजपे द्विजातीनामिव स्त्रीशूद्राणामधिकारो वर्तते न वेति प्रश्ने उत्तरम् —

स्वातन्त्र्येण प्रणवोच्चारणे स्त्रीशूद्राणामनधिकारित्वेऽपि प्रणवघटितस्य ओं नमः शिवायेति मन्त्रस्य जपे स्त्रीशूद्राणामधिकारो वर्तत एवेति विदुषां परामर्शः।

अथ प्रमाणम्

ब्रह्मपुराणवचनम्—

ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम्।
तन्नाम सर्वसत्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥

ओं नमः संयुक्तं परात्मनो नाम अर्थात् ओं नमोनारायणेति वर्णकदम्बं सर्वप्राणिनां मंत्रपदेनाभिधीयते। अनेन मन्त्रेण सर्वे प्राणिनः भगवन्तं नारायणमर्चयेयुः इति फलितार्थः। अथ स्वातन्त्र्येण प्रणवोच्चारणे अनधिकारिणोऽपि प्रणवघटितमन्त्रजपे अधिकारिण एव।

एवं ओं नमः शिवायेति शैवः षडक्षरो मंत्रः लोके पञ्चाक्षरत्वेन परिभाषितः। एतन्मन्त्रस्य जपेऽपि सर्वेषामधिकारो वर्तत एव। एतत्प्रमाणानि स्कन्दपुराणादिवचनानि यथा—

शैवं षडक्षरं दिव्यं मंत्रमाहुर्महर्षयः।
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ॥
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः।
एष पंचाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः ॥
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥
तस्मात्सर्वप्रदोमन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षर स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैः धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः

अथ "स्त्री-शूद्र-द्विज-बन्धूनां त्रयो न श्रुतिगोचरः" इति वचनेन "स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्" इति श्रुत्या च विरोध इति चेन्न—

यथा यथा आनुपूर्व्या यादृश यादृश सन्दर्भो वेदेऽभिहितस्तथा तथैव आनुपूर्व्या तादृश तादृश सन्दर्भस्य श्रवणे उच्चारणरूपाध्ययने वा स्त्रीशूद्राणां दोषः न तु विभिन्नानुपूर्व्या अन्यथा "अग्निमीडेपुरोहितमिति" श्रुतिघटकस्य अग्निं इति पदस्य स्वातन्त्र्येण उच्चारणेऽपि दोषः प्रसज्येत। पुराण वचनानां वैफल्यं चापद्येत। अथवा उक्त वचने पाद अग्निपदं पञ्चाक्षरमन्त्रातिरिक्त परम्। अतएव तर्कवागीशकारेणापि अनयैव रीत्या "निषाद स्थपतीं याजयेत्" इत्यत्र स्त्रीशूद्रौ नाधीयेतामिति निषेधवचनेन सह विरोधमाशंक्य अध्ययनपदस्य निषादकर्तृक यागकरण ऋग्विशेषातिरिक्तपरत्वं सिद्धान्तितम्। निषेधवचनान्तर्गताध्ययनपदस्यास्माभिः जगदीशकृतसिद्धान्तोऽपि व्याख्यातेति विबुधैर्विभावनीयमिति।

(ह०)—तर्कवागीशोपाधिक श्री कामाख्यानाथ शर्मणाम् नवद्वीपवास्तव्यानाम्।
श्री चण्डीचरण स्मृतिभूषण शर्मणां, कलिकाता वास्तव्यानाम्।
तर्कतीर्थ श्री पञ्चानन शर्मणाम्।
श्री हरिचरण स्मृतितीर्थानाम्।
भट्टपल्ली वास्तव्य श्री रामरूप विद्यावागीश देव शर्मणाम्।
श्री रामगोपाल तर्कतीर्थानाम्।
श्री रामनाथ न्यायभूषण।
श्री सुरेन्द्रनाथ तर्करत्न देव शर्मणाम्
श्री काल कमल स्मृतिरत्न शर्मणाम्।
श्री तारानाथ स्मृतिरत्न देव शर्मणाम्।

మన దేశమున నాదినుండియు కన్యావివాహములే కలవు

[illegible] జులై [illegible]-192[illegible]

(కాశీభట్ట-బ్రహ్మయ్యశాస్త్రిగారు)

మన వేదాది వాఙ్మయమును పరిశోధించి చూడగా మన యీ పుణ్యభూమియందు రజస్వలలుకాని కన్యల వివాహములే వేదకాలమునుండియుగూడ గావింపబడుచున్నవని తెలియుచున్నది. మన నవనాగరకులు సత్యపరిశీలనము గావింపకయో, పరిశీలనము గావించినను స్వప్రయోజనముల కోసమయియో [illegible] యుద్దేశముతోడనో పూర్వకాలమందు రజస్వలా వివాహములే కావింపబడుచుండెడివని వ్రాయ సాహసించుచున్నారు. కొందఱు వేదములు మొదలు పురాణములవఱకుగల గ్రంథము లన్నియు రజస్వలావివాహములనే బోధించుచున్నవని సాహసముతో వ్రాయ [illegible]. మీరు సంస్కృత వాఙ్మయము నంతగా పరిశీలనము చేయని నవనాగరకులు. యువతీ వివాహములే యవశ్యకర్తవ్యములని లోకమునకు బోధింప నిశ్చయించుకొనినవారు. కందుకూరి వీరేశలింగ ప్రభృతులు ఇంకకొందఱు నవనాగరకులు వేదకాలమునందు మాత్రమే రజస్వలావివాహము లుండెడివనియు తరువాత వివాహపద్ధతులు క్రమక్రమముగ [illegible] స్మృతులనాటికే బాల్యవివాహములు ప్రారంభమైనవనియు వ్రాసిరి. మీరు సంస్కృతమున మంచి పాండిత్యము గలిగి గ్రంథపరిశీలనము గావించిన పండితులకు సంఘసంస్కార ప్రియులు మహాదేవశాస్త్రి యం. ఏ, మున్నగువారు. (ఇట కన్యయన రజస్వలకాని పడుచని స్థిరము చేసి కొనవలెను.) మఱికొందఱు నవనాగరకులు వేదకాలము మొదలు మొన్న మొన్నటివఱకు రజస్వలా వివాహములే కావింపబడుచుండెడివనియు మహమ్మదీయపరిపాలనము వచ్చిన తరువాత రజస్వలలగు నవివాహితల మహమ్మదీయ లెత్తికొనిపోవుచుండుటచే నాయాపత్తునుండి తప్పించుకొనుటకై కన్యావివాహములు దేశమంతటను నెలకొల్పబడెననియు దలంచుచున్నారు. ఇవన్నియు స్వకపోలములనుండి కల్పించిన కల్పనములుగాని తగు సాధారములుగల చరిత్రాంశములుగావు. యువతీవివాహముల నార్యావర్తమంతటను నెలకొల్ప బట్టుపట్టువారు మన దేశమునందు [illegible] కన్యావివాహము ప్రాశస్త్యమును దొలగించి యీయాచారమును దుర్బలము చేయుటకై [illegible] యెత్తులేగాని వేఱుకాదు. మన దేశమునందంతటను (బ్రాహ్మణాదులలో) కన్యావివాహములే కావింపబడుచున్న సంగతి లోకవిదితము కదా. బ్రాహ్మణులాదినుండియు పూర్వాచారపరాయణులు. వీరు శాస్త్రముల ననుసరించి కార్యము లొనరించు భారమును మొదటినుండియు తమపైని [illegible]దుకొనియుండువారు. వేదశాస్త్రములందెక్కుడగు ప్రమాణ బుద్ధిగలవారు. వానిని [illegible] తెలిసికొనుటలో నెక్కుడగు శ్రద్ధను వహించువారు. ఇట్టివారి యందుగల ఈ యాచారమును వేదాదివిరుద్ధముగా నవీనకాలమందు బుట్టిన దానిగా భావించుట ధర్మముకాదు. పరికించిచూడ, వేదకాలము మొదలు కొనియిప్పటివఱకుగూడ మనదేశమున కన్యావివాహములే సాగుచుండినట్లు కాన్పించుచున్నది. అందులకు దగు ఋజువుల [illegible] తెలిపెదను.

వేదకాలములో

వేదములలో ఋగ్వేదమాదియని నవనాగరకులు చెప్పుచున్నారు. ఈ ఋగ్వేదములో [illegible] సూక్తమును మంత్రమొకటి కలదు. ఆమంత్రమును బరిశీలించి చూచిన ఋగ్వేదకాలమునందును కన్యావివాహములే యున్నట్లును వివాహానంతరము నసే వివాహితలు రజస్వలలగుచుండినట్లును తెలియుచున్నది. [illegible]

[illegible] వివాహానంతరము చిరకాలము వఱకు రజస్వలకాకయుండగా [illegible] రజస్వలయైయుండెను [illegible] పతి[illegible]. [illegible] రజస్వలకాలేదని [illegible]. [illegible] రజస్వల[illegible]. [illegible] ఈ వాక్యములవలన ఋగ్వేదకాలమునందు వివాహానంతరమునకే స్త్రీలు రజస్వలలయ్యెడువారని తెలియుచున్నది.

కావున బాల్యమునన్ భర్తల నెందరోను భావము నాటి యందుట వింతగాదు. అతిగాక చరిత్రకారులలోని ప్రథమని చరిత్రను పర్శించుటలో ప్రధానాంశముల వర్ణించి చేయుటకు గాను యప్రధానముల నంతగా వర్ణింపరు. సాధారణముగా వివాహమును చెప్పి యుక్తవాల సంతానముగలుగుటను వర్ణించు చుందురు. అందుచేతనే వివాహమైన వెంటనే సంతానము గలిగినట్లు యూహింపవలసివచ్చెను. అప్పటి సంస్కృతము పెండ్లియైనదా యనిన అప్పో పెండ్లియైనను కడుపు పెడు బిడ్డలు పుట్టిరని స్త్రీలు రీతిగా భావము చెప్పెదరు. అంతమాత్రముచే పెండ్లికిని సంతానము గలుగుటకు నడుమ నంతగా యంతరము లేదనరాదు. పెండ్లి యైనతరువాత కొంతకాలము పుట్టినింటనో యత్తవారింటనో యున్న తరువాత రజస్వల లగుటయును పిమ్మట గర్భాధానమును పిమ్మట తరువాత సంతానము గలుగుట యను సంభవించి యుండవచ్చును. ఈ నడుము సంగతులను మన మూహించుకొనవలెను. అతిగాక కవులు రసపుష్టికై లేని ప్రౌఢత్వవర్ణనము తెచ్చిపెట్టి వర్ణించుదురు. వస్త్రాపహరణమైయుండిన గోపికలు బాలికలైయుండినను పోతనార్యుడు వారిని యువతులను వర్ణించినట్లు వర్ణించినాడు. షేక్స్పియరు మహాకవి రిచర్డు ది సెకండు అను నాటకములో రిచర్డు ది సెకండు అను నాయకుని భార్యను అతిసుందరిగను ప్రౌఢగా వర్ణించెను. కాని యామె ప్రౌఢగాదు. బాలికయే. రిచర్డు ది సెకండు భార్య వివాహమునాటికి బాలికగాని ప్రౌఢగాదనియును నైనను రసపుష్టికై షేక్స్పియరు మహాకవి యామెను పెండ్లినుండియు ప్రౌఢగా వర్ణించెననియు ఆ నాటకమునకు పీఠిక వ్రాసినవారు వ్రాసియున్నారు. గ్రంథములలో కవులచే ప్రౌఢవివాహములుగా వర్ణింపబడిన వివాహములు వచ్చినచోనంతయు నట్లగుటచే బాలికావివాహము లగుట తటస్థించుచుండగా కన్యావివాహములు ప్రారంభించి భారతదేశమున ప్రౌఢవివాహములుగా కవులచే వర్ణింపబడిన వివాహములు కన్యా వివాహము లగుట యబ్బురమా? ఉస్మానియా సంసారరహస్యబోధ నందుచుండు బాల బాలికలు వివాహాది కార్యములందు బుద్ధిచాతుర్యము జూపుట యాశ్చర్యమా? ఇప్పటి వరవిక్రయాది నాటకములందు కన్యకలు లేదు లేదు వివాహవిషయమున నెంతబుద్ధిచాతుర్యము జూపుచున్నారో చదువలేరా? ఇంత యేల? సంఘసంస్కారప్రియులగు నవనాగరికులు కూడ పురాణయుగము తేయాదినుండియో యంతమునుండియో కన్యావివాహములు మనదేశమున ప్రబలియున్నవని వ్రాసితీరవలసినవారుగ నున్నారు. ఈవిషయమై సి. వి. వైద్యా (C. V. Vaidya) గారిట్లు వ్రాసిరి.

"But we cannot help observing here that the begining of that custom of child marriage was noticed at the close of the epic period. There is no evidence of it in the epics, but there is the evidence of 'the Greek historians who visited India at this time."

మఱియును ఆర్. సి. దత్తు (R. C. Dutt) గారిట్లు వ్రాసిరి: —

"The custom gradually came into vogue in the rationalistic period".

తెలివిగా నవమేధావులగు సంఘసంస్కారప్రియులు కూడ శ్రీస్తుపుట్టుటకు పూర్వము. 300 ఏండ్ల నాడే కన్యావివాహములు మనదేశమున ప్రచారమునకలిగియున్నవని వ్రాసియుండగా ఆకాలమునందే పాశ్చాత్యదేశములనుండి మనదేశమునకువచ్చిన యువయాత్రికులు మనదేశమునం దప్పుడు రజస్వలలుగాని బాలికలకే వివాహములగుచుండెడివని సాక్ష్యమిచ్చుచుండగా, నిర్మలమైన మన నవమేధావులు మహమ్మదీయులు మనదేశమునకు వచ్చినతరువాత నిప్పటి కన్యావివాహములు ప్రారంభమయ్యెనని వ్రాయుట యెంతవింతవో చదువరు లూహించుకొందురు గాక! ఇప్పటి నవసంస్కారప్రియులు తెల్పురీతిగా మహమ్మదీయులీదేశమునకు వచ్చిరని కాని యిప్పటి కింతకు పూర్వపు సంఘసంస్కారకులు తెల్పినరీతిగా పురాణయుగాంతమునగాని కన్యావివాహములు మనదేశమున ప్రారంభించియుండలేదు. నేను సోదాహరణముగా తెలిపినరీతిగా నవి వేదకాలము మొదలు నేటివరకు అనూచానముగా వచ్చుచున్నవి. ఇది కన్యావివాహముల సత్యచరిత్రయని సత్యమునందు ఆదరముగలవారు తెలిసికొందురు గాక!

సత్యమేవ జయతి, నానృతమ్

पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़, पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री जी के नाम

खुलापत्र।

निम्न लिखित मेरे प्रश्न से उन देशकालज्ञ ब्राह्मणों से कोई संबंध नहीं है जो धर्मशास्त्रों के अनुसार शुद्धि, विधवावेदन और अछूतोद्धार के समर्थक हैं। इसका सम्बन्ध तो केवल उक्त शास्त्री जी तथा उन्हीं के मत के पोषक अन्य ब्राह्मणों से है जो इन्द्रप्रस्थ शास्त्र पुराणेतिहास प्रतिपादित शुद्धि आदि हिन्दू महासभा के मन्तव्यों को अशास्त्रीय ठहराने के लिए, गुपचुप बन्द कोठरी में सभा कर रहे हैं। और पण्डितों की बात न सुनकर अपने नियम और स्मृति पुराण की बातों को अपौरुषेय मान बैठे हैं और धर्माचार्यों को फोनोग्राफ की चूड़ी बनाकर मनमानी कराना चाहते हैं।

प्रश्न—क्या पुराण के ये वचन सत्य नहीं हैं कि ब्राह्मणों ने पाखण्ड करके वेदबाह्य अनेक धर्म पेट के लिये प्रचलित किया है। यथा—

ब्राह्मणाः स्वोदरार्थं वै पाखण्डानि पृथक् पृथक्।
प्रवर्तयन्ति कलिना प्रेरिता मन्द चेतसः॥
कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदाः समुत्थिताः।
नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कदाचन॥

यदि ये वचन सत्य हैं तो निम्नलिखित पुराण वचनों से शैव, सब प्रकार के वैष्णव, शाक्त, रामानन्दीय, पुष्टमार्गी आदि आधुनिक सम्प्रदाय वेदबाह्य वेदाधिकार रहित, पाखण्डी, जनवंचक वेदबहिष्कृत हैं न? यथा—

वामं कापालिकं चैव कौलकं भैरवागमः।
शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्य हेतुकः॥
दक्षशापाद् भृगोः शापाद् दधीचस्य च शापतः।
दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्ग बहिष्कृताः॥
शैवाश्चवैष्णवाश्चैव, सौराः शाक्तास्तथैवच।
गाणपत्या आगमाश्च प्रणीता शंकरेणतु॥
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान्।
तत्तमुद्रांकिता केचित् कामाचाररताः परे॥
कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धाः जैनास्तथा परे।
पण्डिता अपि ते सर्वे दुराचार प्रवर्तकाः॥
पूर्वं ये राक्षसाः राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः।
पाखण्डनिरता प्रायो भवन्ति जनवंचकाः॥
असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः।
दाम्भिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः॥

यदि पुराणों की ये बातें सत्य हैं तो आप लोगों को वैदिक धर्म के नेता बनने का क्या अधिकार है? क्योंकि उक्त प्रमाणों से आप लोगों को वेद का अधिकार हो नहीं है? इसका लिखित उत्तर मिले।

भैरोप्रसाद शर्मा पालीवाल।

Vanijya Press, Benares.

भारतकी सन् १९२७-२८ की आयात

विदेशसे आये हुए मालका मूल्य २४८ करोड़ [रुपयोंमें]
ब्रिटेनसे " " " " १२० "
ब्रिटेनसे आये हुए मुख्य मुख्य मालका ब्यौरा इस प्रकार है—

सूती कपड़ा	६५ करोड़	लोहेकी चीजें	२ करोड़
लोहा और फौलाद	१५ "	तेल	·०६ "
दूसरी धातु	४ "	लाद्य सामग्री	२·३ "
मशीनें	१२५ "	नकली रेशम	·५ "
रेलवे मशीनरी	६·२ "	शराब	१४ "
मोटर	१ "	कागज	१ "

ಅತ್ಯಂತ ಪ್ರಾಚೀನವಾದ ತಾಮ್ರಶಾಸನದ ನಕಲು.

ಶ್ರೀ ಕೇದಾರೇಶ್ವರಾಯ ನಮಃ

ಸ್ವಸ್ತಿ ಶ್ರೀ ಜಯಾಭ್ಯುದಯೇ ಯುಧಿಷ್ಠಿರಶಕೇ ಪ್ಲವಂಗಾಖ್ಯೇ ಏಕೋನ ನವತಿವತ್ಸರೇ ಸಹಸಿಮಾಸಿ ಅಮಾವಾಸ್ಯಾಯಾಂ ಸೋಮವಾಸರೇ ಶ್ರೀಮನ್ಮಹಾರಾಜಾಧಿರಾಜ ಪರಮೇಶ್ವರ ವೈಯಾಘ್ರಪದಗೋತ್ರಜ ಶ್ರೀ ಜನಮೇಜಯಭೂಪಾ ಇಂದ್ರಪ್ರಸ್ಥನಗರೀ ಸಿಂಹಾಸನಸ್ಥಾಃ ಸಕಲ ವರ್ಣಾಶ್ರಮಧರ್ಮ ಪ್ರತಿಪಾಲಕಾ ಉತ್ತರಹಿಮಾಲಯ ಶ್ರೀ ಕೇದಾರಕ್ಷೇತ್ರೇ ತತ್ರತ್ಯ ಮುನಿರುಪಾಮತಸ್ಯ ಶ್ರೀ ಗೋಸ್ವಾಮಿ ಆನಂದಲಿಂಗಜಂಗಮಃ ಶ್ರೀಮಚ್ಛಿಷ್ಯ ಜ್ಞಾನಲಿಂಗಜಂಗಮದ್ವಾರಾ ಆರಾಧಿತ ಶ್ರೀ ಕೇದಾರನಾಥಸ್ಯ ಪೂಜಾರ್ಥಂ ಚತುಸ್ಸೀಮಾ ಪರಿಮಿತಿಕ್ರಮಃ || ಪೂರ್ವಭಾಗೇ ದಕ್ಷಿಣವಾಹಿನೀ ಮಂದಾಕಿನೀ, ಪಶ್ಚಿಮ ದಕ್ಷಿಣಭಾಗೇ ಕ್ಷೀರಗಂಗಾ, ಉತ್ತರ ಪಶ್ಚಿಮೇ ಮಧುಗಂಗಾ, ಪೂರ್ವೋತ್ತರ ಭಾಗೇ ಸ್ವರ್ಗದ್ವಾರನದೀ, ದಕ್ಷಿಣೇ ಸರಸ್ವತೀ ಮಂದಾಕಿನ್ಯೋಸ್ಸಂಗಮಃ| ಏತನ್ಮಧ್ಯೇ ಶ್ರೀ ಕೇದಾರಕ್ಷೇತ್ರಂ| ಭವಚ್ಛಿಷ್ಯಪರಂಪರಯಾ ಚಂದ್ರಾರ್ಕಪರ್ಯಂತಂ ನಿಧಿನಿಕ್ಷೇಪಜಲ ಪಾಷಾಣಾಗಾಮಿ ಸಿದ್ಧಸಾಧ್ಯ ತೇಜಃ ಸ್ವಾಮ್ಯಸಹಿತಂ | ಸ್ವಬುಧ್ಯಾನುಕೂಲ್ಯೇನಾಸ್ಮನ್ಮಾತೃಪಿತೄಣಾಂ ಶಿವಲೋಕಪ್ರಾಪ್ತ್ಯರ್ಥಂ ಶ್ರೀ ಕೇದಾರೇಶ್ವರಸನ್ನಿಧಾವುಪರಾಗಸಮಯೇ ಸಹಿರಣ್ಯಮಂದಾಕಿನೀ ಜಲಧಾರಾಪೂರ್ವಕಂ ಕ್ಷೇತ್ರಮಿದಂ ಹಸ್ತೇ ದತ್ತವಾನಸ್ಮಿ || ಏತದ್ಧರ್ಮ ಸ್ಥಾಧನಸ್ಯ ಸಾಕ್ಷಿಣಃ— ಆದಿತ್ಯಚಂದ್ರಾವನಿಲೋನಲಶ್ಚ ದ್ಯೌರ್ಭೂಮಿರಾಪೋ ಹೃದಯಂ ಯಮಶ್ಚ | ಅಹಶ್ಚ ರಾತ್ರಿಶ್ಚ ಉಭೇಚ ಸಂಧ್ಯೇ ಧರ್ಮಶ್ಚ ಜಾನಂತಿ ನರಸ್ಯವೃತ್ತಂ || ದಾನಪಾಲನಯೋರ್ಮಧ್ಯೇ ದಾನಾಚ್ಛ್ರೇಯೋನುಪಾಲನಂ | ದಾನಾತ್ಸ್ವರ್ಗಮವಾಪ್ನೋತಿ ಪಾಲನಾದ್ದ್ವಿಗುಣಂ ಫಲಂ || ಸ್ವದತ್ತಾದ್ದ್ವಿಗುಣಂ ಪುಣ್ಯಂ ಪರದತ್ತಾನುಪಾಲನಂ | ಪರದತ್ತಾಪಹಾರೇಣ ಸ್ವದತ್ತಂ ನಿಷ್ಫಲಂ ಭವೇತ್ || ಸ್ವದತ್ತಾ ಪುತ್ರಕಾಜ್ಞೇಯಾ ಪಿತೃದತ್ತಾ ಸಹೋದರಾ | ಅನ್ಯದತ್ತಾತು ಜನನೀ ದತ್ತಭೂಮಿಂ ಪರಿತ್ಯಜೇತ್ || ಅನ್ಯೈಸ್ತು ಭರ್ದಿತಂ ಭುಂಕ್ತೇ ಸ್ವಾರ್ಥಶ್ಚ ಭರ್ದಿತಂ ನತು| ತತಃ ಕಸ್ಸ ಸ್ತತೋ ನೀಚಃ ಸ್ವಯಂ ದತ್ತಾಪಹಾರಕಃ || ಸ್ವದತ್ತಾಂ ಪರದತ್ತಾಂ ವಾ ಬ್ರಹ್ಮವೃತ್ತಿಂ ಹರೇಚ್ಚಯಃ | ಷಷ್ಟಿವರ್ಷ ಸಹಸ್ರಾಣಿ ವಿಷ್ಠಾಯಾಂ ಜಾಯತೇ ಕ್ರಿಮಿಃ ||

ಈ ಶಾಸನದ ಅಭಿಪ್ರಾಯವೇನೆಂದರೆ:—ಶ್ರೀಮನ್ಮಹಾರಾಜಾಧಿರಾಜ ಹಸ್ತಿನಾವತೀ ಸಿಂಹಾಸನಾಧೀಶ್ವರ ವರ್ಣಾಶ್ರಮಧರ್ಮಪ್ರತಿಪಾಲಕರಾದ ಜನಮೇಜಯಭೂಪಾಲರವರು ಯುಧಿಷ್ಠಿರ ಶಕ ೮೯ ಪ್ಲವಂಗನಾಮಸಂವತ್ಸರ ಮಾರ್ಗಶೀರ್ಷಮಾಸ ಅಮಾವಾಸ್ಯಾ ಸೋಮವಾರ ದಿವಸದಲ್ಲಿ ಶ್ರೀಕೇದಾರಕ್ಷೇತ್ರನಿವಾಸಿಗಳಾದ ಉಪಾಮಠಾಧೀಶ ಶ್ರೀಗೋಸ್ವಾಮಿ ಆನಂದಲಿಂಗ ಜಂಗಮರ ಶಿಷ್ಯರಾದ ಜ್ಞಾನಲಿಂಗ ಜಂಗಮರದ್ವಾರಾ ಆರಾಧಿತವಾದ ಶ್ರೀಕೇದಾರನಾಥನ ಪೂಜೆಗೋಸ್ಕರವಾಗಿ ಮಂದಾಕಿನೀ, ಕ್ಷೀರಗಂಗಾ, ಮಧುಗಂಗಾ, ಸ್ವರ್ಗದ್ವಾರಗಂಗಾ, ಸರಸ್ವತೀಮಂದಾಕಿನೀ ನದಿಗಳ ಸಂಗಮ ಇವುಗಳ ಮಧ್ಯದಲ್ಲಿರುವ ಶ್ರೀಕೇದಾರಕ್ಷೇತ್ರವನ್ನು ತಮ್ಮ ಶಿಷ್ಯಪರಂಪರೆಯಾಗಿ ಚಂದ್ರಸೂರ್ಯರಿರುವರೆಗೂ ಆ ಕ್ಷೇತ್ರದಲ್ಲಿರತಕ್ಕ ನಿಧಿ, ನಿಕ್ಷೇಪ, ಜಲ, ಪಾಷಾಣ, ಸಿದ್ಧ, ಸಾಧ್ಯ, ತೇಜೋವಸ್ತುಗಳ ಅಧಿಕಾರಸಹಿತವಾಗಿ ನಮ್ಮ ಮಾತಾಪಿತೃಗಳಿಗೆ ಶಿವಲೋಕಪ್ರಾಪ್ತಿಯಾಗುವದಕ್ಕೋಸ್ಕರ ಶ್ರೀಕೇದಾರೇಶ್ವರಸನ್ನಿಧಿಯಲ್ಲಿ ಸಂಧ್ಯಾಸಮಯದಲ್ಲಿ ಹಿರಣ್ಯಸಹಿತ ಗಂಗೋದಕ ಧಾರಾಪೂರ್ವಕವಾಗಿ ತಮ್ಮ ಹಸ್ತದಲ್ಲಿ ಸಮರ್ಪಿಸಿದ್ದೇನೆ. ನಾನು ಮಾಡಿದ ಈ ದಾನಕ್ಕೆ ಸೂರ್ಯ, ಚಂದ್ರ, ವಾಯು, ಅಗ್ನಿ, ಆಕಾಶ, ಭೂಮಿ, ಜಲ, ಮನುಷ್ಯ, ಯಮ, ಹಗಲು, ರಾತ್ರಿ, ಎರಡು ಸಂಧ್ಯೆಗಳು, ಧರ್ಮ, ಇವುಗಳೇ ಸಾಕ್ಷಿಗಳೆಂದು ಉಲ್ಲೇಖಿಸಮಾಡಿ ನಾನು ಮಾಡಿದಂಥ ಈ ದಾನವನ್ನು ಯಾರೂ ಅಪಹರಿಸಕೂಡದೆಂದೂ ಅಪಹರಿಸಿದ್ದಾದರೆ ಅರವತ್ತು ಸಹಸ್ರ ವರ್ಷಗಳವರೆಗೆ ಅವರು ಕ್ರಿಮಿಗಳಾಗಿ ಜನ್ಮಿಸುವರೆಂದೂ ಇದೇ ಅಭಿಪ್ರಾಯಗರ್ಭಿತ ಶ್ಲೋಕಗಳನ್ನು ಅಂತ್ಯದಲ್ಲಿ ಉದಾಹರಿಸಿ ಶಾಸನವನ್ನು ಪೂರ್ತಿಗೊಳಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಜನಮೇಜಯ ಮಹಾರಾಜನು ದ್ವಾಪರಯುಗದ ಅಂತ್ಯದಲ್ಲಿ ಭರತಖಂಡದಲ್ಲಿ ವಾಸವಾಗಿದ್ದನೆಂದು ಅನೇಕ ಚರಿತ್ರಗಳಿಂದ ತಿಳಿದುಬರುತ್ತದೆ. ಈ ಶಾಸನದಲ್ಲಿ ಯುಧಿಷ್ಠಿರಶಕೆ ೮೯ ನೆ ಪ್ಲವಂಗನಾಮಸಂವತ್ಸರದಲ್ಲಿ ದಾನಮಾಡಿರುವುದಾಗಿ ಉಲ್ಲೇಖಿಸಿರುವದರಿಂದ ಸ[illegible]ಸನವು ೫ ಸಾವಿರವರ್ಷಗಳ ಮೇಲ್ಪಟ್ಟದ್ದೆಂದು ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗಿ ತೋರುತ್ತದೆ. ಈ ತಾಮ್ರಶಾಸನದ ವಿಷಯವನ್ನು [illegible]ಲಿಸಿದರೆ ಪೂರ್ವಕಾಲದಲ್ಲಿ ಈ ಪೀಠಾಚಾರ್ಯರ ವೈಭವವು ಎಷ್ಟರಮಟ್ಟಿಗಿರಬಹುದೆನ್ನುವದನ್ನು ಬೇರೆ ಹೇಳಬೇ[illegible]ಲ್ಲ. ಜನಮೇಜಯಭೂಪಾಲರು ದಾನಮಾಡಿದ ಯಾವತ್ತೂ ಭೂಮಿಯು ೫ ಸಾವಿರ ವರ್ಷಗಳಿಂದ ಇಲ್ಲಿಯ[illegible]ೂ ಈ ಪೀಠದವರ ಸ್ವಾಧೀನದಲ್ಲಿಯೇ ಇದ್ದಿತು. ಈ ಭೂಮಿಯಲ್ಲಿ ಒಂದುಸಾವಿರದವರೆಗೆ ಗ್ರಾಮಗಳಿದ್ದವು. ಯಾವತ್ತೂ ಗ್ರಾಮಗಳ ಅಧಿಕಾರವನ್ನು ೫ ಸಾವಿರ ವರ್ಷಗಳಿಂದ ಈ ಪೀಠಾಧಿಪತಿಗಳೇ ಅನುಭವಿಸುತ್ತಿದ್ದರು. ಈಗ್ಗೆ ೫೦-೬೦ ವರ್ಷಗಳ ಪೂರ್ವದಲ್ಲಿ **ಶ್ರೀ ಗಣೇಶಲಿಂಗಜಂಗಮ** ಎಂಬ ಮಹಾಸ್ವಾಮಿಗಳ[illegible] ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಬ್ರಿಟಿಷ್ ಸರ್ಕಾರದವರು ಯಾವತ್ತೂ ಗ್ರಾಮಗಳನ್ನು ತಮ್ಮ ಸ್ವಾಧೀನಕ್ಕೆ ತೆಗೆದುಕೊಂಡು ೪೧ ಗ್ರಾಮಗಳನ್ನು ಮಾತ್ರ ಇವರ ಸ್ವಾಧೀನಕ್ಕೆ ಬಿಟ್ಟುಕೊಟ್ಟಿರುವದಾಗಿ ತಿಳಿಯಬರುತ್ತದೆ. ಇಂಥ ರಾಜಾಧಿರಾಜ ಮಾನ್ಯವಾದ ಪೀಠವು ಭರತಖಂಡದಲ್ಲಿ ಎಲ್ಲಿಯೂ ಇಲ್ಲೆಂದು ಹೇಳಿದರೆ ಅತಿಶಯೋಕ್ತಿಯಾಗಲಾರದು. ಹಿಮಾಲಯ ಪ್ರಾಂತದಲ್ಲಿ ಸುಪ್ರಸಿದ್ಧರಾದ ಟಿಹರಿ ಮಹಾರಾಜರವರು ಈ ಪೀಠದ ಶಿಷ್ಯರಾಗಿದ್ದಾರೆ. ಅಲ್ಲದೆ ಉದಯಪುರ, ಕಾಶ್ಮೀರ, ನೇಪಾಳ ಮೊದಲಾದ ಹದಿಮೂರು ಜನ ಉತ್ತರದೇಶದ ರಾಜರು ಪ್ರತಿವರ್ಷವೂ ತಪ್ಪದೆ ಕಾಣಿಕೆಯನ್ನು ಸಮರ್ಪಿಸುತ್ತಿರುವರು. ಬ್ರಿಟಿಷ್ ಸಾರ್ವಭೌಮರು ಈ ಮಠದ ಯೋಗ್ಯತೆಯನ್ನು ಕಂಡು ಈ ಮಠಾಧಿಪತಿಗಳು ಭರತಖಂಡದಲ್ಲೆಲ್ಲಾ ಬೇಕಾದಷ್ಟು ಬಂದೂಕುಗಳನ್ನೂ, ರಿವಾಲ್ವರುಗಳನ್ನೂ, ಕತ್ತಿಗಳನ್ನೂ ಉಪಯೋಗಿಸಬಹುದೆಂದೂ ಹಾಗೂ ಅಡ್ಡಪಾಲಕಿ ಪಂಚಕಲಶ ಮೊದಲಾದ ೨೨ ಬಿರುದುಗಳನ್ನು ಉಪಯೋಗಿಸಬಹುದೆಂದೂ ಹುಕುಮನ್ನು ದಯಪಾಲಿಸಿರುವದು ಜಗತ್ಪ್ರಸಿದ್ಧವೇ ಅದೆ. ಮಹತ್ವದ ಈ ಯಾವತ್ತೂ ವಿಷಯಗಳನ್ನು ಪರಿಶೀಲಿಸಿದರೆ ಯಾವ ಮಾನವರಿಗೆ ಸಂತೋಷವಾಗಲಿಕ್ಕಿಲ್ಲ?

ಮೇಲ್ಕಂಡ ತಾಮ್ರಶಾಸನದ ನಕಲನ್ನು ಕೇದಾರನಾಥ ಸಂಸ್ಕೃತಮಹಾವಿದ್ಯಾಲಯದ ಪ್ರಧಾನಾಧ್ಯಾಪಕರಾದ ಮಹಿಮಾನಂದ ಶರ್ಮ ಶಾಸ್ತ್ರಿಗಳವರು ನಮ್ಮ ಪತ್ರಿಕೆಯಲ್ಲಿ ಪ್ರಸಿದ್ಧಿಸುವದಕ್ಕೋಸ್ಕರ ಕಳುಹಿಸಿಕೊಟ್ಟಿರುವರು. ಇವರು ಸ್ಮಾರ್ತಬ್ರಾಹ್ಮಣ ಮತೀಯ ಪಂಡಿತರಾದಾಗ್ಯೂ ಅತ್ಯಂತ ಪರಿಶ್ರಮದಿಂದ ಶಾಸನ ನಕಲನ್ನು ತಯಾರಿಸಿ ಪ್ರಪಂಚಕಲ್ಯಾಣಕ್ಕೋಸ್ಕರ ಬಹು ಶ್ರದ್ಧೆಯಿಂದ ಕಳುಹಿಸಿರುವದನ್ನು ನೋಡಿದರೆ ಆನಂದವೆನಿಸುತ್ತದೆ. ಈ ಮಹಾಶಯರಿಗೆ ವೀರಶೈವರು ಎಷ್ಟು ಧನ್ಯವಾದಗಳನ್ನರ್ಪಿಸಿದರೂ ಸ್ವಲ್ಪವೇ ಸರಿ.

ದೇವನಾಗರಿ ಲಿಪಿಯಲ್ಲಿರುವ ಈ ಶಾಸನವು ಬಹು ಪ್ರಾಚೀನವಾದುದರಿಂದ ಅಲ್ಲಲ್ಲಿ ಸ್ವಲ್ಪಮಟ್ಟಿಗೆ ರಸ್ವಾಲಿತ್ಯವುಂಟಾಗಿದ್ದರೂ ಅದನ್ನು ಮೂಲದಲ್ಲಿದ್ದಹಾಗೆಯೇ ಮುದ್ರಿಸಿ ಪ್ರಸಿದ್ಧಪಡಿಸಿದ್ದಾಗಿದೆ.

ಲಿಂಗಧಾರಣಸನಾತನತ್ವ.

ಕಳೆದವಾರದ ಪತ್ರಿಕೆಯಲ್ಲಿ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ಸನಾತನತ್ವವನ್ನು ಅನೇಕ ಪ್ರತ್ಯಕ್ಷ ಪ್ರಮಾಣಗಳಿಂದ ಸಿದ್ಧಮಾಡಿ ಪ್ರಕಟಿಸಿರುವ ವಿಷಯವು ಸರ್ವರಿಗೂ ವೇದ್ಯವಾಗಿದೆಯಷ್ಟೆ! ಲಿಂಗಧಾರಣದಿಂದ ಯುಕ್ತವಾದ ವೀರಶೈವಮತದ ಪ್ರಾಚೀನತ್ವದ ವಿಷಯದಲ್ಲಿ ಅನ್ಯಮತೀಯರಿಗೆ ವಿಶೇಷ ಸಂಶಯವಿರುವದು. ಇತ್ತೀಚೆಗೆ ಈ ಮತದಲ್ಲಿ ಸೇರಿಕೊಂಡ ಅನೇಕ ಜನ ಶೂದ್ರಾದಿಗಳನ್ನು ನೋಡಿ ಈ ಮತದಲ್ಲಿರತಕ್ಕ ಸರ್ವರೂ ಹೀಗೆಯೇ ಇರಬಹುದೆಂದೂ ಈ ಮತವು ೭೦೦-೮೦೦ ವರ್ಷಗಳಿಂದೀಚೆಗೆ ನಿರ್ಮಾಣವಾಗಿರುವದೆಂದೂ ಸಂಪೂರ್ಣವಾಗಿ ಭಾವಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಅದರಲ್ಲಿ ಇತ್ತೀಚೆಗೆ ಎಷ್ಟೋ ಜನ ಅನ್ಯಮತದ ಸುಧಾರಕರು ಈ ಮತದ ನಿಜತತ್ವವನ್ನು ತಿಳಿದು ಈ ಮತವು ಬಹು ಪವಿತ್ರವಾದುದೆಂದೂ ಈ ಮತದಲ್ಲಿ ಶಾಸ್ತ್ರಾನುಸಾರವಾಗಿ ವರ್ಣಾಶ್ರಮಗಳ ತಾರತಮ್ಯವು ಚನ್ನಾಗಿರುವದೆಂದೂ ಪ್ರತಿಪಾದಿಸುತ್ತಿದ್ದಾರೆ. ಈ ಮತಕ್ಕೆ ಗೌರವವಾಗಲಿ ಅಥವಾ ಪ್ರಾಚೀನತ್ವವಾಗಲಿ ಸಿದ್ಧಿಸಬೇಕಾದರೆ ಈ ಮತವನ್ನು ಸ್ಥಾಪನಮಾಡಿದ ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ಪಂಚಾಚಾರ್ಯರಿಂದಲೇ ಹೊರತು ಬೇರೊಂದು ಮಾರ್ಗವಿಲ್ಲವೆಂದು ಚಿಕ್ಕ ಬಾಲಕರಿಗೂ ಸಹ ವೇದ್ಯವೇ ಇದೆ; ಹೀಗಿದ್ದಾಗ್ಯೂ ಕೆಲವುಜನ ಕನ್ನಟಿಗರು (ಶೂದ್ರರು) ಮತಸ್ಥಾಪನಾಚಾರ್ಯರನ್ನು ಮನಬಂದಂತೆ ತಿರಸ್ಕರಿಸುತ್ತಿರುವದನ್ನು ನೋಡಿದರೆ ಇದು ಅವರ ಕುಲದ ಗುಣವನ್ನು ತೋರ್ಪಡಿಸುತ್ತದೆಯೇ ಹೊರತು ಬೇರೊಂದಿಲ್ಲ; ಇರಲಿ; ಪ್ರಾಚೀನತ್ವದ ವಿಷಯದಲ್ಲಿ ಶಾಸನಗಳನ್ನು ವಿಚಾರಮಾಡುತ್ತ ಹೋದರೆ ಈ ಮತದಲ್ಲಿ ದೊರೆಯುವಷ್ಟು ಪ್ರಾಚೀನ ಶಾಸನಗಳು ಇನ್ನಾವ ಮತಗಳಲ್ಲಿಯೂ ಸಹ ದೊರೆಯುವದಿಲ್ಲವೆಂದು ಧಾರಾಳವಾಗಿ ಹೇಳಬಹುದು; ಈಗ್ಗೆ ೫|| ಸಾವಿರ ವರ್ಷಗಳ ಪೂರ್ವದಲ್ಲಿದ್ದ ಲೋಕಪ್ರಸಿದ್ಧನಾದ **ಜನಮೇಜಯ** ಭೂಪಾಲನು ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ಹಿಮವತ್ಕೇದಾರ ಪೀಠಾಧಿಪತಿಗಳಾದ **ಆನಂದಲಿಂಗಜಂಗಮ**ರೆಂಬ ಮಹಾಸ್ವಾಮಿಗಳವರಿಗೆ ಮಧುಗಂಗಾ, ಕ್ಷೀರಗಂಗಾ, ಸ್ವರ್ಗದ್ವಾರಗಂಗಾ, ಮಂದಾಕಿನೀ, ಸರಸ್ವತೀ ಈ ಪಂಚನದಿಗಳ ಮಧ್ಯದಲ್ಲಿರತಕ್ಕ ಯಾವತ್ತು ಭೂಮಿಯನ್ನು ಯುಧಿಷ್ಠಿರ ಶಕ ೮೯ ನೆಯ ಮಾರ್ಗಶೀರ್ಷಮಾಸ ಅಮಾವಾಸ್ಯಾ ಸೋಮವಾರ ದಿವಸ ಸೂರ್ಯಗ್ರಹಣ ಸಮಯದಲ್ಲಿ ದಾನಮಾಡಿ ಶಾಸನವನ್ನು ಬರೆದುಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾನೆ. ಈ ಶಾಸನವು ಈಗಲೂ ಶ್ರೀ ಕೇದಾರಪೀಠದಲ್ಲಿ ವಿರಾಜಿಸುತ್ತಿರುವದು. ಈ ಸಂಪೂರ್ಣ ಶಾಸನವನ್ನು ಈಗ್ಗೆ ೨ ತಿಂಗಳುಗಳ ಪೂರ್ವದಲ್ಲಿ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯಲ್ಲಿಯೇ ಪ್ರಸಿದ್ಧಪಡಿಸಿರುವದನ್ನು ವಾಚಕರೆಲ್ಲರು ನೋಡಿ ಸಂತೋಷಪಟ್ಟಿರುವರು. ಇಂಥ ಪ್ರಾಚೀನ ಶಾಸನವು ಎಲ್ಲಿಯೂ ದೊರೆಯುವದಿಲ್ಲವೆಂದು ನಿಃಸಂಶಯವಾಗಿ ಹೇಳಬಹುದು! ಇವರಂತೆಯೇ ಇನ್ನೂ ಅನೇಕ ಶಾಸನಗಳು ಕೇದಾರಪೀಠದಲ್ಲಿರುವವು. ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ಕಾಶೀಸಿಂಹಾಸನಮಠದಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಪ್ರಾಚೀನ ಶಾಸನಗಳು ದೊರೆಯುತ್ತವೆ. ಅವುಗಳಲ್ಲಿ **ಜಯನಂದದೇವ**ನೆಂಬ ಮಹಾರಾಜನು ಕೊಟ್ಟಿರುವ ಶಾಸನವೇ ಮುಖ್ಯವಾಗಿದೆ. ಈ ಮಹಾರಾಜನು ಕ್ರಿ. ಶ. ೬ನೇ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿದ್ದನು. ಆ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ವಿಶ್ವಾರಾಧ್ಯರ ಪೀಠಕ್ಕೆ ಅಧಿಕಾರಿಗಳಾಗಿದ್ದ **ಶ್ರೀ ಮಲ್ಲಿಕಾರ್ಜುನ** ಶಿವಯೋಗಿಗಳ ಪಾದಕಮಲದಲ್ಲಿ ಈ ಮಹಾರಾಜನು ಮಠದ ಗೋವುಗಳು ಮೇಯುವದಕ್ಕಾಗಿ ಕೆಲವು ಜಮೀನುಗಳನ್ನು ದಾನವಾಗಿ ಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾನೆ. ಆ ಸ್ಥಾನವೇ ಈಗಲೂ **ಜಂಗಮಪುರ**ವೆಂಬ ಹೆಸರಿನಿಂದ ಪ್ರಸಿದ್ಧವದೆ. ವಿಕ್ರಮಾರ್ಕ ಸಂವತ್ ೬೩೧ ಕಾರ್ತಿಕ ಶುಕ್ಲಪಕ್ಷ ದೇವೋತ್ಥಾನ ಏಕಾದಶಿಯ ದಿವಸ ದಾನಮಾಡಿರುವದಾಗಿ ಶಾಸನದಲ್ಲಿ ಉಲ್ಲೇಖಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿದೆ. ಅರ್ಥಾತ್ ಈ ಶಾಸನವನ್ನು ಕೊಟ್ಟು ಇಂದಿಗೆ ೧೩೫೫ ವರ್ಷಗಳಾದವು. ಹಾಗೂ ಕಾಶೀಪೀಠದ ಶಾಖಾಮಠವೊಂದು ನೇಪಾಳರಾಜ್ಯದಲ್ಲಿ ಈಗಲೂ **ಜಂಗಮವಾಡೀಮಠ** ಎಂಬ ಹೆಸರಿನಿಂದ ಮೆರೆಯುತ್ತಿರುವದು. ಆ ಮಠವನ್ನು ನೇಪಾಳದ ಮಹಾರಾಜರವರು ಬಹುಕಾಲದಿಂದ ಕಾಪಾಡಿಕೊಂಡು ಬಂದಿರುತ್ತಾರೆ. ಪೂರ್ವಕಾಲದಲ್ಲಿ ಈ ನೇಪಾಳದೇಶವನ್ನಾಳುತ್ತಿದ್ದ ವಿಶ್ವಮಲ್ಲನೃಪತಿಯೆಂಬ ಮಹಾರಾಜನು ಮೇಲ್ಕಂಡ ಜಂಗಮವಾಡೀಮಠಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ಜಹಗೀರನ್ನು ಹಾಕಿಕೊಟ್ಟು ಸಂಸ್ಕೃತಭಾಷೆಯಿಂದ ಒಂದು ಶಿಲಾಶಾಸನವನ್ನು ಬರೆದುಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾನೆ. ಆ ಶಾಸನದಲ್ಲಿ, ಶ್ರೀ ವಿಶ್ವಮಲ್ಲನೃಪತೇರ್ಗಾಂಗಾದೇವೀಸುತಾ ಸುಮತೇಃ | ತ್ರೈಲೋಕ್ಯಮಲ್ಲಭೂಪಸ್ತ್ರಿಭುವನಮಲ್ಲಶ್ಚ ಭೂಪಾಲಃ ||

ಈ ಪ್ರಕಾರವಾಗಿ ಅನೇಕ ಶ್ಲೋಕಗಳಿಂದ ರಾಜನ ವಂಶವೂ ಹಾಗೂ ಅವನ ಪರಾಕ್ರಮವೂ ವರ್ಣಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿವೆ. ಮುಂದೆ—ಶೈವಪ್ರೀತಿಪಿಮಾಂಚ ದೈನನಶಲೋ ಸನ್ನಾಂ ಭುವಸ್ಯಸ್ಯವಾಸ । ಸ್ವಪ್ನಾಂಚಾಪಿ ಶಿವಾರ್ಪಿತಾಂ ಪ್ರತಿಪಥೇ ಶೈವಾಗಮಾಚಾರತಃ ॥ ಶೈವಾಚಾರ ಕೃತಃ ಶಿವಾಗಮವಿಧೇಃ ಶೈವಾಃ ಶಿವಾಲಂಬನಾಃ । ಕಿಂ ವಾ ಸಂತಿ ನ ಸಂತಿ ಹಂತ ಜಗತಿ ಪ್ರಖ್ಯಾತಸತ್ಕೀರ್ತಯೋ । ಕಿಂತುಕ್ಷಾಂತಿ ವಿವೇಕಶಾಂತಿ ಪರಮಾನಂದೈಕ ವೀರಪ್ರಭು । ರ್ವೇದ ಶ್ರೀಯುತ ಮಲ್ಲಿಕಾರ್ಜುನ ಕೃತಿಃ ಶೈವಸ್ಯ ಶಸ್ತ್ರಂ ಪರಂ ॥ ಎಂದು ಉಲ್ಲೇಖಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿದೆ. ಈ ಶಾಸನದಿಂದ ತಿಳಿಯುಬರುವದೇನಂದರೆ— **ವಿಶ್ವಮಲ್ಲ**ನೆಂಬ ಮಹಾರಾಜನಿಗೆ **ಗಂಗಾದೇವಿ** ಯೆಂಬ ಪತ್ನಿಯಿದ್ದಳೆಂದೂ, **ತ್ರೈಲೋಕ್ಯಮಲ್ಲ-ತ್ರಿಭುವನಮಲ್ಲ**ರೆಂಬ ಇಬ್ಬರು ಪುತ್ರರಿದ್ದರೆಂದೂ ಈ ಮಹಾರಾಜನ ವಂಶದವರು ಬಹು ಕಾಲದಿಂದ ಶಿವಭಕ್ತಿ ಸಂಪನ್ನರಾಗಿ ರಾಜ್ಯಪರಿಪಾಲನಮಾಡುತ್ತಿದ್ದರೆಂದೂ, ಹೀಗಿರುವ ಸಮಯದಲ್ಲಿ ಈ ವಿಶ್ವಮಲ್ಲ ಭೂಪಾಲನು ದುರ್ದೈವವಶಾತಾ ಶಿವಭಕ್ತಿಯಿಂದ ದೂರವಾದನೆಂದೂ, ಶಿವಭಕ್ತಿದೂರನಾದ ಈ ಮಹಾರಾಜನನ್ನು ಮಲ್ಲಿಕಾರ್ಜುನ ಮಹಾಸ್ವಾಮಿಗಳೆಂಬವರು ಶೈವಾಗಮಪದ್ಧತಿಗನುಸಾರವಾಗಿ ಶಿವಭಕ್ತಿಸಂಪನ್ನನನ್ನಾಗಿಮಾಡಿದರೆಂದೂ, ಈ ಮಹಾಸ್ವಾಮಿಗಳವರು ಶಾಂತಿ, ದಾಂತಿ, ವಿವೇಕ, ವೈರಾಗ್ಯಾದಿಗಳಿಂದ ಯುಕ್ತರಾಗಿದ್ದರೆಂದೂ ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗುತ್ತದೆ. ಈ ರೀತಿಯಾಗಿ ಈ ಶಾಸನದಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಸಂಸ್ಕೃತ ಶ್ಲೋಕಗಳು ಕೆತ್ತಲ್ಪಟ್ಟಿದ್ದು ಮುಂದೆ ನೇಪಾಳಿಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಕೆಲವು ಮಹತ್ವದ ವಿಷಯಗಳು ಉಲ್ಲೇಖಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿವೆ. ಈ ಮಹಾರಾಜನ ವಂಶದ ಮೂಲಪುರುಷನಾದ **ಜಯರುದ್ರಮಲ್ಲದೇವ**ನೆಂಬ ಮಹಾರಾಜನು ಈ ಜಂಗಮವಾಡೀಮಠಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ದಾನಮಾಡಿದ್ದರೂ (**೨೦೦ ಮೂರೀಭೂಲಾ**) ಜಮೀನನ್ನು ಈ ಸಮಯದಲ್ಲಿ ನಾನು ದಾನವಾಗಿ ಕೊಟ್ಟಿದ್ದೇನೆಂದು ಉಲ್ಲೇಖಿಸಿದ್ದಾನೆ. ಈ ದಾನಶಾಸನವು ವಿಕ್ರಮಾರ್ಕಸಂವತ್ ೭೯೨ ಜ್ಯೇಷ್ಠ ಶು॥ ೮ ದಿವಸ ಕೊಡಲ್ಪಟ್ಟಿದೆ. ಈ ಹೊತ್ತಿಗೆ ಈ ಶಿಲಾಶಾಸನವನ್ನು ಬರೆದುಕೊಟ್ಟು ೧೫೯೮ ವರ್ಷಗಳಾದವು. ಈ ಶಾಸನವು ಈಗಲೂ ನೇಪಾಳದೇಶದ **ಭಾತಗಾಂವ** ಎಂಬ ಸ್ಥಳದಲ್ಲಿ ಶೋಭಿಸುತ್ತಿರುವದು. ಈ ಮಹತ್ವ ಶಾಸನಗಳನ್ನು ವಿಚಾರಮಾಡಿ ನೋಡಿದರೆ ಪ್ರಾಚೀನರಾಜರೆಲ್ಲ ಶಿವಭಕ್ತಿ ಸಂಪನ್ನರಾಗಿ ಪೀಠಾಚಾರ್ಯರ ಶಿಷ್ಯರಾಗಿ ರಾಜ್ಯವನ್ನು ಪರಿಪಾಲಿಸುತ್ತಿದ್ದರೆಂದು ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗಿ ಕಂಡುಬರುತ್ತದೆ. ಈ ಹಿಂದೂಮಹಾರಾಜರಲ್ಲದೆ ಮೊಗಲ ಚಕ್ರವರ್ತಿಗಳಾದ **ಬಾಬರ್-ಅಕ್ಬರ್-ಹುಮಾಯೂನ್-ಔರಂಗಜೇಬ್** ಮೊದಲಾದ ಮಹಾರಾಜರವರೂ ಸಹ ಪೀಠಾಚಾರ್ಯರಲ್ಲಿ ಅಸಾಧಾರಣವಾದ ಭಕ್ತಿಯನ್ನಿಟ್ಟು ಕಾಶೀಪೀಠಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ಜಹಗೀರುಗಳನ್ನು ಹಾಕಿಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾರೆ. ಹಿಂದೂಮತದ ಕಡುವೈರಿಯಾದ ಔರಂಗಜೇಬನು ಕಾಶೀಪೀಠವನ್ನು ನಾಶಮಾಡಬೇಕೆಂದು ದಂಡೆತ್ತಿಬಂದಾಗ್ಯೂ ಆ ಪೀಠದ ಪ್ರಭಾವದಿಂದ ಸದರಿ ಔರಂಗಜೇಬನಿಗೂ ಹಾಗೂ ಅವನ ದಂಡಿಗೂ ನಾನಾ ರೀತಿಯಾದ ದುಃಖವು ಪ್ರಾಪ್ತವಾಗಲು ಆಗ್ಯೆ ಔರಂಗಜೇಬನು ಗರ್ವದಿಂದ ದೂರನಾಗಿ ಪೀಠಕ್ಕೆ ತನ್ನ ರುಜುಮಾಡಿ ಉರ್ದುಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಒಂದು ಶಾಸನವನ್ನು ಬರೆದುಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾನೆ. ಇವನು ತನ್ನ ಶಾಸನದಲ್ಲಿ ಹೀಗೆ

ಉಲ್ಲೇಖಿಸಿರುವನು. ನಾನು ಜಂಗಮವಾಡೀಮಠಕ್ಕೆ ಹೋದಕೂಡಲೆ ಆ ಮಠದ ಮೂರ್ತಿಯು ನನ್ನ ಕಣ್ಣಿದುರಿಗೆ ಕಾಣಿಸಿಕೊಂಡಿತು. ಆ ಮೂರ್ತಿಯು ಕಾಲಭೈರವದಂತೆ ಕರ್ರಗಾಗಿಯೂ, ಪ್ರಳಯಾಗ್ನಿಯಂತೆ ಕೆಂಪು ಕಣ್ಣುಗಳುಳ್ಳದ್ದಾಗಿಯೂ, ಕರಿಯ ಕೂದಲುಗಳಿಂತ ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿ ಉಂಗುರಗೂದಲುಗಳುಳ್ಳದ್ದಾಗಿಯೂ, ಆಕಾರದಲ್ಲಿ ಚಿಕ್ಕದಾಗಿದ್ದರೂ ಭೂಮಿಗೂ ಆಕಾಶಕ್ಕೂ ಏಕಾಕಾರವಾಗಿ ನಿಂತಿರುವದನ್ನು ಕಂಡು ಭಯಗೊಂಡು ಶರಣಾಗತನಾಗಿ ಭಕ್ತಿಯಿಂದ ಅಂತಿಷ್ಟ ದಾನಮಾಡಿರುವೆನೆಂದು ಶಾಸನದಲ್ಲಿ ಈ ಮಹತ್ವ ವಿಷಯವನ್ನು ಬರೆದುಕೊಟ್ಟಿದ್ದಾನೆ. ಈ ಪ್ರಕಾರವಾಗಿ ಅನೇಕ ಮಹತ್ವದ ಶಾಸನಗಳು ಪೀಠದಲ್ಲಿ ಈಗಲೂ ಪ್ರಕಾಶಿಸುತ್ತವೆ. ಅವುಗಳನ್ನೆಲ್ಲ ಮುಂದೆ ಮುಂದೆ ಪ್ರಕಾಶಪಡಿಸುತ್ತೇವೆ. ರಾಜಾಧಿರಾಜಮಾನ್ಯಗಳಾದ ನಮ್ಮ ಪ್ರಾಚೀನ ಗುರುಪೀಠಗಳು ಈಗ್ಗೆ ಕಷ್ಟದಿಂದ ತಿರಸ್ಕರಿಸಲ್ಪಡಲಿಕ್ಕೆ ಹತ್ತಿರುವದನ್ನು ನೋಡಿದರೆ ಯಾರಿಗೆ ವ್ಯಸನವೆನಿಸಲಿಕ್ಕಿಲ್ಲ? ಹೀಗೆ ಮೂಲಾಚಾರ್ಯರನ್ನು ತಿರಸ್ಕರಿಸುತ್ತಿರುವ ಕಷ್ಟದಿಂದ ತಮ್ಮ ಶೂದ್ರತ್ವವನ್ನು ಲೋಕದಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಾಶಪಡಿಸಿಕೊಳ್ಳುವರಲ್ಲದೆ ಇವರಿಂದ ಪೀಠಗಳಿಗೆ ಯಾವ ಕಳಂಕವೂ ಬರಲಾರದು. ಕಷ್ಟದ ಸಂಸರ್ಗದಿಂದ ಕೆಲವು ಜನ ಶುದ್ಧ ಸಾಂಪ್ರದಾಯದ ವೀರಶೈವರೂ ಸಹ ಅವರ ಮಾರ್ಗವನ್ನೇ ಹಿಡಿಯಲಿಕ್ಕೆ ಹತ್ತಿದ್ದಾರೆ. ಇದು ಸಮಾಜದ ಏಳಿಗೆಗೆ ಒಳ್ಳೇದಲ್ಲ. ಆದ್ದರಿಂದ ಯಾರೇ ಆಗಲಿ ಗುರುಪರಂಪರೆಯಾದ ಪೀಠಗಳನ್ನು, ಪಟ್ಟು ಸಾಂಪ್ರದಾಯಿಕರಾದ ಆಚಾರ್ಯರುಗಳನ್ನು ಮರೆಯದೆ, ಸ್ವಧರ್ಮ ನಿಷ್ಠೆಯನ್ನು ಹೊಂದಬೇಕೆಂದು ಹಾರೈಸುತ್ತೇವೆ.

೧೯೩೮ನೇ ಏಪ್ರಿಲ ತಾ॥ ೩೦ ನೇ ಸೋಮವಾರ

ಲಿಂಗಧಾರಣಸನಾತನತ್ವ.

— ಕ. ಪ್ರ. ಶಿ.

ಲಿಂಗಧಾರಣವು ಸನಾತನವಾದುದೆಂದು ಅನಂತ ಪ್ರಾಚೀನ ಗ್ರಂಥಗಳಿಂದ ತಿಳಿದುಬರುವದು. ಸಮಸ್ತ ಶಾಸ್ತ್ರಗಳಿಗೆ ಉಗಮಸ್ಥಾನವಾಗಿರುವ ವೇದಗಳಲ್ಲಿ ಲಿಂಗಧಾರಣವು ಬಹು ವಿಶದವಾಗಿ ಹೇಳಲ್ಪಟ್ಟಿರುವದರಿಂದ ವೇದಗಳಿಗೆ ಅನಾದಿತ್ವವನ್ನು ಹೇಳುವಂತೆ ಲಿಂಗಧಾರಣಕ್ಕೂ ಸಹ ಅನಾದಿತ್ವವನ್ನು ಹೇಳುವದರಲ್ಲಿ ಯಾವ ಸಂದೇಹವೂ ಇಲ್ಲ. ಜಗದಾದಿಯಲ್ಲಿ ಜನಿತರಾಗಿ ಜಗತ್ತಿನ ಸೃಷ್ಟಿಸ್ಥಿತಿಗಳಿಗೆ ಕಾರಣೀಭೂತರಾದ ಬ್ರಹ್ಮ, ವಿಷ್ಣು ಮೊದಲಾದ ದೇವತೆಗಳೂ ಸಹ ಲಿಂಗಧಾರಣದಿಂದ ಶೋಭಿಸುತ್ತಿರುವರೆಂದು ಧರ್ಮಶಾಸ್ತ್ರಗಳು ಘಂಟಾಘೋಷವಾಗಿ ಸಾರುತ್ತಿರುವಾಗ ಈ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ಪ್ರಾಚೀನತ್ವವನ್ನು ಇಷ್ಟೇ ಎಂದು ನಿರ್ಣಯಿಸಲು ಯಾರಿಗೂ ಸಾಧ್ಯವಾಗದ ಕಾರಣ ಇದು ಅನಾದಿಯೆಂದೇ ಹೇಳಬೇಕಾಗಿದೆ. ಅನಾದಿಸುಸಿದ್ಧವಾದ ಈ ಲಿಂಗಧಾರಣಸಾಂಪ್ರದಾಯವು ಭಗವತ್ಪಾದ ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ರೇಣುಕಾದಿ ಪಂಚಾಚಾರ್ಯರಿಂದ ಜನ್ಮವೆತ್ತಿರುವದೆಂದು ಇಪ್ಪತ್ತೆಂಟು ವಿಷ್ಣಾಗಮಗಳು ಸಿಂಹಗರ್ಜನ ಮಾಡುತ್ತಿರುವದನ್ನು ನೋಡಿದರೆ ಇವರ ಕಾಲವನ್ನೂ ಸಹ ನಿರ್ಣಯಿಸಲು ಯಾರಿಗೂ ಸಾಧ್ಯವಾಗದು. ಹರಿ, ಬ್ರಹ್ಮ, ಇಂದ್ರ, ಚಂದ್ರ ಮೊದಲಾದ ಸಮಸ್ತ ದೇವತೆಗಳಿಗೂ ಸಹ ಈ ಪೂಜ್ಯರಾದವರೇ ಲಿಂಗಧಾರಣವನ್ನು ಮಾಡಿ ಪಂಚಾಕ್ಷರೀ ಮಂತ್ರವನ್ನು ಉಪದೇಶಿಸಿದರೆಂದು ಪಾಶುಪತಾದಿ ತಂತ್ರಗಳು ಮುಕ್ತಕಂಠದಿಂದ ಬೋಧಿಸುತ್ತವೆ. ಲೋಕವಿಖ್ಯಾತರಾದ ವ್ಯಾಸಮಹರ್ಷಿಗಳು ತಾವು ಶಿವಭಕ್ತಿಯನ್ನು ತೋರ್ಪಡಿಸಿ ತಮ್ಮ ಹೆಸರಿನಿಂದ "ವ್ಯಾಸೇಶ್ವರ" ಎಂಬುದೊಂದು ಲಿಂಗಮೂರ್ತಿಯನ್ನು ಸ್ಥಾಪಿಸಿ ಘಂಟಾಕರ್ಣಶಿವಾಚಾರ್ಯರ ಶಿಷ್ಯರಾಗಿ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ಮಹತ್ವವನ್ನು ನಾನಾರೀತಿಯಾಗಿ ಬೋಧಿಸಿದ್ದಲ್ಲದೆ "ವಿಷ್ಣುಬ್ರಹ್ಮಾದಯೋ ದೇವಾ ಮುನಯೋ ಗೌತಮಾದಯಃ । ಧಾರಯಂತಿ ಸದಾಲಿಂಗ ಮುತ್ತಮಾಂಗೇ ವಿಶೇಷತಃ" ಎಂದು ಲಿಂಗಪುರಾಣದಲ್ಲಿ ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗಿ ಉಲ್ಲೇಖಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಈ ವ್ಯಾಸರ ವಾಕ್ಯದ ಮೇಲಿಂದಲೂ ಸಹ ವಿಷ್ಣುಬ್ರಹ್ಮಾದಿ ದೇವತೆಗಳು ಲಿಂಗಧಾರಣದಿಂದ ಯುಕ್ತರಾದವರೆಂದು ಕನ್ನಡಿಯಂತೆ ತೋರಬರುತ್ತದೆ. ಭರತಖಂಡದಲ್ಲಿರತಕ್ಕ ಪ್ರಾಚೀನ ದೇವತೆಗಳ ಮೂರ್ತಿಗಳನ್ನು ಒಳ್ಳೆ ಶೋಧಕದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ಪರಿಶೀಲಿಸಿದ್ದಾದರೆ ಪ್ರತಿಯೊಂದು ದೇವತೆಯ ಹಸ್ತದಲ್ಲಾಗಲಿ, ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಾಗಲಿ, ಕಂಠದಲ್ಲಾಗಲಿ ಲಿಂಗಧಾರಣವಿರುವದು ಕಂಡುಬರುವದು. ಭರತಖಂಡದಲ್ಲಿ ಅತ್ಯಂತ ಪ್ರಸಿದ್ಧಿಗಳಿಸಿದ ಪಂಢರಪುರದಲ್ಲಿರುವ **ವಿಠೋಬ**ನಾಮಕವಾದ ವಿಷ್ಣುಮೂರ್ತಿಯ ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ, ಬಾರ್ಸಿ ಪಟ್ಟಣದಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಾಶಿಸುವ **ಭಗವಂತ**ನಾಮಕವಾದ ವಿಷ್ಣುಮೂರ್ತಿಯ ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ, ನರಸಿಂಹದೇವರ ಗುಡ್ಡದಲ್ಲಿ ಶೋಭಿಸುವ **ನೃಸಿಂಹ**ಮೂರ್ತಿಯ ಹಸ್ತದಲ್ಲಿಯೂ ಲಿಂಗಧಾರಣವಿರುವದು ಲೋಕಪ್ರಸಿದ್ಧವೇ ಇದೆ. ಭರತಖಂಡದಲ್ಲಿರುವ ಪ್ರಾಚೀನಸ್ಥಾನಗಳನ್ನು ಶೋಧಕದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ಪರಿಶೀಲಿಸಿದ್ದಾದರೆ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ವೈಭವವು ಸರ್ವರಿಗೂ ವೇದ್ಯವಾಗುವದು. "ಲಕ್ಷ್ಮ್ಯಾದಿ ಶಕ್ತಯಸ್ಸರ್ವಾಃ ಸಭಾವಸ್ಥಾವಿಶಾಃ ಧಾರಯಂತ್ಯಲಿಕಾಗ್ರೇಷು ಶಿವಲಿಂಗಮಹರ್ನಿಶಂ" ಎಂಬ ಸಿದ್ಧಾಂತಶಿಖಾಮಣಿಯ ಪ್ರಮಾಣದಿಂದ ಲಕ್ಷ್ಮೀ ಮೊದಲಾದ ಸಮಸ್ತ ಶಕ್ತಿಗಳೂ ಸಹ ಲಿಂಗಧಾರಣದಿಂದ ಯುಕ್ತರಾಗಿರುವರೆಂದು ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗುತ್ತದೆ. ಈ ವಿಷಯದಲ್ಲಿ ಶಕ್ತಿಯ ಪೀಠಗಳಲ್ಲಿ ಅತ್ಯಂತ ಪ್ರಸಿದ್ಧಿಯನ್ನು ಹೊಂದಿದ ಕೊಲ್ಹಾಪುರದ **ಮಹಾಲಕ್ಷ್ಮಿ**ಯ ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ, ಕಾಶ್ಮೀರದೇಶದ **ಶಾರದಾ** ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ, ತುಳಜಾಪುರ **ಭವಾನೀ** ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ, ಕಾಂಚೀ **ಕಾಮಾಕ್ಷಿ**ಯ ಮಸ್ತಕದಲ್ಲಿಯೂ ಈಗಲೂ ಶೋಭಿಸುತ್ತಿರುವ ಲಿಂಗಧಾರಣವೇ ಬಲವಾದ ಸಾಕ್ಷಿಯಾಗಿದೆ. ಈ ಮಹಾಮಹತ್ವ ಶಾಸ್ತ್ರೀಯ ಪ್ರಮಾಣಗಳಿಂದಲೂ, ಆ ಪ್ರಮಾಣಕ್ಕನುಗುಣವಾಗಿ ಈಗಲೂ ಲೋಕದಲ್ಲಿ ಸರ್ವರ ಕಣ್ಣುದುರಿಗೆ ಪ್ರತ್ಯಕ್ಷವಾಗಿ ತೋರುತ್ತಿರುವ ಚಿಹ್ನಗಳಿಂದಲೂ ಲಿಂಗಧಾರಣವು ದೇವಾಸುರದೇವತೆಗಳಿಗೂ ಸಹ ಮಾನ್ಯವಾದುದೆಂದು ಸರ್ವರಿಗೂ ಸ್ಪಷ್ಟವಾಗಿ ಕಂಡುಬರುವದು. ಇನ್ನು ಜಗತ್ತಿನಲ್ಲಿ ತಮ್ಮ ಸ್ವಭಾವದಿಂದಲೂ, ಮಹಿಮಾಪ್ರಭಾವದಿಂದಲೂ, ಜ್ಞಾನಪ್ರಭಾವದಿಂದಲೂ, ವೈರಾಗ್ಯಪ್ರಭಾವದಿಂದಲೂ ಅಸಾಧಾರಣವಾದ ಕೀರ್ತಿಯನ್ನು ಸಂಪಾದಿಸಿಕೊಂಡು ಈ ಹೊತ್ತಿನವರೆಗೂ ಕೀರ್ತಿಕಾಯರಾಗಿ ಪ್ರಕಾಶಿಸುತ್ತಿರುವ ಅಗಸ್ತ್ಯ, ಗೌತಮ, ದೂರ್ವಾಸ, ದಧೀಚಿ, ಸಾನಂದ, ವ್ಯಾಸ, ಕಶ್ಯಪ, ಉಪಮನ್ಯು, ಹರಕಂತ ಮೊದಲಾದ ಅನೇಕ ಮಹರ್ಷಿಗಳೂ ಸಹ ಲಿಂಗಧಾರಣಮಹಿಮೆಯನ್ನರಿತು ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ಪಂಚಾಚಾರ್ಯರ ಪಾದಾರವಿಂದಗಳನ್ನಾಶ್ರಯಿಸಿ ಲಿಂಗಧಾರಣವನ್ನು ಪಡೆದು ಅವರಿಂದ ಲಿಂಗಾಂಗಸಾಮರಸ್ಯರೂಪವಾದ ಜ್ಞಾನವನ್ನು ಸಂಪಾದಿಸಿಕೊಂಡು ಮುಕ್ತರಾಗಿರುವ ವಿಷಯವು ಪಾಶುಪತ ತಂತ್ರ, ಕಾಶೀಖಂಡ, ಶ್ರೀಶೈಲಕಲ್ಪ ಮೊದಲಾದ ಗ್ರಂಥಗಳಲ್ಲಿ ಚನ್ನಾಗಿ ವರ್ಣಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿದೆ. ಸಪ್ತಸಮುದ್ರಗಳನ್ನೇ ಒಂದು ಹನಿಯಂತೆ ಪಾನಮಾಡಿ ಅಗಾಧ ಮಹಿಮಾಶಾಲಿಯೆಂದು ಲೋಕಪ್ರಸಿದ್ಧನಾದ ಅಗಸ್ತ್ಯಮಹರ್ಷಿಯೂ, ತನ್ನ ಶಾಪದ ಸಾಮರ್ಥ್ಯದಿಂದ ಇಂದ್ರನ ಚತುರ್ದಶ ಸಂಪತ್ತುಗಳನ್ನು ಸಮುದ್ರಪಾಲುಮಾಡಿ ದೇವಾಸುರದೇವತೆಗಳನ್ನು ದಂಗುಬಡಿಸಿ ಚತುರ್ದಶಸಂಪತ್ತುಗಳ ಪ್ರಾಪ್ತಿಗೋಸುಗ ಸಮುದ್ರಮಥನದಿಂದುಂಟಾದ ಹಾಲಾಹಲ ವಿಷಪಾನದಿಂದ ಪರಮೇಶ್ವರನನ್ನು ನೀಲಕಂಠನೆಂಬ ಹೆಸರಿನಿಂದ ಪ್ರಸಿದ್ಧಪಡಿಸಿದ ದೂರ್ವಾಸಮಹರ್ಷಿಯೂ, ಅಷ್ಟಾದಶಪುರಾಣಗಳನ್ನೂ, ಬ್ರಹ್ಮಸೂತ್ರಗಳನ್ನೂ ರಚಿಸಿ ಸಕಲಮತೀಯರಿಂದಲೂ ಸ್ತುತ್ಯನಾದ ವ್ಯಾಸಮಹರ್ಷಿಯೂ, ಶಿವಪಂಚಾಕ್ಷರೀಮಂತ್ರದ ಜಪಪ್ರಭಾವದಿಂದ ಯಮಲೋಕವನ್ನೆಲ್ಲಾ ಹಾಳುಗೆಡವಿ ಅಲ್ಲಿದ್ದ ಸಮಸ್ತ ನಾರಕಿಗಳನ್ನು ಶಿವಲೋಕಕ್ಕೊಯ್ದು ಮುಕ್ತರನ್ನಾಗಿಮಾಡಿ ಅಸಾಧಾರಣ ಮಹಿಮಾಶಾಲಿಯೆಂದು ಕೀರ್ತಿವೆತ್ತ ಸಾನಂದಮಹರ್ಷಿಯೂ ಇವರೇ ಮೊದಲಾದವರು ಲಿಂಗಧಾರಣಯುತರಾಗಬೇಕಾದರೆ ಆ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ಪವಿತ್ರತೆಯೂ, ಈ ಲಿಂಗಧಾರಣವನ್ನು ನೆಲೆಗೊಳಿಸಿದ ಗುರುಪುಂಗವರ ಪವಿತ್ರತೆಯೂ ಎಷ್ಟರಮಟ್ಟಿಗಿರಬಹುದೆನ್ನುವದನ್ನು ಒಡೆದು ಹೇಳುವ ಕಾರಣವೇ ಇಲ್ಲ. ಲೋಕಪ್ರಸಿದ್ಧರಾದ ಈ ಮಹರ್ಷಿಗಳಲ್ಲದೆ ನಳ, ಕಕುತ್ಸ್ಥ, ಪುರೂರವ ಮೊದಲಾದ ಚಕ್ರವರ್ತಿಗಳೂ ಸಹ ಲಿಂಗಧಾರಣಸಂಪನ್ನರಾಗಿದ್ದರೆಂದೂ ಆ ಕಾಲದಲ್ಲಿ ಭರತಖಂಡವೆಲ್ಲಾ ಶಿವಭಕ್ತಿಮಯವಾಗಿದ್ದಿತೆಂದೂ ಅನೇಕ ಗ್ರಂಥಗಳಿಂದ ತಿಳಿದುಬರುತ್ತದೆ. ಅಲ್ಲದೆ ಈಗ್ಯೆ ೨-೩ ಸಾವಿರ ವರ್ಷಗಳ ಪೂರ್ವದಲ್ಲಿ ಭರತಖಂಡವನ್ನಾಳಿದ ಅನೇಕ ಜನ ಮಹಾರಾಜರು ಲಿಂಗಧಾರಣಸಂಪನ್ನರಾಗಿದ್ದರೆಂಬ ವಿಷಯವು ಅನೇಕ ಶಿಲಾಶಾಸನಗಳಿಂದ ತಿಳಿದುಬರುತ್ತದೆ. ಶಿಲಾಶಾಸನಸಂಬಂಧ ಅನೇಕಾನೇಕ ಮಹತ್ವದ ವಿಷಯಗಳನ್ನು ಮುಂದಿನ ಪತ್ರಿಕೆಯಲ್ಲಿ ವಿಶದವಾಗಿ ವಿವರಿಸುತ್ತೇನೆ. ದೇವಾಸುರದೇವತೆಗಳಿಗೂ, ಮಹರ್ಷಿಗಳಿಗೂ ಚಕ್ರವರ್ತಿಗಳಿಗೂ ಪರಮ ಮಾನ್ಯವಾದ ಲಿಂಗಧಾರಣವೂ ಹಾಗೂ ಲಿಂಗಪೂಜೆಯೂ ಇವುಗಳಿಗೆಲ್ಲಾ ಮೂಲ ಕಾರಣೀಭೂತರಾದ ಶ್ರೀ ಜಗದ್ಗುರು ಪಂಚಾಚಾರ್ಯರಲ್ಲಿ ಭಕ್ತಿಯೂ ಕಲಿಕಾಲಪ್ರಭಾವದಿಂದ ನಾಶವಾಗುತ್ತಾ ನಡೆದು ನಾಸ್ತಿಕಪಂಥವೇ ಜಗತ್ತಿನಲ್ಲಿ ಹುಟ್ಟುತ್ತಾ ನಡೆದುದನ್ನು ನೋಡಿದರೆ ಯಾವ ವೈದಿಕಮತಾಭಿಮಾನಿಗೆ ವ್ಯಸನವೆನಿಸಲಿಕ್ಕಿಲ್ಲ? ಆದುದರಿಂದ ಪ್ರತಿಯೊಬ್ಬರೂ ಈ ಮಹತ್ವ ವಿಷಯಗಳನ್ನು ಪರ್ಯಾಲೋಚಿಸಿ ಲಿಂಗಧಾರಣದ ಹಾಗೂ ಈ ಲಿಂಗಧಾರಣಕ್ಕೆ ಮೂಲ ಕಾರಣೀಭೂತರಾದ ಮೂಲಾಚಾರ್ಯರ ಮಹತ್ವವನ್ನು ತಿಳಿದು ಶಾಸ್ತ್ರಾನುಸಾರವಾಗಿ ವರ್ತಿಸಿ ಧನ್ಯರಾಗಬೇಕೆಂದು ಆಶಿಸುತ್ತೇವೆ.

भगवान्‌दासका वर्ण ।

नयसे चार, चारसे नय, शास्त्रसे प्रयोग, प्रयोगसे शास्त्र, वेद-वेदान्त-दर्शनसे इतिहास-पुराण, इतिहास-पुराणसे वेद-वेदान्त-दर्शन, "थियरी" से "प्रैक्टिस", "प्रैक्टिस" से "थियरी", सामान्यसे विशेष, विशेषसे सामान्य, अनुगमसे उदाहरण, उदाहरणसे अनुगम, धर्मसिद्धान्तसे व्यक्तिधर्म, व्यक्तिधर्मसे धर्मसिद्धान्त, पर प्रकाश पड़ता है, उज्वल होता है, समझमें आता है। न्यायालयमें, विशेष व्यक्तियोंके व्यवहारके सम्बन्धमें, मामिले मुकद्दमेमें, अधिकार-कर्त्तव्यके निर्णयके लिये, धर्मसिद्धान्तोंका, कानूनी मसलों, "लीगल् मैक्सिमज़", का प्रयोग किया जाता है, और विद्यार्थीको इनके समझानेके लिये धर्मशिक्षक, "ला प्रोफेसर", लोग, विशेष विशेष व्यवहारोंका, "केसेज़" का, प्रतिपादन किया करते हैं। इस दृष्टिसे, वर्णधर्मके तत्वपर विचार, किसी एक व्यक्तिके सम्बन्धमें होना अच्छा ही है।

कुछ दिन हुए "आज" के सम्पादकजीने स्नेहके वश, अपने अग्रलेखमें, मेरे लिये "ब्राह्मण"-वर्ण निश्चित किया। मैंने उस लेखके पढ़नेके साथ ही प्रतिपक्षमें कुछ लिखना चाहा। आरंभ भी किया। पाँच सात पंक्ति लिखा भी। पर कोई विघ्न हो गया। दूसरा कार्य आ गया। और तबसे अन्य आवश्यक लिखा-पढ़ी की, तथा अनिवार्य कार्योंकी, ऐसी धारामें पड़ गया कि उसको समाप्त न कर सका। परसों "माथुर-हितैषी" नामक "मासिक सम्वाद-पत्र" का, ता० ११ मार्च सन् १९२९ का, अंक डाँकसे मेरे पास आया। इस पत्रका मैं ग्राहक पाठक नहीं। किसी विशेष हेतुसे ही आया होगा। कुतूहलसे खोला। पन्ने उलटे। अग्रलेख पर हाथसे विशेष चिह्न, ध्यानाकर्षणार्थ, बना था। शीर्षक भी इसके लिये पर्याप्त था—"श्री भगवान्‌दास जीका ब्राह्मणत्व"। पढ़ गया। कुछ खेद हुआ कि प्रारब्ध लेखको मैंने समाप्त क्यों न किया और "आज" में क्यों न छपा दिया। माथुर-हितैषीके सम्पादक जीको लेख लिखनेका क्लेश स्यात् बच जाता। फिर सोचा कि "देर आयद दुरुस्त आयद"। अब सही।

पहिले मैं माथुर-हितैषीके सम्पादकजीका हृदयसे धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने भी मेरी ६०वीं वर्षगांठ पर मेरा समाजन किया है। यह वर्षगांठ मेरे जेठे चिरंजीव श्रीप्रकाशजीने पितृभक्तिसे मनाई, और उनके इस शुभ उत्साहका फल यह हुआ कि मुझे अनेक मित्रोंने स्नेहसे स्मरण किया और मुझे बड़ा आनंद और संतोष मिला, जिसके लिये मैं उन सबका बड़ा उपकार मानता हूँ और अपनेको बहुत ऋणी समझता हूँ। इन्हींमें माथुर-हितैषीके सम्पादकजीको भी अब गिनता हूँ। तथा, इस अवसरपर इन सब मित्रोंसे, तथा अन्य सज्जनोंसे, उन असंख्य भूल-चूक और अपराधोंके लिये क्षमा माँगता हूँ जो निश्चयेन मुझसे ६० वर्षोंमें उनके साथ व्यवहारमें हुई होंगी, और जिनके कारण मैंने उनको मनसा, वा वचसा, वा कर्मणा, दुःख पहुँचाया होगा।

इसके बाद माथुर-हितैषी-सम्पादकजीके वर्णविषयक विचारोंकी कुछ थोड़ी समीक्षा करनेका यत्न करता हूँ। उनका जो साध्य है, जो प्रतिज्ञा है, उसमें तो मैं उनसे पूर्णतया अनुमत सम्मत हूँ, अर्थात् मैं भी अपनेको स्वप्नमें भी ब्राह्मण नहीं मानता। पर हेतुमें भेद है। वे "जन्मना वर्णः" के पक्षपाती हैं, मैं "कर्मणा वर्णः" का। अपनेमें ब्राह्मण वर्णके साधक कर्म नहीं देखता हूँ इस वास्ते अपने को ब्राह्मण नहीं मानता। यदि देखता तो निश्चयेन मानता। उक्त सम्पादकजीने जो गीताके श्लोक उद्धृत किये हैं उनको तो मैं अपने ही पक्षका पोषक समझता हूँ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥
जन्म कर्म च मे दिव्यम्।
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः॥

तो अब वर्णनिर्णायक कर्म क्या हैं? मनुका उत्तर यह जान पड़ता है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः॥
षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः॥
त्रयो धर्मा निवर्त्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः॥
वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्त्तेरन्निति स्थितिः।
न तौ प्रति हि तान् धर्मान् मनुराह प्रजापतिः॥
शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः।
आजीवनार्थं, धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः॥

(अ० १०, श्लो० ७५-७९)

अर्थात् तीनों वर्णोंके लिये वेद-उपवेद-विद्या आदिका अध्ययन, विविध प्रकारके यज्ञोंसे यजन, और सत्पात्रको दान, सामान्य विधि है, और यह तीनों धर्म-कर्म हैं, अवश्य कर्त्तव्य हैं, यथाशक्ति। जीविकाके लिये, ब्राह्मणका कर्म अध्यापन, याजन, और प्रतिग्रह से लाभ। क्षत्रियके लिये, शस्त्र-अस्त्रसे दूसरोंकी रक्षा करके जो कर, लगान, मालगुजारीआदि पावे। वैश्यके लिये कृषि-गोरक्षावाणिज्यसे आय। यह जीविका-कर्म है।

सामान्य धर्म-कर्मसे तो स्पष्ट है कि वर्णका निर्णय नहीं हो सकता। विशेष जीविका-कर्मसे ही हो सकता है। जो जिस जीविकासे रहता हो, तदनुसार उसका वर्ण-नाम होना चाहिये। व्यवहारको देखिये। कचहरीमें गवाहका बयान लिया जाता है। तुम्हारा नाम क्या? पिताका नाम क्या? वासस्थान क्या? पेशा क्या? जब पेशा मालूम हुआ तब आदमीका समाजमें क्या स्थान है यह ठीक ठीक जान पड़ा। बंगलामें भी साधारण परिचयार्थ "आपनार नाम? ग्राम? काज?" ऐसा ही पूछनेकी प्रथा है। तथा अन्य भाषा-भाषियोंमें भी। आदमीका पेशा जाना तो मानो उसका सब हाल जान लिया। "वर्णयंते अनेन इति वर्णः" जिससे मनुष्यका वर्णन ठीक ठीक पूरा हो जाय, उसका सब हाल मालूम हो जाय, वही उसका वर्ण। "व्रियते जीविकार्थं" या "आवृणोति, आच्छादयति, वृत्युपायवत्" इत्यादि "वर्णः"।

वायुपुराण (८, ३३,४९,५७ आदि अध्यायों) में इस विषय पर कुछ विस्तारसे कहा है।

अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदाऽऽसन् न संकरः॥
त्रेतायुगे त्वविकलः कर्मारम्भः प्रसिध्यति।
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां तु प्रकीर्तिताः॥
शांताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तथा।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः॥
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परं।
इतरेषां कृतत्राणान् स्थापयामास क्षत्रियान्॥
उपतिष्ठंति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा।
सत्यं ब्रह्म यथाभूतं ब्रुवंतो ब्राह्मणाश्च ते॥
कीनाशान् (? कीटांस्तु) नाशयंतिस्म
पृथिव्यां प्रागतंद्रिताः।
वैश्यानेव तु तानाहुः कीनाशान् वृत्तिसाधकान्॥
शोचंतश्च द्रवंतश्च परिचर्यासु ये रताः।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः॥
पुनः प्रमादतु ता मोहात् तान् धर्मान् नान्वपालयन्।
वर्णधर्मैरजीवन्तो व्यरुध्यंत परस्परम् ॥
ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन वै प्रभुः।
क्षत्रियाणां बलं दंडं युद्धमाजीवमादिशत्॥
याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च प्रतिग्रहं।
ब्राह्मणानां प्रभुस्तेषां कर्माण्येतान्यथादिशत्॥
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं चैव विशां ददौ।
शिल्पाजीवं भृतिं चैव शूद्राणां व्यदधात् प्रभुः॥
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशां पुनः।
यजनाध्यापनं दानं सामान्यानि तु तेषु च॥

अर्थात् सत्ययुगमें कर्मभेद, वर्णभेद, आश्रमभेद, नहीं था। क्रमसे मनुष्योंकी प्रकृतियाँ कुछ भिन्न होने लगीं। कर्म-वर्ण-आश्रम-भेद आरंभ हुए। तदनुसार शांत, शुष्मी, कर्मी, दुःखी, ऐसे नाम पड़े। द्वापर और कलिमें प्रकृति-भेद और अभिव्यक्त हुआ। तदनुसार, क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र नाम पड़े। दूसरोंका त्राण करने वाले क्षत्रिय कहाये। क्षत्रियोंकी सहायताके लिये सत्यका, ब्रह्मका, ज्ञानका, प्रतिपादन करने वाले, ब्राह्मण। पृथिवीका शोधन करने वाले, उससे अन्न उपजाने वाले, कीनाश (किसान, कृषाण), वैश्य हुए। दूसरोंकी सहायतार्थ दौड़ धूप करने वाले शूद्र हुए। इनमें जब जीविकाके हेतु परस्पर विरोध होने लगा तब ब्रह्माने मर्यादा स्थापित की। बलसे, दंडसे, युद्धसे, दूसरोंकी रक्षा करके जो मिले, यह क्षत्रियकी आजीविका। ज्ञानप्रचार करनेकी, पढ़ानेकी, यज्ञादिमें, अर्थात् सर्वोपयोगी कर्मोंमें ज्ञान द्वारा परामर्श देनेकी, दक्षिणासे, और प्रतिग्रहसे, आजीविका ब्राह्मणकी। पशुपालन, कृषि, वाणिज्य, वैश्यकी। शिल्प और भृति, शूद्रकी। यह वृत्ति-विभाग वर्णोंका स्थिर हुआ। महाभारतका श्लोक प्रसिद्ध ही है,

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

वर्णव्यवस्था, समाजनिर्माण, का तत्त्व और सार भी इतना ही है कि कर्मविभाग और जीविकाविभाग प्रकृत्यनुसार ठीक ठीक कर दिया जाय। तभी परस्पर स्नेह, प्रीति, और अंगांगिवत् सहायता, होगी। अन्यथा, कर्म-संकर, जीविका-संकर, वर्ण-संकर, आश्रम-संकर, से परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, और नितांत दुर्व्यवस्था, और सबको दुःख।

यह वर्णव्यवस्थाका तत्व, बिना आधुनिक मनुष्यसंसारमात्रकी अवस्थाको विचारे, बिना पश्चिम और पूर्व दोनोंके इस गहन विषयपर प्रकाश डालनेवाले ग्रन्थोंकी समीक्षाके, छानबीनके, बिना "बहुश्रुतता" के, बिना हेतुओंके विचारके, केवल संस्कृत के ही, सो भी कुछ थोड़ेसे ही, श्लोकोंकी पुनरावृत्ति करनेसे, हेतुहीन श्रद्धामात्रसे, उजागर नहीं हो सकता।

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति।

वर्णपरिवर्त्तनके विषयमें केवल विश्वामित्रका ही नाम लिया जाता है। क्यों? पुराणोंमें तो बीसियों उदाहरण हैं। और एक एक व्यक्तिके नहीं, गोत्रके गोत्रके। भागवत ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थको ही देखिये।

पृषध्रः शूद्रतां गतः। स्कं० ९, अ० २।
धृष्टाद्धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ।
ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप॥
नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः॥
शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह।
यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान्॥

(९—३)

दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः।
पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः॥

(९—२१)

(ऋषभस्य राज्ञः पुत्राः भरतस्य राज्ञः अनुजाः)
यवीयांस एकाशीतिः..........कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः। इत्यादि।

(५—४)

अर्थात् क्षत्रिय राजा पृषध्र शूद्र हो गये। क्षत्रिय राजा धृष्टके वंशज ब्राह्मण हो गये और अग्निवेश्यायन नामसे प्रसिद्ध हुए। राजादिष्टका एक लड़का नाभाग वैश्य हो गया। शर्याति राजा उत्तम ब्राह्मण हो गये। दुरितक्षय क्षत्रियके पुत्र ब्राह्मण हो गये। राजा ऋषभदेवके पुत्र, राजा भरतके सगे भाई इक्यासी ब्राह्मण हो गये। इत्यादि।

तथा वायुपुराण (अ० २८) में,

कर्दम ऋषि (ब्राह्मण) की पुत्री काम्या (विष्णुपुराणमें नाम कन्या लिखा है) राजा प्रियव्रत (क्षत्रिय) को व्याही गई।

काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान्।
दश कन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्त्तितं ॥
राज्ञो वाग्दत्तनयान्मार्कण्डेयी यशस्विनी।
प्रतीच्यां दिशि राजन्य केतुमंतं प्रजापतिं ॥

इत्यादि।

काम्यासे प्रियव्रतको दस पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं जिन्होंने क्षत्रिय वंशका विस्तार किया। ब्राह्मण ऋषि रजस्की ब्राह्मणी पत्नी मार्कंडेयीसे केतुमान् पुत्र हुए जो राजन्य क्षत्रिय हो गये। अनुशासन पर्व (अ० ५३) में कथा है कि चित्रमुख नामक वैश्य वसिष्ठकी सहायतासे ब्राह्मण हो गये, और उनकी बेटी वसिष्ठके पौत्र पराशरको व्याह दी गयी। (शुद्धि करके व्याहके वक्त आनाकानी नहीं की गयी)। इनके पुत्र वेदव्यास हुए। तथा (अ० ७ में) वीतहव्य क्षत्रियके भृगुकी सहायतासे ब्राह्मण हो जानेकी कथा है। इत्यादि उदाहरण पुराणोंमें बहुतेरे मिलते हैं।

यह तो हुई सिद्धान्तों और उदाहरणोंकी कथा। प्रकृते किमायातम् ? मैं, भगवान्दास, ब्राह्मण नहीं हूँ। मेरी जीविका न अध्यापनके पुरस्कारसे है, न याजनकी दक्षिणासे, न प्रतिग्रहसे। और भी, मुझमें वह विशेष शील, वह प्राकृतिक "स्वभाव-प्रभव" गुण, भी नहीं है, जिसके होनेसे मनुष्य इन जीविकाओंके योग्य कर्मोंको ठीक ठीक कर सके।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।

तपस्का लेश भी मुझमें नहीं। जिसके लिये मुझे बहुत खेद, बहुत लज्जा, रहती है। यों तो मनुने कहा है—

आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥
ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणं।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

अर्थात्, यदि ब्राह्मण माला आदि सौगन्धिक पदार्थों का धारण भी करे, थोड़ी आरामतलबी भी करे, पर दिन दिन भरपूर शक्तिसे स्वाध्यायका अध्ययन करे, तो उसको सिरसे पैरतक तपस्वी ही जानना। ब्राह्मणका तप ज्ञान, क्षत्रियका तप रक्षा, वैश्य का तप वार्ता, शूद्र का तप सेवा।

पर इतनेसे अपना आश्वासन कर लेना ठीक नहीं है। और वैसे स्वाध्याय और ज्ञानका भीतर लेश भी नहीं है। उत्तम पक्ष, सद्ब्राह्मणके लिये, वही जो भागवतमें कहा है।

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
तपसा भोगनायैव प्रेत्यानंतसुखाय च ॥

भीष्मपितामहने पुनः पुनः कहा है,

तपो नानशनात् परम्।
तपः परं नानशनान्नतं मे। इत्यादि।

योगभाष्यमें भी, "तपः = द्वंद्वसहनं, द्वंद्वं = जिघत्सापिपासे, शीतोष्णे, स्थानासने, काष्ठमौनाकारमौने च, व्रतानि चैव यथायोगं, कृच्छ्रचांद्रायणसांतपनादीनि।" गीतामें भी कई प्रकारके तपस् कहे हैं। सो उसमेंसे, सात्त्विकको तो कथा बहुत दूर, राजस तामस प्रकारके तपस्का भी गंधलेश मेरे पास नहीं। हां, गीतामें कई चालकी बात कही है। यह भी कहा है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

पर यह स्यात् सिद्धावस्थाकी बात है, साधनावस्थाकी नहीं। तथा, आध्यात्मिक, दार्शनिक, योग की बात है। "योगः कर्मसु कौशलं", "समत्वं योग उच्यते", इत्यादि। आधिदैविक शक्तियों, अलौकिक सिद्धियों के साधक योग की नहीं।

ऐसी अवस्थामें मैं अपनेको "ब्राह्मण" कैसे मान सकता हूँ। चार अक्षर अंग्रेजीके, चार अक्षर संस्कृतके, पढ़ लिये, पल्लवग्राहिणी विद्या सीखी, किसी एक भी शास्त्रका गहन गभीर ज्ञान नहीं सम्पादन किया, अपनेको "ब्राह्मण" कैसे मान सकता हूँ। और विद्या हीसे तो ब्राह्मण हो भी नहीं सकता। यह तो त्रैवर्णिक सामान्य-धर्म है। इसी कारण से विदेह जनक, तुलाधार वणिक्, धर्मव्याध, महाविद्वान होते हुए भी, ऋषियोंके, ब्राह्मण जन्म वालोंके, शिक्षक होते हुए भी, क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही अपनेको मानते रहे। क्योंकि जीविका उनकी तत्तदनुरूप रही।

मुझमें तो न ब्राह्मणोचित शील है, न वृत्त है। माथुर हितैषी-सम्पादकजीने सद्भावसे मुझको परामर्श दिया है।"......... गत सौर २८ माघके 'आज' के सम्पादकीय स्तम्भोंसे भी आपको 'ब्राह्मण' बतलाया गया है। आपका 'मौनं स्वीकृतलक्षणम्' भी आपको 'ब्राह्मणत्व' के लिये उत्सुक बतला रहा है। ...जिस वैश्यकुलने आपको जन्म दिया है, सम्प्रति उसीमें रहकर आप अबतककी तरह जितना लोक-कल्याण सम्पादन कर सकते हैं, उतना ब्राह्मणत्वाभिलाषी बन कर नहीं। विद्वानोंके लिये इतना संकेत ही पर्याप्त है।" इस परामर्शका मैं शिरसा धारण करता। पर इसमें एक भूल है, और एक कठिनाई है। कठिनाई यह है कि यद्यपि, लोक प्रसिद्धि से, "वैश्य"-कुलमें मेरा जन्म हुआ है, पर मेरा निजी वर्ण क्या है इसका मैं, अपने सिद्धान्तोंके अनुसार, निर्णय नहीं कर पाया हूँ। "कर्मणा वर्णः" मानता हूँ। "कर्मणा" में "जन्मना" अन्तर्गत है। "जन्मना" में "कर्मणा" उतना अंतर्गत नहीं। कर्मसे जन्म होता है। जन्मसे कर्म बलवान्। जन्म सहायक, कर्म निर्णायक।

कर्मणेंद्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥
सुरत्वं च मनुत्वं च राजेंद्रत्वं लभेन्नरः।
कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च ॥
(देवीभागवत, स्कं० ९, अ० २७)

यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते,
यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते।
(बृहदारण्यक)। इत्यादि।

माता पिताके गुण जन्मना संतानमें भी संतानित होंगे, यह एक स्वाभाविक बात है। प्रायः ऐसा होता भी है। पर इस उत्सर्गके, इस नियमके, अपवाद भी बहुत देख पड़ते हैं। वेदके रूपकमें ही अपवाद दिखा दिया है। एक ही ब्रह्मदेवके चार पुत्र, चार विभिन्न प्रकृतिके, एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य, एक शूद्र। चारो सगे भाई। ऐसा ही आज भी बहुधा देख पड़ता है। तो साधारणतः नियम "जन्मना" भले ही रहे। पश्चिमके मुसल्मानी ईसाई देशोंमें भी, तथा बौद्धचीन जापानमें भी, प्रायः यही देख पड़ता है। एक एक कुलमें एक एक प्रकारके रोजगारकी परम्परा चलती है। खेतिहरका लड़का भी खेतिहर, वकीलका लड़का भी वकील, डाक्टरका लड़का भी डाक्टर, वैद्यका वैद्य, ज्योतिषीका ज्योतिषी, बढ़ईका बढ़ई, लोहारका लोहार, सोनारका सोनार, महाजनका महाजन, दूकानदारका दूकानदार, पोथी पत्रा वालेका पोथीपत्रा वाला, सिपाही का सिपाही; इत्यादि। कारण स्पष्ट है। एक तो पैतृक गुणोंका संतानन ("ट्रान्समिशन") संतानमें प्रायः होता है। दूसरे उस कुलकी हवा वैसी होती है, और उस उस रोजगार की सामग्री वहाँ प्रस्तुत रहती है, इ[illegible] उसका सीखना सहज होता है। इ[illegible]

अधिकांश तो व्यवहारमें "जन्मना" के अनुसार कार्य हो रहा है, और होता रहेगा। पर मूल सिद्धांत, मूल हेतु, इसके भीतर भी "कर्मणा" ही है। निर्णायक वही है। जब यह देखनेमें आवे कि चार सगे भाइयोंमें—जैसा अक्सर देखनेमें आता ही है—एक पोथी पत्राका शौकीन है, एक तलवार बंदूकका, एक रुपये पैसेका, एक अस्वतंत्रबुद्धिसे दूसरोंके पीछे चलनेका, तब भी "जन्मना" ही पीटते रहना, बड़े धोखेकी बात है। इसी भूलसे, वर्णव्यवस्थाके मूल हेतुको भुला देनेसे, ही, आज भारतीय समाजकी यह दुर्दशा है। उक्त सम्पादक जी लिखते हैं कि अन्य देशोंमें "केवल कर्मके बल विद्वान् ब्राह्मण, वीर क्षत्रिय, व्यापार कुशल वैश्य और सेवारुचि शूद्र हो सकते हैं," पर यहां भारतवर्षमें नहीं। पर इसका कारण उन्होंने नहीं बताया है। क्या वहांके मनुष्य दूसरे प्रकारके हैं, दूसरे ब्रह्माके बनाये हैं ? ऐसा तो नहीं कह सकते। बात यह है कि उन देशोंने "जन्मना" के अर्थको छिपा दिया है, भारतने "कर्मणा" के अर्थको। दोनों मिलकर पूर्ण सिद्धांत होता है। फल क्या निकलता है ? यदि दोनों हों तो क्या कहना है, सोनामें सुगन्ध। पर यदि एक ही है, तो कर्म ही बलवान्।

अस्तु। इस विषयपर यहां विस्तार कहां तक किया जायगा। सूचना मात्र "कर्मणा वर्णः" के पोषणके लिये कर दी, तथा वर्ण-निर्णयके लिये कर्मका अर्थ जीविका कर्म ऊपर कहा। सो अपने विषयमें क्या निर्णय करूँ इसका पता मुझे नहीं चलता, आजकलकी सामाजिक अव्यवस्थाके, व्यवस्थाराहित्यके, कारण। ऊपर कहा कि अध्यापनके पुरस्कारसे, याजनकी दक्षिणासे, प्रतिग्रहसे, मेरी जीविका नहीं। शस्त्रास्त्रधारणसे, प्रजारक्षणसे, भी नहीं। न तो शस्त्रास्त्रधारणका शऊर ही मुझको है, न आजकलकी गवर्मेंटी नीतिमें मौका ही है। न कृषि, गोरक्षा, वाणिज्यसे ही मेरी जीविका है। कुछ वर्ष गवर्मेंटी नौकरी की थी, उतने दिनों स्यात् शूद्र कहलानेका अधिकारी था। यदि लोकसेवा भी कुछ अच्छी रीतिसे बनती तो भी स्यात् सत्शूद्र कहलानेका अधिकारी होता। सो सब कुछ नहीं है। अधिकांश जमींदारीसे जीविका है, सो आजकलकी जमींदारी न क्षत्रिय-वृत्ति ही है, न वैश्य वृत्ति ही। दोनोंके अधम अंशका संकर हो रही है। इसलिये अपनेको संकीर्ण वर्णका अधम प्राणी मुझे समझना चाहिये, यथा अपने अन्य बहुतेरे भाइयोंको। यह तो हुई कठिनाई। भूल उक्त सम्पादक जीकी यह है कि उनको यह भान हुआ कि मैं ब्राह्मण कहलानेका अभिलाषी हूँ। यह नितांत निर्मूल है। यदि मैं "ब्राह्मण" कहलाया भी, तो आजकलकी जो अवस्था है उसमें न इहलोकमें न परलोकमें ऐसा कहलानेसे कुछ भी लाभ है। प्रत्युत कई प्रकारकी हानि होगी। मुझे स्वप्नमें भी ब्राह्मण कहलानेकी आकांक्षा नहीं।

हां, "ब्राह्मणत्व" की अभिलाषा और "ब्राह्मण कहलाने" की अभिलाषामें बड़ा भेद है। सद् ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेकी अभिलाषा, सबके लिये यथा ऋषित्व, देवत्व, सूर्यादिसे सालोक्य, सायुज्यत्वादिकी इच्छा, अधमसे अधम जीवके लिये, उचित है, श्लाघनीय है। सभीको ऐसी अभिलाषा करनी ही चाहिये। अनेक जन्मोंमें सिद्ध होंगी। साधारण ब्राह्मणत्व, कहने कहलाने, वर्णन, के लिये तो जीविकासे होगा। उत्तम ब्राह्मणत्वकी काष्ठा न्यारी और बहुत ऊंची है।

येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा ।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
येन केन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः ।
यत्र क्वचन शायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अहेरिव गणाद् भीतः सम्मानान्मरणादिव ।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः ।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
विमुक्तं सर्वसंगेभ्यो मुनिमाकाशवत्स्थितम् ।
अस्वमेकचरं शांतं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मोऽहर्यर्थमेव च ।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
निर्मुक्तं बंधनैः सर्वैः तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अनुत्तरीयवसनमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यंतं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
द्वंद्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः ।
परेषामनवध्यायन् तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ।
गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
सर्वभूतात्मभूतो यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

(शांतिपर्व, अ० २५१ और २७५)

अर्थात् जिससे किसीको भय नहीं, जिसको किसीसे भय नहीं, जिसको सब प्रकृति और सब विकृतिका ज्ञान, जो सब भूतों सब जीवोंका आत्मस्वरूप, जिसको सब प्रकारके द्वंद्वोंके दुःखोंमें भी सुख, जो किसी का बुरा नहीं विचारता, सबका भला ही विचारता है, जिसको कोई स्वार्थ इच्छा नहीं, जिसका जीवन परार्थके लिये, धर्मके लिये, रात दिन पुण्यके लिये, जो आकाशवत् सब आसक्तियोंसे विमुक्त, जिसको मान-अपमानमें न हर्ष न क्रोध, जो नितांत ब्रह्मचारी, जिसके अकेले रहनेसे भी शून्य स्थान भी मानो अच्छे जीवोंसे भरा हुआ जान पड़े, जो सब प्राणियोंकी सब उच्चावच गति को जाने, जो सर्वज्ञ हो, और ऐसा होकर भी साधारण जीवजंतुवत् बिना कपड़ोंके रहे, बिना बिछौनेके कहीं भी सो रहे, अपनी बाँहका ही तकिया लगाये, जो कुछ भी खाकर शरीर धारण कर ले—ऐसेको देवता ब्राह्मण कहते हैं, जिसमें तपस्याकी पराकाष्ठा, विद्याकी पराकाष्ठा, परार्थ और परमार्थकी पराकाष्ठा हो

आजकल ऐसे वंदनीय ब्राह्मण कहाँ मिलते हैं ? सच्चे उत्तम रक्षक क्षत्रिय भी बहुत कम ही हैं। यदि इस भारतवर्षमें कुछ थोड़े से भी होते, तो आज इस देश, इस समाज, की ऐसी हीन दशा क्यों होती ? कहीं हिमालयमें होंगे, और वहींसे मानवसमाज-का शुभ अनुध्यानसे ही अनुग्रह करते होंगे। निश्चयेन। नहीं तो और भी डूब जाता। विख्यातोंमें, जाने हुओंमें, ऐसे ब्राह्मणत्वकी बहुत छोटी कला इने गिने जीवोंमें आ गयी, जैसे स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, लोक-मान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानंद, श्रीमती एनी बिसंट, श्री गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाज-पतराय, देशबंधु चित्तरंजनदास आदि, इतने हीसे भारतवर्षका कितना उपकार हुआ है। ऐसे ब्राह्मण्यकलाधारियोंको भी हृदयसे नमस्कार करता हूँ।

चुनार, सौर ५-१२-८५ } भगवान्दास

ा क्राड़पत्र

सं० १९८६ वै० ता० ११ जुलाई सन् १९२९

रही हैं वे किस प्रकार अपने को पतित बना रही हैं। पतित तो थी नहीं लेकिन जब उसे अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान आया तो लगा पण्डित-पत्र उसे पतित बनाने।

पत्र लिखता है कि 'अतः उन सुधारकों की पोपलीला को उन जातियों के समझ-दार मनुष्यों के सामने रखते हुए जनता का भ्रम दूर करने की इच्छा से ही आज हमने गोप या अहीर जाति का वास्तविक स्वरूप और सुधारकों के दिए हुए प्रमाणों की पोल खोल कर बतलाने के लिए लेखनी उठायी है।' वस्तुतः यह पोपलीला तो पण्डित-पत्र की है। सुधारकगण तो अपने जातिबन्धुओं को सचेत करते हैं। जाति के समझदार आदमी तो अवश्य समझ जायंगे कि बात किसकी ठीक है। इसका निर्णय तो जनता अब अच्छी तरह कर लेती है क्योंकि उसके पास उसकी खोई हुई तर्कबुद्धि पुनः प्राप्त होगयी है। जनता का भ्रम तो पत्र दूर नहीं करता प्रत्युत उसको और भी अन्धकार में रखना चाहता है। हमलोगों की पोल तो खोली नहीं जा सकती क्योंकि हम लोग पोलवाली बात रखते ही नहीं। हम लोगों का अन्तःकरण निर्मल एवं निष्कपट है। इससे तो भयभीत उनलोगों को होना चाहिए जो 'ढोल के अन्दर पोल' रखते हैं।

इतना लिख चुकने के बाद पाठकों से सावधानतापूर्वक लेख पढ़ने का आग्रह करते हुए उनसे पण्डित-पत्र ने उचित परामर्श मांगा है। किन्तु जनता पत्र की बातों पर ध्यान नहीं दे सकती। वह अब अन्ध-विश्वासी नहीं रह गयी है। वह भी अपने हानि-लाभ की बात को सोचने लग गयी है।

पण्डित-पत्र अहीर-वंशप्रदीप की समालोचना करता हुआ लिखता है कि 'पहिले 'अहीर वंश प्रदीप' को ही लीजिए, इस ग्रन्थ का आरम्भ १७ वें पृष्ठ से हुआ है, १७ वें पृष्ठ में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है, १८ वें पृष्ठ से प्रमाणों का संग्रह किया गया है अतः हम १८ वें पृष्ठ से समालोचना करते हैं।' यदि पण्डित-पत्र आरम्भ से पृष्ठ गिनने का कष्ट उठावे तो उसे विदित हो जाय कि पुस्तक की पृष्ठ संख्या ठीक है। सत्रहवें पृष्ठ में प्रमाण न देने का कारण यह है कि उसमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी है जिससे प्रमाण की आवश्यकता पड़े क्योंकि वे सब बातें अट्ठारहों पुराण में वर्णित हैं। यदि पण्डित-पत्र ने पुराणों का अवलोकन किया होता तो बात स्पष्ट हो जाती। खैर, यदि अब भी देखना चाहे तो देख सकता है, अथवा इतना कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता ? वह यदु-कुल-सर्वस्व को देख लेवै—ऐसी मेरी प्रार्थना है।

'आहुकवंशात् समुद्भूताः आभीरा इति प्रकीर्त्तिताः।'

अर्थात्—महाराज आहुक से जिनकी उत्पत्ति हुई है वे आभीर (अहीर) कहलाते हैं।

'आहुकजन्मवन्तश्च आभीराः क्षत्रियाऽभवन्।'

अर्थात्—आहुक राजा के वंश में जिन्होंने जन्म लिया, वे आभीर क्षत्रिय कहलाये।

उक्त दोनों प्रमाण के आभीर शब्द को पण्डित-पत्र ने देश-विशेष के अर्थ में लिया है जो प्रसङ्ग के सर्वथा विरुद्ध है। यहाँ पर देश-विशेष के अर्थ में आभीर शब्द नहीं व्यवहृत हुआ है। यहाँ पर स्पष्ट रुप से जाति वाचक अर्थ में व्यवहृत हुआ है। देश-विशेष लेने से अर्थ ही असंगत हो जाता है। आभीराः (आभीर लोग) समुद्भूताः (उत्पन्न हुए), कहाँ से उत्पन्न हुए, तो बतलाते हैं, कि आहुकवंशात् (आहुक वंश से)। इसी प्रकार दूसरे श्लोक का भी अर्थ समझिए—आभीराः (आभीर लोग) क्षत्रियाः (क्षत्रिय) अभ-वन् (हुए) आहुकजन्मवन्तः (आहुक राजा के वंश में जन्म लेने वाले) आ अभीरयति श्रेष्ठ्यभीरगत्यादि धातुतः सिद्धेऽर्थयुता ये वा आभीरास्ते द्विजातयः। अपने अर्थ की पुष्टि के लिए पण्डित-पत्र ने नाट्यशास्त्र, वात्स्यायन मुनि प्रणीत कामसूत्र और गर्ग संहिता के श्लोक दिए हैं जो प्रकरण के विरुद्ध है। पद्मपुराण में आभीर शब्द अहीर जाति के अर्थ में व्यवहृत हुआ है यथा—

आभीरकन्यां रुपाढ्यां शुभास्यां चारुलोचनाम् ।
आभीरसुभ्रुवां श्रेष्ठ राधा वृन्दावनेश्वरी ॥

(राधा कृष्ण गणोद्दीपिका)

मैंने अहीर-वंश-प्रदीप के पृष्ठ २६ में ब्रह्म-वैवर्त-पुराण ब्रह्म खण्ड अध्याय ५ का उल्लेख किया है।

कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने !
आविर्बभूव रुपेण वेशेनैव च तत्समः ॥४२॥

इसके विषय में पण्डित-पत्र कहता है कि 'इस प्रमाण से गोप जाति की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती है, वहाँ तो ब्रह्मा जी के द्वारा गोपबाल तथा गौओं के छिपाये जाने पर श्रीकृष्णचन्द्र के रोम कूपों से गोपगणों की उत्पत्ति हुई जो कि पहिले से गोचारण में उनके साथ थे।' किन्तु मैं कहता हूँ कि पण्डित-पत्र का यह कहना सरासर असत्य है। पण्डित पत्र ने अहीर जाति को भ्रम में डालने के लिए ऐसा लिखा है। इन सब शब्दों के लिखने के पूर्व पण्डित-पत्र को श्लोक का अध्याय, खण्ड और प्रसंग इत्यादि बातों से भिज्ञ होना चाहिए था। यदि केवल 'ब्रह्मखण्ड' ही पर ध्यान दे दिए होता तो समझ में यह बात आ जाती कि ब्रह्मखण्ड जहाँ कि गोलोक, आदिसृष्टि का वर्णन है वहाँ गोचारण-लीला कहाँ से आवेगी ? गोचारण लीला तो होगी श्रीकृष्णजन्मखण्ड में। पण्डित-पत्र से

"आज" व

काशी आषाढ़ शुक्ल ५ गुरुवार सौर २७ आषाढ़

गोपजाति किस वर्ण में है।

लेखक—यादवकुमार मन्नालाल 'अभिमन्यु'।

ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
ध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥
(शुक्ल यजुर्वेदसंहिता पञ्चमोऽध्यायः षट्त्रिंशी कण्डिका)

स्वज्योति! हम आपकी कृपा से न्यायमार्ग द्वारा धन लाभ करें। हे
पके प्रसाद से हम भी सब पदार्थ-विषयक ज्ञानलाभ करें। हम को
र निन्दनीय कुटिल पापमार्गसे दूर करो। हम आपकी स्तुति

होत.
श्री वि लय से एक ब्राह्मण-महा-सम्मेलन नामक पण्डित-पत्र प्रकाशित
मेरी ह हामहोपाध्याय पं० श्री लक्ष्मण शास्त्री द्राविड, सम्पादक पं०
सम्पादक था सहकारी सम्पादक पं० गङ्गाविष्णु मिश्र हैं। इस समय
और न व्य वर्ष की २७वीं संख्या है। इसमें अनर्गल प्रलापों द्वारा
निकाल ही र बनाया है। पण्डित-पत्र से किसी ने न तो सम्मति पूछी
प्रदान करना 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' के अनुसार एक फ़तवा
पण्डित ण्डित-पत्र के किए हुए आक्षेपों का समुचित उत्तर
मैं भी एक सुधार का न बाँध कर अत्यन्त संक्षेप में उत्तर लिखता हूँ।
कुनबा जोड़ा' इस र कुछ वर्षों से गोप, ग्वाल या अहीर आदि जातियों
एकत्रित कर के गोप वह दल 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने
उन प्रमाणों से न तो स्त्रों के कतिपय अप्रासङ्गिक या अधूरे प्रमाणों को
के साथ कोई सम्बन्ध क्षत्रिय सिद्ध करने की कुचेष्टा कर रहा है, परन्तु
नहीं हो रहा है किन्तु थी ह होती है और न उन प्रमाणों का अहीर जाति
समाज में सुधार-संशोधन दित होना चाहिए कि यह कार्य कुछ वर्षों से
ऐसा किया तो क्या अनुचि हो गये हैं। जिस प्रकार पण्डित-पत्र अपने
र प्रत्येक जाति चाहती है। यदि अहीरों ने

परिव है—

स जार वा न जायते।

अहीर जाति के लेखकों शः समुन्नतिम्॥

अक्षरशः चरितार्थ होता है। अही दिया गया है वह पण्डित जी पर
सम्मुख रख दिया, वह जिस वंशकी ने तो अपना इतिहास संसार के
उसने किया है और शास्त्र की अधूरी दावा करती है उसका विशद वर्णन
पत्र ने। शूद्र लिखते हुए भी यह बताने या है। यदि लिया है तो पण्डित-
जिसके अमुक २ पुत्र-पौत्र हुए उनकी सन्त प्रथम में कौन शूद्र उत्पन्न हुआ
शास्त्र के कतिपय अपूर्ण अथवा अप्रासङ्गि: ये शूद्र हैं। ऐसा तो न करके
पण्डित-पत्र से आग्रह है कि वह पुराणों में से य र पण्डित-पत्र ने शूद्र बनाया।
शूद्र इस समय में हुए, उनकी वंश परम्परा का यह इतिहास है, अमुक २
वंश-प्रदीप' एवं 'यदु-कुल-सर्वस्व' पढ़ा होगा है। जिन लोगों ने 'अहीर-
प्रमाणों से गोप-वंश को यदुवंश प्रमाणित किया ह शास्त्र के कैसे २ उत्तम
उससे कोई सम्बन्ध नहीं। के सम्पादकों के लिए तो

पत्र पुनः लिखता है कि 'यहाँ एक बात का
जिन अहीर आदि जातियों में क्षत्रिय बनने का भूत १ रखना उचित है कि
मर्यादा को बिगाड़ कर अपना हितसाधन नहीं कर रहे वे अपनी सनातन
रहे हैं।' अहीर जाति आज दिन क्षत्रिय नहीं बन रही है पने को पतित बना
यदि कोई पुनः कहे तो इसे यत्र-तत्र शूद्र क्यों लिखा गया न काल से ही थी।
प्रकार द्वेष वश पण्डित-पत्र ने शूद्र लिख दिया है उसी प्रद यह है कि जिस-
द्वेष-वश लिख दिया है। प्राचीन इतिहास लेखक ब्राह्मण था ने ईर्ष्या-वश वा
कीर्ति से डाह रखते थे। आगे चलकर मैं बतलाऊँगा कि इसजो अहीरों की
कितने कारण थे। अहीर जाति अपनी सनातन मर्यादा को बिग के कलह के
रही है क्योंकि कुछ संकुचित विचार रखने वाले महानुभावों द्वार किन्तु बना
नष्ट हो गयी थी, संस्कृति का नाश हो गया था और अहीर जातिन मर्यादा
भुला दी गयी थी। परन्तु जाति-हितैषी कतिपय उदारमना पण्डितोंस्वरूप से
इसकी वृद्धि हो रही है। यह बीसवीं शताब्दी है। इसे उन्नति का ों द्वारा
प्रत्येक जातियाँ सचेत हो अपना अपना धार्मिक सुधार कर रही हैं और इसमें
वा बहकावे में नहीं आ रही हैं क्योंकि इतने वर्षों से [illegible]
विचारणीय बात है कि जो जातियाँ अपने मूल-स्वरूप को पहचान कर तब यह
कर

कन्योवाच—

गोपकन्या त्वहं वीर ! विक्रेतुमिह गोरसम् ।
नवनीतमिदं शुद्धं दधि चेदं विमण्डकम् ॥
दध्ना चैवाथ तक्रेण दुग्धेनापि परन्तप !
अर्थी येनासि त्वं ब्रूहि प्रगृह्णीष्व यथेप्सितम् ॥
एवमुक्तस्तदा शक्रो गृहीत्वा तां करे दृढम् ।
अनयत्तां विशालाक्षीं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥
आनीताऽसि विशालाक्षि ! मा शुचो वरवर्णिनी ।
गोपकन्या च तं दृष्ट्वा गौरवर्णं महाद्युतिम् ॥
एवं चिन्तापराधीना यावत्सा गोपकन्यका ।
तावद्ब्रह्मा हरिं प्राह यज्ञार्थं सत्वरं वचः ॥
देवी चैषा महाभाग ! गायत्री नामतः प्रभो !
एवमुक्ते तदा विष्णुर्ब्रह्माणं प्रोक्तवानिदम् ॥
तदेतामुद्वहस्वाद्य मया दत्तां तव प्रभो !
गान्धर्वेण विवाहेन विकल्पं मा कृथाश्चिरम् ॥

सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि जब गोप लोग खोजते खोजते यज्ञशाला में आए तब उन्होंने देखा कि वह एक पुरुष के साथ बैठी है तब उसके माता पिता ने सब पूछा उस समय विष्णु ने उत्तर दिया—

भो भो गोप सदाचार ! न त्वं शोचितुमर्हसि ।
कन्यैषा ते महाभागा प्राप्ता देवं विरञ्चिनम् ॥
कर्मवन्तं सदाचारं भवन्तं धर्मवत्सलम् ।
मया ज्ञात्वा तथा कन्या दत्ता चैषा विरंचिने ॥
अनया तारिता दिव्या दिव्यालोका महोदयाः ।
युष्माकं च कुले चापि देवकार्यार्थं सिद्धये ॥
अवतारं करिष्येऽहं सा क्रीड़ा तु भविष्यति ।
यदा नन्दप्रभृतयो ह्यवतारं धरातले ॥

अब जनता ही निर्णय कर लेवे कि पण्डित-पत्र की बात कितनी झूठी है ।

इसके बाद पण्डित-पत्र में बहुत सा लिखा गया है जिसका सारांश यह है कि जब गोप जाति के लोग यदुवंशी क्षत्रिय हो जायंगे तब क्या यदुवंशी अहीर का विवाह अपने ही यदुवंशी में होगा । अतः यह जो आक्षेप किया गया है कि यादव लोग अपने गोत्र में विवाह करेंगे तो वे क्षत्रिय कैसे कहला सकते हैं ? यह प्रश्न बड़ा ही जटिल एवं महत्वपूर्ण है कि अपनी ही उपजाति में विवाह क्यों होता है ? क्या यह कहना ठीक है कि उपजाति और गोत्र एक ही वस्तु है ? अथवा क्या गोत्र और वंश एक ही हैं ?

वैदिक समय में गोत्र वंश के अर्थ में प्रयुक्त होता था । बालक जब गुरु के पास उपनीत होता था, विद्याध्ययन के लिए जाता था तब गुरु अथवा आचार्य उस बालक से नाम और गोत्र पूछता था । उस समय बालक अपने पिता, पितामह या पूर्वज का नाम गोत्र के स्थान में बताता था । छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ४ खण्ड ४ जिसका उल्लेख मैंने अहीर-वंश-प्रदीप के पृष्ठ ८७ में किया है वहाँ पर गुरु के पूछने पर कि तुम किस गोत्र के हो वह बतलाता है कि मैं जाबाला का पुत्र सत्यकाम हूँ । तब गुरु ने कहा कि माता के नाम से तुम्हारा जाबाल गोत्र है । यही सत्यकाम जाबाल कहलाया । गृह्यसूत्रों से यह बात विदित होती है कि जिस किसी को अपना गोत्र नहीं मालूम होता था वह अपने आचार्य का गोत्र ग्रहण कर लेता था । इसी प्रसङ्ग में कहा जाता है कि यज्ञोपवीत दूसरा जन्म है जिसमें आचार्य पिता व माता सावित्री है । यदि अपना गोत्र न मालूम हो तो आचार्य का गोत्र ग्रहण कर लेना उचित है । इस प्रकार जो पहले रज-वीर्य से गोत्र माना जाता था, उपनयन से केवल नाम मात्र के वंश का द्योतक रह गया । इस पर यह कहा जा सकता है कि जिसको अपने गोत्र का पता न होगा वही इस संस्कारवाले गोत्र को ग्रहण करेंगे । सभी तो इस गणना में नहीं आ सकते । बौद्ध धर्म के प्रचार के समय जात-पाँत की प्रथा लुप्त हो गयी थी । गोत्रों का पुनरुद्धार तो श्रीस्वामी शङ्कराचार्य जी ने किया है । रही बात विवाह की, तो हिन्दुओं का विवाह अंग्रेजों की तरह तो है नहीं यहाँ तो यह एक पवित्र एवं उत्तम संस्कार माना जाता है । हिन्दुओं की वैवाहिक प्रक्रिया भी अत्यन्त आदर्श स्वरूप है । एक उपजाति का सम्बन्ध दूसरी उपजाति से होने में बड़ी २ कठिनाइयाँ हैं । दूर मत जाइए, ब्राह्मणों में ही देखिए सरयूपारीण सरयूपारीण में और कान्यकुब्ज कान्यकुब्ज ही में विवाह करते हैं ।

बहुत सा लिखने के बाद फिर वही पुरानी तान छेड़ी गयी है कि नन्द आदि का गोप जाति से क्या सम्बन्ध है, कुछ भी समझ में नहीं आता । समझ में आवे कैसे ? किन्तु मैं समझाए देता हूँ । जिसके पूर्व पुरुषा यदुवंशी क्षत्रिय हैं तो उनकी सन्तान निस्सन्देह क्षत्रिय है । ये पुस्तकें अहीर जाति के उच्छृङ्खल नवयुवकों के मनोविनोद के लिए नहीं प्रकाशित हुई हैं । क्या ये पुस्तकें ड्रामा (नाटक) या नावेल (उपन्यास) हैं जिनसे मनोविनोद होगा ? जाति के बड़े २ पूजनीय ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध नेता तथा स्वजातीयगण हमारे साथ हैं । भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में निवास करने वाले यादवों की संख्या डेढ़ करोड़ है और ये लोग हमारी बातों से सहमत हैं । पत्र के लिखने का उद्देश्य मैं समझता हूँ किन्तु यह होना बहुत कठिन बात है ।

लिखा है कि 'इधर काशी के समझदार सनातन-धर्म-प्रेमी अहीर भाइयों ने उन ज्ञान-शून्य सुधारकों को मुँह तोड़ जवाब दिया है, जिससे घबड़ा कर सुधारकों ने इन्हें विज्ञापनों को निकाल कर बहुत कुछ कोसा है । इन सब बातों का उत्तर मैं पण्डित-पत्र को नहीं देना चाहता था क्योंकि ये सब हमारी जाति-सम्बन्धी बातें हैं । इससे पत्र से कोई मतलब नहीं है, किन्तु तो भी विवश होकर कहना ही पड़ता है कि जब

...पि वेदमधीत्यापि गीतमुख्यं न विन्दति ॥
यस्तु वेदमधीयानो शूद्रान्नमुपभुञ्जते ।
शूद्रो वेदफलं यान्ति शूद्रत्वं चाधिगच्छति ॥

फिर वही शब्द दुहराया गया है जो आरम्भ में और बीच में कई बार लिखा जा चुका है कि 'इधर कतिपय वर्षों से गोप, ग्वाल या अहीरजातियों के कुछ उच्छृंखल सुधारक नामधारी नवयुवकगण अहीरजातिमात्र को यदुवंशी क्षत्रिय बनने का प्रलोभन दे कर उन्हें इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः करते हुए उनके इहलोक तथा परलोक दोनों बिगाड़ रहे हैं।' इन सबका उत्तर पूर्व में दे चुके हैं, अतः पुनः कुछ लिखना मैं उचित नहीं समझता। मालूम पड़ता है कि घबड़ाहट में उन्हीं वाक्यों की पुनरावृत्ति कर दी गयी है। जाति-सभाओं के स्थापित हुए बीसों वर्ष व्यतीत होगए, कितनी महासभाएँ हो चुकीं और कितना अमेद्य संगठन हो चुका है—इन सबका पता पण्डित-पत्र को नहीं है जिससे ऐसी २ ऊटपटांग बातें लिखी गयी हैं।

लिखा है कि 'भारतवर्ष में जितनी जातियाँ प्रचलित हैं, वे सब ही सनातन कालसे चली आती हैं, कोई जाति बिगड़ कर नयी नहीं बन गयी है।' मुझे दुःख होता है कि पण्डित-पत्र ने न मालूम ऐसा क्यों लिख दिया। पुनः विवश हो मुझे कहना पड़ता है कि पण्डित-पत्र में इतिहास एवं पुराण आदि ग्रन्थ की दृष्टि से नहीं लिखा गया है। इतिहास इसके साक्षी हैं कि भिन्न २ समय पर भिन्न २ जातियाँ बनती गयीं। तब यह कहना अत्यन्त उपहासास्पद एवं असत्य है। मैं इतिहास से प्रमाण दे सकता हूँ कि कौन २ सी जातियाँ नवीन बनी हैं। यदि इनका उल्लेख करूँ तो मेरा लेख बहुत बढ़ जायगा किन्तु तो भी उदाहरण-स्वरूप दो एक प्रमाण लिखता हूँ—

(१) आभीरब्राह्मण—ये लोग प्रायः खानदेश में हैं। श्रीमान् पं० पाण्डोबा गोपाल जी ने अपने जाति-निबन्ध के पृष्ठ ७६ में ऐसा लिखा है कि—

'यांची उत्पत्ति अहीर लोकापासून आहे असे म्हणतात त्यांची वृत्ति अहीर लोकांत असते।'

अर्थात्—आभीर ब्राह्मणों की उत्पत्ति अहीर से है और इनकी यजमानवृत्ति भी अहीरों की है।

(२) सवालाखे ब्राह्मण—इनके विषय में जा० मे० वि० सार नामक पुस्तक के पृष्ठ ७८ में ऐसा लिखा है कि 'माधोगढ़ में राम नामक राजा था। उसने एक यज्ञ करना आरम्भ किया। वहाँ यथार्थ भोजनादि कार्य के लिए सवा लाख ब्राह्मणों की आवश्यकता हुई। तब सवा लाख ब्राह्मण न मिलने के कारण जो दूसरी दूसरी जाति के लोग यज्ञ दर्शनार्थ आये थे, उन्हें जनेऊ पहना कर ब्राह्मणों के साथ भोजन करा दिया, उससे इनका नाम सवालाखे पड़ा।

इनके अतिरिक्त अन्य और भी जातियाँ हैं जिनका उल्लेख करना व्यर्थ समझता हूँ।

पण्डित-पत्र में लिखा है कि 'शुक्ल यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में प्रायः सब जातियों के नामों का निर्देश किया गया है।' मैं शुक्ल यजुर्वेद संहिता के उवटमहीधर भाष्य को पढ़ गया किन्तु वहाँ पर सब जाति क्या, दो एक जाति का नाम तक नहीं है। इसमें जाति का प्रकरण है ही नहीं। इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं किन्तु किसी एक मन्त्र में भी जाति का नाम नहीं आया है। क्या पण्डित-पत्र बतलाने की कृपा करेगा कि उसने वेद के नाम पर सत्य लिखा है या असत्य?

समस्त अहीर जाति से प्रार्थना है कि वे ऐसी २ असत्य बातें कहनेवाले पण्डितों के चक्कर में न फँसे जो असली बातों को छिपाते हैं। अतः गोपबन्धुओ! अन्धकार में रखने वाले पण्डितों से सावधान रहो। तुम उन पण्डितों को आदरणीय, पूज्य एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखो जो तुम्हारा अभ्युदय चाहते हैं।

समाचार

श्रीयुत डाक्टर रघुनाथ राव विट्ठल राव खेडकर यादव एम० डी०, एफ० आर० सी० एस०, डी० पी० एच०, एल० एम०, एल० आर० सी० पी० एण्ड एस०, एल० आर० एफ० पी० एण्ड एस०, एम० आर० शुद्ध आई०, एफ० आर० एस० टी० एम० एण्ड एच०, वेदान्त भूषण ढाकामेडिकल कालेज में प्रोफेसर नियुक्त हो गए हैं। आगामी वर्ष के मई मास में आप का विचार विलायत जाने का है।

केपटाउन समझौते पर सही होने से पहले दक्षिण अफ्रिका की सरकार प्रवासी भारत वासियों की शिक्षा के लिए प्रत्येक वर्ष छब्बीस-सत्ताइस हजार पौण्ड खर्च करती थी। इस वर्ष बजट में इसके लिए ५६ हजार पौण्ड रक्खा गया है। दरबान में शास्त्री कालेज की मूल इमारत करीब करीब तैयार है, कालेज का काम शीघ्र ही प्रारम्भ किया जायगा। सर कूर्म रेड्डी ने मेरिट वर्ग में भाषण करते हुए ये बातें बतायी।

शाही भौगोलिक सोसाइटी की दावत में राजकुमार जार्ज अतिथि थे। उस अवसर पर भाषण करते हुए सर फ्रांसिस यंगहस बैंड ने यह आशा प्रकट की कि किसी दिन मिस्टर जार्ज हिन्दुस्तान के बड़े लाट होंगे।

—माधव विष्णु पराड़कर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी। ३५१६-८६

ఓ స్వరాజ్యమునుగోరు మహాశయులారా!

సీ. ఆలయంబుల కేగ ననుమతిన్వరు మాకు
స్వారాజ్య మెటుల కేహురు మీకు
అంగళ్లపై కేగ ననుమతిన్వరు మాకు
స్వారాజ్యమెటుల కేహురుమీకు
అంటవగదని మమ్ము గెంటుచుందురుగాద
స్వారాజ్య మెటుల కేహురు మీకు
ముట్టదగదనిమమ్ము దిట్టుచుందురుగాద
స్వారాజ్య మెటుల కేహురు మీకు.
గీ. బ్రాహ్మలము మమ్ము చేకొల్లు భ్రాంతిచేత
కడపద్రోచిన గలుగునే ఘనస్వరాజ్య
మకట యొకనైన చెలిమిడి ప్రకటితముగ
నికమన్యమే స్వారాజ్యకై పరాక.
సీ. స్వారాజ్యమునకునై పోరాడుమాన్యులు
మమ్ము ద్రోసిరదేటి మాన్యులయ్యా
దేశసేవోత్సాహ వ్యాపకర్తలు మమ్ము
ద్రోసిరైన రదేటి వ్యాపసమితి
మాతృసేవామృతం బాల్యములోననుచు స
త్యాగ్రహులే ద్రోహరీ ధాత్రిమమ్ము
పాపంబుకొక్కయూ పలలాలన నిషేధ
వ్యాపక ద్రోహిసురాజులు మమ్ము
గీ. ధరనస్పృశ్యంబు కాంచియుండయయూ పేపము
సర్వనర్మంబు లెవలోన సంలేసమున
సమరసంబుగజూచెదు సరసములు
యరయమమమజేయు నిపరేటి యర్హరయ్యా?
సీ. అంటినచో నన్ని వంటినవిడనూని
అంటనీయరదేటి కొంపెలినము
ముట్టినచోట శ్లేగ్గట్టిన లెరగాని
ముట్టనీయరదేటి మార్గ సయ్యా
తాకినచో పెద్దనసు బొబ్బబుట్టునా
చేసులనీయరదేటి బుసబుసనము
స్పృశియించినంతనే చెనసూరి జన్మరా
మానీవ బడనీరు మాయావనము.
గీ. భారతాంబకు సుతుల మైబరసు కదా
జన్మవిధముక్క రూపాచు జరుసకరన
దేకదేవుని భజయించి సెసనుకరన
యారమనోసరు పాదుమో యార్యులారా.
సీ. క్షేత్రంబునం బనులు జెర్పికట్టెనుకేళ
దాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
ధాన్యమల్దం పెడి చరునందుననమ్ము
దాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
బుట్టలో ధాన్యము ల్పట్టివాసెదు వేళ
దాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
సంచులుమంచము ల్సవరించునప్పుడు
తాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
గీ. కాయగూరలుదెచ్చిన గదుపవచ్చు
పప్పు బియ్యంబు దెచ్చిన దుప్పవచ్చు
పాడతేసేటి పాత్రలు సోకవచ్చు
మమ్ముముట్టరకేలకో మాన్యులారా?
సీ. ఘూమశకటంబుపై ప్రేమ బోవుదువేళ
దాకవచ్చును గాని దప్పు లేదు
కారుప్రయాణంబు గడిగికేకెను వేళ
దాకవచ్చుమగాని దప్పు లేదు
జట్కాలపైసేసు ఝూసందుమమ్మును
దాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
తేల్లపాములుగరుచు తీవ్రసరదశయందు
దాకవచ్చునుగాని దప్పు లేదు
గీ. ఓషధీసేవనం బాత్మ మెప్పవచ్చు
బాల చేతులుదెచ్చిన బట్టవచ్చు
నగ్ని దహించువేళల నంటవచ్చు
పిదప మము ముట్టమందురే పిచ్చిమాట.
అరుంధతీయ సమాజము, నంద్యా.

गोप जाति किस वर्णमें है

लेखक—यादवकुमार मन्नालाल 'अभिमन्यु'।

> सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
> अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
>
> —अथर्ववेद।

अर्थात्—हे मनुष्यो! तुम्हारे मन और हृदयको मैं ईर्ष्या-द्वेषादि अवगुणोंसे रहित करता हूँ। इस हेतु इस पवित्र हृदय-कमलके ऊपर उपरोक्त दुर्गुणोंका बीज वपन मत करो। जिस प्रकार गौ अपने वत्सोंसे प्रेम करती है उसी प्रकार तुम सब परस्पर प्रेम करो।

मैंने ता० ११ जुलाई १९२९ ई० को 'ब्राह्मण-महा-सम्मेलन' के उस अङ्कका खण्डन किया था जिसमें पण्डित-पत्रने अशास्त्रीय प्रमाणों द्वारा गोपोंको शूद्र बतानेकी कुचेष्टा की थी। मैंने शास्त्रोंके प्रमाणोंसे अतीव विनम्र शब्दोंमें प्रमाणित कर दिया था कि गोप जाति क्षत्रिय वर्णमें है। अपने लेखका खण्डन देखकर पण्डित-पत्रने पुनः 'गोपाङ्क' निकाला है। जिन महानुभावोंने 'गोपाङ्क' का अवलोकन किया होगा वे जानते होंगे कि लेखकको समुचित उत्तर प्रदान न कर, उसको अपशब्दादिसे विभूषित किया गया है। कहीं पर मेरे लिए 'म्लेच्छ' शब्दका उपयोग किया गया है और कहीं 'लीला समाप्त' करायी गयी है। यह बात प्रायः देखी जाती है कि मनुष्य जब उत्तर नहीं दे सकता तब अपशब्दोंका प्रयोग करने लगता है। कदाचित् पण्डित पत्रने उसी मार्गका अनुसरण किया है।

पण्डित-पत्रके पढ़नेसे विदित होता है कि शास्त्री-परीक्षाका निबन्ध लिखा गया है; क्योंकि लेखके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैंने गताङ्कमें जो प्रश्न किया था उसका कोई उल्लेख तक नहीं है। क्रोड़-पत्रमें लिखा गया था कि "पण्डित-पत्रसे न तो सम्मति मांगी गयी और न व्यवस्था-पत्र मांगा गया किन्तु 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' के अनुसार एक फतवा निकाल ही डाला" इसपर रुष्ट होकर पण्डित-पत्रने पञ्च-मूर्तियों के नाम एवं जगत्पालसिंहकी नोटिस प्रकाशित कर दी है। इससे नोटिस देने वाला, पानेवाला तथा उत्तर देनेवाला भिन्न प्रमाणित होता है। उदाहरणस्वरूप, किसीने किसीको नोटिस दी तो उसका उत्तर उसे देना चाहिए यदि वह असमर्थ है तो एक वकीलको पैरवी करनेके लिये उसे रख लेना चाहिए। जब उपरोक्त व्यक्तिने उनको नोटिस दी तो आप पञ्चमूर्तियोंको शूद्रकी व्यवस्था दे देते। पण्डित-पत्र एवं उन पञ्चमूर्तियोंको समस्त जातिको शूद्र कहनेका अधिकार नहीं प्राप्त है। रही दूसरी बात, कि मेरी पुस्तकोंका खण्डन करनेका प्रयास पण्डित-पत्रने क्यों उठाया? मैंने उससे सम्मति नहीं मांगी थी। इससे यह प्रकट होता है कि पण्डित-पत्रको मेरी पुस्तकोंका खण्डन करना अभीष्ट था अतः उसने 'टट्टी की ओट में शिकार' किया है।

पण्डित-पत्र 'फ़तवा' शब्द पर क्रुद्ध है। यदि मैंने 'फ़तवा' ही लिख दिया तो क्या अनुचित किया। व्यवस्था तो तब कही जाती जब शास्त्रोंकी बातोंको पण्डित-पत्र मानता। 'फ़तवा' शब्दके कहनेसे ही यदि कोई म्लेच्छ हो जाय तो न मालूम कितने म्लेच्छ शब्दोंका प्रयोग पण्डित-पत्रमें किया जाता है। मनुष्य 'सिफारिश', 'रेल', 'स्टेशन' तथा 'कुली' प्रभृति शब्दोंका प्रयोग अहर्निश करता है तो बतलाइए, क्या ये देवभाषाके शब्द हैं? इस प्रकार एक छोटीसी बातके लिये कॉलमका कॉलम रंग देना बुद्धिमानी नहीं है।

पत्र लिखता है कि 'सच पूछा जाय तो पेटमें बात है, अंग्रेज़ोंके विचारोंको अपनाना और बाहर बनना सनातनी......।' मेरा कहना है कि जहाँ धार्मिक कृत्य करनेका अवसर आवेगा वहाँपर शास्त्रोंके अनुसार कार्य करना ही पड़ेगा क्योंकि धर्मशास्त्रोंमें उसके लिये विधान है। इसके अतिरिक्त जहाँ कानून-कायदेकी बात आवेगी वहाँ तो अंग्रेजोंके कानून मानने ही पड़ेंगे। यदि न्यायालयमें जाकर हम न्यायाधीशसे कहें कि हम तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानते, हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें जैसा विधान है वैसा करेंगे तो क्या हम बच जायंगे? कदापि नहीं, क्योंकि इस समय राज्य अंग्रेजोंका है। हमारे यहाँ तो आर्य-वंशजोंको म्लेच्छोंके राज्यमें न रहनेके लिये आदेश है। क्या पण्डित-पत्रके सम्पादकगण म्लेच्छ-राज्यके बाहर हैं?

पण्डित-पत्रका कहना है कि 'जिस प्राचीन मकानकी छतपर स्वयं विद्यमान हैं उसकी एक एक ईंट उखाड़ करके हम फेंकते जांय तो क्या हमारी उन्नति होगी।' सो इस प्रकार तो उन्नति होती नहीं। कोई प्राचीन विशाल भवन है, यदि उसकी दो-चार ईंटे निकल गयी हैं तो दूसरी नवीन ईंटें लगवा कर उसे बनवा देना चाहिए। किन्तु जो गृह एकदम जर्जरित हो गया हो, उसके पतनकी आशङ्का हो, आधा ढह गया हो अथवा बकावस्थामें हो तो उसे गिरा कर पुनः नींवसे निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार वर्तमान वर्णव्यवस्थामें भी सुधार होना चाहिए।

मैंने क्रोड़पत्रमें कई प्रश्न किये थे। उनके विषयमें पण्डित-पत्रने कुछ नहीं लिखा। अतः जबतक उन प्रश्नोंके उत्तर न दिये जायंगे तबतक मैं उनका उल्लेख करता रहूँगा। मैंने लिखा था कि अहीर लोग जिस भू-प्रसिद्ध वंशकी सन्तति होनेका दावा करते हैं, उसकी वंशावली भी 'अहीर-वंश-प्रदीप' एवं 'यदु-कुल-सर्वस्व' में वर्णित है। किन्तु पण्डित-पत्रने यह नहीं बतलाया कि किस शूद्रसे अहीरोंकी वंशावली चली। पण्डित-पत्र बतलावे कि शूद्रोंकी वंश-परम्परा इस प्रकार है। इसी वंशमें अहीर हैं अतः ये शूद्र हैं। जबतक वंशावली न दिखलायी जायगी तबतक हम माननेके लिए तैयार नहीं कि अहीर शूद्र हैं। चाहे पञ्च-मूर्ति अपनेको शूद्र मान लेवें क्योंकि उसे शूद्र कहानेमें एक बातका लाभ है जिसका उल्लेख नन्दजीका वर्णन लिखते समय करूँगा। ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्डमें लिखा है—

> दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा भयाद्वापि भविष्यति।
> इन्द्रसृष्टा जातयस्तु पाखण्डा इति कीर्तिताः॥
> वैश्वामित्रा गर्गजाश्च अभिरन्त्या इतीरिताः।
> काश्यपाः ब्राह्मणाः सर्वे मानजातिविभेदकाः॥

इसकी टीकामें पण्डित हरिकृष्णजी शास्त्री लिखते हैं—

कलियुगमें ब्राह्मण लोग द्रव्यलोभसे वा मुलाहिजेसे वा भयके लिये अपने यजमानों और राजाओंमें धर्मका विपर्यय करेंगे। वैश्य-क्षत्रियोंको शूद्र और शूद्रोंको वैश्य क्षत्रिय वर्णमें स्थापन करेंगे।

पण्डित-पत्रने अपने पत्रमें लिखा था कि 'शुक्ल यजुर्वेद संहिताके ३१वें अध्यायमें प्रायः सब जातियोंका निर्देश किया गया है।' इसका उत्तर मैंने माँगा कि उक्त अध्यायमें २२ मन्त्र हैं, किसी एक मन्त्रमें भी जातियोंका नाम नहीं है। अतः पण्डित-पत्र बतलावे कि उसने वेदके नाम पर सत्य लिखा है वा असत्य। तो इसका उत्तर देते नहीं केवल लिख देते हैं कि 'अपने पत्रमें वेद पढ़नेका कष्ट न उठाइए।' क्या यही उत्तर है? यदि कोई किसी बातकी जिज्ञासा करे तो क्या यही उत्तर प्रदान करना चाहिए। प्रथम इस [illegible] [illegible] दीजिये कि वेद पढ़नेका अधिकार आर्योंको है अथवा अनार्योंको। वेदाध्ययन करनेका हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। जब म्लेच्छोंकी सन्तान वेद पढ़ें, वेदोंपर भाष्य लिखें तब तो कोई बोलने वाला नहीं और यदि यदुकी सन्तान वेद पढ़ लेती है तो पण्डित-पत्र यह उत्तर दे कि आपको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं। पण्डित-पत्रके पाण्डित्यकी सराहना मैं तब करता जब विल्सन साहब, बेनिस साहब तथा मैक्समूलर प्रभृति वेद न पढ़ते। न मालूम कितने शास्त्रियोंने म्लेच्छोंको वेद पढ़ाया उनके विरुद्ध कुछ लिखनेका साहस न हुआ और यदि किसी यादवने सत्य बात पूछ ली तो पण्डित पत्रके अनुसार उसे अधिकार नहीं! 'हिन्दूपञ्च' ता० १ अगस्तकी २ री संख्यामें लिखता है—'मैसूर राज्यकी व्यवस्थापिका सभाने अछूतोंको वेद पढ़नेका खुले आम अधिकार दे दिया। बा-कायदा कानून बना कर अधिकार दे डाला! कहाँ तो अछूतोंके मन्दिरोंमें घुसनेसे भी धर्म डूब जाता था और कहाँ अब वे कानूनन वेद पढ़ेंगे! यही नहीं, जो कोई उन्हें वेद पढ़नेसे रोकेगा, उसे कैद और जुर्मानेकी सजा भी बख्शी जायेगी।' बताइए मैसूर राज्यने तो यहाँ तक कर डाला। इसपर आप क्या फर्माते हैं।

आपसके कलहका कारण वैदिक कालमें वशिष्ठ और विश्वामित्रका, उसके अनन्तर चन्द्र और गुरुका बतलाया था। कदाचित् पण्डित-पत्रने उसे अवलोकन करनेका कष्ट नहीं उठाया। बौद्ध कालमें अहीर आदि क्षत्रियोंका स्थान ब्राह्मणोंसे उच्च था जिससे परस्पर द्वेष उत्पन्न हुआ था। जैन-कल्प-सूत्रमें तो यहाँ तक लिखा है कि अर्हंत आदि कभी भी ब्राह्मण जातिमें जन्म ग्रहण नहीं कर सकते। कहनेका सारांश यह कि ब्राह्मणोंका स्थान क्षत्रियोंने ग्रहण कर लिया था। राष्ट्र, धर्म एवं समाज तीनोंकी बागडोर हमारे पूर्वजों एवं अन्यान्य क्षत्रियोंके हाथमें थी। टी० डब्ल्यू० ह्रिस डेविड्सने अपनी अंग्रेजी पुस्तक बौद्धकालीन भारतवर्ष-इतिहासके पृष्ठ ५७ में लिखा है—

'Brahmins are also frequently mentioned as engaged in agriculture and as hiring themselves out as cowherds and even goat-herds. These are all instances from the Jatakas.'

बौद्ध राज्यके विनाशके अवसरपर पुनः ब्राह्मणोंको शीर्षस्थान प्राप्त हुआ। उस समय जिन जातियोंने इनके विरुद्ध कुछ किया था उन्हें शूद्र लिख दिया।

पण्डित-पत्र जैसे सङ्कुचित विचार रखनेवाले मनुष्यों एवं भाटोंने अहीर आदि जातियोंके लिए कुछ नहीं किया। यदि कुछ किया होता तो सम्प्रति भारतवर्षकी अन्यान्य जातियाँ उनके नामपर न रोतीं। वे जब अपने अतीतका स्मरण करती हैं तब वर्तमान दशाको देखकर 'आठ आठ आँसू' बहाती हैं। ब्राह्मणोंका कर्तव्य था कि जिस जाति वा समाजमें बुराई आवे तो उसे रोके। लोगोंमें शिक्षाका प्रचार करे। किन्तु भारतवर्षमें शिक्षामें अन्य जातियाँ कितनी अधोवस्थामें हैं उनके लिये सम्मेलनने क्या किया? यदि भारतवर्षका उपकार किया है तो हिन्दू धर्मरक्षक पूज्य महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीने। यह उन्हींकी कृपा-दृष्टि भारतवर्षकी जातियोंपर थी कि सनातनधर्म महासभाने कुछ कार्य कर दिखाया। पण्डित-पत्र जैसे विचार रखनेवालोंकी संकीर्ण नीतिसे कितनी देशकी जातियाँ दुर्बल हो गयीं।

वर्णोंका समाश्रय कहाँ लेना चाहिए इसके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

> तस्माच्छास्त्रंप्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

अर्थात्—कर्तव्य और अकर्तव्य—इन दोनों प्रकारके कर्मोंका निर्णय करनेके लिये तुम शास्त्रोंकी शरण लो।

शास्त्रावलोकनके अनन्तर क्या किया जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं—

युक्ति-तर्क-समाश्रित्य कर्तव्यो हि विनिर्णयः।

अर्थात्—केवल शास्त्रने आज्ञा दे दी है—यही जानकर तुम किसी कर्मको करने न लग जाओ, वरन् परमात्माने जो तुम्हें विवेक नामकी शक्ति दी है, उसके निकषपर प्रमाण एवं तर्कोंका आश्रय लेकर कर्तव्य-कर्मको कस देखो। यदि सम्मुखस्थ कर्म तर्क तथा प्रमाणोंकी परीक्षामें भी सर्वोच्च निकले तो कर्तव्य समझ कर उसका पालन करो।

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिश्चयः।

अर्थात्—किन्तु सावधान ! केवल शास्त्र पर ही निर्भर रहकर तुम अनर्थ करनेपर प्रस्तुत न होना।

मैंने जो लिखा था कि 'यह बीसवीं शताब्दी है। इसे उन्नतिका युग कहते हैं। इसमें प्रत्येक जातियाँ सचेत हो अपना अपना धार्मिक सुधार कर रही हैं।' इसपर पंडित-पत्रका कहना है कि यह अवनतिका युग है। जो सर्वांश असत्य है। मैंने लिखा था वह मेरा ही कहना नहीं था प्रत्युत देश-कालसे अभिज्ञ एतद्देशीय विद्वानों एवं पाश्चात्यदेशीय मनुष्योंका कथन है। इन लोगोंने जो कुछ कहा है वह सत्य है। केवल देशकालानभिज्ञ कुछ लोगोंके न माननेसे क्या होता है ? संसारके मानव अपनी उन्नतिकी परिस्थिति देखते हैं। इस बातका अनुभव उन्हीं लोगोंको हो सकता है। पण्डित-पत्र तो आँखें मूँदे हुए अपने पथकी ओर जायगा चाहे गिरे भी तो क्या !

पूर्वमें पण्डित-पत्रने लिखा था कि 'गाः पालयन्ति सततं' इत्यादि श्लोक गर्गसंहिता में नहीं है इसलिये विदित होता है कि यह श्लोक अपनी ओरसे नया बनाकर लोगोंमें भ्रम फैलाया गया है, इसके लिये लेखक महाशयको प्रायश्चित्त करना चाहिए।' इसका उत्तर मैंने दिया कि यह श्लोक गर्ग-संहितामें है और अपने कथनकी पुष्टिके लिए पृष्ठ संख्या आदि लिख दिया। यह कहना सर्वांश असत्य है कि गर्गसंहितामें यह श्लोक नहीं है। ऐसा लिखना श्रीमद्गर्गाचार्यको असत्यवादी बताना है। उस श्लोकको मैं खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बंबईकी प्रकाशित गर्गसंहितामें दिखा सकता हूँ—

गाः पालयन्ति सततं रजसो गवां च
गङ्गां स्पृशन्ति च जपन्ति गवां सुनाम्नाम्।
प्रेक्षन्त्यहर्निशमलं सुमुखं गवां च
जातिः परा न विदिता भुवि गोपजातेः॥

मैंने अहीर-वंश-प्रदीपमें 'अहीरोंकी उत्पत्ति' शीर्षक देकर ब्रह्मवैवर्तपुराणके इस श्लोकको भी लिखा है—

कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने !
आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः॥

इसके विषयमें पूर्वमें पण्डित-पत्रने लिखा था कि 'इस प्रमाणसे गोप जातिकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती, यहाँ तो ब्रह्मा जीके द्वारा गोपबाल तथा गौओंके छिपाये जानेपर श्रीकृष्णचन्द्रके रोम-कूपोंसे गोप-गणोंकी उत्पत्ति हुई जो कि पहलेसे गोचा-रणमें उनके साथ थे।' इसपर जब मैंने पण्डित पत्रकी असत्यता प्रमाणित कर दी कि यह 'ब्रह्मखण्ड' की बात है न कि 'श्री-कृष्ण जन्मखण्ड' की, और अपने कथनकी पुष्टिके लिए वहांके कई श्लोक सम्मुख रख दिये। तब पण्डित-पत्रने लिखा कि 'हमने जो अर्थ किया था वह एकमात्र श्लोकका भाव लेकर किया था। क्योंकि उस श्लोकका अर्थ हमें विरोधी न होनेके कारण हमें वहाँका प्रकरण देखनेकी आवश्यकता न थी।' यदि कोई भी मनुष्य इस श्लोकको पढ़ेगा वह कदापि पण्डित-पत्रके किये हुए अर्थको न मानेगा, क्योंकि श्लोक कुछ और एवं टीकाका भाव कुछ भिन्न हो यह बात हो ... नहीं। यहाँपर पण्डित-पत्रको अपनी भूल स्वीकार कर लेनी चाहिए। यदि पत्र तर्क बुद्धिका उपयोग इस स्थलपर किये होता तो उसे अर्थ स्पष्ट हो जाता।

पुनः लिखता है कि 'क्षत्रियत्वकी सिद्धि-में आप लोगोंने इस प्रमाणको जो उद्धृत किया वह व्यर्थ ही हुआ यह तो निर्विवाद बात है न ?' यहाँपर भी तर्क बुद्धिका आश्रय न लेनेके कारण पण्डित-पत्रने असत्य कहा है। मैंने क्षत्रियत्वकी सिद्धिमें इस प्रमाणको नहीं उद्धृत किया है किन्तु अहीरोंकी उत्पत्ति दिखलानेके लिये। क्षत्रियत्वकी सिद्धि मैंने उस पुस्तकमें आगे चल कर किया है। यह श्लोक 'अहीर-वंश-प्रदीप' के २६ वें पृष्ठमें है। यह ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक ही बार नहीं आया है, किन्तु अनेक स्थलोंपर लिखा है—

प्रकृति खण्ड—

(१) अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने !
आसन्नसंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः॥
(२) बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः।
श्रीकृष्णस्य लोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः॥

यद्यपि पण्डित-पत्रका अक्षरशः खण्डन क्रोड़पत्रमें किया जा चुका है तथापि उसे सन्तुष्टि नहीं है। सन्तुष्टि हो कहाँसे ? वहाँ तो एक बात लेकर बैठे हैं कि हम जो लिखेंगे या कहेंगे वह सत्य होगा। भला बतलाइये तो सही, यह कभी हो सकता है। पत्रका कथन है कि अहीरोंमें एक गोत्र सम्बन्ध कैसे हुआ ? अहीरोंका गोत्र जानने-के लिये भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भ्रमण करना पड़ेगा तब विदित होगा कि विवाह सम्बन्ध एक गोत्रमें होता है अथवा नहीं।

आजकलके ब्राह्मणोंके कथनानुसार अहीरोंका गोत्र कश्यप है। यदि कश्यप कुलका गोत्र हो तब तो इसमें विवाह करनेसे शूद्रत्वकी प्राप्ति हो, किन्तु यह गुरु गोत्र है। निर्णयसिन्धु आदि में लिखा है कि क्षत्रियों एवं वैश्योंका गुरु गोत्र होता है। एक ही वंशमें कई पीढ़ियोंके बाद परस्पर विवाह करनेसे कोई हानि नहीं, जैसा कि जनक-वंश तथा रघुवंशमें हुआ था। पूर्वकालमें यदुवंश, कौरववंश, जरा-सन्ध वंश, वृष्णिवंश, अन्धकवंश, उग्रसेन वंश, चेदिवंश तथा भोजवंश आदिमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध था। और ये सब चन्द्रवंशकी शाखाएँ हैं अतः क्या पण्डित-पत्रके अनुसार ये शूद्र हैं ? नहीं, ये लोग शूद्र नहीं हुए कारण इसका ऊपर वर्णन कर आये हैं। अतः अहीर लोग भी कई पीढ़ियाँ बचाकर परस्पर विवाह करते हैं।

पण्डितपत्रमें लिखा है कि 'क्षत्रिय बनने-को निकले हुए अहीर सुधारक गणका कहना है कि निश्चय ही हम लोग क्षत्रिय हैं। क्यों-कि गोपकन्या गायत्री ब्रह्माकी पत्नी होनेके कारण ब्राह्मण थी।' किसी सुधारकने आज तक यह नहीं कहा है कि गायत्री ब्राह्मण कन्या थी। क्योंकि पद्मपुराणने स्पष्ट शब्दोंमें गोपकन्या लिखा है। पण्डित-पत्रने जनताको भ्रममें डालनेके लिए ऐसी असत्य बात लिखी है। हम लोग पद्मपुराणमें वर्णित गायत्री-चरित्रको विश्वसनीय मानते हैं क्योंकि उस-में गायत्रीका वर्णन अत्यन्त सुचारु रूपसे किया गया है। पण्डित-पत्र तो पद्मपुराण मानता ही नहीं। पत्रमें लिखा है कि 'पद्मपु-राणीय गायत्री चरित्रमें कितना अंश छूट गया है।' अपनी स्वार्थ-सिद्धिकी बात पुराण में न मिले तो लिख दें कि उसमेंका अंश छूट गया है अतः अमान्य है ! पण्डित-पत्रको पद्मपुराणमें कथित गायत्री चरित्रका स्वीकार करना पड़ेगा।

यदि पत्र कहे कि स्कन्दपुराणीय वर्णन क्यों न माना जाय तो उसका उत्तर यह है कि किसीने उस श्लोकको पीछेसे बना कर उसमें मिला दिया है। पत्रमें लिखा है कि 'गायत्रीको गौके मुखमें प्रवेश करा कर गौके गुदाङ्गसे बाहर इन्द्रने निकाला अतः यह ब्राह्मण हो गयी।' ब्राह्मण बनानेकी क्या ही अच्छी युक्ति निकाली ? पत्रका इस श्लोकपर दृढ़ विश्वास है क्योंकि दोनों अङ्कोंमें उसने इसका उल्लेख किया है। अतः पत्रसे आग्रह पूर्वक कहना है कि किसी शूद्रको उपरोक्त रीतिसे ब्राह्मण बना देवे। यदि पण्डित-पत्र अपने वाक्यको कार्य रूपमें परिणत कर दे तो मैं मान लूंगा कि यथार्थमें वह इस बात-को मानता है। मनुष्योंको theoritical नहीं बल्कि practical होना चाहिए। दूसरोंको कहना और स्वयं तदनुरूप आचरण न करना यह कहाँका न्याय है ? इसी प्रकारके मनुष्योंके लिए ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है—

'परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।'

पण्डित-पत्र लिखता है कि 'गायत्रीको लेकर अहीर क्षत्रिय बनते हैं।' कहीं भी सुधारकोंने गायत्रीको लेकर क्षत्रिय बननेकी चेष्टा नहीं की है। गायत्रीका वर्णन 'अहीर-वंशप्रदीप' एवं 'यदु-कुल-सर्वस्व' में इसलिए किया गया है कि ये गोप-वंश-सम्भूता हैं यदि कोई प्रसिद्ध व्यक्ति किसी कुलमें उत्पन्न होता है तो उसके द्वारा सम्पूर्ण वंशकी ख्याति होती है। इसके अतिरिक्त वह वंश भी अपना गौरव समझता है। उसी वंश-गौरवके विचा-रसे मैंने 'अहीर-वंश-प्रदीप' में गायत्रीका वर्णन किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि गायत्रीके कारण हम लोग क्षत्रिय हैं। अतः पण्डित-पत्रका यह आक्षेप पूर्णरीतिसे असत्य है।

मैंने अपने क्रोड़पत्रमें लिखा था कि शूद्र बनाते हुए भी पत्रने अपने भोजनको नहीं छोड़ा है। पण्डित-पत्रमें लिखा है कि 'यह जाति शूद्रोंमें श्रेष्ठ है इसलिये इसके यहाँ ब्राह्मण भोजन कर सकते हैं।' किन्तु उसे कदाचित् यह विदित नहीं कि प्राचीन ग्रन्थ इस विषयमें क्या कहते हैं ? देखिए, शूद्रका अन्न खानेवाला शूद्र होता है; लीजिए इस विषयमें प्रमाण—

(१) भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृता शुनि॥
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत्॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रसमुद्भवः॥
शूद्रान्नं योदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः।
स भवेच्छूकरो ग्राम्यो मृतः श्वा चाभिजायते॥
(२) अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गोपाङ्गेन तत्वतः।
शूद्रात्प्रतिग्रहग्राही ब्राह्मणो जायते खरः॥
खरो द्वादश जन्मानि षष्ठि जन्मानि शूकरः।
श्वानः सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत्॥
(३) शूद्रान्न-रस-पुष्टाङ्गो अधीयानोऽपि नित्यशः।
जुह्वन्नापि जपन्वापि गतिमूर्ध्वां न विन्दति॥
यस्तु वेदमधीयानो शूद्रान्नमुपभुञ्जते।
शूद्रो वेदफलं यान्ति शूद्रत्वं चाधिगच्छति॥

उपरोक्त प्रमाणोंके विषयमें पण्डित-पत्र ने कुछ नहीं लिखा है। यदि वह शास्त्र मानता है तो कह देवे कि शास्त्रके प्रमाणके अनुसार शूद्रोंका अन्न भक्षण करना छोड़ देंगे। अपरं च—

(४) शूद्रान्नं याजकान्नं च शूद्रश्राद्धान्नमेव च।
अभक्ष्यान्नं च विप्रर्षे यदन्नं वृषलीपतेः॥
ब्रह्मन्वार्धुषिकान्नं च गणकान्नमभक्ष्यकम्।
अग्रदानि द्विजान्नं च चिकित्साकारकस्य च॥
इत्य विप्रा हरौ तैलमग्राह्यं चाप्यभक्ष्यकम्।
(५) शूद्रान्न—भोजी विप्रश्च विपहीनो यथोरगः।
दासदासी च शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः।
शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥
शूद्राणां प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः।
असिजीवी मसीजीवी विषहीनो यथोरगः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण हैं जो समय समय पर दिये जा सकते हैं।

पण्डित-पत्रने गताङ्कमें लिखा था कि 'भारतवर्षमें जितनी जातियाँ प्रचलित हैं, वे सब ही सनातन कालसे चली आती हैं, कोई जाति बिगड़कर नयी नहीं बन गयी है।' इसका उत्तर देते हुए मैंने उदाहरण स्वरूप आभीर ब्राह्मण तथा सवालाखे ब्राह्मणका उल्लेख किया था। उसका उत्तर पत्र देता नहीं कि पण्डितजीने जो लिखा है सो सत्य है या नहीं। किन्तु 'अहीरोंके क्षत्रियत्वमें सुधारकोंके कथनका संक्षिप्त विवरण और उसका उत्तर' शीर्षक लेखके नम्बर ३में लिखा है 'आभीर नामके ब्राह्मण लोग पाये जाते हैं ..।यहाँ पर पण्डित-पत्रने स्वयं अपनी ओरसे लिखा है क्योंकि किसी भी सुधारकका यह कहना नहीं है कि आभीर नामके ब्राह्मणों द्वारा हम लोगोंका क्षत्रियत्व है। पत्रने सवालाखे ब्राह्मणोंके विषयमें कुछ कहनेका कष्ट न उठाया। सवालाखे ब्राह्मणोंके विषयमें अधिक जाननेकी उत्कट अभिलाषा हो तो पण्डित सन्त प्रसाद शर्माकी लिखी हुई पुस्तक 'सरयूपारीण संहिता' पढ़ें। इसके अतिरिक्त आभीर ब्राह्मणोंके विषयमें भी अपनी राय न प्रकट कर एक उच्च कुल भूषण विद्वानको उकसानेकी चेष्टा की है।

पुराणोंमें जो हमारी जातिकी प्रशंसा है वह प्रकट करती है कि गोप जाति शूद्र नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

सन्ति भूरीणि रूपाणि मम पूर्णानि षड्गुणैः।
भवेयुस्तानि तुल्यानि न मया गोपरूपिणा॥
(ब्रह्माण्ड पुराण)

अर्थात्—मेरे षडैश्वर्यसे परिपूर्ण बहुत बहुत रूप विद्यमान हैं। परन्तु वे मेरे गोपरूपकी तुलना नहीं कर सकते।

ब्रह्माजी भी गोपकुलको सर्वोत्तम वंश मानते हैं और कहते हैं—

तद्भूरि भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥
(श्रीमद्भागवत)

श्रीवृहद्वामने च भृग्वादीन् प्रति श्री ब्रह्मवाक्यम्—

षष्टिवर्ष सहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये॥
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः॥

अर्थात्—श्री वृहद्वामन पुराणमें भृगु आदि के प्रति श्री ब्रह्मवाक्य—

नन्दके व्रजस्थित गोपियोंकी चरण-रेणु प्राप्तिके लिए पूर्व-कालमें मैंने साठहजार वर्ष तक तपस्या की थी, तथापि (अभाग्य वश) उनके चरणोंकी धूलिको भी मैं प्राप्त नहीं कर सका।

भृग्वादिवाक्यम्—

वैष्णवानां पादरजो गृह्यते त्वद्विधैरपि।
सन्ति ते बहवो लोके वैष्णवा नारदादयः॥
तेषां विहाय गोपीनां पादरेणुस्त्वयाऽपि यत्।
गृह्यते संशयो मेऽत्र को हेतुस्तद्वद प्रभो!

अर्थात्—भृग्वादिवाक्य—

आप ऐसे व्यक्तिको यदि चरणरेणु ग्रहण करना हो तो नारदादि बहुतसे वैसे हरिभक्त तो लोकमें वर्तमान हैं। उनकी पाद-धूलिको छोड़कर आप गोपियोंकी चरणरेणुको ग्रहण करनेको अभिलाषी हैं। इस विषयमें हमें संशय होता है। हे प्रभो! इसका कारण बताइये!

श्री ब्रह्मवाक्यम्—

न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः पुत्राः श्रेष्ठाः श्रियोऽपि ताः।
नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित्॥

अर्थात्—ब्रह्माजीका वाक्य—

हे पुत्र! व्रजसुन्दरियोंको साधारण ललनाएँ मत समझो कारण कि वे महालक्ष्मी जीसे भी श्रेष्ठ हैं। शिव, अनन्त, लक्ष्मी और हम (ब्रह्मादि) कभी भी उनके समान नहीं हो सकते।

इनके अतिरिक्त अन्यान्य श्लोक और हैं जिनको यदि लिखा जाय तो एक पुस्तक तैयार हो जाय। दो-तीन प्रमाण दिखलानेका आशय यह है कि जब गोपोंकी इतनी प्रशंसा है तो वे शूद्र कदापि नहीं हो सकते। गोप किस वर्णमें हैं यद्यपि इसका उत्तर क्रोड़-पत्रमें दिया जा चुका है तथापि पुनः मैं प्रमाणों द्वारा प्रमाणित करूँगा।

पण्डित पत्रमें लिखा है 'पाँचवाँ और छठा कारण भी प्रायः एक रूप ही है' अर्थात् अंग्रेजोंके वाक्योंको प्रमाण मानना और अपने पूर्वज महर्षियोंके वचनोंको अप्रमाण और प्रक्षिप्त बताना-यह दोनों बात परस्पर सम्बद्ध ही है। तब ईसाई बनकर अपना वेश प्रच्छन्न न रखते हुए भाषण करनेसे आप क्यों हटते हैं...इत्यादि।' अंग्रेजोंके वाक्योंका प्रमाण मैं ही नहीं मानता किन्तु सभी लोग मानते हैं। पण्डित-पत्र भी उनके प्रमाणोंको मानता है। उन्हींके प्रमाण ही इतने विश्वसनीय हैं कि पत्र महारानी विक्टोरियाकी घोषणाको मानता है और उसीके अनुसार वह गवर्नर आदिको लिखता है। हाँ, जब गवर्नमेण्टके यहाँ पत्र लिखना पढ़ना और उसकी सेवामें डेप्युटेशन ले जाना छोड़ देवे तब हम भी समझ जायं कि वस्तुतः पत्र अंग्रेजोंके प्रमाणको नहीं मानता। हमारे ऋषि-महर्षियोंने जो प्रमाण हमारे लिये लिखा है उसे हम लोग स्वीकार करते हैं। पुराणोंमें द्वेषभावसे प्रेरित होकर कतिपय महाशयोंने स्व-रचित श्लोक मिला दिये हैं। अतः वे श्लोक कभी भी मान्य नहीं हो सकते।

एक अत्यन्त विचित्र बात तो यह है कि प्रथम पण्डित-पत्रने नन्द महाराजको क्षत्रिय माना था और गोपोंको उनसे भिन्न, किन्तु क्रोड़पत्र छप जानेके अनन्तर उसकी मति बदल गयी। जिसका परिणाम यह हुआ कि नन्द महाराजको क्षत्रियत्व-पदसे च्युत करा वैश्यत्व प्रदान किया गया। पूर्वमें पत्रने क्यों उन्हें क्षत्रिय लिखा था इसका उत्तर देते हुए लिखते हैं कि 'सुधारकोंके दिये हुए प्रमाणोंके अनुसार मान लिया था।' देखना तो है कि सुधारकोंकी कितनी बातें पण्डित-पत्रको मान्य होती हैं। आगे चल कर लिखा गया है कि 'कई लोगकी विशेष उत्सुकताके कारण अब हम इस विषयका भी विचार किये बिना नहीं रह सकते।' किन्तु आगे लिखा है कि 'इसलिए उसके आधारपर कोई विचार नहीं किया जा सकता।' दो परस्पर असम्बद्ध बातें एक साथ लिखी जायँ-यह तो अत्यन्त हास्यास्पद है। अस्तु, मुझे उनके शब्दोंपर विशेष ध्यान न देकर उनका खण्डन कर देना पर्याप्त है। अब महाराज नन्द कौन थे? किसकी सन्तान थे? इसका वर्णन 'यदुकुलसर्वस्व' से उद्धृत करता हूँ—

महाराज नन्द देवमीढ़ राजाके पौत्र थे—

तेषाम्मध्ये महाबाहुर्देवमीढो महीपतिः।
राजाऽभीन्नीतितत्त्वज्ञो यज्वा दानी प्रतापवान्॥

अर्थात्—उन (चारों पुत्रों) में राजनीतिके ज्ञाता, यज्ञ करने वाला, दानी एवं प्रतापी पुत्र देवमीढ़ राजा हुए।

तस्य भार्या द्वयञ्चासीत्क्षत्रिया वैश्यजापरा।
उभे ते रूपसम्पन्ने पातिव्रत्यपरायणे॥

अर्थात्—उनकी दो स्त्रियाँ थीं—एक क्षत्रिय-कन्या और दूसरी वैश्य-कन्या। दोनों लावण्यवती तथा पतिव्रता थीं।

क्षत्रियायां ततः पुत्रश्शूरनामाभ्यजायत।
धर्मात्मनश्च शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत्॥

अर्थात्—क्षत्रिया रानीसे शूर उत्पन्न हुए। इन्हें मारिषा नामकी एक पत्नी थी।

प्रतिमाऽथा सतीनां या गार्हस्थ्याङ्गकोविदा।
तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान्॥

अर्थात्—उस गार्हस्थ्याङ्ग पण्डिता सतीको उसीकी छायाके अनुरूप दश पुत्र हुए।

वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम्।
[illegible]

अर्थात्—उन दश पुत्रोंके नाम ये हैं—(१) वसुदेव (२) देवभाग (३) देवश्रवा (४) आनक (५) सृञ्जय (६) श्यामक (७) कङ्क (८) समीक (९) वत्सक और (१०) वृक।

देवमीढस्य या भार्या वैश्या गुणवती स्मृता।
चन्द्रगुप्तस्य सा पुत्री महावननिवासिनः॥

अर्थात्—देवमीढ़की जो रानी गुणवती नाम-वैश्य कन्या थी वह महावनके रहनेवाले चन्द्रगुप्त नाम वैश्य-श्रेष्ठकी पुत्री थी।

सा पुत्रा पुत्रहीनेन राज्ञे प्रेम्णा समर्पिता।
आवयोस्सन्ततिश्चास्या इत्युच्चार्य मिथो मुदा॥

अर्थात्—पुत्रहीन पिताने राजा देवमीढ़से उस कन्याका विवाह कर दिया। और सङ्कल्पमें यह कहलवा लिया, कि इस कन्यासे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह आपके तथा मेरे दोनोंके कुलकी कीर्ति रखने वाली एवं धनादिकी मालिक होगी।

पतिव्रता सा तनयाञ्जनयामास भूपतेः।
पर्जन्याऽर्जन्यराजन्यान्वेदवेदाङ्ग — पारगान्॥

अर्थात्—उस पतिव्रता रानी गुणवतीने राजासे तीन पुत्र पर्जन्य, अर्जन्य एवं राजन्य उत्पन्न किये जो वेदवेदाङ्गमें पारङ्गत थे॥

न तेषु शङ्का कर्तव्या वैश्यकन्योद्भवात्क्वचित्।
क्षत्रियत्वो न ता रूपा ज्ञेया वीर्यप्रधानता॥

अर्थात्—यहाँ वैश्य कन्यामें उत्पन्न होनेसे क्षत्रियत्व कम हो गया ऐसी शङ्का न करनी चाहिए क्योंकि वीर्य प्रधान माना गया है।

यथा क्षत्रसुताजेषु यमदग्न्यादिषु स्मृता।
वरा ब्राह्मणता पितृवीर्य-धर्म-तपोबलात्॥

अर्थात्—जिस प्रकार क्षत्रिय-कन्याओंमें उत्पन्न यमदग्नि, परशुराम आदि ब्राह्मणोंके कुलमें ब्राह्मणत्व सिद्ध है। यहाँ पिताके वीर्य, धर्म और तपोबल ही मुख्य कारण हैं।

वरीयान्स्त्रपर्जन्यः पर्जन्यस्तेषु कीर्तितः।
सर्वविद्याकलाभिज्ञः प्रजानां च हिते रतः॥

अर्थात्—उन तीन पुत्रोंमें बड़े पर्जन्य थे। ये सर्व-विद्या-कुशल एवं प्रजाके हितकारक थे।

यः सुरर्षेः निदेशेन लक्ष्मीभर्तुरुपासनाम्।
गिरौ नन्दीश्वरे चक्रे श्रेष्ठसन्ततिकाङ्क्षया॥

अर्थात्—देवर्षि नारदजीकी आज्ञासे श्रेष्ठ पुत्रकी आकांक्षाके लिये नन्दीश्वर पर्वत पर श्री लक्ष्मीनारायणको उपासना पर्जन्य ने की।

वागऽभून्नी ततो व्योम्नि प्रादुरासीत्प्रियङ्करी।
'तपसाऽनेन धन्यास्मा[illegible]नः पञ्च ते सुताः॥

अर्थात्—तब आकाशवाणी हुई कि 'इस तपस्याके करनेके कारण तुम्हें पाँच पुत्र होंगे।

प्रसूता मध्यमस्तेषां नन्दनामा भविष्यति।
नन्दनस्तस्य विजयी भविता व्रजनन्दनः॥

अर्थात्—उनमें तीसरे नन्द नामके पुत्र होंगे। जिनके पुत्र सदा विजययुत व्रज-वृद्धि-कारक होंगे।

सुरासुर शिरोरत्न नीराजित पदाम्बुजः।
सर्व-सद्गुण-माहात्म्यो भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकः॥'

अर्थात्—जिनके चरणोंपर सुर तथा असुर अपने मुकुटोंसे वन्दना करेंगे। और जो सर्व-सद्गुण-माहात्म्य-प्रकाशक, सम्पूर्ण भोग एवं मोक्षके दाता होंगे।

इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा चक्रे नन्दीश्वरे गृहम्।
पित्रा भ्रात्राऽपि शूरेण व्रजराजो निरूपितः॥

अर्थात्—ऐसी आकाशवाणी सुनकर प्रसन्न चित्त हो पर्जन्यने नन्दीश्वरपर ही अपना वासस्थान बना लिया। तब पिता और भ्राताओंने उसी स्थानपर व्रजका राजा बना दिया॥

गुप्तवा यत्र प्रेक्ष्य केशिनमागतम्।
परिवारैः समं सर्वैर्यो भीतो बृहद्वनम्॥

अर्थात्—थोड़े कालमें केशी दानवके उत्पात करनेके कारण दुःखित हो कुटुम्ब-सहित पर्जन्य महावनमें आकर निवास करने लगे॥

पर्ज्जन्यो जनयामास पञ्चपुत्रान्सुते शुभे।
उपनन्दाभिनन्दौ च नन्दं सनन्द-नन्दनौ॥

अर्थात्—राजा पर्जन्यके पाँच पुत्र हुए। जिनके नाम ये हैं—उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सनन्द और नन्दन।

सुनन्दा नन्दिनी चेति नामभिः परिकीर्तिताः॥

अर्थात्—सुनन्दा और नन्दिनी—ये दो पर्जन्य की कन्याएँ थीं।

नन्दात्कनिष्ठा तनया सुनन्दा कनकच्छविः।
कलमापवसना दत्ता महानीलाय भूभुजे॥

अर्थात्—नन्दजी से छोटी सुनन्दा नाम की कन्या थी। जो कनक-वर्ण और किस-मिसी रंग-वस्त्र वाली थी। इसका विवाह महानील राजासे हुआ था।

कनिष्ठा नन्दिनी तस्यास्तनया गौर विग्रहा।
कलमापवसना दत्ता सुनीलाय च भूभुजे॥

अर्थात्—सबसे छोटी नन्दिनी नामकी कन्या थी। जो गौर वर्ण वाली तथा किस-मिसी रंग वस्त्र वाली थी। इसका विवाह सुनील नामके राजासे हुआ था।

पुनः पर्जन्यतनयाः पञ्च प्राणा इवोत्तमाः।
पौत्राः श्रीदेवमीढस्य व्रजगोपसुखावहाः॥

अर्थात्—ये पर्जन्य के प्राण प्रिय पाँच पुत्र श्री देवमीढ़के पौत्र एवं व्रजके गोपोंके सुखदायक हुए।

श्रीनन्दो मध्यमपुत्रः प्रकृतीनां सुसम्मतः।
भावि श्रीकृष्णस्य पितृत्वाद्व्रजराज्यपतिः कृतः॥

अर्थात्—उनमें मँझले पुत्र नन्दजी प्रजा-की सम्मतिसे तथा 'भगवान् श्रीकृष्णके ये पिता होंगे' ऐसी आकाशवाणीके निश्चयपर व्रजके राजा बना दिये गये।

उपरोक्त प्रमाण द्वारा सिद्ध है कि नन्द जी क्षत्रिय थे। पण्डित श्री दुर्गादत्त जी शर्मा सामवेदी लिखते हैं—

अथ व्रजराजस्यैवास्य क्षत्रियत्वं द्रढयति धर्मशास्त्रे क्षत्रियस्यैव राज्याधिकारात् किम्बहुना देवमीढराजस्य शूरपर्जन्यादयः पुत्रा जाता। शूरस्य वसुदेवादयः, पर्ज्जन्यस्य नन्दादयश्च सुता बभूवुः। अत एव श्रीनन्दस्य वसुदेवो भ्राता प्रसिद्धः।

श्री भागवते दशमस्कन्धे—

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्।
दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इत्यादिना तनश्च
श्री व्रजेन्द्र नन्दोऽपि यादवप्रवर इति सिद्धम्।

पण्डित श्री बलदेव प्रसादजी मिश्रने भी नन्दमहाराजको क्षत्रिय माना है।

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलम्।
अहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम्॥
यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः।
स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति॥

इसकी टीका करते हुए उन्होंने लिखा है—

एवं सिद्धां लीलानित्यतां प्रमाणयन्नैः द्रढयति। अहो अलमिति।

हस्तिनापुरविचरणमेतत् द्वारिकापरिचरणस्येनोक्तं, तद्वासिनां द्वारिकापरिकरत्वादिति बोध्यम्।

यदोः कुलं-वंशः

'कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि च'— इति मेदिनी।

यत्र नन्दो वसुदेवश्च बभूव।

इसके आगे दूसरा श्लोक है—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवर-परिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिर चरवृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन्कामदेवम्॥

इसपर वे लिखते हैं—

देवक्यां—श्रीयशोदायां देवकपुत्र्यां जन्मेति वादः प्रसिद्धः यस्य सः।

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च—
इति आदिपुराणवचनात्।

[illegible]—श्रीनन्दादयः श्रीवसुदेवादयश्च ते परिषदः—परिकराः यस्य सः, स्वैः स्वकुलजैः श्रीदामादिभिः सात्यक्यादिभिश्च, अधर्मं निरस्यन्।...

भारत तात्पर्य निर्णय नामक ग्रन्थ भी इसी बातकी पुष्टि करता है जैसा कि गोपाङ्कमें लिखा है। इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध है कि नन्दजी क्षत्रिय थे। अतः पण्डित-पत्रके सम्पूर्ण श्लोकोंका खण्डन यथेष्ट रीतिसे हो चुका। और भी देखिए—

यदुवंशमें महाराज वृष्णि हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्णके लिए कहा जाता है कि वे वृष्णि कुलमें उत्पन्न हुए थे—

'यामेव रजनी कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुले प्रभुः।'

गीतामें भी अर्जुनने उन्हें 'वार्ष्णेय' कह कर सम्बोधित किया है। निम्नलिखित प्रमाणसे प्रकट होता है कि महाराज नन्दने भी इसी पवित्र कुलमें जन्म ग्रहण किया था—

जज्ञिरे वृष्णिकुलेषु महात्मानो नदोंजसः।
नन्दाद्या गोपवेशाढ्याः श्रीदामाद्याश्च बालकाः॥
(श्रीब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्ड राधाहृदय ६ अध्याय)

अर्थात्—महा तेजस्वी महात्मा नन्द तथा श्री दामादि गोपगणोंने वृष्णि-कुरु-कुल में जन्म लिया था।

इतने प्रमाणोंके रहते हुए भी क्या कोई कह सकता है कि वे इस वंशमें नहीं उत्पन्न हुए थे? आधुनिक अन्य जातिके विद्वानोंका भी मेरे पास प्रमाण है जो कहते हैं कि नन्द-महाराज क्षत्रिय कुलके थे—

प्रोफेसर श्रीयुत रामदास गौड़ जी एम० ए० लिखते हैं कि नन्दादि गोप ययाति-वंशीय शापित क्षत्रिय कुलके थे। गोपाल कहलाते थे।

पण्डित श्री नरोत्तमजी व्यास भी लिखते हैं कि देवमीढ़के दो पुत्र थे जिनमें एक क्षत्रियाणीसे उत्पन्न था और दूसरा वैश्यानीसे। क्षत्रियाणीके पुत्रका नाम था 'शूरसेन' और वैश्यानीके पुत्रका 'पर्जन्य'।

पण्डित श्री चन्द्रशेखर जी पाठकने भी ऐसा ही माना है।

इंग्रेजी प्रमाण है—

He lived with Nanda who was also a king and Kshatriya by caste.

अर्थात्—श्रीकृष्णजी महाराज नन्दजीके यहाँ रहते थे जो कि स्वयं राजा तथा क्षत्रिय जातिके थे।

नन्दमहोत्सव नामक ग्रन्थमें लिखा है—

देवमीढ़ राजा हुए, तिनके दो रानी भईं। एक क्षत्रियाणी और दूसरी वैश्यानी। क्षत्रियाणीके भये शूरसेन और वैश्यानीके भये पर्जन्य। तिनके पाँच पुत्र हुए—(१) उपनन्द (२) महानन्द (३) राजानन्द (४) सनन्द (५) नन्दन।

अतः यह पूर्ण रूपसे प्रमाणित हो गया कि महाराज नन्द यदु-कुल-भूषण थे। इस लिए पण्डित-पत्रके श्लोक

अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च। आदि

ठीक नहीं हैं, क्योंकि यहाँपर गोरक्षक होनेके कारण वैश्य कहा है। इसके लिए शास्त्रोंमें लिखा है—

कृषिवाणिज्यगोरक्ष्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्।

किन्तु प्राचीन कालमें सभी लोग गोरक्षण करते थे। इस विषयकी अनेक कथाएँ ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदोंमें पायी जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि—

गावः श्रेष्ठा पशूनां हि द्विजानां परमं धनम्।

अर्थात्—गाय पशुओंमें श्रेष्ठ है अतएव द्विजोंका परम धन है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणसे वैश्यत्वका कुछ प्रमाण निकाल कर पण्डित-पत्रने दिखलाया है जिसका खण्डन मैं कर चुका हूँ। यदि पत्रको अभी भी सन्तोष न हो तो जहाँसे उसने श्लोक दिखलाया है उसीके कई पंक्ति नीचे यह भी लिखा है जिसे पत्रको स्वीकार कर लेना चाहिए—

गवां लक्षं देहि च हरिणानां द्विलक्षकम्।
चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम्।
पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः॥
एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय।
परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप!

मैं उपरोक्त इस प्रमाणको कदापि नहीं मान्य समझ सकता। मैं गौको अत्यन्त पूज्य एवं श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूँ फिर उसी गौको बलि देना और उसके मांसको भक्षण करना अतीव निन्द्य है। यदि म्लेच्छ करें तो उन लोगोंकी बात ही भिन्न है, किन्तु सनातन-धर्मी जनताको ऐसा कदापि न करना चाहिए।

पण्डित-पत्र तो अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए श्रीमध्वाचार्यकी वंशावलीको भी मान्य नहीं समझता। 'ब्राह्मण-सम्मेलन' में लिखा है कि 'नन्दजी क्षत्रियसे न्यून तथा वैश्यसे उच्च हैं।' न मालूम कौन ऐसा वर्ण है जो क्षत्रिय से न्यून एवं वैश्यसे उच्च है! यदि कोई वर्ण हो तो पण्डित-पत्र बतलावे। अद्यावधि मैंने चार ही वर्णोंका नाम सुना था। अब पत्रके अनुसार मालूम हुआ कि एक एक बीच का त्रिशंकुवर्ण भी होता है। वैश्य कन्यासे उत्पन्न होनेके कारण पर्जन्य वैश्य नहीं हो गये। हमें उस कालकी परिस्थितिका ध्यान रखना चाहिए। उस समय भारतवर्षकी अवस्था क्या थी? किस प्रकार विवाहादि धार्मिक कार्य होते थे।

प्राचीन समयमें अनुलोम विवाहकी प्रथा थी। इसके विषयमें अनेकों दृष्टान्त उपलब्ध हैं। दीर्घतमा और राजा स्वनयकी कन्या, श्यावाश्व तथा रथवीतिकी बालिका एवं कर्दम ऋषि और मनुकी कन्या देवहूतिका विवाह भी इसी प्रकारका हुआ था। उससे जो सन्तान उत्पन्न होती थी वह पिताके वर्ण की होती थी। मनु महाराज कहते हैं—

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥

अर्थात्—शूद्र शूद्राके साथ, वैश्य वैश्य व शूद्राके साथ, क्षत्रिय क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्राके साथ एवं ब्राह्मण ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्राके साथ विवाह कर लेवे।

मनु महाराज पुनः लिखते हैं—

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः॥

अर्थात्—द्विजातियोंके समान जाति वाले अर्थात्—१—ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें, २—क्षत्रियसे क्षत्रियामें ३—वैश्यसे वैश्यामें ४—५—ब्राह्मणसे क्षत्रिया तथा वैश्यामें ६—क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न हुए ये छ प्रकारके पुत्र द्विज संज्ञक हैं। अतएव इन्हें सम्पूर्ण कर्म द्विजधर्मानुकूल करनेका अधिकार है।

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षञ्च मनुष्येष्विह जन्मतः॥

अर्थात्—तप प्रभाव द्वारा (विश्वामित्रवत्) और बीज प्रभावसे (ऋष्य शृंगादिवत्) प्रत्येक युगोंमें मनुष्य उत्कर्षता तथा अपकर्षताको प्राप्त होते रहते हैं।

इससे भी बीजकी प्रधानता होती है। पुनः देखिए—

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते॥

अर्थात्—जिस बीजके प्रभावसे तिर्यक् योनि-अर्थात् हरिणादिसे उत्पन्न हुए शृंगी आदि ऋषि पूजित हुए और वेदोंके ज्ञानादिसे स्तुतिके योग्य हुए सो बीर्यका प्रभाव श्रेष्ठ है।

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः।
यथा बीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा॥
अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति॥

अर्थात्—साठी, धान, मूंग, तिल, उड़द, यव, लहशुन तथा ईख आदि जिस प्रकार क्षेत्रमें वपन किये जाते हैं उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं। वपन तो किया जाय कुछ और उत्पन्न हो उससे भिन्न-यह तो होता नहीं। अतः जो बीज बोया जाता है वही उत्पन्न होता है।

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता॥
यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः॥

अर्थात्—बीज एवं क्षेत्र—इन दोनोंमें बीज प्रधान है, क्योंकि सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्ति बीजोंके लक्षणसे जानी जाती है। जिस प्रकारका बीज उचित समयपर संस्कृत क्षेत्रमें बोया जाता है उसी प्रकारका बीज अपने रंग-रूप आदि गुणोंसे युक्त उस क्षेत्रमें उत्पन्न होता है।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत॥

अर्थात्—पुत्रके विषयमें महर्षियोंका यह कहा हुआ वाक्य है कि 'भर्तुः पुत्रं विजानन्ति'—पुत्र भर्ताका होता है। अतः पिताका पुत्र हुआ। इसलिए सिद्ध हुआ कि जिसका बीज है उसीका पुत्र कहाता है और उसकी जाति पिताके तुल्य होती है।

यह एक निश्चित एवं सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जिसका वीर्य उसका ही पुत्र होता है, जैसे—

कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणैश्च शोभिताम्
बृहन्नितम्बस्तनभारखेदात्पुष्पस्य भंगेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम्
भार्यां च तां देवगुरोरनङ्गबाणाभिरामायतचारुनेत्राम्
तारां स ताराधिपतिःस्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ॥
साऽपि स्मरार्ता सह तेन रेमे तद्रूपकान्त्या हृतमानसेन
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि
न तृप्तिरासीच्च गृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु।
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव॥

तब बृहस्पतिने चन्द्रमासे दीनता पूर्वक अपनी भार्याको दे देनेके लिये कहा, किन्तु चन्द्रने अस्वीकार कर दिया। तब बृहस्पति की ओरसे भगवान् शङ्करने युद्ध करनेके लिए चन्द्रको आह्वान किया। दोनों ओरसे विकट युद्ध प्रारम्भ हो गया। ऐसी अवस्था देखकर ब्रह्माजीने ताराको दिला दिया—

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसन्निभः।
दिव्य पीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः।
तारोदराद्विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसन्निभः॥
जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद्बली।
ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवा देवर्षिभिः सह॥
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा।
अपृच्छंस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः॥
ततः सा लज्जिता तेषां न किञ्चिदवदत्तदा।
पुनः पुनस्तदा पृष्टा लज्जन्ती वराङ्गना॥
'सोमस्येति' चिरादाह ततोऽगृह्णाद्विधुः सुतम्॥
(मत्स्यपुराण)

यहाँपर वीर्य प्रधानताके नियमानुसार वह पुत्र चन्द्रको दिया गया और बुधका वर्ण भी अपने पिताके अनुसार हुआ। अतः उपरोक्त सब प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि पर्जन्य महाराज क्षत्रिय थे। पण्डित-पत्रने केवल आदिपुराणका आश्रय लेकर चित्रसेनको नन्दका पिता बनाया है जो अन्य ग्रन्थोंमें न मिलनेके कारण त्याज्य है। सब ग्रन्थ यही कहते हैं कि नन्दके पिता पर्जन्य थे। श्री आनन्द-वृन्दावन-चम्पू भी यही मानता है।

हरिवंशमें सब गोपोंकी शङ्का करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन्सर्वान्समागतान्॥
मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम्।
तथाऽहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः॥

अर्थात्—गोपोंके वचन सुनकर कमल-नेत्र श्रीकृष्ण सब स्वजातीय पुरुषोंकी ओर देख हंसकर बोले। जो तुम लोग मुझे महा-पराक्रमी कहते हो यह बात ठीक नहीं; क्योंकि मैं तुम्हारा स्वजातीय बान्धव हूं।

एवं भागवतेऽपि—

'ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामि विधाय सुहृदां सुखम्।'

इति नन्दम्प्रति प्रभुवाक्यात्स्पष्टमेव व्रजेन्द्रनन्दस्य यादवत्वमिति सिद्धान्तः।

अर्थात्—'मैं सुहृदोंको सुखी कर जातिवाले एवं आपको देखनेके लिए आऊंगा।' नन्दके प्रति श्रीकृष्णके इन वाक्योंसे नन्दजीका यादवत्व सिद्ध होता है कि राजा नन्द तथा गोपगण यादव थे।

बलरामजीने भी गोपोंसे कहा था—

यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः॥
(हरिवंश पुराण)

अर्थात्—यादवोंमें तुम लोग हमारे बांधव हो।

विष्णुपुराणमें भी लिखा है—

बलदेवोऽपि मैत्रेय! प्रशान्ताखिलविग्रहः।
ज्ञातिदर्शन सोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम्॥

अर्थात्—पराशर मुनि मैत्रेयसे कहते हैं कि बलदेवजी समस्त लड़ाई झगड़ेको शान्त देखकर अपने ज्ञाति भाइयोंके दर्शनकी उत्कण्ठासे गोकुलमें नन्दजीके यहाँ गये।

ज्ञाति शब्दका क्या अर्थ है? इसका उत्तर पद्मपुराण बतलाता है।

अथ ज्ञातिशब्दार्थः प्रतिपाद्यते पाद्मे एकलिङ्ग माहात्म्ये—

सूत उवाच—
शृणोश ज्ञातयः प्रोक्ता धर्मशास्त्रेषु सर्वतः।
सपिण्डा गोत्रसम्बन्ध प्रवरस्थानवासिनः॥
येषां जननिराशादि सूतकाशौचयुक्तयः।
दायित्वेन भवेयुस्ते ज्ञातयश्चैकवंशजाः॥

अर्थात्—धर्मशास्त्रमें ज्ञाति शब्दसे सपिण्ड, सगोत्र, सम्बन्ध जिनका एक है, सूतक आशौच जिनका एक होता है, जिनका दायविभाग है, एक वंशज हैं—उनका ग्रहण करते हैं।

पण्डित-पत्रने गर्गसंहिताके श्लोक पर आपत्ति की है और रंगके अनुसार वर्ण निर्णय किया है। पत्रकी यह बात अमान्य है क्योंकि वर्तमानकालकी प्रगतिके अनुसार यह अनुपयुक्त है। उसने कृष्णके काले रंग को क्षत्रियोचित बतलाया है और यशोदा तथा नन्दमहाराजके गौर वर्ण होनेके कारण वैश्य बतलाया है। यदि हम मान लें कि गौर वर्ण होनेके कारण नन्दजी वैश्य थे तो रोहिणी बलरामादि सभी वैश्य हो जायंगे—

गौरवर्णा दिव्यवासा रत्नाभरणभूषिता।
—गर्गसंहिता

तो क्या रोहिणी पत्रके कथनानुसार वैश्या हो गयी?

किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैंने उस श्लोकका भाव लेकर टीका कर दी थी। यदि पूर्ण रीतिसे उसकी व्याख्या की जाय तो वह इस प्रकार होगा—

हे यशोदे! तू गौरवर्ण है, और हे नन्द! आप भी गौर हैं, फिर यह बालक जो काले रंगका हुआ यही कुलके विपरीत बात है। इसे गौरवर्णका होना चाहिए था। क्षत्रियोंका बालक तो ऐसा होना चाहिए जैसा कि बलदेव गौर हैं। उसमें कुछ दोष नहीं है। वह चन्द्रवंशोत्पन्न मालूम पड़ता है।

महाराजभलन्दनकी कन्या कलावती हुई जो वृषभानुको विवाही गयी जिसका वर्णन ब्रह्मवैवर्तपुराणमें मिलता है। वृषभानुकी पुत्री राधा हुई। पण्डित-पत्र इसे नहीं मानता। वह लिखता है कि 'दिव्य सन्तान होनेके कारण ये क्षत्रिय नहीं थे।' यदि इसी प्रकार समझ लिया जाय तो गोप-वंशमें तो सभी देवता लोग उत्पन्न हुए थे। क्या उनका वंश और जाति नहीं थी? यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस वंशमें वे उत्पन्न हुए थे वही उनका वंश है।

मैंने 'यदुकुल सर्वस्व' में वर्ण विवेक चन्द्रिकाका खण्डन किया था। उसीको लेकर पण्डित-पत्र लिखा जाता है। वर्ण-विवेक चन्द्रिकामें इस प्रकारका श्लोक है—

भलन्दनेति विख्यातः तस्य पत्नी कलावती।
वरवर्णिनिः सुतस्तस्य प्रांशुर्व्यारमतः पुरः॥
प्रांशोः पुत्राः षडासन् वै तेषां नामानि मे शृणु।
मोदः प्रमोदो बालश्च मोदनश्च प्रनन्दनः।
शाकुर्व्यानि विख्यातस्तेषां कर्म पृथक् पृथक्॥
इत्यादि।

मार्कण्डेय पुराण तथा विष्णुपुराणादिमें ऐसा वंश वर्णन न मिलनेके कारण मैंने उपरोक्त श्लोकका खण्डन किया है।

विष्णुपुराणमें लिखा हुआ है—

भलन्दनाद्वत्सप्रिकन्दारकीर्तिवत्सप्रेः
प्रांशुरभवत्प्रजानिश्च प्रांशोरेकोऽभवत्।
ततश्च खनित्रस्तस्माच्चक्षुपः
क्षुपाच्चातिबलपराक्रमो विंशोऽभवत्। आदि।

मार्कण्डेय पुराण भी इसी बातकी पुष्टि करता है—

अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीरिति नामतः।
तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
प्रांशु प्रवीरः शूरश्च सुचक्रो विक्रमः क्रमः।
बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः।
सुनयश्च महाभागाः सर्वे संग्रामजित्तमाः॥
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः।
प्रजानिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः।
अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह।
प्रजातेस्तनयाः पञ्च खनित्र प्रमुखा मुने!

अब आप लोग देखें कि वर्णविवेक चन्द्रिकामें कहाँ तक असत्य बात लिखी हुई है। इस पुस्तकका पूर्ण रूपसे खण्डन श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ दण्डि स्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वतीने अपने 'ब्रह्मर्षि-वंश-विस्तर' में किया है।

मैंने जो झाड़पत्रमें एक श्लोक लिखा कि क्षत्रियोंके लक्षण ये हैं और यही बातें गोपोंमें पायी जाती हैं अतः वे क्षत्रिय हैं, यह मैंने इसलिए लिखा था कि—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसां वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

भागवतमें उपरोक्त श्लोक है।

गोपोंने थोड़ासा राज्य नहीं किया है, किन्तु वे सम्पूर्ण भारतवर्षके राजाधिराज थे—

If we may place trust in the monumental inscriptions, Ahirs were for some time the universal monarchs of India. (Castes and Tribes by W. Richardson).

इस जातिकी प्रथम राजधानी मथुरा जी थी—

Taken as a whole Goala traditions hardly can be said to more than render it probable that one of their earliest settlements was in the neighbourhood of Mathura and that this part of the country was the centre of distribution of the caste. (Castes and Tribes Vol. I).

मथुरापुरीसे द्वारिका तक अहीरोंका राज्य था—

In the Mahabharat the Abhiras in the west are spoken of; and in the Pauranic Geography the country on the western coast of India from the Tapti to Deogarh is called Abhiria or the region of Cowherds. When the Kattis arrived in Gujrat in the eighth century, they found the greater part of the country in the occupation of the Ahirs. (Castes and Tribes Vol. I.)

एशियाटिक रिसर्चेज़ नामक ग्रन्थके नवम खण्डमें लिखा है कि द्वितीय शताब्दीके आरम्भमें अहीर नेपालमें भी राज्य करते थे और सम्भवतः उनका सम्बन्ध बङ्गालके पालवंशसे है, जिस वंशने ९ वीं शताब्दीसे ११ वीं शताब्दी तक बंगालमें राज्य किया—

Ahirs were also Rajas of Nepal at the beginning of our era, and they are perhaps connected with the Pala or shepherd dynesty, which ruled in Bengal from the 9th to the latter part of the 11th century.

जरनल युनाइटेड इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियामें लिखा है—

Those who have read the 'Prem Sagar' will recollect the wonderful transference of the Yadubansi by Krishna and Vishwakarma, in a single night, from Mathura to Dwarka, a city supposed to have been built in a single night by Vishwakarma on the sacred mountain Meru in the sea. Dwarka is, as is well-known, a city on the sea-coast at the most westerly point of the present Gujrat. Here mythology and surmise end as regards Ahirs, and we can get on to something more definite.

The Abhira, as we will call them for a bit, were mostly living about the 5th Century in Abhiria, now known as Gujrat, having gone there from Hindustan. A party worked its way down to Daulatabad (Deogarh) in the Deccan where one of them became Raja.

इनके अतिरिक्त और भी प्रमाण हैं जो समय समयपर दिये जायँगे।

नन्दजी क्षत्रिय थे—इसीलिए पार्वती जीने कहा था—

'राजेन्द्र! त्वं गोकुले च कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम्।'

अर्थात्—हे राजेन्द्र! तुम गोकुलमें दुर्लभ कृष्णकी भक्तिको पाये हो।

सूतजी कहते हैं—

'हे नृपनन्द! तवाहं सूतः व्यास मुनीश कृपालवपूतः।'

ज्योतिषी जी भी कहते हैं—

'हे महाराजाधिराज! त्वं धनवान् पुत्रवान् भव!'

यदि नन्दमहाराज क्षत्रिय न होते, वसुदेवसे भ्रातृत्वका संबंध न होता तो वसुदेवकी पत्नी उनके यहाँ क्यों रहती? जब तक वे कारागारमें थे तबतक रोहिणीको पिताके गृहमें रहना चाहिए था, परन्तु बात यह न थी। वसुदेव जी जानते थे कि यदि अपनी भार्याको हम भ्राता नन्दजीके यहाँ रक्खें तो संतान कंसके हाथसे बच सकती है, अन्यथा नहीं। जो लोग कहें कि वे एक दरिद्र वैश्य थे तो मेरा उत्तर है कि वसुदेव जी इतने मतिहीन नहीं थे, जो अपनी पत्नी और पुत्रको प्रतापी कंसराजसे रक्षा करनेके लिए एक गरीब वैश्यके यहाँ भेज देते जो (कंस) जब चाहता तब स्त्री सहित पुत्रको मरवा डालता, क्योंकि कंसको मालूम था—

जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसन्ति हि।
पशवो दासवर्गाश्च सर्वे ते नन्दगोकुले॥

(श्रीमद्भागवत)

अर्थात्—कंस जानता था कि वसुदेवकी पत्नी रोहिणी, पशुगण और दासगण सभी गोकुलमें नन्दजीके यहाँ हैं।

पण्डित-पत्रने लिखा है कि 'द्रुपोथलो नन्दराजो गोपनिर्दनिमानसः।' सो सर्वांश असत्य है। इन शब्दोंको गोपोंने नन्दराजसे क्रुद्ध होकर वृषभानुके धनकी प्रशंसा करते हुए कहा है। ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्डमें लिखा है—

ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।
सद्रत्नानि प्रवालानि हीरकाणि च सादरम्॥
तिलानां पर्वतान्सप्त सुवर्णशतकं मुने!
रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्रं मनोहरम्।
दधिदुग्धं शर्करां च नवनीतं घृतं मधु॥

नन्दजीके राजा होनेका और भी प्रमाण लिखता हूँ—

नानाविधानि रत्नानि धनानि विविधानि च।
महार्घ्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
वन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ।
नाराचानाश्च ते सर्वे न शक्ता वस्तुमेव च॥
रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानि च।
प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च॥
यानानि स्वर्णसाराणि कृतानि विश्वकर्मणा।
गत्वा सर्वाय विभवं चकार व्रजपुङ्गवः॥
निरीक्ष्य स्वर्णसाराणि ददर्श विस्मयान्वितः।
द्विजेभ्योऽप्यर्पयामास परिपूर्णानि नारद!

(ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड पृ०)

अपरं च—

यशोदा मङ्गलं कृत्वा भोजयामास ब्राह्मणान्।
पूजां चकार गोपीनां मुनीनां च यथा जनः।
मणिरत्नं प्रवालं च सुवर्णं परमं तथा॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।
गजरत्नं गवां रत्नमश्वरत्नं मनोहरम्॥
आसनानि च पात्राणि भूषणानि तथैव च।
धान्यान्यपि च शस्यानि वस्त्राणि च तथा ददौ॥

नन्द-वसुदेवमें धर्म-भ्रातृत्वका सम्बन्ध न था किन्तु वे एक पितामहकी सन्तति थे। इस श्लोकमें भी भ्राता शब्दके पूर्व 'धर्म' नहीं लिखा हुआ है—

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्।'

इसकी व्याख्या करनेमें चाहे कोई 'धर्म' शब्द लिख दे वा 'अधर्म' किन्तु श्लोकमें न होनेके कारण हमें मान्य नहीं है। वैश्य होनेसे कोई यादव होता नहीं, जबतक कि वह यदु महाराजके वंशमें जन्म न ले तबतक यादव शब्दसे किस प्रकार ख्याति हो सकती है। इस प्रकार महाराज नन्दने यादव क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण किया था।

रह गयी बात ब्रह्मदेव कृत कुण्डलीकी। उसे ब्रह्मदेवने बनाया है अथवा किसी मनुष्यने, यह मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता जैसा नन्दमहोत्सवमें छपा है वैसा अविकल मैंने उद्धृत कर दिया है। उसमें ब्रह्माजीका नाम लिखा है अतः मैंने भी लिख दिया। इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर नहीं है किन्तु उस ग्रन्थपर है। नन्दमहोत्सवके पृष्ठ २५ में यह अङ्कित है—

ब्रह्मादयोऽपि निजधामगतं निशम्य
कोलाहलं व्रजपुरे महोत्सवोत्थम्।
तत्रागताः कृतविचित्रविरक्तवेशा
नन्दात्मजस्य मुखदर्शनमर्थयन्ति॥

जब ऐसे व्रजराजके सुन्दर महोत्सव हो रहे थे, जिसका शब्द ब्रह्मलोकपर्यन्त पहुँच रहा था उसे श्रवण कर ब्रह्मादिक सम्पूर्ण देवता अपना अपना वेश परिवर्तन करके आये। ब्रह्माजीने अपने तीन मुखोंको छिपा कर एक ज्योतिषीका रूप बनाया और पोथी-दाब कर अथाई पर आकर सब गोपोंको आशीर्वाद देकर श्रीकृष्णकी जन्मपत्री सुनाने लगे—

स्वस्ति श्री सौख्यदात्री सुतधनजननी पुष्टितुष्टि प्रदात्री माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभयमदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री। नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसामायुषो वर्द्धयित्री सर्वाघविध्वंसयित्री गुणगणमहती लिख्यते जन्मपत्री।.................................
वसुकुञ्जावर्तशरद वरीयान् गोऽस्य पञ्चप्राणतुल्येषु पञ्चसुतेषु मुख्यतमस्य नन्दराया भवस्य..........
इत्यादि

वीर्य-प्रधानताकी बात पूर्वमें लिख आये हैं कि मनुने वीर्यको प्रधान माना है। नन्दराजजी कंसके भृत्य नहीं थे, वे एक स्वतन्त्र नरपति थे। उनके राज्यमें जो ६ नन्द, ६ उपनन्द तथा ६ वृषभानु थे उन लोगोंने उन्हें उपहार दिया है—

नन्दा नवोपनन्दाश्च तथा षड् वृषभानवः।
नानोपायनसंयुक्ताः सर्वे तेऽपि समागयुः॥

—गर्गसंहिता।

हम लोग महाराज नन्दके वंशज हैं इसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यह है कि अहीर जातिकी संस्थिति अभीतक है। दूसरा प्रमाण यह है कि इस जातिमें नन्दवंशी अहीर अभी भी वर्तमान हैं। इस जातिमें तीन उपजातियाँ हैं। उनके नाम हैं (१) यदुवंश (२) नन्दवंश तथा (३) ग्वालवंश। श्रोत्रिय पं० श्री छोटेलाल शर्माने अहीरोंको यदुवंशी क्षत्रिय लिखा है और उपरोक्त तीनों भेद दिये हैं। पण्डित-पत्रको विदित होना चाहिए कि जितने लीलापरिकर भगवान्के साथ आते हैं वे ही वैकुण्ठ जाते हैं। उनकी सन्तति यहीं पर रहती है। जैसे जब भगवान् रामचन्द्रने अपने कनिष्ठ भ्राताओंके साथ वैकुण्ठ गमन किया था तब लव-कुश आदिको वे संग नहीं ले गये थे। यदि पण्डित-पत्र अपने प्रमाद-

लिखित पुराणकी बात माने तो भी उसके लिये श्रेयस्कर है क्योंकि उस श्लोकको लिखते हुए भी पत्र इस श्लोकको नहीं लिखता—

योगेनामृतवृष्ट्या च कृपया च कृपानिधिः।
गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः॥

यद्यपि 'ब्राह्मण सम्मेलन' का खण्डन यथेष्ट रीतिसे क्रोड़पत्रमें कर चुके हैं तथापि वह पुनः लिखता है कि उसका उत्तर नहीं दिया गया। इस प्रकार कहना जनताको धोखा देना है। पण्डित पत्रकी नीति है कि उसे कितना ही उत्तर दिया जावे, उसका पूर्णरूपसे खण्डन किया जावे किन्तु वह अन्ततक अपने इस हठपर रहेगा कि उत्तर नहीं दिया गया। इसका तात्पर्य यह है कि जनता जिसमें समझे कि अभी उत्तर नहीं दिया गया है; किन्तु जनता पण्डित-पत्रसे अधिक बुद्धिमान है। वह जानती है कि यह पण्डित-पत्रका हठ है। हाँ, अब मैं उस बातको यहाँ हल किये देता हूँ जिसे पूर्वमें लिख चुका हूँ कि पञ्चमूर्तियाँ क्यों शूद्र कहलानेकी चेष्टा करती हैं। पण्डित-पत्रने प्रथम नन्दराजको क्षत्रिय माना फिर गोपाङ्कमें वैश्य माना किन्तु अहीरोंको क्यों शूद्र कहा? इन सब बातोंसे अन्य लोग आश्चर्यान्वित होंगे कि वस्तुतः इसमें रहस्य क्या है जिससे अहीर जातिका सम्बन्ध नन्दराजसे विच्छेद कराया जाता है? अतः मैं रहस्योद्घाटन किये देता हूँ। बात यह है कि पञ्चमूर्तियोंको यज्ञोपवीतसे अत्यन्त भय है। वे समझती हैं कि यह 'हौआ' है। यदि हम नन्दराजके वंशज हुए तो पण्डित पत्र या तो हमें क्षत्रिय लिखेगा अथवा वैश्य। अतः द्विज होनेके कारण द्विजत्वका चिन्ह धारण करना पड़ेगा। बात यही है, दूसरी नहीं।

मैं कहता हूँ कि अहीर शूद्र इसलिए नहीं है कि उनकी उत्पत्ति किसी शूद्रसे नहीं हुई है। ये पूर्वमें द्विज थे और अब भी द्विज हैं। पण्डित पत्र अभी भी यह बात स्वीकार नहीं करता कि—

'आहुकवंशात् समुद्भूताः आभीरा इति प्रकीर्तिताः।'

आदि श्लोकोंका 'आभीर' शब्द जातिवाचक है। इसे दुराग्रह एवं हठके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? उसका अर्थ भी स्पष्ट करके मैंने रख दिया तो भी उसपर ध्यान नहीं देता। पण्डित-पत्रको चाहिए कि किसी नन्दवंशी अहीरसे आहुकके विषयमें पूछे। वह तुरन्त बतला देगा कि आहुक कौन थे? उनके नामपर क्यों वंशकी प्रख्याति हुई, आदि।

पण्डित-पत्रने मनुस्मृतिका एक श्लोक लिखा है, जो केवल ब्राह्मणोंके लिए मनुने कहा है किन्तु पत्र उस श्लोकको अहीरोंके लिए उद्धृत करता है—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥

अर्थात्—माँस, लाख और लवणकी बिक्री करनेसे ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता है और दुग्ध-विक्रय करनेसे ब्राह्मण तीन दिनमें शूद्र हो जाता है।

सम्प्रति न मालूम कितने ब्राह्मण दूध बेचते हैं, मदिरा बेचते हैं और भी अन्यान्य वस्तुओंकी दुकान किये हैं। अतः मैं पण्डित पत्रसे पूछता हूँ कि क्या ये शास्त्रानुमोदित कार्य हैं। पत्रको विदित होना चाहिए कि—

'कूप खनै सो और को ताको कूप तयार।'

हमे यह अभीष्ट नहीं कि कुछ अपने पूज्य ब्राह्मणोंके प्रति हम लिखें किन्तु जब पण्डित-पत्र विवश करता है तो केवल उसकी सन्तुष्टिके लिए लिखना ही पड़ता है। पत्रमें लिखा है कि शूद्र कहनेसे कोई

अवज्ञा नहीं है। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि कोई शूद्र न हो और उसे हम शूद्र कहें तो बताइये उसकी अवज्ञा हुई या नहीं? यदि ब्राह्मणादि वर्णोंका अनुष्ठान कठिन है तो पण्डित-पत्रको चाहिए कि वह जिस वर्णका अनुष्ठान सबसे सरल समझे, उस प्रकार करे। मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किंतु वह अन्य लोगोंको बाध्य नहीं कर सकता।

मैं पाश्चात्योंके रंगमें रंगा हुआ नहीं हूँ, किन्तु उस बातको करनेके लिए सर्वदा कटिबद्ध हूँ जिसके लिए शास्त्रने आज्ञा दी है और वे बातें ठीक हैं। अब कुछ श्रद्धेय पण्डितों की अनुमति लिखता हूँ—

महामान्य पं० श्री यज्ञनारायण जी उपाध्याय एम० ए०, एल० एल० बी०, भू० पू० एम० एल० सी० कहते हैं कि 'किसी समय इस यादव जातिके हाथमें संसारका नेतृत्व था। और अब भी हिन्दुओंमें यह धार्मिक जाति है और इसीकी बहादुरी द्वारा हिन्दू राष्ट्र की रक्षा होती है। बनारसकी जनता अहीरोंकी रक्षामें शान्ति-सुखसे रहती है, इसलिए अहीरोंकी प्रशंसा होती है। 'अहीर बनारसके देवता हैं', अतः सब जनता आदर करती है।

पण्डित श्री शिवशङ्कर शर्मा लिखते हैं कि 'जो लोग कहते हैं कि गोपालन केवल वैश्योंका कर्म है सो सर्वथा वेदशास्त्र विरुद्ध है और आजकल गोपालक अहीर जातिको लोगोंने इसी हेतु 'शूद्र' बना रक्खा है; यह भी शास्त्र-विरुद्ध बात है। गोपालक आभीर (अहीर) द्विज हैं और इनके यज्ञोपवीतादि कर्म होने चाहिये।

श्रीमान् पण्डित अयोध्यानाथजी शर्मा एम० ए० प्रोफेसर सनातन धर्म कालेज कानपुरकी पुस्तकमें लिखा है कि गोप क्षत्रिय थे। आगे कारण बतलाते हुए लिखा है कि यादव कुलके अनेक क्षत्रियोंने क्षात्र-वृत्ति छोड़ दी थी वे वैश्योंका पेशा करने लगे थे।

सर राजा श्रीमान् ठा० रामपाल सिंह जू देवने अपने भाषणमें कहा था कि 'अहीर लोग यदुवंशीय क्षत्रिय हैं अतः उन्हें यज्ञोपवीत पहननेका पूर्णाधिकार प्राप्त है। मैं यादवोंसे आशा करता हूँ कि वे जनेव धारण करेंगे और हिन्दू धर्मके रक्षक बनेंगे।

श्री चैतन्यदेवके अनुयायी श्री नित्यानन्द ब्राह्मण कहा करते थे—

'गोप जाति आमि बहु गोपसङ्गे आछि सुख पा:
ए पुलीन भोजन रङ्गे।'

Trans. 'I am of the Gope caste, and am amidst many Gopas, and such as we are, consider pulina a delicacy.'

(Religion of the Hindus by Wilson).

जिन ब्राह्मणियोंने गोपों एवं श्रीकृष्णको भोजन दिया था वे गोपियाँ हुईं—

विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमीप्सितम्।
बभूवुर्गोपिकाः सर्वास्तस्या मानुषविग्रहात्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्म खण्ड)

इसके अतिरिक्त मैं कुछ और अंग्रेजी प्रमाण देता हूँ जहाँ हम लोगोंको क्षत्रिय लिखा हुआ है।

पार्लियामेण्ट पेक्ट १९२० में लिखा है कि अहीर, ग्वाल, गवली आदि जातियाँ क्षत्रिय हैं।

सर जान साइमनने अपने भाषणमें कहा था कि अहीर लोग क्षत्रिय हैं।

Mr. Bhattacharya writes in his book entitled 'Indian Castes and Tribes':—

It seems very probable that the Yadubansi Rajputs are derived from the Yadubansi Ahirs.

The Narayani army which Shri Krishna organized and which made him so powerful that his friendship was eagerly sought by the greatest kings of his time, is described in Mahabharat as being all of the Ahir caste.

Major S. H. E. Nicholas, 95th Russels Infantry writes in the Journal of United Service Institute of India (Vol. XL, No. 182):

The Yadubans Ahir has no false pride. All the Yadubans Ahirs, whom I have talked to, claim descent from Rajputs, in fact from Krishna himself. Their tribal appellation certainly seems, to my mind, to imply a Rajput origin. Government determined on the formation of Ahir companies in 1898 and four companies were ordered to be raised, two in my regiment—the 95th Infantry and two in the 98th Infantry.

The following extracts are from the Hand Book on Jats, Gujars and Ahirs compiled by Major A. H. Bingley:

The Gurgaon Ahirs make excellent soldiers, and differ but little in appearance, physique, and customs from their neighbourhood and rivals—the Jats.

The Ahirs of Gurgaon and of the adjacent districts differ but little, if it all, from his Jat neighbour, and is equally brave, industrious and orderly. It has been truly said of Jats and Gurgaon Ahirs that they are manly, without false pride, independant without insolence, reserved in manner but good-natured, light-hearted, and industrious. There are no more loyal subjects of His Majesty in India and none who are more attached to such of their rulers who mingle freely among them.

After ten years experience of them, I emphatically endorse the opinion that Ahirs are eminently fitted for the profession of arms. However the day's march, however tiring the Manœuvres, they always keep their end up and do not give in. If an Ahir falls out on the march, you may be sure, generally speaking, that he has been worked down to his last gasp and that he was probably a bit off colour when he started out. They are always cheerful, except when in hospital and are the sort of people who habitually make the best of things. If matters are not as they would choose they rest assured that they are any how as good as can be under the circumstances, that their Sahib would have made them more comfortable if he could and they do not waste a moment of time or a penny-weight of energy in grumbling. They are reliable, steady and of uniformly excellent character.

In my opinion the enlistment of Ahirs has proved a great success, and Government would do a great stroke of business in raising more companies of them.

When you come over the names of the martial races of India and think of the Gurkha, Rajput, Sikh, and Dogra etc, do not forget the Jadubans Ahir.

"The Statesman" 27th January, 1914 Calcutta:—

It is said that originally, the warrior caste of Kshatriyas were the protectors of Brahmans and cows alike. But a division of labour came about in the course of time with the result that some Kshatriyas were at last confined to the protector of the sacred men, while the term of Gope or Gopal (Ahir is another synonym used chiefly in Bihar where the castes are especially numerous) was used to designate the protector of the almost equally sacred animals. In consequence of the wandering life they had to lead, seeking fodder for their herds they did not always enjoy the privileges of priestly attention, they also lacked the facilities for education and so through poverty and ignorance and the illtreatment of an unappreciative world the Gwalas gradually fell from their high estate. Another claim which the humble cowkeeper makes to social distinction is found on the prominent place holds in the Krishna legend; that amorous God is his patron saint. The story goes that Krishna was a prince of royal blood, the son of Vasudeva. He lived with Nanda who was also a king and Kshatriya by caste.

Sir H. M. Elliot supplementary Glossary S. V. says—

The Ahirs were for some time the universal rulers of India.

In Tribes and Castes of Bengal, Volume I Page 282 Mr. Risley writes:—

The tradition of the caste bears a highly character and progress to trace their descent from the God Krishna whose relations with milkmaids of Brindaban play an important part in the Hindu Mythology. Krishna himself is supposed to have belonged to the tribe of Yadavas, or descendants of Yadu a nomadic race who graze cattle and make butter and made an early settlement in the neighbourhood of Muttra. In memory of this tradition, one of their subcastes in the North-western provinces is called Yadu or Yadubansi to the present day.

The Yadava Gaoli community claims descent from the Great Yadava families to one of which Shri Krishna, the eighth incarnation of Vishnu, belonged. The whole of the North India, Gujrat and Deccan were once ruled by the Kings of the Yadava families.

Sir Harcourt Butler, the Lieutenant Governor of the United Provinces made the following reply to the Ahir Representatives of the Punjab, U. P., and Delhi on the 9th July 1918:—

Gentlemen, I thank you for your loyal and complimentary address. I am glad to meet you this morning and to hear from you about your achievements, your hopes, your aspirations and your history. Your history is an ancient one and you are justly proud of it. You have told me this morning what I knew before that you were loyal in the mutiny and I know no occasions on which your community has not been loyal. You certainly responded in the present crisis which I am the first to acknowledge and I thank you on behalf of the Government.

The Lieutenant Governor of the Punjab, Sir Michæl O'Dwyer referred to the Ahirs in his convocation address on the 22nd December 1917 in the following eulogistic words:—

I will take another instance that of the Ahirs in the Punjab. They are comparatively a small tribe restricted to two or three districts around Delhi where they are now as sturdy agriculturists who can make living in the barren sandy soils which less hardy and persevering tribes would despise. But they are endowed with a strong tribal spirit and great cohesion and some of their leading men, assisted also by a few young men who are graduates of the Punjab University, realising the duties and responsibilities presented by this Great War, appealed with such success to their traditions and their tribal feeling that the Ahirs of the Southern Punjab stand out today as the first Hindu tribe in India in the proportion of men sent to army. That great rally is not to be forgotten either by the tribe or by the Government in whose cause it has been put forth.

The Journal of the United Institute of India, Vol XL. No 182 says:—

In the 'Prem Sagar' we read of the families of Yadu that was so grievously oppressed. The Ahirs say that Nanda the large cattle-owner and apparantly rich man, in whose house the mythical Krishna was brought up, was of their tribe; he was, according to the story, of the family of Yadu.

The Glossary of the Tribes in the Punjab by Mr. H. A. Rose (Volume II Page 4) says:—

The name Ahir is doubtless derived from Sanskrit Abhir. The first historical mention of the Ahir occurs in the confused statements of the Vishnu Puran concerning them and other dynasties which succeeded the Ahirs in third century A. D. In the fourth century the Abhiras are described as republican tribes settled in Eastern Rajputana and Malwa. They are divided into three Khamps or subtribes:—

1. The Nandbansi—descendants of Nand.
2. The Jadubansi—descendants of Yadu.
3. The Gwalbansi—descendants of Gopas.

इनके अतिरिक्त और भी अंग्रेजोंके प्रमाण हैं। केवल कुछ प्रमुख व्यक्तियोंकी पुस्तकोंका संक्षिप्त प्रमाण उद्धृत किया है। जो लोग अंग्रेजी विद्वानोंके प्रमाण नहीं मानते उन्हें सरयूपारीणसंहिताका पृष्ठ १८-१६ पढ़ना चाहिए। यदि 'ब्राह्मणसम्मेलन' इन उपरोक्त अंग्रेजोंके प्रमाणोंको न माने तो मेरा कथन है कि यदि सम्मेलन उनके प्रमाणोंको त्याग देनेके लिए कटिबद्ध हो जाय तो मैं छोड़ देनेके लिए तैयार हूँ। किन्तु जब हम लोग देखते हैं कि विद्यालय होनेमें बी० ए० आदि पदाभिभूषित सज्जनगण हैं तो हम क्यों छोड़ दें। यदि अंग्रेजोंका महामहोपाध्यायादि प्रमाण छोड़ दिया जाय तो पत्रकी बात हमें स्वीकृत होगी अन्यथा नहीं। अन्तमें शास्त्रकी बातको स्मरण दिलाते हुए मैं अपनी लेखनीको विश्राम देता हूँ—

ब्राह्मणानां विवादे च शूद्राऽत्रैव विनिन्दिता।

क्योंकि—

ब्राह्मणानां गतो धर्मस्तरः साध्यं जगत्त्रयम्।
स्वधर्मं वै परित्यज्य किमिदानीं करोषि भोः॥

వేదకాలపు వివాహములు

శరీరమనోవాక్కులు గలిగి, ఆధ్యాత్మిక నైతికవిషయములలో నుత్కృష్టులైన సంతానము కలుగుటకు వేదములు, బ్రహ్మచర్య గృహస్థాశ్రమవిధులను చక్కగ బోధించుచున్నవి. వేదములలోని వివాహప్రకరణముయొక్క ముఖ్యోద్దేశము, ఇంద్రియలోలత్వముతో నూరక పిల్లలను కనుట గాక సాంఘిక పరిణామసూత్రముల ననుసరించి ఋషులవంటి సంతానమును బడయుట కని స్పష్టము నున్నది. కాబట్టి అట్టి ఆధ్యాత్మిక ధర్మములతో కూడిన వివాహసంబంధములోనికి దిగకముందు స్త్రీయును, పురుషుడును, వేదములో చెప్పబడిన గృహస్థాశ్రమ విధులను ముందుగా తెలిసికొని సిద్ధపడియుండవలెను. వానిని శ్రుతులలోనే వెదకవలెను. శ్రుతులలో చెప్పబడని విషయములలో స్మృతులను, ఆయా దేశములలోని సాంప్రదాయములను, ఆయా కుటుంబములలోని యాచారములనుకూడ పరిశీలింపవచ్చును. కాని, వేదమే యీ విషయములలో ముఖ్యప్రమాణము. స్మృతులు సమయాచారములను తెలుపుచుండును గనుక శ్రుతులలో చెప్పబడనివిషయములను గురించిమాత్రమే, వానిలో చూడవచ్చును. ఈ స్మృతులైనను, తాము ప్రతిపాదించు సూత్రములను, ఆచారములను, మనకిప్పుడు లభించని కొన్ని శ్రుతులమీద నాధారపడియుండెనని మన పూర్వసాంప్రదాయికులు వానినన్నిటిని శ్రుతులకు వ్యతిరేకమైనను, సమర్థింపజూచెదరు. నిజమేమన స్మృతులలో చెప్పిన కొన్నియాచారములు దేశకాలభేదములనుబట్టి యేర్పడుచు, అనేకవిధములుగ మారుచుండెనని, వానిని జాగ్రతగ చదివినవారు తెలిసికొనకపోరు. వానిలోని యాచారకాండ, ప్రాయశ్చిత్తకాండ, వ్యవహారకాండలు ఇప్పు డెంతమాత్రము అమలులో లేవు. వానిని పునరుద్ధరించుట అసాధ్యము. కాబట్టి యిప్పటివర్ణములు వివాహనిబంధనలు శ్రుతులకు వ్యతిరేకముగా నున్నయెడల వానినిగురించి పరిమిలాను స్మృతు లెట్లుచెప్పినను, త్రోసివేయవలసినదే.

వేదములోని వివాహనిబంధనలను తెలిసికొనుటకు వివాహకాలమందు చెప్పబడు వేదమంత్రముల యర్థమును మనము గ్రహింపవలెను. వానిలో కొన్నిటిని దిజ్మాత్రముగ చూపించెదము.

1. వివాహమునకు పూర్వము వరుడు వధువును చూచునప్పుడు చెప్పు మంత్రము.

గృభ్ణామితే సుప్రజాస్త్వాయ హస్తంమ యాపత్యా
జరదష్టిర్యథాసః భగో అర్యమాసవితా పురంధిర్మ
హ్యంత్వాదుర్గార్హపత్యాయ దేవాః (తైత్తిరీయ ఏకాగ్నికాండ. I-3-3)

అర్థము:—ఏరీతిగా భర్తనైన నాతోసహా, ముసలితనముయొక్క ప్రాప్తి యగునో ఆరీతిగ నీయొక్క హస్తమును మంచి సంతానముకొరకు పట్టుకొనుచున్నాను. గొప్పబుద్ధి కలిగిన యింద్రుడు సూర్యుడు ఈశ్వరుడు మొదలగు దేవతలు నాకొరకు నిన్ను గృహయజమాని నగుట కిచ్చిరి. పాణిగ్రహణ సమయమందు నైమంత్రము చెప్పబడి వివాహముయొక్క మూలోద్దేశము స్పష్టపరుచుచున్నది.

2 దశాస్యాం పుత్రానాధేహి పతిమేకాదశం కృధి (ఋగ్వే 85-44)

అర్థము:—పరాక్రమవంతులయిన పుత్రులను కనినదానవై, దేవతలపూజయందు దాసక్తి కలదానవై మానుషమును గురించి స్థానమయినదాన వగుము.

3 సప్తపది జరిగినపుడు వరుడు వధువుతో యీక్రింది వాక్యములను చెప్పుచున్నాడు:

సఖా సప్తపదాభవ సఖా యౌసప్తపదాబభూవ సఖ్యం
తేగమేయం సఖ్యాత్తే మాయోషం సఖ్యాన్మేమాయోష్ఠాః
సమయావసంకల్పావహై సంప్రియౌ రోచిష్ణూ సుమనస్యమానౌ
ఇషమూర్జమభిసంవసానౌ సంనౌమనాంసి సంవ్రతా
సముచిత్తాన్యాకరమ్ (తైత్తిరీయ ఏకాగ్నికాండ 1-3-14)

అర్థము:—ఏడడుగులు వేసినదానవై స్నేహితురాలవు అగుము. ఏడడుగులువేసి స్నేహితులమైనాము. నీయొక్క స్నేహమును పొందితిని. నీస్నేహమునుండి విడువను. నాస్నేహమునుండి విడువకుము. మంచిమనస్సు కలవారమై, మంచిముఖవికాసము కలవారమై ప్రియమును సంకల్పించెదము. విలువగల వస్త్రములను ధరించినవారమై మనమిద్దరము మంచి మనస్సులను దులప్రతములతో కూడిన మంచిచిత్తములను కావించుకొందము.

4. ఆసమయమందే వరుడు వధువుతో నిట్లు చెప్పుచున్నాడు.

తాంకేహిసంభవావహా ఏతో ఉప్రజావహై పుంసేపుత్రాయవేత్తవై
(మైత్రాయణీగృహ్యసూత్రము 21-3)

అర్థము:—రమ్ము, మనము కలుసుకొందము. పుత్రమును కూడ పుత్రునికొరకు కలుపుదము. వివాహముయొక్క మొదటి దినములో జరుగు సప్తపది విధానకాలమందు, వధూవరులు సంతానము బడయగలవారుగ నుండవలెనని యీవాక్యము స్పష్టపరుచుచున్నది.

5. వధువుయొక్క తండ్రిగారికిమీద వరుడు అగ్నిహోత్రమునెదుట యీమంత్రమును చదువును.

కన్యలాపితృభ్యోయతీ పతిలోక మవదీక్షామదాస్థ (తైత్తిరీయ ఏకాగ్నికాండ I-4-4)

అర్థము:—కన్యక పుట్టింటినుండి భర్తదగ్గరకు వెళ్లినదగుచు, దీక్షను పొందదు. దానిని విడుచును. (అనగా, కన్యాత్వముపోయి, తన బ్రహ్మచర్యవ్రతమును విడుచును.)

6. అటుతరువాత ఇంద్రుని వరు డిట్లు ప్రార్థించును.

ప్రేతోముంచాతినాముతః సుబద్ధామముతస్కరత్
(తైత్తిరీయ ఏకాగ్నికాండ I-4-5)

అర్థము:—ఈ గృహమునుండి వెళ్లుచున్నది. భర్తగృహమునుండి వెళ్లదు. అక్కడ స్థిరముగా నుండును. (ఈమంత్రమునుబట్టి వధువు వివాహముయొక్క మొదటిదినముననే భర్త యింటికివెళ్ల దగిన వయస్సు కలదై యున్నదని స్పష్టము.)

7. పైసమయమునందే, యీ క్రిందివిధముగ వధువుతో చెప్పెదరు.

గృహాన్గచ్ఛ గృహపత్నీయథాసో, వశినీత్వంవిదథమావదాసి.
(ఋగ్వేదము X-85-26)

అర్థము:—యజమానురాలవై భర్తయొక్క గృహమును పొందుము. నీవు భర్తకు వసురాలవై యజ్ఞమంత్రములను చెప్పుచుండుము.

పై మంత్రమునుబట్టి వివాహప్రథమదినమునుండియే యజమానురాలగుటకు యౌవనస్త్రీయై యుండవలెనుగదా! ఆమె మంత్రములనుచదివి వానియర్థమును తెలిసికొనవలసియుండును కదా! వరుడు చెప్పు మంత్రములను గ్రహించి తానుకూడ మంత్రములను చెప్పగలదై యుండవలెను గదా! ఆ కాలములో పురుషులు, స్త్రీలు వివాహమునకు పూర్వమందును, పరమందునుకూడ వారంతటవారే యగ్నిహోత్రాదికర్మలను చేసికొనుచుండెడివారని స్పష్టమగుచున్నది.

8. లాజహోమము చేయునపుడు ఈ క్రిందిమంత్రమును చెప్పుదురు.

అర్యమణంనుదేవంకన్యా అగ్నిమయక్షత, స ఇ
మాందేవో అధ్వరః ప్రేతో ముంచాతునాముతః.
(తైత్తిరీయ, ఏకాగ్నికాండ I-5-7)

అర్థము:—కన్యక యింద్రుని, అగ్నిదేవుని యాగముచే పూజించవలెను. వాకరహితుడైన అగ్నిదేవుడు యీ కన్యను యీ గృహమునుండి తీసికొనివెళ్లును. భర్తగృహము విడువదు.

మంచిపెనిమిటిని సంపాదించదలచుకొన్న స్త్రీ అర్యమునుని పూజించవలెను. అథర్వవేదములోని కౌశికగృహ్యసూత్రములోని సాంఖ్యాయన గృహ్యసూత్రములో ఇంద్రాణీకర్మయను అర్యమణునిపూజ చెప్పబడియున్నది. కాబట్టి స్త్రీలు స్వయముగా అగ్నిహోత్రమంత్రము లుచ్చరించుచు, క్రియలను చేసికొనిచుండిరనుట స్పష్టమైన విషయమే. కొన్నికర్మలలో భార్యాభర్తలిద్దరును కలసిపాల్గొనవలసియుండును.

9. ధాతుష్ఫేయోనా సుకృతస్య లోకే స్యోనంతే సహ
పత్యాకరోమి.(తైత్తిరీయ-ఏకాగ్నికాండ I-5-16)

అర్థము:—సృష్టికర్తకునివాసమైన పుణ్యాత్ములయొక్క లోకమందు భర్తకూడ నీకు నివాస మేర్పడును.

10. సంరాజ్ఞీ శ్వశురేభవ, సంరాజ్ఞీ శ్వశ్రువాంభవ
ననాందరి సంరాజ్ఞీభవ, సంరాజ్ఞీ అధిదేవృషు॥
(ఋగ్వేదము- X-85-46)

అర్థము:—అత్తగారు, ఆడపడుచులు, మరదళ్ల విషయమై ప్రియమైనరాణివిగనుండుము.(కాబట్టి వివాహమైనతోడనే పెనిమిటింటికి యజమానురాలై బంధువులను రంజింపజేయవలెనన్నయెడల, వధువు విద్యావతియగు యువతిగానే యుండవలెను.

11. పెనిమిటియొక్క గృహమునకు రాగానే వధువును గురించి యీక్రిందివిధమున సంబోధించెదరు.

ఇహప్రియం ప్రజయాతే సమృధ్యతా మస్మిన్
గృహే గార్హపత్యాయ జాగృహి, ఏనాపత్యాన్వం
సంసృజస్వాధా జిత్రీ విదథమావ దాసి
(ఋగ్వేదము X-85-27.)

అర్థము:—ఈభర్త గృహమందు నీకు సంతానముచేత యిష్టము వృద్ధిపొందుగాక. ఈభర్తృగృహమందు, గృహయాజమాన్యముకొరకు జాగ్రత్తతో నడుచుకొనుము. [illegible]

వాంఛైరివ వివాదంపదులు గృహవిషయములను గురించి యెవ్వరుగా కూర్చుని చెప్పుకొనుడు.

12. దంపతులు వివాహమైన తరువాత, పెనిమిటింటికి వచ్చినతోడనే, ఒకటి లేక మూడు, లేక యింక నెక్కువ రాత్రులు, నేలమీద నిద్రించుచు ఒండొరులతో కలియకొనక దండ దీక్షవహించి, యింద్రియనిగ్రహమును చూపవలెను. అటు తరువాత, సంభోగించదలచుకొన్న సమయమందు వధువు వరునితో నిట్లు చెప్పును.

> అపశ్యం త్వా మనసా చేకితానం తపసో జాతం
> తపసో విభూతం ఇహ ప్రజామిహ రయిం రరాణః
> ప్రజాయస్వ ప్రజయా పుత్రకామ. 22
> (తైత్తిరీయ-ఏకాగ్నికాండ I 11-1)

అర్థము:— పుత్రులయందు దాసక్తి కలవాడా! తపస్సు బ్రహ్మచర్యాది కర్మలవలన లభించిన యింద్రియనిగ్రహములో పుట్టినటువంటిన్ని తపస్సు అను ధనములో కూడినటువంటిన్ని, నాహృదయమును తెలిసికొన్నటువంటిన్ని నిన్ను మనస్సుచేత చూచితిని; ఇక్కడ నాకు ధనమును, సంతానమును యిచ్చినవాడవై సంతానముద్వారా నీవు పుట్టుము.

13. పై వాక్యమునకు యీ క్రింది విధముగ వరుడు జవాబును యిచ్చుచున్నాడు.

> అపశ్యం త్వా మనసా దీధ్యానాం స్వాయాం తనూం
> ఋత్వియే నాధమానాం ఉపమా ముచ్చాయుమతి
> ర్వధూయాః ప్రజాయ స్వ ప్రజయా పుత్ర
> కామే (తైత్తిరీయ-ఏకాగ్నికాండ I 11-2)

అర్థము:—మనస్సుచేత నిన్ను చూచినాను. పుత్రులను కోరుదానా! ప్రకాశమానమైన నా సంబంధమైన శరీరమందు ఋతుకాలమందైన గర్భమును యాచించుచు, ఊర్ధ్వభాగమందున్న నన్ను యౌవనము గల నీవు అనుభవింపుము. సంతానముద్వారా పుట్టుము.

ఇక్కడ యువతిశబ్దప్రయోగము గమనింప దగినది. ఇట్టి మంత్రములే వివిధ గృహ్యసూత్రములలో ననేకము లుండుటచే, స్థాలీపులాకన్యాయముగ వానిలో కొన్నింటిని మాత్రమే చేర్కొంటిని. ఈ పై శ్రుతిప్రమాణములను బట్టి, వేదకాలములో వధూవరు లిద్దరు, యింద్రియనిగ్రహమును కలిగియుండి సంపూర్ణ యౌవనవంతులై, తపస్సుచే ప్రతిభావంతులై, ఒండొరుల మనోభావములను గ్రహించినవారై సత్సంతానము కొరకు వివాహము చేసికొనుచుండినట్లు స్పష్ట మగుచున్నది. ఈయున్నత స్థితినుండి, ద్విజులు, స్మృతికాలమునాటికి యెట్లు జారి పడిరో ముందు తెలిపెదను.

వల్లూరి సూర్యనారాయణరావు

38 आज 25-10-29

सारडा विधान और हिंदू धर्म शास्त्र ।

[लेखक—श्री भूदेव शर्मा विद्यालंकार ।]

भगवत्कृपासे अन्तको श्री हरविलास सारडाका परिश्रम सफल हो गया। सन् १९२४ से आज तक चार वर्षोंके अन्दर इस बिलके लिये सारडाजीको कितनी दौड़ धूप करनी पड़ी, कितना ऊंचा नीचा देखना पड़ा, कितनी बार असफलता और निराशाके प्रबल झकोरोंका सामना करना पड़ा यह इस बिलके इतिहासपर दृष्टि रखने वालोंसे छिपा नहीं है। पर इन सबका जिस दृढ़ताके साथ आपने सामना किया उसीका यह फल है कि उस दिन बड़ी व्यवस्थापक सभाने बहुत बड़े बहुमतके साथ इस 'बाल-विवाह प्रतिबन्धक' बिलको स्वीकार कर लिया। राज्यपरिषद्ने भी बिना बिंदु और विसर्गके हेर फेरके जैसाका तैसा ही इसे पास कर दिया। और अब बड़े लाटने भी उस-पर अपनी अनुमति की मोहर लगा दी है। इस समाचारसे सुधार विरोधियोंकी आशा पर पानी ही फिर गया। उन्हें बड़ी आशा थी कि उनके शोरगुल और धमकियोंसे प्रभावित होकर बड़े लाट अपनी मनमानी उच्छृङ्खल शक्तिका सदुपयोग करेंगे। पर लाट साहबने कुछ भी नहीं सुना और सारडा बिल नियमानुसार कानून बन ही गया। पहली अप्रैल सन् १९३० से इसका व्यवहार अब अनिवार्य है।

सारडा बिल क्या है? इस सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें आवश्यकतासे अधिक लिखा जा चुका है और लिखा जा रहा है। अतः यहांपर उसके सम्बन्धमें विस्तारसे लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। संक्षेपमें उसका अभिप्राय इतना ही है कि १४ वर्षसे छोटी लड़की तथा १८ वर्षसे छोटे लड़केका विवाह करना अपराध है। और ऐसा सम्बन्ध करनेवाले पिता, संरक्षक या अभिभावक तथा सम्बन्ध करानेवाले पुरोहित या मुल्ला सब दण्डनीय होंगे। देश तथा जातिकी दुरवस्थाका गम्भीरतासे मनन करनेवाले प्रायः सभी विद्वानोंने, वे चाहे गरम दलके हों या नरम दलके, साम्यवादी हों या पूंजीवादी, कवि हों या दार्शनिक, वैज्ञानिक हों या शरीरशास्त्री, इसका एक स्वरसे स्वागत किया है। विदुषी महिलाओंका तो इसके स्वीकृत करानेमें बहुत बड़ा हाथ है। शिक्षित नवयुवकोंने तो उच्च स्वरसे इसका समर्थन किया है। इतना ही क्यों, बीसियों हिंदू सभाओं, धर्म सभाओं तथा जातीय सभाओंने इस बिलसे सहानुभूति प्रकट की है। इतने लोकप्रिय तथा जाति और समाजके हितकर बिलका भी कुछ लोग विरोध कर रहे हैं। इस बिलसे वे ऐसे बिलबिला उठे हैं जैसे गहरे फोड़ेमें नश्तर लगनेसे मरीज। उन्हें इस बिलमें घोर कलिकालके विराट रूपके दर्शन होने लगे हैं। बालविवाहके उठ जानेसे उनकी समझमें धर्मकी रही सही चौथी टांग भी टूट गयी है। मानो बालविवाह ही धर्मकी चौथी टांग थी जिसके सहारे इस कलिकालमें हिन्दू धर्म टिका हुआ था। और मजा यह है कि इस विरोधका कारण अपना स्वार्थ न कहकर धर्मशास्त्रको बतलाते हैं। धर्मशास्त्रों-की दुहाई दी जा रही है मानो धर्मशास्त्र बालविवाहके प्रतिपादक हैं। "आज" के पाठकोंके सामने आज हम इसीकी विवेचना करना चाहते हैं कि वेदादि सच्छास्त्रोंकी विवाहकी आयुके संबंधमें क्या आज्ञा है। और सारडा बिल उसके मार्गमें बाधक है या साधक।

'मिताक्षरा' के विवाह प्रकरणमें एक श्लोक इस प्रकार आया है।—

> अविप्लुत ब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
> अनन्य पूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥५२॥

इसका अर्थ यह है कि जिसका ब्रह्मचर्य कभी खंडित न हुआ हो ऐसा ब्रह्मचारी शुभ लक्षणवाली, सुन्दरी तथा असपिंडा और 'यवीयसीम्' पूर्ण युवावस्थाको प्राप्त स्त्रीके साथ विवाह करे। इसमें स्त्रीका एक विशेषण 'यवीयसीम्' पड़ा है। व्याकरणसे इसकी व्युत्पत्ति 'अतिशयेन युवती यवीयसी ताम्' होती है। अर्थात् 'यवीयसी' वह स्त्री ही कही जा सकती है जो पूर्ण युवती हो। जिसका यौवन पूर्णताको प्राप्त कर चुका हो। ८, १० या १२ वर्षकी कन्याको क्या कोई विद्वान परिपूर्णयौवना कह सकता है? सारडा बिलका कट्टरसे कट्टर विरोधी भी मेरे ख्यालसे ऐसा कहनेका दुःसाहस कभी न करेगा। १५ या १६ वर्षसे पूर्व कोई कन्या पूर्ण युवती नहीं कही जा सकती। यहां लिख देना अनुचित न होगा कि मिताक्षराके टीकाकारने 'यवयसीम्' का अर्थ 'यवीयसी वयसा प्रमाणतश्चन्यूनामुद्वहेत्' ऐसा जो लिखा है वह सर्वथा अशुद्ध है। 'युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्' इस अष्टाध्यायीके सूत्र से 'युव' और 'अल्प' दोनोंके स्थानपर 'कन्' आदेश होता है। अतः 'यवीयसीम्' के स्थानपर यदि 'कनीयसीम्' ऐसा पाठ होता तो टीकाकारकी व्याख्या ठीक मानी जा सकती थी। पर यहां तो विस्पष्ट 'यवीयसीम्' लिखा है। इसका अर्थ पूर्ण युवतीके अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता। अतः इस श्लोकसे सिद्ध है कि मिताक्षराकार पूर्ण युवतीके विवाहके पक्षपाती हैं, बालिकाके विवाहके नहीं इसके आगे ही विवाहार्थी पुरुषके संबन्धमें जो श्लोक लिखा है वह भी दर्शनीय है। लिखा है—

> एतैरेव गुणैर्युक्तःसवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
> यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ॥५५॥

अर्थात् वर भी इन पूर्व लिखित गुणोंसे युक्त होना चाहिये, तथा समान वर्णवाला हो, शास्त्रोंका ज्ञाता हो। जिसके पौरुषकी परीक्षा हो चुकी हो तात्पर्य्य यह है कि जिसका पुरुषत्व पूर्णताको प्राप्त हो चुका हो, युवा हो बुद्धिमान् हो और लोगोंका प्रिय हो उसके साथ ही विवाह करना चाहिये। इस श्लोकके उत्तरार्द्धमें आये दो विशेषण ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो 'यत्नात्परीक्षितःपुंस्त्वे' और दूसरा 'युवा'। क्या कोई थोड़ी सी भी समझ रखनेवाला पुरुष यह सिद्ध करनेका साहस कर सकता है कि २४ या २५ वर्षसे कम आयुवाले युवकमें पुरुषत्व पूर्णताको पहुंच जाता है और वह पूर्ण युवा कहा जा सकता है। गन्दे वातावरणमें रहनेके कारण, या कुसंस्कारों और कुचेष्टाओंके वशवर्ती होनेसे बालकोंमें असमयमें ही जो कामुकता और मैथुनकी बुराइयाँ दिखाई देती हैं वे उनके पुरुषत्व और यौवनकी पूर्णताके प्रमाण नहीं हो सकती हैं। वह तो उनके यौवनके प्रारंभ मात्रकी सूचिका हैं। पूर्ण पुरुषत्व तो पूर्ण युवावस्थामें ही आ सकता है, इसके पहले नहीं। अब यहांपर इसकी विवेचना करना आवश्यक है कि युवावस्था कबसे प्रारंभ होती है, और कब पूर्णताको प्राप्त होती है, कब तक वह स्थिर रहता है, परखी जा सकती है और उसका ह्रास कबसे प्रारंभ होता है।

श्री मद्भागवतके दशमस्कन्धके १२ वें अध्यायके ३७ वें श्लोककी श्रीधरी टीकामें लिखा है—

> कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।
> कैशोरमापञ्चदशा यौवनन्तु ततः परम् ॥"

अर्थात् जन्मसे पांचवें वर्षतक कौमार, दशवेंतक पौगण्ड और पन्द्रहवें तक किशोर अवस्था रहती है और इसके बाद यौवन आता है। इससे इतना तो स्पष्ट हो है कि १५ वें वर्षके बाद अर्थात् १६ वेंसे यौवनका प्रारंभ

होता है। अब जरा सुश्रुत उठाकर देखिये। सुश्रुतमें लिखा है।

> षत्स्रोऽवस्था शरीरस्य वृद्धि, यौवनं, सम्पूर्णता, किञ्चित्परिहाणि श्चेति। आषोडशाद्वृद्धि, आपंचविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः संपूर्णता। ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति॥"

अर्थात् शरीरकी चार अवस्थाएं होती हैं। पहली वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी सम्पूर्णता और चौथी किंचित्परिहाणि। १६ वें वर्षतक 'वृद्धि' रहती है, २५ वें तक यौवन, ४० वें तक सम्पूर्णता और इसके बाद "किंचित्परिहाणि' होती है। कितनी सुन्दर और युक्तियुक्त विवेचना है। जन्मसे लेकर १५ वें या १६ वें वर्षतक बालकके सम्पूर्ण शरीरमें वृद्धि प्रत्यक्ष भाव गम्य है। इसीलिये इस अवस्थाका वृद्धि कहा है। इसके अनन्तर बालकको धातुओंमें विशेष प्रकारकी वृद्धि होने लगती है। शरीरमें वीर्य उत्पन्न होकर सञ्चित होने लगता है। उसका परिपाक २५ वें वर्षतक हो पाता है इसीलिये २५ वें वर्षकी उम्रतक यौवन कहा है। २५ वें वर्षमें जो यौवन मनुष्यको प्राप्त होता है वह ४० वें वर्षतक स्थिर रहता है। शरीरकी धातुओंमें जो कुछ कमी होती है वह इस समयमें पूर्ण हो जाती है। वास्तवमें २५ से ४० तककी ही अवस्था पूर्ण यौवनकी होती है। वास्तवमें यही समय मनुष्यके जीवनमें परिपूर्ण यौवनका होता है। इससे अधिक यौवन कभी आही नहीं सकता। इसीलिये इस अवस्थाका नाम 'सम्पूर्णता' रखा है। इसके बाद शारीरिक शक्तियोंमें शनैः शनैः क्षीणता आने लगती है, इसीलिये इसका नाम 'किंचित्परिहाणि' रखा है। इस श्लोकसे स्पष्ट है कि पुरुषमें पुरुषत्व या यौवन २५ वें वर्षमें ही पूर्णरूपसे आता है। अतएव स्त्री पुरुषकी विवाहकी उम्रका निर्णय करते हुए अगले श्लोकमें ही सुश्रुतकारने लिख दिया—

> पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
> समत्वागत वीर्यौ तौ जानीयात्कुशलोभिषक॥"

अर्थात् २५ वर्षके पुरुष और १६ वर्षकी स्त्रीका ही सहवास उचित है। इस प्रकार मिताक्षरा और सुश्रुतके प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि १६ और २५ वर्षसे कम आयुके स्त्री पुरुषका विवाह शास्त्रानुकूल नहीं है।

अब देखिये मनु महाराज क्या कहते हैं। मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायका दूसरा श्लोक है—

> वेदानधीत्य वेदौवा वेदं वापि यथाक्रमम्।
> अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥

अर्थात् सब वेदोंका या दो वेदोंका अथवा कमसे कम एक वेदका सांगोपांग क्रमसे अध्ययन करके अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। इस श्लोकमें गृहस्थमें प्रवेश करनेके लिये कमसे कम एक वेदके अध्ययनकी शर्त मनुने आवश्यक कही है। और शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है 'द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यंचर" अर्थात् सांगोपांग एक वेदका अध्ययन करनेके लिये १२ वर्षका ब्रह्मचर्य अपेक्षित है। याज्ञवल्क्यने भी कहा है "प्रति वेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानिपञ्चवा" मनु स्मृतिके तृतीयाध्यायके प्रथम श्लोक "षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यंगुरौत्रैवेदिकं व्रतम्।" से भी यही पता लगता है कि एक वेद अध्ययनके लिये ऋषियोंने १२ वर्षका समय साधारणतयामाना है।

अब देखना यह है कि कमसे कम एक वेदका अध्ययन समाप्त करने तक ब्रह्मचारीकी क्या उम्र होती है। इसके लिये वेदारम्भका समय देखना पड़ेगा। मनुस्मृतिके दूसरे अध्यायके ३६ वें श्लोकमें लिखा है—

> गर्भाष्टमाब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
> गर्भादेकादशे राज्ञः गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

गृह्यसूत्रोंमें भी लिखा है—"अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत गर्भाष्टमेवा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्" अर्थात् गर्भसे या जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन संस्कार करे। वेदारम्भ उपनयनके साथ ही होता है। इसलिये ८+१२=२० अर्थात् कमसे कम उम्र गृहस्थाश्रम प्रवेशकी यदि कोई मनु शास्त्र सम्मत हो सकती है तो २० वर्षकी हो सकती है। हमारे इस निर्णयपर सम्भव है कुछ सज्जन यह आक्षेप करें कि मनुस्मृतिमें एक श्लोक यह भी तो लिखा है।

> "ब्रह्मवर्चस्कामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
> राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

अर्थात् ब्राह्मण अपने बालकको विशेष ब्रह्मवर्चस्वी बनाना चाहे तो पांचवें वर्षमें उपनयन करे। इसी प्रकार विशेष प्रकारका शक्तिशाली और व्यवहार कुशल पुत्रको बनानेकी अभिलाषा हो तो क्षत्रिय और वैश्य अपने अपने बालकका छठे और आठवें वर्षमें उपनयन करें। इसके उत्तरमें इतना ही निवेदन है कि इस श्लोक द्वारा मनुने साधारण धर्मका प्रतिपादन नहीं किया है। यदि यह साधारण धर्म मान लिया जायगा तो ऊपर लिखित मनुवाक्य तथा गृह्यसूत्रोंसे विरोध हो जायगा। इसलिये मानना पड़ेगा कि यह मनुस्मृतिका श्लोक साधारण धर्मका प्रतिपादक नही है। इसके अतिरिक्त अवस्था विशेषमें उपनयनका समय कुछ पहले कर देनेका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि गृहस्थादि आश्रमोंमें प्रवेशका समय भी उतना ही पहले होता जायगा। इसका तो इतना ही तात्पर्य्य है कि साधारण अवस्थासे कुछ पहले वेदारम्भ करा देनेसे बालकको उतना ही और समय ब्रह्मचर्य तथा वेदाध्ययनका अधिक मिल जायगा जिससे वह कुछ अधिक विद्योपार्जन कर सकेगा। वास्तवमें देखा जाय तो महाराज मनुका सिद्धान्त तो यह है—

> चतुर्थमायुषो भागं मुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।
> द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहेवसेत्॥
> मनु० अ० ४ श्लो० १

यह मनुस्मृतिके चतुर्थाध्यायका पहला श्लोक है। मनुजी कहते हैं कि आयुके प्रथम चौथेभागमें गुरुके समीप रहकर विद्याध्ययन करे और तदनन्तर दूसरे चौथे भागमें विवाह करके गृहस्थीमें रहे। विचारणीय यहां यह है कि अपनी आयुका या किसीकी आयुका जब किसीको पता ही नहीं है तब उसके चार भाग करके मनुके आज्ञानुसार काम कैसे किया जा सकता है। इसका यही उत्तर है कि वेदादि सच्छास्त्रोंमें पुरुषकी जो साधारण आयु मानी है जिसके लिये वेदमें सैकड़ों मंत्रोंसे प्रार्थना की गयी है, यहांपर उसी आयुका ग्रहण करना चाहिये। शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है 'शतायुर्वै पुरुषः" स्मृतियों और गृह्यसूत्रोंमें जिस प्रकार आश्रमोंका विभाग किया गया है उससे भी यही सिद्ध होता है कि पुरुषकी आयु सौ वर्षकी मानी गयी है। वेदमें तो 'शतंजीवेम शरदः' ऐसे सैकड़ों वाक्य हैं जिनमें १०० वर्षकी आयुके लिये प्रार्थना की गयी है। इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि पुरुषकी आयु शास्त्रकारोंने १०० वर्षकी मानी है। इस प्रकार इस श्लोकका यही तात्पर्य है कि सौका प्रथम चौथा भाग अर्थात् २५ वर्षकी उम्रतक गुरुकुलमें रहकर विद्याध्ययन करना चाहिये इसके बाद गृहस्थीमें प्रवेश करना चाहिये। मनुका तथा अन्य सब आचार्योंका यही सिद्धान्त है। इसके विरुद्ध जो श्लोक मिलते हैं वे सम्यग्धर्मके प्रतिपादक नहीं है, या तो आपद्धर्मके प्रतिपादक हैं अथवा कपोल कल्पित और प्रक्षिप्त हैं जैसा कि इसी मनुस्मृतिके नवम अध्यायका ९४ श्लोक है। बालविवाहके समर्थक इसी श्लोककी सभाओंमें गर्जना किया करते हैं। श्लोक इस प्रकार है।

> "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्॥
> त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥"

अर्थात् यदि कभी धर्मसंकट उपस्थित हो जाय तो ३० वर्षका पुरुष १२ वर्षकी कन्यासे विवाह करे और २४ वर्षका पुरुष ८ वर्षकी कन्याको ब्याह ले। हम तो इस श्लोकको क्षेपक मानते हैं पर हमारे जो भाई आंख मीचकर जो कुछ पुस्तकोंमें छपा है उसे प्रमाण मानते हैं उनसे भी हम पूछना चाहते हैं कि इस श्लोकमें जो कुछ कहा गया है क्या वह सम्यद्धर्म है, या साधारण धर्म है? कदापि नहीं। इसमें तो स्पष्ट लिखा है "धर्मे सीदति" अर्थात् जब धर्मका नाश होता हो, धर्मसंकटमें कोई पड़ जाय उस समय ऐसा करना चाहिये। मुसलमानी जमानेमें जब कुमारी कन्याओंका जीवन यवनोंके कारण बड़ा संकटापन्न था ऐसा मालूम होता है कि यह श्लोक उसी समय मनुस्मृतिमें मिला लिया गया होगा। जो कुछ हो इस श्लोककी आज्ञाका व्यवहार ऐसे ही समयके लिये मानना पड़ेगा अन्य साधारण अवस्थाके लिये नहीं। इसलिये इसके आधारपर बालविवाहका प्रतिपादन और सारडा बिलका विरोध करना युक्ति युक्त नहीं प्रतीत होता। (अपूर्ण)

[गतांकसे आगे]

अब जरा गृह्यसूत्रोंको भी उठाकर देखिये कि उनकी क्या आज्ञा है। पारस्कर गृह्य सूत्रमें पाणिग्रहणके बाद सोहागरात करनेके विषयमें लिखा है—

> "अधः शयीयाताम्। सम्वत्सरं मिथुन मुपेयाताम्। द्वादश रात्रं षड्रात्रं त्रिरात्र मन्ततः।"

अर्थात् विवाह संस्कारके बाद स्त्री पुरुष दोनों एक वर्षतक भूमिपर शयन करते हुए ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें। उसके बाद मैथुन करें। एक वर्षतक यदि ऐसा न कर सकें तो १२ रात्रितक ही ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें। १२ रात्रि यदि ब्रह्मचर्यका निर्वाह न कर सकें तो ६ रात्रि और कमसे कम तीन रात्रि तो अवश्य ही भूमिपर सोवें और मैथुनसे बचें। यहांपर अधिकसे अधिक एक वर्षका ही समय मैथुनसे बचनेके लिये कहा गया है। अब विचारणीय यह है कि किस उम्रमें विवाह किया जाय जिससे अधिकसे अधिक एक वर्षके बाद तो पतिपत्नी गर्भाधानके योग्य अवश्य ही हो जायं। तीन, छः और बारह रात्रिकी तो बात ही क्या है आठ दस वर्षकी विवाहिता कन्या भी क्या एक वर्ष बाद इस योग्य हो सकती हैं कि गृह्यसूत्रोंकी आज्ञाका पालन कर सकें! और इस अवस्थामें गर्भाधान करनेसे क्या उत्तम, नीरोग और हृष्ट पुष्ट सन्तान उत्पन्न की जा सकती है। कदापि नहीं। यहांपर यह लिखना कदाचित् अप्रासंगिक न होगा कि आजकल हिंदुओंमें प्रचलित गौना और रौनाकी सब प्रथाएं अवैदिक और अशास्त्रीय हैं। वास्तवमें जबसे यहां बालविवाहकी प्रथा प्रचलित हुई तब हीसे गौना रौनाकी प्रथा भी प्रचलित हुई प्रतीत होती है। क्योंकि छोटी उम्रकी कन्या गृहस्थ धर्मके पालन करनेमें सर्वथा अयोग्य होती हैं और पतिगृहमें बिना इसके रहना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसीलिये इन प्रथाओंका प्रचार किया गया है और दो दो तीन तीन वर्षोंतक विवाहानन्तर भी कन्याएं पतिगृहमें नहीं जाने दी जातीं। ऐसे विवाह सर्वथा निरर्थक और अशास्त्रीय हैं। विवाह वही उत्तम है जिसके एक वर्ष बाद गर्भाधान करके उत्तम सन्तान उत्पन्नकी जा सके इसीलिये सुश्रुतमें शारीरस्थानमें लिखा है—

ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत ॥

अर्थात् १६ वर्षसे कम उम्रवाली स्त्रीमें २५ वर्षसे कम उम्रवाला पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ ही नष्ट हो जाता है। यदि कदाचित् गर्भ रह गया और सन्तान हुई तो वह अधिक दिन जीवित नहीं रहती। और यदि जाती है तो अत्यन्त दुर्बल और बीमारियोंका घर होता है। इसलिये छोटी उम्रकी कन्यामें कभी गर्भाधान न करे। चरककी इस आज्ञाके विरुद्ध चलनेके कारण ही आज बालमृत्यु और अकाल मृत्युकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती चली जा रही है। जो जीवित हैं उनके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें बढ़ती हुई डाक्टर, हकीम और वैद्योंकी संख्या तथा समाचारपत्रोंमें छपनेवाले विज्ञापन ही पर्य्याप्त प्रमाण हैं। उपरिलिखित मनु, मिताक्षरा, चरक, सुश्रुत और गृह्यसूत्रोंके प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि १० या १२ वर्षकी कन्याका विवाह अशास्त्रीय है। शास्त्रीय मर्यादा तो यही है कि १६ वर्षकी कन्याका २५ वर्षके युवकके साथ विवाह किया जाय। पर हमारे सारडा बिलके विरोधी भाई सम्भवतः हमारी इस बातसे सहमत नहीं होंगे क्योंकि उनके यहां तो लिखा है 'कलौ पाराशरः स्मृतिः।" अर्थात् कलियुगमें तो पाराशर स्मृति ही प्रमाण है और वहां लिखा है।

अष्ट वर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी ।
दश वर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
प्राप्तेतु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ॥

अर्थात् आठ वर्षकी लड़कीको गौरी कहते हैं, नव वर्षवाली रोहिणी कही जाती है, दश वर्षवाली कन्या कहाती है और इसके बाद वह रजस्वला होती है। इसलिये १२ वां वर्ष लगतेही जो अपनी कन्याका विवाह नहीं करता उसके पितृगण प्रति मास उस कन्याका रजःपान करते हैं। इसी प्रकार शीघ्रबोधमें लिखा है।

"माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्" ॥

अर्थात् वह माता, पिता और बड़ा भाई नरक गामी होते हैं जो घरमें कन्याको रजस्वला होते हुए देखते हैं। तात्पर्य्य यह है कि रजस्वला होनेसे पहले ही कन्याका विवाह कर देना चाहिये।

कितनी स्पष्ट आज्ञा है। बाल विवाहके पक्षमें इससे अधिक जोरदार और क्या प्रमाण हो सकता है? भला कौन ऐसा मूर्ख होगा जो जानबूझ कर स्वर्गका रास्ता छोड़ कर नरकमें जाना चाहेगा? और पितरोंको रजः पान करानेका पाप अपने सिरपर लेगा? फिर जैसे कल विवाह करना है वैसे आजही क्यों न मुन्नीका ब्याह रच दिया जाय और स्वर्गका पासपोर्ट अनायास ही ले लिया जाय। कन्या मरे चाहे जहन्नुममें जाय पर पिताजी तो स्वर्ग पहुंच ही जायंगे। फिर सम्भव है प्रसन्न यजमान पुरोहित जीको भी वहीं बुला लें क्योंकि उन्हीं की बदौलत उन्हें स्वर्ग मिला था। ओह! कैसा स्वार्थ है? कितना अनर्थ है?

हम इन श्लोकोंको और इस प्रकारके अन्य वाक्योंको अशास्त्रीय और अवैदिक मानते हैं। यह श्लोक गृह्यसूत्रोंसे विरुद्ध है, मनुके विपरीत है तथा साधारण तर्कके भी प्रतिकूल हैं अतः अप्रमाण हैं। हमारे वे भाई जो 'कलौ पाराशरः स्मृतिः' के माननेवाले हैं 'मन्वर्थ विपरीता या सा स्मृतिर्नैवशस्यते।' के प्रतिकूल भी नहीं चल सकते हैं। यह वाक्य भी उनके शास्त्रोंमें लिखा है, इसके माननेके लिये वह बाध्य हैं। मनुका विवाहकी उम्रके सम्बन्धमें क्या विचार है यह हम ऊपर दिखला भी चुके हैं।

यहाँपर अब हम यह भी दिखा देना चाहते हैं कि पितृगृहमें कन्याके रजस्वला होनेके सम्बन्धमें मनुका क्या विचार है। मनुस्मृतिके नवम अध्यायका ९० श्लोकमें लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥
काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित ॥

इसका अर्थ यह है कि रजस्वला होनेपर भी तीन वर्षों तक कन्या प्रतीक्षा करे तदनन्तर योग्य पतिको प्राप्त करे। रजस्वला होनेपर भी भले ही जन्मभर कन्याको घरमें रखें पर किसी अपात्रके हाथमें उसे कदापि न सौंपे। समझनेकी बात है कि यदि रजस्वलाके दर्शन मात्रसे घरके घरको नरकमें जाना पड़ता और पितरोंको रजःपान करना पड़ता तो कदापि सम्भव नहीं था कि मनु इस प्रकार तीन तीन वर्षतक सत्पात्रकी प्रतीक्षामें कन्याको अविवाहित रहनेकी आज्ञा देते। इसलिये इस प्रकारके वाक्योंका इतना ही तात्पर्य्य मानना पड़ेगा कि कन्या जब ऋतुमती होने लगे उसके विवाहके लिये योग्य वरकी तलाश माता पिता और भाईको बड़ी तत्परताके साथ करना चाहिये। वास्तवमें मन्वर्थ विपरीत होनेके कारण यह अप्रामाणिक है।

(अपूर्ण)

[शेषांश]

अब जरा 'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी' की प्रामाणिकताकी भी छान बीन कर देखिये। सनातनधर्मके सिद्धांतानुसार विवाहसे पूर्व कन्याके दस देवपति होते हैं जिनकी गणना अथर्व वेदमें इस प्रकार की गयी है—"इन्द्राग्नि द्यावा पृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा। बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्मसोम इमां नारीं प्रजयावर्धयन्तु।" अथ० का० १४ अनु० १ सू० १ मं० ५४ अर्थात् १. इन्द्राग्नि, २. द्यावा पृथिवी, ३. मातरिश्वा, ४ मित्रा वरुणा, ५. भगः ६. अश्विनोभा, ७. बृहस्पति ८. मरुतः, ९. ब्रह्म और १०. सोम, ये दश देवता विवाहसे पूर्व कन्याका अपने अपने अंश द्वारा पालन करते हैं इसीलिये पति कहलाते हैं। इसके बाद "उतपत्य तयो दश पतिमेकादशं कृधि।" आदिके अनुसार ग्यारहवां नम्बर मनुष्य पतिका आता है।

यहांपर दो बातें विशेष विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि एक एक देवताका कितने कितने समय तक आधिपत्य रहता है दूसरे कि उनका क्रम क्या होता है। प्रथम बातके संबंधमें हमारा विचार यह है कि शास्त्रोंमें ऋषियोंने कन्याके विवाहकी जो उम्र मानी है, वही यहांपर हमें माननी पड़ेगी। शास्त्रोंमें कन्याकी विवाह योग्य आयु १६ वर्ष मानी गयी है जैसा कि हम प्रमाणों द्वारा पहले सिद्ध कर चुके हैं। अतः १५ वें वर्ष तक यदि दस देवताओंका आधिपत्य कन्या पर माना जाय तो अनुचित न होगा। इस प्रकारसे दस ड्योढ़े पन्द्रह अर्थात् १॥ वर्ष प्रत्येक देवताका आधिपत्य कन्यापर मानना पड़ेगा। दूसरी बातके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि जबतक कोई प्रबल आज्ञा न हो तबतक यथाश्रुत क्रम ही देवताओंका मानना उचित होगा। यथाश्रुत क्रममें 'सोम' देवताका नम्बर दसवां है। इसलिये 'सोम' का आधिपत्य कन्यापर १३॥ वर्षकी उम्रसे १५ वर्षकी उम्रतक मानना होगा। इधर ऋग्वेदमें एक स्थानपर आया है 'सोमोगौरी अधिश्रितः' अर्थात् 'सोम' गौरीका अधिष्ठाता है। इसका तात्पर्य हमारे सनातनी भाई यह मानते हैं कि सोम जब अधिष्ठाता होता है तब कन्याकी 'गौरी' संज्ञा होती है। बहुत ठीक ऐसा ही सही पर इस प्रकार इस मंत्र से १५ वें वर्षमें कन्याकी गौरी संज्ञा सिद्ध होती है और पाराशरी श्लोक कहता है कि आठ वर्षकी कन्याकी ही गौरी संज्ञा होती है। कितना भारी अन्तर है, दुगनेका फर्क!

और देखिये ऋग्वेदके १० वें मंडलमें लिखा है—'सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टेपतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ सू० ८५ मं० ४२ ॥ फिर लिखा है—"सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये। रयिंच पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ सू० ८५ मं० ४३ ॥ यही मन्त्र इसी क्रमसे अथर्व वेदके १४ वें कांडके दूसरे अनुवाकमें भी आये हैं। अन्तर केवल इतना है कि प्रथम मन्त्रका पूर्वार्ध ऋग्वेदमें 'सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः' लिखा है और अथर्वमें "सोमस्यजाया प्रथमं गन्धर्वस्तेपरः पतिः।" ऐसा लिखा है, पर अर्थमें इससे कुछ अन्तर नहीं आता। इन मन्त्रोंमें कन्याके तीन ही मुख्य देवता अधिष्ठाता माने गये हैं। १ सोम, २ गन्धर्व और ३ अग्नि इसके बाद चौथा पति मनुष्य माना है। अब यदि १५ वर्षोंको तीन देवताओंमें विभक्त कर दिया जाय। प्रत्येक देवताका अधिष्ठातृत्व पाँच पांच वर्षका मानना पड़ेगा जिसका फल यह होगा कि 'सोम देवताका अधिष्ठातृत्व प्रथम पांच वर्षकी उम्रतक मानना होगा और इसी उम्रमें कन्याकी गौरी' संज्ञा माननी पड़ेगी जो कि पाराशरी श्लोकके विरुद्ध पड़ता है। यदि कहिये कि पाराशरी श्लोकके आधारपर आठ वर्षतककी कन्याकी 'गौरी' संज्ञा मानेंगे और उसी समयमें कन्याका अधिष्ठाता 'सोम' को मानेंगे तो शेष दो देवता गन्धर्व और अग्निको भी आठ आठ वर्षका समय देना पड़ेगा और क्यों न दिया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि २४ वें वर्षके बाद कन्याका विवाह सिद्ध होगा। छोटी आयुका विवाह तो फिर भी सिद्ध नहीं हो सकता है। इस प्रकार विचार करनेसे स्पष्ट है कि 'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी' आदि श्लोक कपोल कल्पित हैं तथा अशास्त्रीय हैं अतः इनको प्रमाण मानना सर्वथा अनुचित है।

इसके पहले कि इस लेखको मैं समाप्त करूं एक दो ऐसे वेद मन्त्र पाठकोंके सामने रख देना चाहता हूँ जिनसे विवाहकी उम्रके सम्बन्धमें वेदोंका क्या मन्तव्य है इसपर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके। अथर्ववेदके १४ वें काण्डके दूसरे अनुवाकका १४ वां मन्त्र है—"आत्मन्वती उर्वरा नारीयमागन्। तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ॥ इत्यादि ॥ अर्थात् यह स्त्री जो अपने स्वरूपको समझने वाली है और 'उर्वरा' जिसमें सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति पूर्णरूपसे विद्यमान है प्राप्त हुई है उसमें पुरुष गर्भाधान करे। इस बारह वर्षकी कन्याको अपने स्वरूपका कितना बोध होता है तथा संतान उत्पन्न करनेकी कितनी शक्ति उसमें होती है पाठक स्वयम् ही इस पर विचार करें। २—इसी अथर्व वेदके ११ वें काण्डके तीसरे अनुवाकका मंत्र है "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।" इत्यादि अर्थात् ब्रह्मचर्यके द्वारा ही कन्या ही युवापतिको प्राप्त करे। सोचनेकी बात है कि १२ वर्षतककी कन्याओंका ब्रह्मचर्य हो ही क्या सकता है? इस अवस्था तक शरीरमें सब धातुएं भी भली भांति नहीं उत्पन्न हो पाती उनके परिपाक और पोषणकी बात ही क्या है। ३—शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है—"ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।" का० १४। कितनी स्पष्ट आज्ञा है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त करके गृहस्थ में प्रवेश करे, और गृहस्थी समाप्त करके वानप्रस्थी हो तदनन्तर संन्यासी हो। विचारनेकी बात यह है कि १५ या १६ वर्षकी उम्रमें क्या यह सम्भव है कि पुरुष ब्रह्मचर्याश्रमको समाप्त कर सके। यदि नहीं कर सकता तो उसे गृहस्थीमें भी उस उम्रमें प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं है।

लेख काफी बढ़ गया है, भय है कहीं सम्पादकजी इसके कलेवरपर रक्तमुखी कलम कुल्हाड़ीका प्रहार न कर बैठें इसलिये अन्तमें इतना ही लिखकर हम आज समाप्त करते हैं कि शास्त्रोंमें बालविवाहका कहीं प्रतिपादन नहीं है। धर्मशास्त्र १६ वर्षकी स्त्री और २५ वर्षके पुरुषके विवाहको ही सम्बन्धमें कहते हैं। १०,१२ वर्षकी कन्याओंका विवाह सर्वथा अशास्त्रीय और अवैदिक है। होना तो यह चाहिये था कि धर्म शास्त्रों और वेदोंकी आज्ञाकी रक्षाके लिये सनातन धर्मावलम्बी पण्डित एक स्वरसे सारडा बिलका स्वागत करते क्योंकि उसके द्वारा बाल विवाहकी रोक होती है और वैदिक आज्ञाके पालनेमें किसी प्रकारकी बाधा भी नहीं पड़ती। बल्कि यदि यह कहा जाय तो अयुक्त न होगा कि यह बिल एक प्रकारसे वेद तथा धर्म शास्त्रोंकी आज्ञा पालन करानेमें बड़ा सहायक है। पर कैसी विचित्र बात देखने और सुननेमें आ रही है कि समर्थन और स्वागत तो दूर उलटे इसका विरोध करनेका उपक्रम किया जा रहा है, और वह भी वेद और शास्त्रोंकी दुहाई देनेवाले धर्म प्राण सनातनधर्मावलम्बी पण्डितोंकी ओरसे। किसलिये? इसलिये कि जिससे बाल विवाहकी प्रथा बनी रहे। कैसा अनर्थ है, कैसी उलटी मति है। क्या सत्य ही घोर कलिकाल आ गया है जो पंडितोंकी मतिमें भी भ्रम हो गया है। शास्त्रकी दृष्टिसे भले ही न कहा जा सके पर देशकाल और जातियोंको दृष्टिमें रखकर विवाहकी उम्रके सम्बन्धमें जो कुछ रियायत उसमें कर दी गयी है हमें उसका स्वागत करना चाहिये क्योंकि हमारे शास्त्रोंकी आज्ञाके पालन करनेमें वह बाधक नहीं है अपितु साधक है।

सज्जन हैं जो महात्माजीसे सब बातोंमें सहमत नहीं हैं। पर ये लोग भी उनका आदर करते ही हैं, उनसे मिलनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं। उदाहरण नौकरशाहीका ही लीजिये। महात्माजीके कारण यदि किसीकी सबसे अधिक हानि हुई हो तो वह भारतीय नौकरशाही ही है, पर यह दृढ़ताके साथ कहा जा सकता है कि अंग्रेज जितना आदर महात्मा गांधीका करते हैं उसका दशांश भी अन्य किसी भारतसंतानका नहीं करते। इसका कारण स्पष्ट है। जो स्वयम् विचारशील हैं वे ही महान् आत्माको पहचान सकते हैं। विरोधीका भी आदर सच्चा वीर ही कर सकता है। कायर ही द्वेष करता है। महात्मा गांधी यदि अजातशत्रु कहे जायं तो अनुचित न होगा, कारण आप प्रेममय हैं, सत्यमय हैं, अहिंसामय हैं। आप किसीको शत्रु नहीं समझते—केवल कपट और स्वार्थको, दम्भ और पाखण्डको ही अपना शत्रु मानते हैं। अतः यदि कपटी और स्वार्थी, दम्भी और पाखण्डी महात्माजीको अपना शत्रु समझें और उनसे द्वेष करें तो कोई आश्चर्य नहीं। हमारे देशमें इस वर्गके लोग हैं, न होते तो वह ऐसी हीनावस्थामें अबतक क्यों पड़ा रहता? अन्धकारप्रिय उलूक भगवान् सहस्ररश्मीसे द्वेष करता ही है। महात्मा गांधीके थोड़ेसे द्वेषी भी हैं। पर इनसे उनका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। गन्दगीसे भरे कोनेमें छिपे हुए अन्धकारसे बाहरका प्रकाश और भी भला मालूम होता है। अपवाद नियमको और भी स्पष्ट करता है। पाखण्डके विरोधसे धर्मका प्रकाश और भी बढ़ता है। इस अशरजनकृत हिंसाके कारण आपकी अहिंसा और भी खिलती है—और भारतवर्षके साथ काशी भी अधिकतर प्रेमके साथ कहती है—

महात्मा गांधीकी जय!

मिति सौर ६ आश्विन सं० १९८६

स्वागत!

काशीकी ओरसे आज हम भारतके अनभिषिक्त राजा महात्मा गाँधीका सादर और सप्रेम स्वागत करते हैं। जिस समय संसारमें विलासिता और पार्थिव सुखकी अभिलाषा मनुष्यको नैतिक और धार्मिक लक्ष्यकी ओरसे पराङ्मुख कर रही है, उस समय संसारके विख्यात लोगोंमें अकेले महात्मा गांधीने ही त्याग और सत्यका झण्डा खड़ा किया है। जब सारा संसार भीषण रक्तपातके लिये तैयार हो रहा है, अकेले इसी साधु पुरुषने अहिंसाकी आवाज बुलन्द की है। जब संसारभरमें पूंजीपति बड़े बड़े भयावने गुट बनाकर मनुष्यके लिये आवश्यक पदार्थ हस्तगत कर रहे हैं, महात्मा गांधी उस आर्थिक बन्धनका विरोध कर सरल और छोटे व्यवसाय-वाणिज्यका समर्थन कर रहे हैं। जब संसारका धन बड़े बड़े उद्योग धन्धोंका संघटन कर श्रमजीवियोंको अप्राकृतिक अवस्थामें रखने और गुलाम बनानेका यत्न कर रहा है, महात्मा गांधी निर्धन निर्बल और असहाय कृषकके लिये आंसू बहाते हैं और उन्हें कमसे कम अन्न तथा वस्त्रके लिये औरोंका मुंह न देखनेका उपदेश कर रहे हैं। यह महात्मा गान्धीके ही उपदेश और अद्भुत त्यागमूलक संघटनका फल है कि बारडोलीने नौकरशाहीको भी न्याय करनेके लिये बाध्य किया तथा समस्त बम्बई प्रान्तमें भूकरनीतिका संशोधन करना अनिवार्य बना दिया। आज इस देशमें ऐसा कौन पुरुष है जो अकेले करोड़ों पीड़ितोंकी इतनी सहायता कर सकता हो? कौन ऐसा पुरुष है जिसने गरीबके लिये अपनी सम्पत्ति दे डाली हो, खुद भी गरीब बन गया हो और गरीबोंके लिये ही बीमार होनेपर भी देशभरका दौरा करता हो?

महात्मा गांधीका गौरव भारतको है। भारतवासी यह कहते गौरवान्वित होते हैं कि वर्तमान समयके तीन चार महापुरुषोंमें महात्मा गांधीका नाम आदरके साथ लिया जाता है—सबसे पहले लिया जाता है। यूरोप और अमरीकामें कई बार कई समाचारपत्रोंने अपने पाठकोंसे प्रश्न किया था कि आपलोग बतायें कि संसारके प्रसिद्ध व्यक्ति कौन हैं। इनके उत्तरमें सर्वत्र महात्मा गाँधीको प्रथम स्थान मिला है। अन्य पुरुषोंके सम्बन्धमें मतभेद है पर महात्मा गांधीको संसार आज एकस्वरसे महापुरुष कहता है, यह हम भारतसन्तानोंके लिये भी कम हर्ष और गौरवकी बात नहीं है। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि जो पुरुष पाश्चात्य पार्थिव सभ्यताका विरोध कर सत्य-ज्ञानका आत्म-ज्ञानका समर्थन करता हो, उसका आदर बड़े बड़े करोड़पति भी करते हैं? इसका कारण क्या है?—इसका कारण महात्माजीकी सत्यनिष्ठा, उनका तप, उनका त्याग और उनकी अद्भुत प्रतिभा है। इसीसे संसार उनके सामने सर झुकाता है। यूरोप भी उनके दर्शनोंके लिये लालायित हो रहा है। कई बार यूरोपसे आपको निमन्त्रण दिया गया पर मातृभूमिकी सेवा छोड़कर आप जा नहीं सके। संसारके विचारशील पुरुष भारत आते हैं, यहांके अनेक स्थान देखते हैं पर जबतक महात्माजीसे नहीं मिल लेते तबतक अपनी भारतयात्राको सफल नहीं समझते। केवल यही नहीं, जो भारत नहीं आ सकते ऐसे अनेक विख्यात विदेशी विद्वान् पत्रद्वारा महात्माजीसे भिन्न भिन्न विषयोंपर मत लिया करते हैं।

साथ ही यह भी कहना [illegible] विदेशोंमें और भारतमें भी ऐसे अनेकानेक

शेष एक के नीचे)

మనదేశము

మనదేశమునుగూర్చి యీ క్రింది విషయముల భారతమ హోళయుల కెఱింగించెద.

(1) విస్తీర్ణము

దేశవిస్తీర్ణము. 1,805,330 చ. మైళ్లు. బ్రిటిష్ ప్రాంతములు 1,094,300 చ. మైళ్లును; స్వదేశరాజ్యములు 711,033 చ. మైళ్లను వైశాల్యము కలిగియున్నవి.

(2) పట్టణములు-పల్లెలు

పట్టణములసంఖ్య 2316. పల్లెలసంఖ్య 685665. లక్షలకంటె హెచ్చు జనసంఖ్యగల పట్టణములు 33.

(3) జనసంఖ్య

జనసంఖ్య 318,943,480. పురుషులు 164,946,926 ను, స్త్రీలు 163995,554 ను గలరు.

(4) మతములు

హిందువులు 100 కి 89 చొప్పునను, క్రైస్తవులు 100 కి 1.5 చొప్పునను గలరు.

(5) వితంతువులు

పత్నీవిహీనులు 100 కి 8.4 చొప్పునను, పతివిహీనులు 100 కి 17.5 చొప్పునను గలరు.

(6) విద్యావ్యాప్తి

100 కి 8 మంది చొప్పునను మాత్రమే చదువను వ్రాయను గలరు.

(7) భాషలు

హిందూదేశమంతట 222 భాషలు మాట్లాడబడుచున్నవి, ఒక హిందీభాషనే 12 కోట్ల జనులు మాట్లాడుదురు.

(8) వృత్తులు

100 కి 73 మంది వ్యవసాయమువలనను 1.5 మంది ఉద్యోగమువలనను జీవించుచున్నారు.

(9) రాష్ట్రములు

బ్రిటిష్‌వారిచే స్వయముగ పాలింపబడుచున్న రాష్ట్రములసంఖ్య 14. వీనిలో బర్మా మిగుల పెద్దది. విస్తీర్ణము 236 వేల చ. మైళ్లు. మిక్కిలి చిన్నది. కొడగు విస్తీర్ణము 1582 చ. మైళ్లు. మొత్తము జిల్లాలసంఖ్య 267.

(10) స్వదేశరాజ్యములు

స్వదేశ రాజ్యములు 600 గలవు. మిక్కిలి పెద్దది. హైదరాబాదు దీని విస్తీర్ణము 83 వేల చ. మైళ్లు. మిక్కిలి చిన్నది. లావా విస్తీర్ణము 19 చ. మైళ్లు.

(11) ఫ్రెంచి ప్రాంతములు

ఇండియాలో ఫ్రెంచి ప్రదేశముల వైశాల్యము 203 చ. మైళ్లు.

(12) భూములు

వ్యవసాయమున కర్హమగుభూమి 667,110031 ఎకరములు. అడవుల క్రిందనున్న భూమి 86987005 ఎకరములు.

(13) వర్షము

సంవత్సర మొకటింటికి సరాసరి 38 అంగుళముల వర్షము కురియుచుండును.

(14) పంటలు

వరి 8 కోట్లు, గోధుమలు 240 లక్షలు, చెరకు 28లక్షలు, కాఫీ 95 వేలు, తేయాకు 7 లక్షలు, ప్రత్తి 182 లక్షలు, జనపనార 20 లక్షలు, పొగాకు 10 లక్షలు ఎకరములలో పండింపబడుచున్నది. ఏటేట 3 కోట్ల టన్నులవడ్లును, 87 లక్షల టన్నుల గోధుమలును, 63 లక్షలబేళ్ల ప్రత్తియును పండుచున్నది.

(15) ఖనిజసంపద

1927 లో 70 లక్షల పౌనుల విలువగల రాక్షసిబొగ్గును 68 లక్షల పౌనులు విలువగల పెట్రోలియమును, 29లక్షలపౌనుల విలువగల మాంగనీసును, 17 లక్షల పౌనుల విలువగల సీసమును, 16 లక్షల పౌనుల విలువగలబంగారమును లభించెను. 1927 లో మొత్తముమీద 280 లక్షల పౌనుల విలువగల ఖనిజములు త్రవ్వితీయబడెను.

(16) నూలుపరిశ్రమ

1928 లో 80 కోట్ల పౌండుల తూనికగల దారము యంత్రములమూలమున తయారుచేయబడెను.

(17) నూలుమరలు

1927 లో 336 నూలువడకు పట్టియు నేతనేయు పట్టియు యంత్రశాలయము లుండెను. ఆమరలద్వారా 87 లక్షల కదుళ్లును, 161 వేల మగ్గములును పనిచేయుచుండెను.

(18) ఎగుమతులు

1927,28 లో అన్యప్రాంతములకు అనగా విదేశముల కెగుమతి చేయబడిన విలువ 319 కోట్ల రూపాయలు.

(19) దిగుమతులు

1927-28 లో 249 కోట్ల రూపాయల విలువచేయు సరకులు దిగుమతి యాయెను. ఇందులో 65 కోట్ల రూపాయల విలువగల నూలువస్త్రములును, 679 లక్షల విలువచేయు నూలును, 28 కోట్ల విలువచేయు లోహములు, లోహపాత్రలును, 6 కోట్ల విలువచేయు మోటారుబండ్లును, 14 కోట్ల విలువ చేయు శర్కరయును, 3 కోట్ల విలువచేయు కాగితములు అట్టలును, 39 లక్షల విలువచేయు అగ్గిపెట్టెలును దిగుమతులు చేయబడెను.

(20) కేంద్రప్రభుత్వాదాయము

1927-28 లో ఇండియా ప్రభుత్వమునకు వచ్చిన ఆదాయము 128 కోట్ల రూపాయలు. వ్యయము 128 కోట్లే. ఒకమిలిటరీకే 56 కోట్ల వ్యయము చేయబడుచున్నది.

(21) శాసన సభలు

రాష్ట్రీయ శాసనసభలలో కెల్ల వంగరాష్ట్రీయ శాసనసభలో ఎక్కువ సభ్యులును అనగా 139 మందియును, అస్సాము శాసనసభలో తక్కువ సంఖ్యగల సభ్యులును అనగా 53 మందియును గలరు.

(22) అసంబ్లీ

అసంబ్లీ లో 105 గురు సభ్యులుగలరు. వీరిలో బంగాళము పక్షమున 17 మందియును, అస్సాము, బర్మాలపక్షమున 5 గురు చొప్పునను ప్రాతినిధ్యము వహించుచున్నారు.

(23) కౌన్సిల్ ఆఫ్ స్టేటు

దీనిలో 34 మంది సభ్యులుగలరు. వీరిలో బెంగాల్, బొంబాయిపక్షమున 6 గురు చొప్పునను, అస్సాముపక్షమున 1 రును ప్రాతినిధ్యము వహించుచున్నారు.

(24) విశ్వవిద్యాలయములు

ఇండియాయంతట 17 విశ్వవిద్యాలయములుకలవు. వీనిలో కలకత్తా, బొంబాయి, మద్రాసు విశ్వవిద్యాలయములు 1857 వ సంవత్సరమున స్థాపింపబడెను.

(25) విద్యాలయములు

ఇండియాయంతట 1928 లో 232 కళాశాలలును, 2687 ఉన్నత విద్యాలయములు అనగా హైస్కూల్సును గలవు.

(26) పరపతిసంఘములు

ఇండియాయంతట 90 వేలు పరపతిసంఘములుగలవు. వీనిలో బ్రిటిషుప్రాంతములందు 77 వేలును, మిగిలినవి స్వదేశ రాజ్యములందును గలవు.

(27) వలసపోయినవారు

హిందూదేశమునుండి విదేశములకు వలసపోయినవారి సంఖ్య 24 లక్షలు సింహళమునకు 8 లక్షల 20 వేలును, బ్రిటిష్ మలయాకు 6 లక్షల 60 వేలును, మారిషస్ ద్వీపమునకు 264 వేలును, ఆస్ట్రేలియాకు 2 వేలును, కనడాకు 1200 వెళ్లియుండిరి.

(28) ముద్రాలయములు

హిందూదేశమంతట 6020 ముద్రాలయములు గలవు. చెన్నరాష్ట్రమునకే 1487 ను, బంగాళమున 1188 యును గలవు.

(29) వార్తాపత్రికలు

1512 న్యూస్ పేపర్లను, 3627 పీరియాడికల్సును ప్రకటింపబడుచున్నవి.

(30) గ్రంథములు

1927 సంవత్సరములో 15246 దేశభాషాగ్రంథములును, 2147 పాశ్చాత్యభాషాగ్రంథములును వెలువడెను.

(31) రైల్వేలు

1927-28 లో హిందూదేశమున నుపయోగమందున్న రైలుమార్గముల మొత్తము నిడివి 39712 మైళ్లు. స్టేటులైన్సులో నార్తువెస్టులైను చాలాపెద్దది. దీని నిడివి 4535 మైళ్లు. మిగుల చిన్నది కోలార్ గోల్డుఫీల్డు లైన్, దీని నిడివి 10 మైళ్లు. ఇండియన్ స్టేట్సులైన్లు అనగా స్వదేశ రాజ్యములందు నిర్మింపబడిన రైల్వేలైన్సులో బికనీర్ లైను చాలాపెద్దది. దీని నిడివి 699 మైళ్లు. మిగులచిన్నది సాంగ్లీలైను. నిడివి 5 మైళ్లు. 1937-28 లో రైల్వేలవలన 3070 మంది మరణించిరి. 6263 మందికి గాయములు తగిలెను.

(32) తంతి వార్తలు

1928 మార్చి 31 వ తేదీనాటికి హిందూదేశమున నున్న టెలిగ్రాఫ్ల తంతుల మొత్తము నిడివి 101,007 మైళ్లు.

(33) తపాలాఫీసులు

తపాలాఫీసులసంఖ్య 21604. 1927-28లో ఒక తపాలా బిళ్లలే 6 కోట్లరూపాయల విలువగలవి విక్రయింపబడెను.

(34) గవర్నరు జనరల్సు

మొట్టమొదట గవర్నరుజనరలు వారన్ హేస్టింగ్సు 20 అక్టోబరు 1774 సంవత్సరమున బాధ్యతవహించెను ఇదివరకు 46 గురు గవర్నరు జనరలు వచ్చిపోయిరి. ఇర్విన్ ప్రభువు 47 వ వాడు.

సింగంపల్లి వెంకటాద్రి.

जगत्‌का अस्तित्व।

[लेखक—लक्ष्मीनन्दन ।]

जगत है सच्चा तनक न कच्चा
समझो यथा इसका भेद।

कार्तिककी "माधुरी" में लाला कन्नोमल का एक लेख छपा है जिसका शीर्षक है—"हमारा संसार क्या है—सत्य है या असत्य।" कन्नोमलजीने हिन्दू मुसलमान क्रिश्चान सभी मजहबोंके दार्शनिकों और महाकवियोंकी उक्तियां उद्धृत करके दिखाया है कि सभी विद्वान् और धर्मप्रवर्तक तथा कवि इस संसारको असार यानी असत्य ठहरा गये हैं। कवि अगर इस संसारको असार कहते हैं तो हमें कुछ आश्चर्य नहीं होता क्योंकि वे कल्पना जगत्‌के जीव हैं उनको कल्पित यानी फर्जी यानी झूठी बातोंमें ज्यादा आनन्द मिलता है तभी तो उनको छोटी आंखोंमें अमृत, विष और शराब तीनों एक साथ दिखाई देते हैं। अमृत, हलाहल या मद्य पीनेसे आदमी जीता, मरता या झूमता है मगर कवि कल्पित कामिनीके नेत्रोंके एक बार दूरसे ताक देनेपर ही कोई जीने, कोई मरने और कोई झुक झुक कर गिरने लगता है। इसलिये कल्पना जगतमें रमनेवाले कवि अगर संसारको—दृश्यमान संसारको असत्य ठहरावें तो आश्चर्य ही क्या है। एक देशका आदमी दूसरे देशको उतना पसन्द नहीं करता। किसी अंगरेज कविने कहा है कि लंडन नरक है फिर भी मैं उसे प्यार करता हूं क्योंकि वह मेरी जन्म-भूमि है। इसी तरह कवि कल्पना जगतको प्यार कर सकता है क्योंकि वह उसकी जन्म भूमि है और दृश्यमान जगतको असार कह सकता है, उसके अस्तित्वसे इनकार कर सकता है क्योंकि उसमें उसका मन नहीं लगता। जिसमें जिसका मन नहीं लगता उसका वह अस्तित्व ही भूल जाता है। दुनियामें जितनी अस्वाभाविक बातें प्रचलित हुई हैं वे सब कविके मगजकी सृष्टि हैं।

मगर जब कविके साथ दार्शनिक भी इस संसारको असत्य ठहराते हैं तब कुछ आश्चर्य होता है और चित्त विचारमें पड़ जाता है कि दार्शनिक, दर्शन करनेवाला, देखनेवाला संसारको असत्य क्या समझ कर ठहराता है। सोचते सोचते हमको एक किस्सा याद आ गया है। एक गीदड़ नदीमें डूबने लगा तो जोर जोरसे चिल्लाने लगा—दौड़ो लोगो, दौड़ो दुनिया डूब रही है। लोग दौड़कर आये और पूछने लगे कि भई, कहां दुनिया डूब रही है? सियारपांड़ेने कहा कि पहले मुझे बचाओ तो पीछे बताऊंगा कि दुनिया कहां डूब रही है। लोगोंने उसे नदीसे निकाला। होश जब ठिकाने आयी तो उसने कहा—मैं डूब रहा था तो मेरे लेखे दुनिया ही डूब रही थी, इसीसे मैं कह रहा था कि दुनिया डूब रही है। साफ मालूम हो रहा है कि इसी दृष्टिसे लोग संसारको असत्य कहते हैं और दार्शनिक भी तो आखिर आदमी ही ठहरे, जब वे सबको मरते देख रहे हैं, अपनेको भी अमर नहीं पाते तब संसारको असत्य छोड़कर सत्य कैसे ठहरावें। अब विचारनेकी बात यह है कि सत्य और असत्यकी, सत् और असत् की परिभाषा क्या है। उसका निश्चय हो जानेसे यह आसानीसे निश्चय किया जा सकता है कि संसार सत्य है या असत्य। इस विषयमें हम श्रीकृष्णका वचन उद्धृत करते हैं। उन्होंने गीताके दूसरे अध्यायमें (श्लोक १६) कहा है—"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥" अर्थात् असत्‌का तो अस्तित्व नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है। इस प्रकार ज्ञानियोंने सत्य यानी पूर्णको देखा है।

श्रीकृष्णकी इस उक्तिके अनुसार सत् या सत्य वह है जिसका अभाव नहीं है अर्थात् जो विद्यमान है, जो मौजूद है और असत् या असत्य वह है जिसका भाव अर्थात् अस्तित्व नहीं है अर्थात् जो मौजूद नहीं है, विद्यमान नहीं है। हमारी समझमें कृष्णकी कही हुई सत् असत् या सत्य असत्यकी परिभाषा बहुत ठीक है। सत् या सत्य वह है जो फैक्ट है और असत् या असत्य वह है जो फैक्ट नहीं है। अब बताइये संसारका अस्तित्व है कि नहीं? संसार फैक्ट है कि नहीं? अगर है तो संसार सत्य ठहरा। नहीं कहनेवाले क्या सबूत रखकर संसारका अस्तित्व नहीं मानना चाहते, उसे सत्य नहीं नहीं समझते? धर्मप्रवर्तकोंने कहा है कि संसार आदिमें नहीं था और अन्तमें भी नहीं रहेगा। (हिन्दूधर्म प्रवर्तकोंकी बातको ही घुमा फिराकर ईसाई और मुसलमान धर्म प्रवर्तकोंने भी कहा है क्योंकि हिंदू धर्मके आधारपर ही, हिन्दू विश्वासकी नींवपर ही ये दोनों धर्म भी बने हैं। यह बात हम फिर कभी समझावेंगे)। संसारका अस्तित्व न रहनेका यही सबूत है या और कुछ? अगर और कुछ है तो हमें बतानेकी कृपा की जाय। अगर यही सबूत है तो हम पूछते हैं कि संसार आदिमें नहीं था यह किसने देखा है? कोई चश्मदीद गवाह है? अगर कहा जाय कि कोई था तो उसके मौजूद रहनेतक संसारका अस्तित्व न रहना कैसे कहा जा सकता है? जबतक एक भी आदमी या वस्तु है या थी तबतक संसारका अस्तित्व है या था यह मानना ही पड़ेगा। तब हम इस कथनको कैसे सत्य मानें कि संसार आदिमें नहीं था? इसी तरह यह बात भी कैसे सत्य मानी जाय कि अन्तमें, एक दिन संसार नहीं रहेगा? हिन्दू कहते हैं प्रलय हो जायगी, जल ही जल हो जायगा। (बाय-स्कोपोंमें संसारको जलमय करके प्रलय दिखायी भी जाती है। एक मात्र विष्णु कमल पर दिखाये जाते हैं) अगर सचमुच ऐसा हो जायगा—हम इतनी दूरकी कौड़ी लानेमें असमर्थ हैं—तो भी जल तो रहेगा, अगर कमल और विष्णु रहे तो भी सृष्टिका कुछ न कुछ अस्तित्व रहा अगर केवल जलही रहा तो भी सृष्टिका, संसारका अस्तित्व रहा तब संसारका अस्तित्व न रहनेका क्या अर्थ है? अगर ईसाई या मुसलमान धर्मके अनुसार कयामतके दिन खुदा सब मुर्दोंको उठाकर उनसे हिसाब लेगा तब भी तो उस दिन दुनियाका बरकरार रहना ही साबित होता है। फिर कयामत बेमानी टारद? कयामतका क्या मतलब?

जो धर्मप्रवर्तक या उनके अनुयायी कहते हैं कि जगत् मिथ्या है, असत्य है केवल ब्रह्म सत्य है वे बतलावें कि ब्रह्म किसको कहते हैं। ब्रह्म क्या संसारसे बाहर है? अगर बाहर है तो कहां है और उन्होंने कैसे देखा या जाना? अगर जगत् ब्रह्ममय है तो जगतके असत्य ठहरनेसे ब्रह्म भी असत्य ठहर जाता है, जगतके मिट जानेसे ब्रह्म भी मिट जाता है। अगर ब्रह्म जगत्‌से परे है तो जगतको ब्रह्म मय कहना गलत है, असत्य है। लोग बतलावें कि वे क्या कह रहे हैं, उनके कहनेका मतलब क्या है

श्रीकृष्णने उस श्लोकके नीचे एक श्लोक यह भी कहा है—"अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वं मिदं ततम्। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति॥" अर्थात नाश रहित तो उसको जान जिससे यह सम्पूर्ण (सर्व) व्याप्त है, इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई समर्थ नहीं है यह सर्व या सम्पूर्ण यानी जगत् जीव जन्तु आदि सदा परिपूर्ण देखा जाता है और अन्ततः "क्षितिजल पावक गगन समीरा" या इनमेंसे कोई न कोई तत्व

सत्य कदापि देखा जाता है इसलिये वह अविनाशी है अविनाशी हुआ तो सत्य भी हुआ। वसः वाहका श्लोक है—"अन्तवन्त इमेदेहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत" अर्थात् नाश रहित अप्रमेय नित्य स्वरूप शरीरीका यह देह अन्तवन्त यानी नाशवान कहा गया है। इसमें देह या शरीरोंको नाशवान बताया है, शरीरको नहीं अर्थात् जिसके यह शरीर है उसका नाशवान नहीं कहा है। शरीर पंचभूतोंमें मिल जाता है अर्थात्

शरीरका रूप बदल जाता है। यह नाश नहीं परिवर्तन है। नाश भी इसका यानी एक विशिष्ट आकार या रूपका परिवर्तन है। जलका रूप बदल कर भाफ हो सकता है, मिट्टीका रूप बदल कर बर्तन हो सकता है, आगका रूप बदल कर राख हो सकती है। इसी तरह वायु और आकाशका भी रूप बदल सकता है परन्तु रूप बदलनेको, परिवर्तनको नाश नहीं कह सकते। परिवर्तनको वस्तुका अस्तित्व ही मिट जाना मान लेना क्या उचित है।

मई-6-3-38

विवाहका वयस।

श्री भगवानदासजीका मत।

अठारह (१८) वर्षसे कम वर, चौदह (१४) वर्षसे कम वधू, न हो, ऐसा धर्म [कानून] देशकी मुख्य धर्म परिषद् [लेजिस्लेटिव असेम्बली] ने, श्री हरविलास शारदाके प्रस्तावपर, बना दिया। इस धर्मका प्रवर्तन १ अप्रैलसे होगा। इस कारणसे हजारों ब्याह अवधोंमें, व्यतिथिसे पहिले, इधर कई महीनोंके अन्दर, कर डाले गये। और सुन पड़ता है कि अब ज्योतिषियोंके अनुसार विवाह लग्न भी समाप्त हो गया। मानो उस धर्मके प्रवर्तनकी तिथिको स्वयं ज्योतिषियोंने और समीप खींच लिया। पर अभी भी इस धर्मकानूनके विरोधमें आंदोलन जारी है। मैंने सुना कि कुमार ऐसे छोटे स्थानमें भी काशीके कुछ पण्डितोंने आकर व्याख्यान दिये। एक सज्जन मुझसे इस विषयमें शंका समाधान करने आये। मेरा मत तो बालविवाहिक प्रथाके विरुद्ध है ही। प्रायः मित्रोंको विदित है। तौभी उक्त सज्जनके अनुरोधसे, "आज" के संपादकजीसे पत्रमें प्रकाश कर देनेकी प्रार्थना करता हूं।

प्रसिद्ध ही है कि "हिन्दुओं" के, अर्थात् भारतीय आर्योंके, धर्मकी मूल पुस्तक, व्यवहारतः, मनुस्मृति है। चाहे उसकी भी जड़में वेद हों।

> यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
> स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

(मनु० अ० २ श्लो० ७)

जो जिसका धर्म मनुने कहा है वह सब वेदके, सत्ज्ञानके, अनुसार ही कहा है। मनु सर्वज्ञानमय हैं विद्धि वेद।

> सत्तायां विद्यते, ज्ञानेवेत्ति, विन्ते विचारणे।
> विन्दते विन्दति प्राप्तौ, कारणे वेदयत्यपि।
> चेतनाख्यानवासेषु तथा वेदयतेऽपि च॥

तो मनुने विवाहका उमरके विषयमें क्या कहा है? छपी पोथीमें प्रायः यह पाठ देख पड़ता है,

> त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
> त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥

(अ० ९, श्लो० ९४)

पर मैंने कहीं हस्तलिखित देखा, या किसी वृद्ध विद्वान् से सुना, मेरा संस्कार ऐसा रहा है कि शुद्ध पाठ यों है,

> त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां विंशतिवार्षिकीम्।
> त्र्यष्टवर्षोऽष्ट वर्षां वा धर्मेण त्वरितो यदि॥

प्रचलित मुद्रित पाठका अर्थ है—"तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्यासे विवाह करे, अथवा, यदि धर्मका अवसाद होता हो, और इस हेतुसे त्वरा हो, तो चौबीस वर्षका पुरुष आठ वर्षकी कन्यासे विवाह कर ले। जो पाठ मुझे शुद्ध जान पड़ता है उसका अर्थ यह है—तीस वर्षका ब्रह्मचारी बीस वर्षकी ब्रह्मचारिणीसे विवाह करे, अथवा यदि काम प्रेरणारूपी अपना स्वभाव अपनी विशेष प्रकृतका धर्म उकसावे। त्वरा करे, और उसमें तीस वर्षतक अविप्लुत ब्रह्मचर्य रहनेकी आत्मनिग्रह शक्ति न हो, तो चौबीस वर्षकी उमर तो पूरी करे और सोलह [अष्ट] वर्षकी कन्यासे विवाह करे।

विचारशील सज्जन स्वयं समझ लें कि कौन पाठ और प्रकार अधिक युक्तियुक्त है। तीस वर्षका बारह वर्षसे और चौबीसका आठसे ब्याह होना अक्लके मुताबिक है कि बारह और आठसे। आठ वर्षकी बच्ची कौनसे जीवके धर्मकी पूर्ति कर देनेमें सहायता दे सकती है? हां, जिनका यह विश्वास है कि धर्ममें बुद्धिका काम नहीं, ऐसे बुद्धिके शत्रुओंसे तो बुद्धिके शत्रु ही उचित रीतिसे ठीक प्रत्युक्ति कर सकते हैं।

"शास्त्र, शास्त्र, शास्त्र" की दोहाई तिहाई दी जाती है, तो सब शास्त्रोंके मुख, "सर्वेषामेव शास्त्राणां न्याय व्याकरणौ मुखं" तथा वेदका अन्त, पराकाष्ठा, वेदांत, सभी कहते हैं कि सबसे अधिक बलवान् प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण है। "प्रत्यक्षपराण्मितिः, प्रत्यक्षपराणि प्रमाणानि, न प्रत्यक्षेऽनुपपन्नाम, यदि श्रुतीनां शतमपि घटं पटयितुमीष्टे"—यह सब शास्त्र न्याय और वेदांतके ग्रंथोंके ही हैं, और मनुकी आज्ञा है,

> प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
> त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता॥

(१२-१०५)

केवल "शास्त्र" ही नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान और विविध आगम रूप शास्त्र, तीनोंकी अच्छी तरह परीक्षा किये बिना यह निश्चय नहीं हो सकता कि क्या धर्म शुद्ध है क्या अशुद्ध है। आगमें मत कूदो, कुएंमें मत गिरो, आंखसे काम लो, खाहमखाह ठोकर मत खाओ—इसके लिये क्या किसी लिखि पोथी, किसी शास्त्रकी आवश्यकता है? ये बातें क्या प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं हैं? अतिबालक बालिका विवाह तो इसी प्रकार का जान बूझकर कुएंमें कूदना और आगमें गिरना है। यदि इसपर बुद्धि न जमे—क्योंकि हिंदू वालोंकी बुद्धि तो आज चिरकालसे लुप्त कर दी गयी है, है ही नहीं, उसेभी क्या—तो पोथीका वचन भी ऊपर लिखा है। और सुश्रुत नामका वैद्यकका ग्रंथ भी तो आप महापंडित मानते हो, बल्कि उससे भी बढ़के, अवतारकृत। दिवोदास धन्वन्तरिके अवतार, और धन्वन्तरि विष्णुके। उनके उपदेशोंको उनके शिष्य सुश्रुतने लिखा। सो सुश्रुत भी उत्तम धर्म शास्त्र ही गिना जाना चाहिये। और प्रत्यक्ष ही बलिष्ठ, इस न्यायसे अन्य धर्म शास्त्रोंसे अधिक बलवान् है, क्योंकि वे तो अदृष्ट फल वाले हैं, यह तो प्रत्यक्ष दृष्ट फलवाला है। सो सुश्रुतमें लिखा है,

> ऊनषोडशवर्षायाम प्राप्तः पंचविंशतिम्।
> यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
> जातो वा न चिरंजीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेंद्रियः।
> तस्मादत्यंत बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

पच्चीस वर्षका पूरा करके पच्चीसवेंमें जो नर पहुंचा नहीं, उसका विवाह पूरे सोलह वर्षसे कम उमरकी कन्यासे यदि किया जाय तो संतान गर्भ हीमें मर जाय, या नहीं तो अल्पायु और दुर्बलेन्द्रिय होगी।

मनुके इस शुद्ध पाठके द्वितीय कल्पसे यह सुश्रुतका वाक्य ठीक ठीक मिल जाता है। [illegible] मिल जाय कहीं ठीक निश्चल शुद्ध धर्म समझना चाहिये।

और भी मनुकी आज्ञा है,

> त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
> ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥
> काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
> नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

९-८९,९०

"रजो दर्शनके बाद तीन वर्ष तक कन्या कुमारी ही, ब्रह्मचारिणी ही, रहे, शरीर और बुद्धिकी पुष्टिके लिये। इसके बाद अपने सदृश योग्य पतिसे ब्याह करे। यदि योग्य पति न मिले तो आमरण भी, ऋतुमती भी, अनब्याही रहे, गुणहीनसे ब्याह न करे।"

पुराणोंमें नन्दन वन और स्वर्ग आदिका जहां वर्णन है वहां लिखा है कि देवोंका वयस् सदा पंचविंशति वर्षके समान, और देवियोंका षोडशके, रहता है यह भी यही सूचना है कि यह वयस् विवाहके लिये उचित है।

यदि चिरकालसे हवा बिगड़ जानेके कारण मनुका द्वितीय कल्प भी अब असह्य अशक्य जान पड़ता हो, तो, भाई एक तीसरा कल्प तो मानो, और "क्रमशो वर्धयेत्तपः" के न्यायसे, उससे फिरसे हवा बनाना, पुनर्गवाका प्रयोग करना, शुरू करो। तीसरा कल्प यह,

> अथैतद्प्यशक्यं चेत चिरसंभूतदोषतः।
> अष्टादशाब्दो विन्देत चतुर्दशसमां वधूम्॥

विवाहकी उमर बढ़ानेका इस देशका कल्याण विविध प्रकारका है। सबसे पहिले, कच्चे माता पिताके शरीरोंसे रोज रोज अधिकाधिक कच्ची संतान उत्पन्न, और जातिका अधःपात, रुक जाय। देशकी हवा बदलना सबके मनमें यह भाव फैलेगा कि कच्ची उमरमें कामविकार नहीं होना चाहिये, लड़के लड़कियोंका दूषण नहीं होना चाहिये, ब्रह्मचर्यसे, आत्मनिग्रहसे, इन्द्रियनिग्रहसे, रहना चाहिये, विवाहकी उमर तक, कमसे कम इससे न केवल शरीर ही अगली पुश्तका पुष्ट होगा, बल्कि उनका चित्त भी, बुद्धि भी, साहस भी।

> ज्ञानं शौर्यं महः सर्वं ब्रह्मचर्ये प्रतिष्ठितं।

वीर्य और शौर्य प्रायः पर्याय हैं, जैसे वीर और शूर। जो आत्म निग्रही है उसका दूसरे जल्दी निग्रह नहीं कर सकते। यदि भारतमें ब्रह्मचर्यकी वृद्धि हो, आत्मनिग्रह बढ़े तो आत्मनिग्रह और आत्मवशता, स्वशता, स्वराज्य, यह सब तो पर्याय ही है। जो इन्द्रिय निग्रही नहीं, प्रत्युत इन्द्रियाधीन है उसके हृदयमें साहस नहीं होता इन्द्रियोंमें ओजस नहीं होता, शरीरमें बल नहीं होता बुद्धिमें ज्ञानमाही तेजस वर्चस नहीं होता। वीर्य, शौर्य, ओज, सबके आगे उसको हीन दीन होना पड़ता है। भारतकी पराधीनताके कारणोंमें एक यह भी बड़ा कारण समझना चाहिये, कि कच्चे ब्याहकी कच्ची सन्तानसे भर गया है, और शूर पुरुष यहां कम हो गये हैं। जिसका हृदय शूर होता है, उसको अपनेपर विश्वास और भरोसा होता है, जिसको अपनेपर विश्वास होता है उसको दूसरेपर भी विश्वास होता है, क्योंकि उसको दूसरेका भय नहीं होता। जहां परस्पर भय नहीं परस्पर विश्वास है, वहां पराजयका सम्भव ही नहीं। आज भारतमें असंख्य जातुपजातु पेश जातिवाले और तरह तरहके परस्पर विवाद करते धर्मवाले, एक दूसरेसे सर्वथा भ्रस्त अविश्वस्त हो रहे हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि भी लुप्त हो गयी है, और उनमें शूरता भी नहीं है।

यह सब दोष क्रमशः विवाहकी उमर बढ़ानेसे और ब्रह्मचर्यके पालनेसे दूर हो जायंगे।

और अवांतर गुण और लाभ यह है कि देशमें रोजगारकी कमीके कारणसे भी [illegible] ब्याह और बहुत सन्तानकी गुंजाइश नहीं रही है। जितने के खाने

६३

18-1-30

ठिकाना हो उतनेहीका पैदा होना, नीरोग जीना और ब्याह होना अच्छा है। अक्सर हिंदू जातियोंमें यह रस्म है कि वर वधूके गृह प्रवेशके समय वर अपनी वधूको गोदमें उठाकर मंडपके स्तम्भके चारों ओर घूमता है। कुटुम्बियोंके लिये विनोद तो है ही, पर उसका मतलब यह है कि भार्याके और संतानके भरण पोषणकी, भार वहनकी शक्ति, भर्तामें होनी चाहिये इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देना चाहिये। जल्दी ब्याहना, जल्दी ब्याना, जल्दी मरना तीनों काम जल्दी करना नहीं अच्छा है। इस प्रकारकी जल्द पशुसृष्टिमें जितना नीचे जाओ उतनी ही अधिक देख पड़ती है, जितना ऊंचे जाओ उतनी कम। साठा तब पाठा—यह हाथीके लिये विशेष रूपसे कहावत है पचास साठ वर्षमें हाथी युवा, प्रौढ़, होता है, और दो सौ ढाई सौ वर्ष जीता है। जितने वर्ष ब्रह्मचर्यका पालन, वीर्यका रक्षण हो सके, प्रायः उसके चौगुने वर्ष प्राणी जीता है, कुछ ऐसा सामान्य नियमसा जान पड़ता है। पशुओंपर अन्तरात्माकी दया है कि उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि उनके "ब्रह्मचर्य" का विध्वंस उचित समयसे पहले नहीं होता। मनुष्यको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है वह अपना मालिक बना दिया गया है, उसको अपना भला बुरा स्वयं करनेका अधिकार दिया गया है, सो प्रायः बुरा ही कर लेता है।

"शतायुर्वै पुरुषः", यह वेदकी प्रतिज्ञा है, पर शर्त यह है कि 'चतुर्थमायुषोभाग', कमसे कम पचीस वर्ष, गुरुकुलमें अविप्लुतब्रह्मचर्य रहकर शरीरको और बुद्धिको परिपुष्ट कर ले। यदि नये विज्ञानके अनुसार अठारह वर्ष भी पूरा कर लेता तो अस्सी पचास वर्षकी आयुमें प्रायः टोटा नहीं पड़ता। इतना ब्रह्मचर्य "असम्भव है, अशक्य है" कहना व्यर्थ है कोई बात असम्भव नहीं। हवा बांधनेकी बात है। जैसे ही हवा बिगड़ती है वैसे ही बन भी सकती है। सन् १८९१—९२ में, कलके पानीके विरोधमें "राम हल्ला" हो गया, आज, कलके पानीके बिना काम ही नहीं चलता। जिस ओर जनताका मन लग जाय वही सहज हो जाता है।

यह सौभाग्यकी बात अवश्य है कि जनताका ध्यान इस परम आवश्यक सुधारकी ओर अब फिरा है। कुछ लोग, जो जमानेको नहीं पहिचानते, देश काल अवस्थासे अनभिज्ञ हैं; जो बहुश्रुत नहीं हैं, केवल "धर्म शास्त्र" के ही दो चार ग्रंथोंको रटा करते हैं, वे उन ग्रन्थोंका भी अर्थ ठीक नहीं समझ सकते।

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति।

अल्पश्रुत लोगोंसे, जिन्होंने दुनियाकी व्यवहारिक दशाको नहीं देखा विचारा है, जो केवल दो चार पोथोंके पन्नोंमें ही मुंह गाड़े हुए हैं, उनसे वेद बेचारा बहुत डरता है कि ये मेरी प्रतारणा करेंगे, मुझको ठगेंगे, मेरे अर्थका अनर्थ कर डालेंगे। कोई तो प्रतरिष्यतिके स्थानमें प्रहरिष्यति [illegible] अर्थात् वेद डरता है कि ये [illegible] प्रहार करेंगे और मुझको मार ही डालेंगे। सो अर्थ भी ठीक ही है। कुछ पाठको बिगाड़कर जिसको अशुद्ध और भ्रष्ट कर डालते हैं। सुश्रुतमें भी ऐसा ही कहा है।

नह्येकमेव शास्त्रं जानानः किंचिदपि शास्त्रं जानाति।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयात् प्रयत्नतः॥

लोकसे वेदका, वेदसे लोकका, शास्त्रसे व्यवहारका, व्यवहारसे शास्त्रका, परस्पर नित्य संस्करण संशोधन होते रहना चाहिये। सो आजकल व्यवहारका ज्ञान बिना लोकचाररूप विद्या भोगे थोड़ा बहुत जाने प्रायः नहीं ही हो सकता। इसी कारणसे भारतके केवल संस्कृत जाननेवाले, और पुराने संस्कारोंमें ही पले, पण्डित जन, जो बहुश्रुत निःस्वार्थ और सरल हृदय और आदरणीय हों वे भी, अपने उक्त "पुराण मित्येवहि साधु सर्वं" विभ्रमके कारण, भारतके पुनरुद्धारके साधक होनेके स्थानमें बाधक ही होते हैं। भारतकी अन्तरात्मा पर दास और पराधीनताके घोर कष्टको भी सहकर पाश्चात्य विद्वानोंको जो यहां लिवा लायी तो क्या निरर्थ भूल की थी? इसीलिये लिवा लायी कि यहांके शास्त्रियों और अशास्त्रियों और शस्त्रियोंसे मिलकर, परम्परानुगत तमोभूता, शास्त्रको भी और शस्त्रको भी मार डाला था, उसका फिरसे प्रोद्धार हो।

जब भारतमें स्वराज्य था, सब व्यापारोंका उत्कर्ष था, व्यवहार जाग्रत जीवत् था, तब शास्त्र, धर्मशास्त्र, राजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, भी जीवत जाग्रत् था। आवश्यकता पड़नेपर नये धर्मोंकी कल्पना कर ली जाती थी।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितं।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥
(मनु० २-२४०)

तथा महाभारत, शान्ति, अ० ८५ में लिखा है कि राज्यकी धर्म व्यवस्थापक सभामें चार वैद्य होने चाहिये। जिस मण्डलीमें मनुष्यके शरीरका ज्ञान न हो, और जीवका ज्ञान नहीं, जो मनुष्यकी प्रकृति ही नहीं जानती वह मण्डली मानव धर्मका निर्णय क्या कर सकती है?

अन्तमें एक बात और कह देने योग्य है। वधूकी उमर चौदह वर्षसे कम न हो—यह नया विधान है। अष्ट वर्षा और नव वर्षा और द्वादश वर्षा इत्यादि मध्ययुगीन व्यवहार पंडित मंडलीके मनमें बैठा है, कम से कम दूसरोंको कहनेके लिये, क्योंकि यह मानव है कि दान दहेज शुल्क आदिकी कुप्रथाकी और लोभ लालचके दुर्भावोंकी बुद्धिसे, और पंक्तिपावनताके अहंकारादिसे (जिसको उत्तम रूपक कृष्ण मिश्रने हजार वर्ष पुराने प्रबोध चन्द्रोदय नाटकमें दिखाया है), और धनाभावसे अच्छे अच्छे "जाति श्रेष्ठ" श्रोत्रिय घरोंमें भी कुमारी वृद्धा हो जाती है, और मनुका "काममा मरणात्तिष्ठेत्" श्लोक अक्षरशः चरितार्थ हो जाता है। इन दोनोंके, नये कानूनके और कुछ पुराने व्यवहारके, समन्वयका उपाय यह है कि वाग्दान जल्दी कर दिया जाय, पर विवाह, [illegible] पीछे हो। किसी किसी जातिमें विवाह और द्विरागमनकी चाल चल रही है उसके स्थानपर वाग्दान और विवाह कर दिया जाय मतलब वही सधेगा और कई और गुणोंका लाभ होगा। कुमारावस्थामें लड़के लड़कीका मन एक दूसरेसे बंध जाना अच्छा ही है यदि घरोंकी मानस हवा अच्छी रहे। और भद्दी बातें चारों ओर न होती रहें तो यह बाह्य प्रेम शुद्ध सात्विक रूप धरेगा, दोनोंके मनमें परस्पर स्नेह बढ़ेगा, और कुवासनाओंसे दोनोंकी रक्षा करता रहेगा।

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।
(भागवत, ५-५-८)

इस हृदय ग्रंथिका अनुभव प्रत्येक जीवके लिये, प्रवृत्ति मार्गपर, आवश्यक है, यद्यपि निवृत्ति मार्ग आकर पीछेसे इस ग्रन्थिका भेदन भी आवश्यक होगा। तो जहां तक बन पड़े वहां तक इस ग्रन्थिको सात्विक स्वरूप देना उचित है। इसी रीतिसे, वाग्दान जल्दी हो जाय, विधिवत् विवाह पीछे हो। इस रीतिसे अकाल मृत्यु अनिष्ट वैधव्य संभव आदि दोषोंका भी परिहार हो जायगा, यतः प्राप्तिपर, विवाहके पहिले, एक दूसरेसे यदि मन न मिले तो विघटित वाग्दानको अपने अधिकारसे बदल देनेका और नया वाग्दान अपनी बुद्धिके अनुसार जोड़ लेनेका अवसर भी युवा और कन्याको मिलेगा, और "[illegible]" [illegible]

इति

क्रान्तिकारी महर्षि गांधी।

[लेखक—आचार्य इन्द्ररमण शास्त्री।]

मैंने उपर्युक्त शीर्षकमें महात्मा गांधीके विषयमें दो विशेषण महर्षि और क्रांतिकारी प्रयुक्त किये हैं। अवश्य ही ये विशेषण महात्माजीके सम्बन्धमें पाठकोंको नूतन प्रतीत होंगे। परंतु जब सत्य स्वयं अभिव्यक्त हो जाय, तब उसकी घोषणा कर देना अनुचित नहीं होता। अतः मैंने महात्मा जीको इन उपर्युक्त विशेषणोंसे विशिष्ट करनेमें औचित्यकी उपेक्षा नहीं की है। मैं मिथ्या स्तुतिपर अर्थवादका समर्थक भक्तिवादी नहीं हूं, अतः स्वतः किसीके विषयमें अत्युक्ति नहीं कर सकता। फलतः पाठकोंको यह दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि मैंने वस्तुतः महात्माजीमें जो लक्षण पाये हैं उन्हींके द्योतक अन्यूनानतिरिक्त युक्ति विशेषणोंका प्रयोग किया है।

प्रयुक्त विशेषणोंकी सार्थकता अब महात्माजीमें क्रमशः देखिये। प्रथमतः महात्मा गांधीकी क्रांतिकारिताकी परीक्षा कीजिये। क्रांति शब्दका भावार्थ है—परिस्थितिका आमूल परिवर्तन। इसके दो भेद हैं—सक्रिय और निष्क्रिय। निष्क्रिय क्रान्तिका दूसरा नाम विकास भी है। यह निष्क्रिय इसलिये कहलाती है कि इसकी क्रियाओंका प्रत्यक्ष भाव नहीं होता। सभी भावपदार्थ क्षणपरिणामी हैं—अर्थात् संसारके सभी भाव पदार्थ प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। अतएव अभावभिन्न जो कुछ भी विश्व है, वह सम्पूर्ण तृतीयक्षणवृत्ति ध्वंसप्रतियोगी है अर्थात् प्रत्येक वस्तु प्रथम क्षणमें उत्पन्न होकर द्वितीय क्षणमें स्थित रह करके तृतीय क्षणमें नष्ट हो जाती है। उदाहरणके लिये प्रत्येक मनुष्य अपना ही प्रयोग कर सकता है। हमारा शरीर शुक्रार्तवकी अवस्थासे उन्नति करते करते शैशव क्रमसे तारुण्यमें पदार्पण कर परिपूर्ण हो जाता है। इस उत्थानके लिये कोई क्रिया अवश्य होती है, क्योंकि कोई भी कार्य अकारण नहीं होता। परंतु उस क्रियाको हम नहीं देख पाते, वह केवल अनुमेय है। ऐसी क्रिया प्रकृतिके साम्राज्यमें सर्वदा, सर्वत्र स्वयं प्रवृत्त है, वह नैसर्गिक है। इसी स्वाभाविक एवं अदृश्य क्रियाके द्वारा जो विश्वका परिवर्तन होता है, उसे ही क्रमविकास या निष्क्रिय क्रांति कहते हैं, क्योंकि इसके लिये हमें कोई प्रयत्नसाध्य क्रियात्मक व्यवहार नहीं करना पड़ता। निष्क्रिय क्रांति द्विधा होती है—अनुलोम परिणामसे और प्रतिलोम परिणामसे। प्रथम प्रकारसे होनेवाली क्रांतिसे विश्वकी वृद्धि और द्वितीय प्रकारसे ह्रास होता है। यह वही निष्क्रिय क्रांति ही सक्रियक्रांतिकी जननी है। परन्तु यह स्मरण रहे कि अनुलोम प्रतिलोम परिणतिरूपा निष्क्रिय क्रांति केवल जड़ प्रकृतिमें ही होती है, चेतन या आत्मासे इसका कोई सम्बंध नहीं होता, क्योंकि वह घट या बढ़ नहीं सकता है। रजस्तमःसत्त्वगुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है अतएव उसे त्रिगुणात्मिका कहते हैं। जब मूल प्रकृतिमें क्रांतिकी अदृश्य क्रिया उत्पन्न हो जाती है, तब उसमें विक्षोभ पैदा हो जाता है और विषमता आ जाती है। अनंतर महदादि क्रमेण महाभूत पर्यन्त अनुलोम परिणामसे क्रांतिकी पूर्णता हो जाती है। पुनः प्रतिलोम परिणाम आरम्भ हो जाता है और क्रमशः विकृतियोंको स्वकारणमें लय करते करते प्रकृत अवस्थाको पहुंचा देता है, क्योंकि क्रांति क्षणमात्र भी विश्राम नहीं लेती। यदि जड़ प्रकृतिस्थ रह जाता तो संसार अस्तित्वमें ही न आता और यदि वह विकृतिस्थ रह जाय तो संसार जहां है, वहांसे आगे या पीछे हट ही नहीं सकता है।

ऊपर निष्क्रियक्रांतिका दिग्दर्शन सक्रिय क्रान्तिको समझनेके लिये कराया गया है। सक्रियक्रांति भी जड़भावों में ही होती है, क्योंकि चेतनमें परिवर्तन या रूपांतर परिणति नहीं होती। भेद केवल इतना ही है कि निष्क्रियक्रांतिके लिये प्रकृति स्वतः प्रवृत्त होती है, उसमें पुरुषका प्रयत्न अपेक्षित नहीं होता और वह परार्थ होती है, क्योंकि प्रकृति पुरुषार्थ साधनके लिये प्रवृत्त होती है, स्वार्थके लिये नहीं। किन्तु सक्रियक्रांति पुरुष प्रयत्न साध्य होती है, अवश्य ही प्रकृतिकी अदृश्य क्रिया भी उसमें सहयोग देती है। साथ ही सक्रियक्रांति स्वार्थके हेतु की जाती है। इसके अतिरिक्त निष्क्रिय और सक्रियक्रांतिमें यह भी भिन्नता है कि निष्क्रियक्रांति तत्त्वोंका विकास या ह्रास करती है, किन्तु सक्रियक्रांति तो उन्हें एकदम बदल डालती है। उदाहरणार्थ घासको लीजिये। प्रकृतिकी निष्क्रियक्रांति तो उसे अनुलोमगतिसे पूर्ण हरित एवं प्रवृद्ध तथा प्रतिलोमगतिसे जीर्णशीर्णमात्र ही करके कृतार्थ हो जाती है। किन्तु जब चेतन पशुके चर्वणादि प्रयत्न द्वारा उसी घासमें सक्रियक्रांति उत्पन्न हो जाती है, तब उसे दुग्धादिके रूपमें एकान्त परिवर्तित कर देती है। स्वार्थसिद्धिके लिये सक्रियक्रांतिकी नितांत आवश्यकता होती है। प्रत्येक चेतन प्रतिदिन स्वार्थसाधनके लिये कुछ न कुछ क्रांति अवश्य ही करता है। अन्यथा वह जी नहीं सकता। ऊपरके निदर्शनमें अन्वेषण कीजिये। पशु, स्वजीवन रक्षाके लिये घासमें क्रांति करता है—उसे चबाकर तत्त्वांतरमें परिणत कर देता है। आत्मरक्षा की यह व्यक्तिगत क्रांति जीवनसंग्रामके सभी क्षेत्रोंमें सर्वदा अविराम प्रचलित है, इसके बिना कोई भी प्राणी आत्मलाभ या जीवनधारण नहीं कर सकता।

परंतु यह स्वार्थमय चेतनप्रयत्नसाध्य सक्रियक्रांति मानवसमाजमें कभी कभी सामुहिक रूपसे भी हो जाती है। यह प्रथम कहा जा चुका है कि निष्क्रियक्रांति ही सक्रियक्रांतिकी जननी होती है। अदृश्य क्रियामय निष्क्रियक्रांतिके द्वारा अन्य पदार्थों के सदृश ही समाजके आचार व्यवहारादि भी धीरे धीरे प्रतिक्षण परिवर्तित होकर किसी समय पूर्ण विकृत हो जाते हैं। अतः जब उनसे समाजका संचालन या कल्याण असम्भव हो जाता है, तब उनमें संशोधनकी आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। पर, संशोधन इसलिये नहीं हो पाता कि समाजका पश्चाद्दर्शी अंश कार्यतः परिस्थितिका दास बनकर भी सुधारका घोर विरोधी बन जाता है और प्राचीनता या सनातनताके नामपर उन्हीं रूढ़ियों एवं कुप्रथाओंको कायम रखना चाहता है, जो वस्तुतः कतई विकृत, अतएव समाजोन्नतिके अयोग्य ही नहीं, किंतु बाधक भी हो चुकी रहती हैं। फलतः समाजमें घोर क्रांति पैदा होकर जिन नियमों को अपरिवृत्ति सह घोषित कर पश्चाद्दर्शी दल संशोधित भी नहीं होने देना चाहता, उन्हींका सम्पूर्ण संस्कार, परिवर्तन और परिवर्धन कर डालती है।

आज यही क्रान्ति संसार—विशेषकर भारतवर्षमें आवश्यक ही नहीं, किन्तु अपरिहार्य भी हो गयी थी, जिसकी पूर्ति वर्तमान संसारके पुरुषोत्तम महात्मा गांधीने कर दी है। अभी संसारकी बात छोड़ दीजिये, केवल भारतको ही निदर्शनार्थ लीजिये। इस विराट्राष्ट्रके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, सभी क्षेत्रोंमें अराजकताका साम्राज्य छा गया था। इसके आचार-व्यवहार, नियम और शासनपद्धति, आदि इतने विकृत हो गये थे कि तदनुसार काम करनेपर प्रजाकी उन्नति तो क्या जीवन भी कुछ ही दिनोंमें अस्तङ्गत हो जाता। सामाजिक कुप्रथाओंको दूर करने, धार्मिक नियमोंको संस्कृत कर उपयुक्त बनाने, आर्थिक सुधार करने और शासनपद्धतिको बदल डालनेके लिये जनता यद्यपि उत्सुक होती थी, तथापि वह स्वदेशी धर्मव्यवसायियों एवं विदेशी अर्थव्यवसायी शासकोंकी बाधा तथा विभीषिकाके कारण अकिञ्चित्कर बन बैठी थी और जो लोग कुछ कर सकते थे, वे भी तदर्थ उत्कण्ठित रहनेपर भी किंकर्त्तव्यमूढ़ हो गये थे ऐसी दशामें कोई अन्य उपाय न देखकर महात्मा गांधीने सार्वभौम और विश्वजनीन क्रान्तिकी उत्तेजना दी।

महात्माजी जिस क्रान्तिके पुरस्कर्त्ता हुए, वह यद्यपि सक्रिय थी, तथापि निष्क्रिय क्रान्तिके सदृश ही अदृश्यरूप, अथच मन्द प्रगतिसे प्रवर्त्तित हुई, अतएव उसे भी लोग एक प्रकारसे निष्क्रिय ही समझते हैं। संसारका इतिहास घोषित करता है कि जहां कहीं भी आज तक सक्रिय क्रान्ति हिंसामय ही हुई पर महात्माजी को ही यह विशेषता है कि आपने न केवल व्यक्तिशः किन्तु सामुहिकरूपसे, तिसपर भी भारतके सदृश विराट् और मिथोविभिन्न मतवाले परस्पर विपरीताचार नाना समाजके राष्ट्रमें संघटित अहिंसामय विकराल क्रान्ति करा दी। अहिंसाके आधारपर प्रस्थापित होनेके कारण ही आपकी सक्रिय क्रान्ति भी निष्क्रिय कहलाने लगी, यह आपके लोकातिशायी विलक्षण प्रभावका अद्भुत परिणाम है।

पहले कहा जा चुका है कि सक्रिय क्रान्ति स्वार्थसाधनके लिये प्रवृत्त पुरुष या समाजके प्रयत्नसे निष्पन्न होती है, सुतरां महात्माजीकी क्रान्ति भी स्वार्थमय ही हो सकती है। किन्तु "स्व" पदका अर्थ जितना सङ्कुचित होता है, उतना ही व्यापक भी हो सकता है। सामान्यतः "स्व" शब्दसे आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति, तथा धनका बोध होता है। अतः संकीर्ण विचारके लघुचेता लोग अपने साढ़े तीन हाथके क्षुद्र कलेवरको आत्मा, स्वसम्बन्धि मात्रको ही आत्मीय, अपने कुटुम्ब परिवार भरको ही ज्ञाति और अपने अधीन सम्पत्तिको ही धन समझते हैं। इस प्रकार उनका "स्वार्थ" कितना सङ्कुचित होता है, यह स्वतः प्रतीत हो रहा है। ऐसे लोगोंका कोई भी प्रयत्न अपने उस सङ्कीर्ण स्वत्वके लिये ही होता है। परंतु महात्मा गांधीने शरीर, तदभिमानी जीव, तदंतर्यामी परमात्म-पर्यन्तको "आत्मा", चेतनमात्रको "आत्मीय", सम्पूर्ण मानव समाजको 'ज्ञाति' और प्रकृतिके समस्त विवर्त्तोंको "धन" समझा है, अतः आपके "स्व" में सम्पूर्ण विश्वका ही समावेश हो गया है। क्यों न हो, "उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" महात्माजीके लिये तो "पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यम्" हो रहा है, इसीलिये आप महान्-आत्मा = महात्मा हैं। अब पाठकोंको यह सहज ही ज्ञात हो गया होगा कि विश्वका स्वार्थ ही महात्माजीका स्वार्थ है और तदर्थ ही आपकी क्रान्तिकारिणी अहिंस्र प्रवृत्ति है। विश्वभरमें समता, शान्ति और प्रेमके साम्राज्य विस्तारके लिये, संसारसे शैतान की सत्ता मिटाकर उसके स्थानमें देवताकी प्राणप्रतिष्ठाके लिये, मानव समाजसे अस्पृश्यता और परतंत्रताकी कुरीतियोंको सदाके लिये नष्ट कर उसकी जगह पवित्रता तथा स्वतंत्रताकी दिव्य मूर्ति पधरानेके लिये ही महात्माजीने क्रान्तिका झंडा उठाया है।

अब महात्माजीके क्रांतिकारी कार्योंका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

१—महात्माजीने वैदेशिक कुशासनको असंभव कर देनेके लिये प्रशांत असहयोग एवं निरुपद्रव सत्याग्रहका सर्वप्रथम सार्वजनिक प्रयोग किया। यद्यपि पुराकल्पमें प्रह्लादादिके सत्याग्रहका उदाहरण मिलता है, तथापि वह आमूल कल्पित है। यदि ऐतिहासिक भी हो, तो भी वह व्यक्तिगत था, सार्वजनिक नहीं। महात्माजीके इस लोकोत्तर प्रयोगसे दो लाभ हुए हैं। एक तो यह कि संसारको नये सिरेसे यह शिक्षा मिली है कि बिना शस्त्रके भी बड़ीसे बड़ी आसुरी शक्तिका सफल मुकाबला किया जा सकता है, और दूसरा यह कि भारतवर्ष इतना आगे बढ़ गया है कि अब वह अपने आदर्शपर पहुँचकर ही दम लेगा। असहयोगका ही यह जगत्प्रताप है कि देशके हृदयपरसे नौकरशाही शासनका आसन बिलकुल उठ गया है, अब वह सिर्फ पशुबलके आधारपर टिका हुआ है, पर, यह बलात्कार कबतक चलेगा? इसलिये महात्माजीकी यह राजनीतिक क्रांति है, क्योंकि इसने जमानेको एकदम पलट दिया है।

२—इस विज्ञानके युगमें कोई यह स्वप्न भी न देखता होगा कि इस २० वीं सदीमें भी कहीं चरखा चल सकेगा और किसीको पहले यह कल्पना भी न हुई होगी कि बड़े बड़े अमीरभी एवं स्त्री ही नहीं, पुरुष भी चरखा चलावेंगे और खद्दर धारण करेंगे। पर, महात्माजीके अद्भुत उद्योगने असंभवको भी संभव कर दिया। आर्थिक क्षेत्रमें चरखे के द्वारा जो विचित्र क्रांति हुई है, वह अभी यद्यपि अपूर्ण है, तथापि संसारको आश्चर्य चकित कर देनेवाली है। इस क्रांतिने अनाहत नाद द्वारा यह उद्घोषित कर दिया है कि इस कल-युगमें भी गृहशिल्प द्वारा आवश्यक वस्तुओंका निर्माण अपने घरमें प्रत्येक प्रयत्नशील मनुष्य कर सकता है। चरखेकी क्रांतिने भारतके द्वारा विश्वको न केवल स्वावलंबनका सदुपदेश ही दिया है, बल्कि भारतके करोड़ों गरीबोंकी आत्मरक्षा भी सम्मानपूर्वक की है।

३—हिंदू मुसलिम एकता और अस्पृश्यता दूरीकरणके अतुल आंदोलन द्वारा महात्माजीने सामाजिक क्षेत्रमें जो महाक्रांति की है, वह सबसे अलौकिक चमत्कारसे परिपूर्ण है। पहले कौन जानता था, किसे स्वप्नमें भी विश्वास था कि कभी ३६ का सम्बन्ध रखने वाले हिन्दू मुसलमानोंकी एकताकी कल्पना भी संभव होगी। साथही यह अनुमान भी किसने किया था कि भारतमें भी अछूतोद्धारका प्रश्न उठेगा। पर, धन्य हैं, गांधीजी, युगकोही पलट दिया! यद्यपि इस क्रांतिने भी अभी अपना काम पूरा नहीं किया है, तथापि क्या अब यह बीचमें ठहर सकती है? अवश्य ही एक दिन भारतमें हिन्दू मुसलिम समस्या और अस्पृश्यता पिशाचीका सदाके लिये अन्त हो जायगा।

४—अब धार्मिक क्षेत्रमें उतर आइये और महात्माजीकी क्रांतिका दिग्दर्शन कर लीजिये। अहो! कैसा अन्धेर था। धर्म अपरिवर्त्तनीय है, उसमें शास्त्र उर्फ शब्दान्तरित पर-बुद्धि ही स्वतः प्रमाण है, ईश्वर प्रदत्त स्वबुद्धिका कोई अधिकार नहीं, अतः धर्मकार्यके समय उसे ताकपर धर देना चाहिये, शास्त्र भी वे ही ग्रंथ हैं, जिन्हें धर्मव्यवसायी लोग स्वीकार करें और उनका वही अर्थ ठीक है जो उन्हींके द्वारा ठहराया जाय, समाजमें प्रचलित प्रत्येक कुरीति भी धर्म है क्योंकि वह सनातन है, अतः यदि उसकी बदौलत समाज रसातल को भी चला जाय तो बलासे, पर उसे मत बदलिये इत्यादि अन्ध धारणाएं दृढ़ भूमि हो गयी थीं। महात्माजीने नाड़ी पहचान ली और सर्वप्रथम अक्षर पूजाके विरुद्ध अनिरुद्ध क्रान्तिका आवाहन किया। आपने यह घोषणा की कि शास्त्र भी मनुष्य बुद्धिजन्य हैं, अतः उनमें भी मानव स्वभाव सुलभ भ्रम प्रमाद एवं रागद्वेषके कारण दोष हो सकते हैं। साथ ही शास्त्रोंकी रचना देश, काल, परिस्थिति और पात्रोंका खयाल करके होती है, इसलिये उन्हीं पर निर्भर न रहकर धर्म निर्णयमें ईश्वरदत्त साक्षात् स्वबुद्धियोगसे भी काम लो।

महात्माजीकी यह घोर क्रांति सभी फसादोंके मूलभूत शास्त्रशब्दका खातमा कर सनातन-धर्मके नामपर प्रचलित घातक रूढ़ियोंके लिये महाप्रलय उपस्थित करके भारतीय समाजको पुरोहितशाहीसे संरक्षित नहीं किया है, किंतु मानसिक या आध्यात्मिक स्वराज्य भी दे दिया है।

कहां तक गिनावें, इतनाही समझना पर्याप्त होगा कि महात्माजीकी भयंकर क्रांतिके भयसे सन्त्रस्त होकर शास्त्र बेचारे धर्मव्यवसायियों ... की वाणीमें शरण ले रहे हैं, अस्पृश्यता बराकी एकमात्र गंदगीमें पनाह पा रही है, प्राचीन रूढ़ियां सिर्फ अन्धाअड्डोंके अन्धविश्वासमें छिपकर उष्ण और दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है, सामाजिक कुप्रथाएं अज्ञानियोंके भ्रममें पड़कर भटक रही हैं, वैदेशिक रक्तशोषक व्यापार चरखा-चक्रमें फंसकर चूर होजाना चाहता है, और सत्याग्रह-नव-ग्रहके फेरसे नौकरशाही शासनका मरणकाल पहुँच चुका है। अतः महात्माजी इस युगके सबसे बड़े क्रान्तिकारी हैं।

महात्माजीकी क्रांतिकारिताका निरूपण हो चुका। अब आपके दूसरे विशेषण महर्षित्वका समन्वय किया जाता है। बहुत लोगोंकी यह धारणा है कि ऋषि, या महर्षि पुराकल्पमें हो चुके हैं, अब कोई उस पदको कथमपि नहीं पा सकता। यही नहीं, इस युगमें तो कोई मुनि भी नहीं हो सकता। हां, अवश्य ही आज भी आचार्य पैदा हो सकते हैं। इस मतके सज्जन विशेषतः सनातनी नामधारी शास्त्रव्यवसायी लोग महात्माजीके महर्षित्वकी कल्पनाको भी नहीं सह सकेंगे। पर, यदि बात ठीक है तो उसे न माननेके दुराग्रह करनेवालोंके भयसे व्यक्त न करना अच्छा न होगा, इसलिये प्रथमतः ऋषिका शास्त्रीय लक्षण बतला करके अन्तर महात्माजीमें उसका समन्वय करना ही समुचित होगा।

निरुक्तकार महर्षि यास्कने अपने वेदांगमें यह श्रुत वचन उद्धृत किया है—

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मंत्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदांगानि च"

निरुक्तका यह वचन बड़े ही महत्वका है, क्योंकि इसपर विचार करनेसे न केवल ऋषित्वका निर्णय ही होता है, किन्तु साथ ही धर्म एवं वेदके विषयमें भी रहस्यपर काफी प्रकाश भी पड़ जाता है। इसके द्वारा निम्नलिखित विषय अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होते हैं—

१—धर्मका साक्षात् दर्शन भी होता है, अतः वह वकील शास्त्र व्यवसायियोंके यज्ञादि क्रिया जन्य, स्वर्गादि परलोक मात्र साधक अपूर्व या अदृष्टमात्र ही नहीं है। किन्तु वेदादि शास्त्रोंमें वर्णित लौकिक एवम् पारलौकिक निखिल कर्मकलाप ही धर्म है क्योंकि धर्मशास्त्रोंकी प्रवृत्ति, धर्मके उपदेशार्थ ही हुई है। यदि उनमें धर्मेतर विषयोंका भी निरूपण हो, तो वे धर्मशास्त्र ही नहीं कहला सकते। मैं देखता हूँ कि वेदादि धर्मशास्त्रोंमें जहां परलोक साधनीभूत यज्ञादि क्रियाओंका सदुपदेश है, वहां लौकिक आचार व्यवहार, जीविकावृत्ति और शासनव्यवस्था प्रभृतिका भी भरपूर वर्णन है। यदि अपूर्वमात्र ही धर्म होता तो तावन्मात्रको ही कहकर धर्मशास्त्र कृतार्थ हो जाते। अतः यह बात सिद्ध होती है कि धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट सभी कार्य धर्मपदाभिधेय हैं। धर्म पदका योगार्थ भी प्रजाधारक या समाजपोषक यावत्कर्मका निर्देश करता है। वेदोंके अनुसन्धानसे यह भी ज्ञात होता है कि धर्म शब्द भी सिर्फ अपूर्वजनक क्रियाओंका ही वाचक नहीं है किंतु प्रजोन्नतिसाधक कर्म मात्रका बोधक है। अतः धर्मका साक्षात्कार होना ठीक ही लिखा है।

२—साक्षात्कृत धर्मा, अर्थात् धर्मको प्रत्यक्ष देखनेवाले महात्मा "ऋषि"। कहना ये दुर्गाचार्यने "साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः इस वाक्यका अर्थ यों किया है—

साक्षात्कृतो यैर्धर्मः साक्षाद् दृष्टः प्रतिविशिष्टेन तपसा त् इमे साक्षात्कृत धर्माणः। के पुनस्त इति? उच्यते—ऋषयः।

अब दुर्गाचार्यने जो "ऋषि" पदका निर्वाचन किया है, उसपर भी ध्यान दीजिये—

"ऋषन्ति अमुष्मात्कर्मण एवमर्थवता मंत्रेण संयुक्तादमुना प्रकारेणैवंलक्षणः फलविपरिणामो भवतीति—ऋषयः"

इस निरुक्तिके सकृदनुवाचनसे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योगवतः प्रभावसे अमुक मंत्र [उपाय] के द्वारा अमुक प्रकारसे कृत अमुक कर्मसे अमुक फलकी सिद्धि अवश्य होगी—इस निश्चयात्मक बुद्धियोगसे धर्मका साक्षात् देखनेवाले महाजन 'ऋषि' होते हैं। "ऋषिर्दर्शनात्" इस आर्षोपदेशका भी यही तात्पर्य है।

३—"तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मंत्रान् सम्प्रादुः" इस वाक्यका अक्षरार्थ यह है कि उन साक्षात्कृतधर्मा ऋषियोंने अवर-अपनेसे बुद्धिमें कम, अतएव असाक्षात्कृतधर्मा—यानी स्वयं धर्मको देखनेमें असमर्थ शिष्योंको उपदेशके द्वारा मंत्र प्रदान किया, अर्थात् धर्म विषयक तत्त्वावधारण कराया।

इस वाक्यमें "मन्त्र" पद बड़े महत्वका, अतएव बहु विचारणीय है। यहां मन्त्र शब्दका अर्थ धूर्त तान्त्रिकोंका मन्त्र, या ढोंगी ओझा-गुणियोंका चुड़ैल झाड़नेवाला पचड़ा नहीं है। किंतु उस तत्त्वज्ञानका नाम मन्त्र है, जिसका क्रियात्मक प्रयोग ही धर्म कहलाता है। इसीलिये मंत्र एवं धर्ममें बहुत भेद नहीं माना गया है। यही कारण है कि "साक्षात्कृतधर्मत्व" तरह ही "मंत्र द्रष्टृत्व" भी ऋषिका दूषणशून्य लक्षण है। "ऋषयो मंत्रद्रष्टारः"।

४—"उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्म ग्रहणायेमं ग्रंथं समाम्नासिषुः-वेदं च, वेदांगानि च" पुराकल्पश्रुत वचनका यह तीसरा वाक्य रहस्यसे विशेष परिपूर्ण है। इस वाक्यका अक्षरार्थ यह है—अनन्तर ऋषि शिष्योंने साधारण जनताके उपदेशार्थ—यदि ऋषियों द्वारा कड़ी तपश्चर्या करके प्राप्त तत्त्वबोध शब्दबद्ध न किया जायगा तो लोग जो स्वयं धर्मको समझनेमें असमर्थ होंगे, कैसे तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करेंगे—इस प्रकार ग्लानि चिंता करके बिल्मग्रहण—धर्मतत्त्वावभासके लिये इस ग्रंथ—निघण्टुको और वेद तथा वेदांगोंको भी बनाया। इसकी समालोचना करनेसे यह बात स्वतः प्रकट हो जाती है कि—जिन आप्त पुरुषोत्तमोंने त्यागपूर्वक तपश्चर्याद्वारा एकांतमें तत्त्वचिंतन करके समाजके सर्वांगीन अभ्युदयार्थ यज्ञ या धर्मविषयक मन्त्र—अर्थात् प्रजाधारक सर्वतोमुख कार्यगोचर अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर लिया वे मन्त्रद्रष्टा, तथा साक्षात्कृतधर्मा, अतएव ऋषि कहलाये। वे उन मन्त्रोंका उपदेश अपने स्वयं पैदा करनेमें असमर्थ शिष्योंको जबानी ही देते थे। अनन्तर उन शिष्योंने लोकोपकारार्थ उन मन्त्रों—सफलकर्म विषयक ऋषिकृत निश्चयोंको शब्दबद्ध कर दिया, जिनका संग्रह वैदिक संहिताओंमें हुआ। मंत्रात्मक होनेसे वे संहितावाक्य भी मंत्र कहलाने लगे। पुनः यथासमय यथायोग्य तथा यथाऽधिकार और यथाप्रयोजन मंत्रार्थ बोधके लिये ब्राह्मणों एवं वेदांगोंकी रचना होती गयी।

इस विषयांतराभासपर, आवश्यक संक्षिप्त विवेचनसे मुझे इतना ही भवितार्थ निकालना था कि मंत्रद्रष्टा—अर्थात् कर्तव्य-बुद्धियुक्त और साक्षात्कृतधर्मा—अर्थात् तदनुसार आचार-व्यवहार प्रयोजक कोई भी पुरुषविशेष ऋषि हो सकता है। इसमें देश, काल और जाति आदिका कोई बन्धन नहीं है। यह बात वेदादि शास्त्रोंमें भी नहीं पायी जाती कि पुराकल्पमय वशिष्ठ वामदेवादि ही ऋषि हो सकते हैं, अधतन महापुरुष नहीं। अब यह कहनेको स्थान, बाकी न होगा कि महात्मा गांधी इस युगके महर्षि हैं। क्योंकि आपने देश, काल, अवस्था, अधिकारी, प्रयोजन, प्रजाकी मनोवृत्ति और प्रवृत्तिको देखकर समाजके आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं जातीय स्वत्वरक्षणयुक्त समता एवं स्वाधीनता पूर्वक सुख शांतिमय प्रेमानुप्राणित परम पवित्र जीवन लाभार्थ जिस महामंत्र-कर्तव्यावधारणको प्राप्त किया है और तदनुसार स्वयं व्यवहार कर जिस धर्म कर्मयोगका साक्षाद्दर्शन किया है, उसने आपको निस्सन्देह ऋषि बना दिया है। स्वराज्य धर्म तथा तारक महामंत्रका निरंतर प्रचार महात्माजी अपने आदर्श चरित्रों एवं महार्घ उपदेशों द्वारा संसारभरमें कर रहे हैं, अतः इसपर अधिक प्रकाश डालना व्यर्थ है।

उपर्युक्त प्रकारसे संक्षेपतः महात्माजीके क्रांतिकारित्व एवं ऋषित्वका प्रतिपादन तो कर दिया गया, परन्तु महान ऋषि महर्षि होते हैं, अतः आपका महत्व प्रतिपादन शेष रहा। किंतु निर्मल आकाशमें प्रकाशमान जेठकी दोपहरीके प्रचण्ड मार्तण्डको साबित करनेके लिये ज्योतिरिङ्गणकी रोशनीका सहारा लेना हास्यास्पद प्रयत्न है। एवमेव विश्वविश्रुत महात्माजीके स्वयं प्रकाश माहात्म्यको सिद्ध करनेके लिये कोई प्रमाण पेश करना बेकार है। आपकी असीम जगन्मान्यता ही इसमें स्वतः प्रमाण है। अन्य ऋषिमुनियोंकी बात तो जाने दीजिये—श्रीराम, श्री कृष्ण, भगवान बुद्ध, महात्मा ईसा और हजरत मुहम्मद प्रभृति अवतार तथा पैगम्बर भी अपनी जिंदगीमें भी इतनी महत्ता नहीं पा सके थे। आदर्श चरित्र, असीम योग्यता और लोकोत्तर प्रभावसे ही कोई भी पुरुष महान होता है। महात्माजीके चरित्रके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसमें मानवताके सम्पूर्ण विकासकी अशेष और अक्षय सामग्री ही नहीं निहित है, किंतु आदमीको देवता बना देनेके उपयुक्त उपकरण भी आवश्यकतासे अधिक संचित हैं। जिसे विश्वास न हो, वह उनकी आत्मकथाका मनन करे और उनके साथमें रहकर उनके आदर्श सदाचारको स्वयं देख ले।

महात्माजीकी योग्यताके विषयमें भी कुछ कहना प्रातिपदिक अत्यक्षका शाब्दिक अनुवाद मात्र होगा, क्योंकि आपकी अतिमानुष योग्यताका साक्षाद्दर्शन पदे पदे हो रहा है। लक्ष्मी, सरस्वती, और दुर्गा ये तीनों महाशक्तियां स्वप्नमें भी आपके पीछे दौड़ी फिरती हैं और आपकी जिह्वाके अग्र भागपर नृत्य करती हैं। महात्माजीके साथ चलनेवाली लक्ष्मी देवीकी सेवा करते करते उनके अनुचरोंके भी भाकोदन रहता है। आपको सरस्वतीका दर्शन जिसे करना हो, वह आपके लेखों, व्याख्यानों, प्रश्नोत्तरों और वाग्गोष्ठीकी समालोचनाओंको ध्यानसे पढ़े। महात्माजीकी दैवी शक्तिके सम्बंधमें इतना ही जान लीजिये कि आप विराट् हैं, जनता जनार्दन, नर नारायण या पंच परमेश्वर आपके अङ्ग या विभूतियां हैं। मेरी तो यह धारणा है कि यदि महात्माजी आज हिंसक बनकर एक हुंकार भर दें तो भारतमें कलि चण्डिकाका वह विकराल कलेवर प्रकट हो जाय, जिसका नियंत्रण करना तो दूर रहे, उसके सामने क्षणमात्र ठहरना भी नौकरशाहीके लिये असम्भव हो जायगा। महात्माजीकी इस महती शक्तिका पता बड़े बड़े शहरोंमें निवास करनेवाली जनता या नागरिक नेताओंको—जो वस्तुतः तात्त्विक भारतसे परे रहते हैं—

भलेही न हो, किन्तु हम देहाती आदमी यह अच्छी तरह जानते हैं कि भारतके सात लाख गांवोंमें आपकी एकछत्र, पर, नितरां जागरूक शक्ति या प्रभुताका कैसा सञ्चार है! भारतीय देहाती जनतामें महात्माजीके प्रति ईश्वरीयभाव है। बहुतेरे ग्रामीण अभी तक यह भी नहीं जानते कि गांधी देवी है या देव। मैंने आंखों देखा है कि अगणित लोग गांधी-माईके नाम मन्नत मानते एवं पूजा चढ़ाते हैं, और अनेक भावुक भक्त गांधी बाबा कहकर आपकी उपासना करते हैं। यद्यपि यह अज्ञानका विषम विवर्त है, तथापि इसे रोक भी कौन सकता है? सच तो यह है कि क्रांतिके लिये व्यक्ति विशेषमें जनताकी ईश्वरीय भावना का-फिर चाहे वह मोह कल्पित ही क्यों न हो नितान्त आवश्यकता होती है। इतिहास साक्षी है कि जनताकी ऐसी मनोवृत्तिने ही समय समयपर युगपरिवर्तन कर दिया है। क्रांति द्वारा युगपरिवर्तनके लिये प्रत्येक देश या समाजको एक उच्चव्यक्तित्वकी आवश्यकता होती है, जिसके प्रति अलौकिक भावोद्रेकके कारण उन्मत्त जनता तृणवत् आत्मोत्सर्ग कर देती जान तक दे डालती है। सौभाग्यवश इस क्रांतिके अप्रशान्त युगमें महात्मा जीके धीर प्रशन्त उदात्त व्यक्तित्व का आधार भारतको मिला है जिसके प्रति उत्कट ईश्वरीय भावके कारण भारतीय हृदय असम्भवको भी सम्भव कर देगा। हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस महात्माजीसे भी

बड़ी है—जिसके एक सदस्य महात्माजी भी हैं, वह संस्था अवश्य सर्वोपरि है। परन्तु महात्माजीका व्यक्तित्व कांग्रेससे भी बड़ा है, उसके रोम रोममें कांग्रेस भरी है। जिसके कपालमें आंखें हों वह महात्मा जीके रोएका दृश्य देखे। यदि पता लगता है कि महात्माजी अमुक ट्रेनसे इधर आयेंगे तो उस दिन उस लाइनके दोनों साइडमें बड़ी कांग्रेसोंको कोठेमें देख लीजिये। यदि यह खबर मालूम हो जाय कि गांधीजी अमुक स्थानमें पांच मिनट ठहर कर उपदेश देंगे तो दूसरे लिये थैलियोंके साथ घण्टों पहलेसे ही कांग्रेसकी घटा उमड़ पड़ती है।

कौंसिलोंमें कुर्सियां उड़ाकर वाग्युद्ध करनेवाले हमारे वृद्ध नेता, अथवा कांग्रेसके उच्च मंचसे सारहीन, पर उग्र गर्जन करनेवाले हमारे नवयुवक भाई, और क्रियाशून्य वर्ग एवं फाड़कर गेट्रेनरिंगको भी मात करनेवाले अन्य कुछ सज्जन, महात्माजीके उपर्युक्त विराटरूपको भले ही न देखते हों, पर, उसे देखते हैं दूरदर्शी अंगरेज राजनीतिज्ञ, उन्हींको दिव्य दृष्टि मिली है। यही कारण है कि वे देशभरकी उपेक्षा कर सकते हैं, कांग्रेसकी परवाको भी त्याग सकते हैं, पर, गांधीजीकी उपेक्षा करनेमें वे भी असमर्थ हैं। बस, महात्माजीकी गति मतिका निरीक्षण—उनकी प्रत्येक चेष्टाका पर्यालोचन ही ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके विचारका विषय है। अन्य विदेशियोंके ध्यानमें भी एकमात्र गांधीजीका ही गौरव है।

पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि हमारे ही देशके कुछ पश्चाद्गामी तथा कुछ अग्रगामी भाई महात्माजीको अभीतक नहीं पहचान सके हैं। सौभाग्यसे देशमें अब पश्चाद्गामियोंकी बात नहीं सुनी जाती, पर, अग्रगामी दल जनताको कुमार्गमें ले जा सकता है। मैं भी अपनी दुर्बलताके कारण महात्माजीकी अहिंसामय दिव्य आज्ञाके पालनमें असमर्थ हो रहा हूं, अतः यदि सम्भव होता तो हिंसाके मार्गसे भी मातृभूमिकी मुक्तिका प्रयत्न करता। पर, क्या यही है मार्गका लाभ, जो समग्र विप्लवकी लिये ही नहीं, देशको तैयार करता हो? मैं क्योंकर लेखक बनूं! यदि गुप्त षड्यन्त्रोंकी बातें कही जायें तो वे भ्रामक हैं, वस्तुतः उनसे कुछ होनेका नहीं। कभी कभी बम फेंककर या गोली चलाकर किसी अङ्गरेजको मार करके स्वयं भी फांसीपर लटक जाना प्रायः सहज काम है। पर जीवित रहकर महात्माजीकी तरह देशसेवा करना परम कठोरव्रत है। अतः मैं महात्माजीकी इस आज्ञाका स्मरण दिलाता हूं कि—"कुछ और सब्र कीजिये, जबतक मैं जिंदा हूं, सब्र कीजिये"। बोलिये—क्रांतिकारी महर्षि गांधी की जय।

आ. ना. प्र. हि. सं. २७. अगस्त, सं. १९२८.

विवाहका वयस्।

कुछ दिन हुए 'विवाहके वयस्' पर, एक मित्रके अनुरोधसे, मैंने अपना मत प्रकाश किया था। उसके खंडनमें दिल्लीके दैनिक "हिन्दू संसार" में और काशीके साप्ताहिक "ब्राह्मण महासम्मेलन पंडित पत्र" में कुछ लेख छपे हैं, और उनके प्रत्युत्तरके लिये मेरा निमन्त्रण किया गया है। लेखक महाशयोंने मेरे ऊपर दया करके मेरे लिये जो सत्कारके शब्द लिखे हैं उनके लिये मैं उनको हृदयसे धन्यवाद देता हूं। पर इस प्रकारके उत्तर प्रत्युत्तरमें तो मैं किसी प्रकार पार नहीं पा सकता। संस्कृत ग्रन्थोंका ज्ञान मुझे बहुत थोड़ा है। अन्य विविध कार्योंमें सदा व्यग्र रहनेके कारण, इस ओर बड़ी रुचि रहते हुए भी, दस बीस ग्रंथोंका पाठमात्र कर पाया हूं। जितनी जानकारी मुझे संस्कृत ग्रन्थोंकी है उससे बहुत अधिक ज्ञान रखनेवाले विद्वान् काशीकी एक एक गलीमें बीसियों बस रहे हैं। तो किस पोथीमें क्या लिखा है, और दो पोथियोंके वाक्योंमें परस्पर व्याघात है तो कैसे परिहार किया जाय, "श्रुतिद्वैधे उभयं धर्मः", इत्यादिकी पर्याप्त सामर्थ्य मुझमें नहीं। "प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति", अपनी प्रकृतिसे विवश हो रहा हूं।

प्रकृति भेद।

इस सम्बन्धमें प्रायः दो प्रकृतियाँ प्रत्यक्ष आंखके सामने देख पड़ती हैं। एक तो 'लेजिस्लेटर', धर्म-कानून बनानेवाले, "लेजिस्लेटिव असेम्बली", धर्म परिषद्के सदस्य। दूसरे, उनके बनाये हुए धर्म-कानूनोंके अक्षरों का अर्थ लगानेवाले, जज, प्राड्विवाक्, वकील आदि। दूसरे शब्दोंमें, एक शास्त्रकर्ता, शास्त्रप्रवर्तक, दूसरे शास्त्रव्याख्याता, पंक्तियोंके लापयिता। अथवा यों भी कह सकते हैं कि एक तो धर्मकानूनके अभिप्राय, लक्ष्य, प्रयोजन, हेतु, पर अधिक ध्यान देते हैं, दूसरे लिखित अक्षरोंपर। जीवत् समाज में दोनों रहते हैं। क्रममें, आत्मवशता, आत्मश्रद्धा, स्वावलम्ब, स्वातन्त्र्य, स्वबुद्धिबल, स्वबुद्ध्यधीनता, कम हो जानेसे, शास्त्रप्रवर्तक, नयी उपचा, उपज, वाले, कम हो जाते हैं, दूसरी प्रकृतिके ही अधिक होने लगते हैं। और अधिक ह्रास होनेपर वे भी कम हो जाते हैं।

धर्म-कानून बनानेवाले आदमीको विशेष करके अनुभवी, इतिहासज्ञाता और व्यवहार ज्ञाता, होना चाहिये। यदि पोथीज्ञाता भी हो तो और अच्छा है, सोनामें सुगन्ध हो जाय। व्याख्याता वकीलको विशेषकर पोथीज्ञाता और तर्कज्ञाता होना चाहिये, उसके पास जितना ही अधिक संचय पुरानी पुरानी कानून की पोथियोंका हो, उतना ही बड़ा वकील, "लर्नेड", "पंडित"। यदि व्यवहारका साक्षाद् अनुभव भी उसको हो तो—यह दर्बी जबानसे कहना पड़ता है—स्यात उसकी वकालत कुछ और चमके, कुछ अधिक गुण उसमें आवें। सन्देह यह है कि अनुभवके अनुसार तो प्रायः एक ही ओर चल सकता है, और वकीलको तो मौकेके अनुसार दोनों ओर चल सकना चाहिये। आज एक पक्षकी वकालत कर रहे हैं, तो कल उसके ठीक विरोधी प्रतिपक्ष की। आज एक ओरके लिये बहुतसी नजीर, बहुतसे शास्त्रीय प्रमाण, पेश कर रहे हैं, कल दूसरी ओरके लिये। जब ऐसे वादविवादसे, और परस्पर विरुद्ध फैसलोंसे, धर्म-कानून नितरां संशयित हो जाता है और समाजकी अवस्था ऐसी हो जाती है कि संशयको दूर करना आवश्यक होता है, तब धर्म-कानून बनानेवालेको नया धर्म बनाना पड़ता है, अथवा चाहे यह कहिये कि धर्मका नया निर्णय कर देना पड़ता है।

नव-पुराण।

प्रायते किमायातम्? यहांके समाजमें जब ऐसा बुद्धिह्रास, शक्तिह्रास, हुआ कि स्मृतिकाराः, धर्मप्रवर्तकाः शास्त्रप्रवर्तकाः "ऋषयो नार्वाचीनेषु जायंते", यही विश्वास फैल गया, तब केवल व्याख्या होने लगी। पर तिसपर भी तबियतदार लोग व्याख्या हीके बलसे समाज सुधार करते रहे।

> पुराणमित्येव न साधु सर्वं
> न चापि काव्यं नवमित्यवद्यं।
> संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजते
> मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥

यह नया श्लोक नहीं है। भेड़ाद्याः किं न पठ्यंते" यह वाग्भटने भी चुटकी ली है। "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते", यह भी प्रसिद्ध है। "भ्रष्टो व्याकरणागमः" कहके हरिकारिका व्याकरणके जीर्णोद्धारके लिये बनी। जब मनुकी स्मृतिसे पूरा नहीं पड़ा, तभी तो याज्ञवल्क्य और स्मृतियाँ समयसमयपर बनीं। "अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे" इत्यादि, तथा "कलौ तु पंचकर्माणि निषिद्धानि महात्मभिः" इत्यादि सबके मुंहसे सुन पड़ते हैं। फिर भी अपने ऊपर इतना अविश्वास है कि स्वतंत्र बुद्धिसे नया धर्म बनाने, अथवा धर्मका प्रतिसंस्कार करने, की हिम्मत ही नहीं पड़ती।

प्रत्यक्ष बनाम शब्द।

वैद्यकमें सुश्रुतने कहा है, "तस्माद् योग्यां कारयेत्", सो योग्यकी हिम्मत ही नहीं रही। मुर्दा कैसे छूएं। जाय भलेही जायं, पकायकर, पर कच्चा छूएं कैसे। वाग्भट, माधव, भावमिश्र आदि आयुर्वेदविद्वोंने, तथा गोरक्ष, मत्स्येन्द्र आदि अवधूतोंने, नये कल्पों, नये रसायनों, भस्मों आदिका प्रवर्तन किया ही। ज्योतिषमें भी भगणके स्थान बदलनेसे बीच बीचमें संशोधन करना पड़ता है, जहां नहीं किया जाता वहां शास्त्रका क्रम अशुद्ध होही जाता है। तो जहां जहां प्रत्यक्षकी गति है वहां आप्त वाक्य, आप्त काव्य, की ही पुकार करना कहांतक ठीक है, यह पाठक आप ही विचारें।

उक्त मेरे मतके खिखंडयिषु लेखोंमें जो संस्कृत ग्रन्थोंसे वाक्य उद्धृत किये गये हैं उन्हींके परस्पर विरोधोंपर विस्तारसे विचार किया जाय तो एक छोटी मोटी पोथी होजाय और पाठक सज्जन पढ़ते पढ़ते उद्विग्न होजायं। इसलिये यहां इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि "दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला" इस वाक्यपर भारी आश्रय किया जाता है, सो प्रत्यक्षके विरुद्ध है, वस्तुस्थितिके विरुद्ध है, और अशुद्ध है, चाहे कैसे भी महर्षिने लिखा हो, यदि इस वाक्यको सार्वत्रिक, सार्वदिक, प्राकृतिक नियमका बोधक समझा जाता हो तो।

> युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
> अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥

प्रत्यक्ष देख पड़ता है कि वैयक्तिक शरीर की प्रकृतिके भेदसे, तथा परिस्थितिके भेदसे, तथा जल, वायु, शैत्य, औष्ण्य, आदिके देश देशान्तरके भेदसे, कन्याओंको कहीं जल्दी कहीं देर करके रजोदर्शन होता है। १५ वें, १६ वें वर्ष तकमें तो संयुक्त प्रान्तकी आबोहवामें भी यदा कदा देखा जाता है।

यौवन प्रासिका 'दर्शन"।

स्थूल जलवायुसे भी अधिक प्रभाव मानस वातावरणका है। जिस घरमें, जिस समाजमें, अश्लील बात, अश्लील हास, विवाह विषयक, स्त्री पमान् विषयक, जल्पगल्प, सदा होते रहते हैं, वहां सुननेवाले बालक बालिकाओंका भी मन उसी ओर अधिक झुकेगा ही। और दर्शनशास्त्रकी शिक्षा है कि "यत्र मनो गच्छति तत्र प्राणः अनुधावति, यत्र प्राणो याति तत्र रक्तं अनुव्रजति, यत्र रक्तं एति तत्रान्ये धातव उपचीयंते।" निष्कर्ष यह कि जिस हवामें अश्लील चर्चा अधिक और ब्रह्मचर्या कम वहां रजोदर्शन कन्याओंमें, और शुक्राविकिरण बालकोंमें, बहुत जल्दी देख पड़ेगा।

दृष्ट और अदृष्ट।

अदृष्ट फलका अर्थ चित्तसंस्कार अथवा चित्तदुष्कार, और उसका पुनः दृष्ट फल तदनुरूप। यदि इस प्रकारसे दृष्ट और अदृष्ट फलका अर्थ लगाया जाय [जो सुतरां नितरां धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्रका सम्मत है] तो भी बहुत कुछ आजकालके धर्मशास्त्रके विकारोंका संशोधन हो जाय। पर इसको कौन देखता है। यहां तो अन्धाधुन्ध अक्षरकी लकीर पीटनेकी पड़ी है, और धर्माधर्मका परलोक हीमें फल होगा इसीकी भरमार है। यथा जो रजोदर्शनके पहिले कन्याका विवाह नहीं कर देता वह नरकमें पड़ेगा, उसके पितर क्या क्या पीयेंगे इत्यादि। क्या, भाई, सचमुच अक्षरशः ऐसा ही आपका विश्वास है? या "रोचनार्थां (और भर्त्सनार्था) फल श्रुतिः" यह भी आप मानते हो? सच कहना, भाई।

आधेपर श्रद्धा। आधेपर नहीं।

बड़ी कठिनता तो यह है कि आप जिन श्रुतिस्मृतिके वाक्योंका उद्धरण करते हो उनमेंसे आधे अंशपर ही पर इतना घोर आग्रह करते हो, और दूसरे अर्धांशको हवामें उड़ाय देते हो। मैं मान भी लेनेको तयार हूँ, कि मनुके श्लोकके जिस पाठको मैं शुद्ध समझता हूँ वह अशुद्ध, और जिसको आप शुद्ध समझते हो वही शुद्ध, अर्थात् तीस वर्षके अविप्लुतब्रह्मचर्य युवाका विवाह बारह (द्वादश) वर्षकी (द्विदश बीस, नहीं) कन्यासे अथवा चौबीस वर्षके आठ (अष्ट) वर्षकी कन्यासे, [अष्टि, सोलह, नहीं] होना ठीक है, यदि आप लोग इसपर अड़जाओ कि वरकी उमर भी तीस या चौबीससे कम नहीं ही हो, और केवल मौखिक अड़न नहीं, किन्तु अपने कौटुम्बिक आचरणमें भी इसी अड़न का अनुकरण करो। तब तो आपकी बातपर श्रद्धा हो। जो कहै कुछ और करै कुछ, उसकी बातको लोग कम पतियाते हैं।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
आपु करैं ते नर न घनेरे॥

टक्कर किस बलसे?

एक लेखकने लिखा है कि इन्हीं शास्त्रोंके बल भारतीय सभ्यता आज हजारों बरसके कालसे टक्कर ले रही है, जहां और सभ्यता विलीन हो गईं, तथा यह भी लिखा है कि अंग्रेजी पढ़े लोगोंके संस्कारोंसे इन शास्त्रों और इस सभ्यताकी रक्षा नहीं हो सकती है। एतत् चिन्त्यम्। कुछ लोगोंका तो मत है कि यदि अंग्रेजी पढ़ेवालोंने और स्वामी दयानन्दने जोर न लगाया होता, तो सनातनधर्म का बाना बांधनेवाले सज्जनोंने वेदका और वेदार्थका और बहुतेरे संस्कृत ग्रंथोंका लोप ही कर दिया होता। तथा यह कि जिस प्रकारकी व्याख्या ये लोग इधर कई सौ वर्षसे प्राचीन ग्रन्थोंकी करने लगे हैं उसी व्याख्याने भारतवर्षकी दुर्दशा करा डाली, स्वराज्य नष्ट कर दिया, धार्मिक दासबुद्धि फैलाकर राजनीतिक दासबुद्धि फैला दी, स्वावलम्बकी जड काट दी। जैसी कहावत है, "नकटा जीया बुरी हवाल", सो दशा कर दी। यदि भारतकी सभ्यतामें कुछ अच्छा अंश बच गया है तो इस कारणसे कि समय समयपर "सनातनधर्म" का सच्चा अर्थ बताने फैलानेवाले, बुद्ध, जिन, से लेकर कबीर, नानक, गुरु गोविन्द, दयानन्द, आदि बराबर होते आये हैं, और उसका पुनः पुनः प्रतिसंस्करण करते रहे हैं। भारतीय सभ्यता सबसे पुरानी है, यह आप कहते हो सही, पर आपके पास इसका प्रमाण क्या? अपनी दहीको सभी मीठा कहते हैं, अपनी अपनी सभ्यताकी सभी बड़ाई करते हैं। आप वेद दिखाते हो तो जापानी कोजिकी औ निहोंगी नामके पुराने ग्रन्थ दिखाते हैं, और चीनी भी ताओ-ते-किङ् और शू-किङ् और शे-किङ् और ईरानी शाहनामा, और ग्रीक होमरके ग्रंथ आदि। भारतीय सभ्यताकी पुराणताका प्रमाण भी अङ्गरेजी पढ़ाने ही बड़े परिश्रमसे, पृथ्वी खोद खोदकर और आपके भुलाये हुए इतिहासको एकत्र करके, सिद्ध किया है। हमारी सभ्यता सबसे पुरानी है, यह कहते मुझको भी अच्छा लगता है, पर "अति सर्वत्र वर्जयेत्"।

विरुद्ध कोटियाँ।

राजनीतिक क्षेत्रमें भी, और धर्मके क्षेत्रमें भी, दो अत्यन्त विरुद्ध कोटि देख पड़ती हैं, और एक कोटिसे दूसरी कोटि तक फैली हुई, और दोनोंको बांधती हुई, नरम और गरम वादोंकी माला वा शृंखला, भी देख पड़ती है। राजनीतिमें एक कोटिपर गवर्मेन्टकी प्रत्यक्ष उद्दंडता है, वैसी ही दूसरी कोटिपर विप्लवकारियोंकी भी प्रच्छन्न उद्दंडता है, और बीचमें राजभृत्य, राजभक्त, लिबरल, इंडिपेंडेंट, नैशनलिस्ट, स्वराजी, सैद्धांतिक निरुपद्रव शांतावज्ञाकारी, नैतिक (औपायिक) शांतावज्ञाकारी, देख पड़ते हैं। वैसे ही हिंदू धर्ममें एक कोटिपर शब्दवादी, लकीरके फकीर, पोथीके अक्षर पीटनेवाले, हेतु पूछनेवालेको नास्तिक कहनेवाले, और दूसरी कोटिपर वेदों और स्मृतियोंको रद्दी, टोकरिया पुराण, "श्रुतेभंडमर्पंडितः", इत्यादि बताने वाले। पहिली कोटिके लोग प्रायः वेहा हैं जिन्होंने केवल संस्कृत देखा सुना है, अंग्रेजी नहीं। दूसरी कोटिमें वे जिन्होंने केवल अंग्रेजी देखा सुना हैं, संस्कृत नहीं। एक कोटिपर "ब्राह्मण महासम्मेलन" है, दूसरीपर (कोई ठीक सभा समिति तो नितरां नास्तिक हो मिलती नहीं, परस्यात् कह सकते हैं कि) ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज ऐसे वेदनास्तिक दल हैं। बीचमें सनातनधर्म सभाके कई भेद और कई काष्ठा, फिर हिंदू महासभा, फिर सोशल कान्फरैंसकी विविध काष्ठा, आदि, और कुछ "आश्रयेत् मध्यमां वृत्तिमति सर्वत्र वर्जयेत्" और "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः" इत्यादि विचार वाले, जो प्राचीन सिद्धांत वाक्योंका, पाश्चात्य ज्ञानोंके दीपककी सहायतासे, मार्जन परिष्करण करके पुनरुद्धार करना चाहते हैं। यथा वर्णव्यवस्थाको शिरोधार्य मानते हुए भी "कर्मणा वर्णः" को मुख्य और "जन्मना वर्णः" को गौण समझते हैं। इत्यादि।

फलानुमेयाः प्रारम्भाः।

सो यह संघर्ष दोनों क्षेत्रोंमें, दो प्रकारकी प्रकृतियोंमें, और प्रत्येकके अवांतर भेदोंमें, चल रहा है। अपनी अपनी बुद्धि और श्रद्धाके अनुसार सभी पक्ष परिश्रम कर रहे हैं। जो भारतकी सामयिक सूत्रात्माको अभीष्ट होगा वही निष्कर्ष निकलेगा। यतो धर्मस्ततो जयः —ऐसा प्रत्येक युद्धमें दोनों ओरके योद्धा कहते हैं। जिस ओर निश्छल निष्कपट निःस्वार्थ निर्दम्भ लोकहितबुद्धि लोकसंग्रहबुद्धि होगी, उसी ओर सच्चा धर्म समझना चाहिये, और यह बात, फलानुमेयाः प्रारंभाः, फल हीसे निर्णय होगी।

यतो धर्मस्ततो जयः।

भगवान्‌दास।

सौर २६—१२—१९८६ वै०।

నాయీబ్రాహ్మణుల (మంగలి) చరిత్ర

నాయీలు మౌర్య వంశీయులు

పండిత శివశ్రీప్రసాద శర్మగారు నాయీ బ్రాహ్మణుల ఇతిహాసమునుగూర్చి ఇట్లు సెలవిచ్చియుండిరి:—

"సృష్టి ప్రారంభమున ఋగ్యజుస్సామ [illegible] గణములను నాలుగు వేదములు అగ్ని వాయువు సవిత ఆంగిరి యను నలుగురు ఋషుల హృదయమందు క్రమముగ ప్రకాశించినవి: (శతపథ ౧౧-౫-[illegible]) వారిలో వాయువు నాయీలు (మంగలివాండ్లు) (అథర్వ [illegible]) సవిత కుమార్తెయగు సావిత్రి సూర్య అగ్నికుమారుడగు సోమబ్రహ్మను పెండ్లాడెను. [ఋగ్వే ౧౦-౧౫] బ్రాహ్మణులందరు క్షురకర్మ చేయుట విధియైయున్నది. ఇది ఆపస్తంబసూత్రము [illegible] మొదలగువానియందు చెప్పబడియున్నది. సావిత్రి ౧౧ గురు పుత్రులకు కనెను. వారిలో పదుగురు బ్రాహ్మణుల దశగోత్ర ప్రవర్తకులైరి. పదకొండవవాడగు నారదుడు, తన జీవితకాలమంతయు బ్రహ్మచారియైయుండెను. మూల స్తంభమందీయనను నాయీ యని చెప్పబడుచున్నది. సావిత్రికి సరస్వతియను [illegible] కలదు, ఈమె విద్యాధిదేవత [illegible] (యజు [illegible]) ప్రసిద్ధుడగు నాయుర్వేద పండితుడును శాస్త్రవైద్యుడును [illegible] యుండెను. [యజు అధ్యాయము [illegible]]

[illegible] వాయువు [illegible] బ్రాహ్మణ ఋషులలో నొకడు హనుమంతునితల్లి గౌతమఅహల్య కుమార్తెయగు అంజని (శివ. పు. [illegible]) [illegible] శతానందుడు గౌతముని [illegible] హనుమంతుని మేనమామయైయుండెను. శ్రీరాముడు సుగ్రీవుని మంత్రియగు హనుమంతుని విషయమున లక్ష్మణునితో సంభాషించుచు హనుమంతుడు గొప్ప చతుర్వేద పండితుడనియు మంచి వయ్యాకరణియనియు సంస్కృతసాహిత్య విశారదుడని యు చెప్పెను. (వాల్మీ.రా. కిష్కిం. అధ్యా [illegible]) సుగ్రీవునకు నయపండితుడని బోధించెను నయపండిత [illegible] గలవాడు [వా. రా. కిష్కిం. [illegible]]

[illegible] మంగలివాని కుమారుడు [illegible] రాజును [illegible] సంహరించి తాను రాజై [illegible] రాజ్య సింహాసనము నధిష్ఠించి పరశురాముని [illegible] యుద్ధములుచేసి, భరతఖండమందలి [illegible] రాజులను నోడించి వారిరాజ్యములను ధ్వంసముచేసెను. ఇట్లు [illegible] ప్రపంచమునకు మొదటి సామ్రాట్టని చెప్పిన [illegible] గొప్పస్థానములలో సంగ్రహించెను [illegible] మహాపద్ముడని [illegible] సుప్రసిద్ధ వైయాకరణియగు పాణిని మహాకాత్యాయని మహాపద్మని [illegible] డైయుండెను.

[illegible] చంద్రగుప్తుడు [illegible] నాయి [illegible]
[illegible]

ఆరోగ్యము: వైద్యము.

ఆరోగ్యవిధానము

మన దేశములో పెక్కు జనులు ఆరోగ్య సూత్రములు తెలియక అనేక వ్యాధుల పాలగుచున్నారు. వ్యాధి సంభవించిన పిదప చికిత్స చేయుటకన్న వ్యాధి రాకుండ తమ శరీరమును కాపాడుకొనుట ఉత్తమ సాధనము. వ్యాధి వచ్చిన పిదప చికిత్సకై ధనవ్యయమగును, కాని ఆరోగ్య పద్ధతులపై నడచుటకెట్టి డబ్బు అవసరములేదు. శ్రద్ధ కావలసి యుండును. దిగువ ఆహారాదుల గూర్చి ముఖ్య సూత్రములు వ్రాయబడినవి. దేశీయులు వానిని ఆచరించుచుంచి సర్వదా ఆరోగ్యవంతులును, దీర్ఘాయుష్మంతులును, నైయుండెదరు గాక!

ప్రతి స్త్రీయును, పురుషుడును. బ్రాహ్మముహూర్తమున మేల్కొనవలయును. అయిదు గంటలనుండి సూర్యోదయమగు వరకు బ్రాహ్మ ముహూర్తమనబడును. ఈ కాలమున నిదురించిన అనారోగ్యము కలుగును. మేల్కొనిన వెంటనే మూత్రపురీషములను విడువవలయును. మూత్రము చేసినపుడు నాలుగు సార్లును మలవిసర్జనచేసినపుడు తొమ్మిది సార్లును ఆచమనము చేయనగును.

దంతధావనము

అనంతరము దంతధావనము చేయవలయును. దీనికై ఉత్తరేణు వేప కానుగ మామిడి చానిమ్మ బ్రెంక చంద్ర పుల్లలుపయోగించవలయును. వీని రసమువలన నోటిలోయుండు దుర్గంధము చిగుళ్ళవాపులు మున్నగునవి పోవును. ఈ పుల్లలు అరంగుళమంలు పొడవు నుండవలయును. వీని మొనలు దంచనలెకేసి ప్రతి దంతమును తోమవలయును. పిమ్మట నాలుక గీయవలయును. పదహారు సార్లు ఆచమనము చేయవలయును. సూర్యోదయమైన పిమ్మట ముఖము కడుగుకొనక నుండినచో అనేక వ్యాధులు సంభవించును. ప్రస్తుతము బజారులో దొరకుచున్న పల్లుపొడులు వాడకూడదు. బ్రష్‌లతోకూడ తోమరాదు.

స్త్రీ పురుషులకు ప్రతిదినము వ్యాయామమవసరము వ్యాయామముచే బలసత్వములు కలుగుటయేగాక వ్యాధులు సంభవించవు. దుర్బల శరీరులకే పెక్కు వ్యాధులు కలుగుచుండును. జీర్ణశక్తి తగ్గుచుండును. కనుక కనీసము గ౧ నిమిషములైనను ప్రతివ్యక్తి ఏ వయస్సు నందైనను వ్యాయామము చేయవలయును,

స్నానము

నిత్యము స్నానముచేయవలయును. ఇందుకై వేడి నీటినైనను చల్ల నీరునైనను ఉపయోగించవచ్చును. చల్లనీటితో స్నానము చేయువారు సూర్యోదయము కాకమున్నే చేయవలయును. దుర్బల శరీరులు వేడి నీటితోనే స్నానము చేయవలయును. వారమున కొకసారి అభ్యంగనము చేయవలయును. నిత్యము చల్లనీటితో స్నానము చేసినను అభ్యంగనము మాత్రము వేడి నీటితో చేయవలయును. తైలము నెత్తిపైనను చెవులు ముక్కు కన్నులకును పాదములకును బాగుగ రాచుకొనవలయును.

దైవ ప్రార్థన

ప్రతివ్యక్తికిని దైవప్రార్థన చేయుట ముఖ్య ధర్మము. ఇది వారివారి ఆచారములు మరియు విశ్వాసములను బట్టియుండును. కనీసమిందుకై అర గంటయైనను వ్యయపరచ వలయును.

ఉపాహారము

ఈ కాలమున సాధారణముగ అందరికిని తేనీరు కాఫీ పుచ్చుకొనుట అభ్యాసమై పోయినది పరిగడుపున దీనిని పుచ్చుకొనుటచే దేశీయులు దుర్బలులగుచున్నారు. తేనీరు కాఫీ అలవాటు కలవారు యేదైన మంచి పదార్థము మొదలు తిని పిమ్మట తేనీరు త్రాగవలయును. పాలయినను లేక బాదామీల హరీరా అయినను ఉదయము త్రాగుట శరీరారోగ్యమునకును వీర్యవృద్ధికిని చాలా శ్రేష్టము ఉదయము తైలములో చేసిన పిండివంటలు తినరాదు.

తాంబూలము

తాంబూలము నమలు అలవాటు కలవారు ఉపాహారము సేవించిన పిదప అరు తమలపాకులను అనుప బద్ద యంతేసున్నము పక్క పచ్చకర్పూరము జాజికాయ తక్కోలములు మూస నాలుగు కలిపి వేసుకొన వలయును. దీనిని నమలినచో మొదటిసారిని రెండవ సారిని వచ్చు రసమును ఉమ్మివేయవలయును. కొందరికి తమలపాకుతో పొగాకు లేక జర్దా వేసుకొను నలవాటు కలదు దీని వలన కఫము హరించినను. కొన్ని చెడుగులు కలవు. పొగాకు నలవాటులేకుండయే యుత్తమము పొగాకు పీల్చుటకూడ ఆరోగ్యకరముకాదు. ఈ అలవాటు సాధ్యమగు నంతవరకు తగ్గించుటకును లేనివారు ప్రయత్నింప కుండుటకును కోరుచున్నాను.

భోజనము

భోజనము తొమ్మిది గంటలు మొదలుకొని పండ్రెండు గంటలలోపల చేయవలయును. మనము తిను నాహారమును బాగుగ నమలి మ్రింగ వలయును. మనముతిను బియ్యములో సత్త్వ నిచ్చుశక్తిలేదని పరిశోధకులు తెలుపుచున్నారు. అందువలన గోధుమలు, తెల్లజొన్నలరొట్టె అన్నముతోకూడ వాడుట శ్రేష్టము. నిత్యము ఒకేవిధమైన ఆహారము తినరాదు. నీరుగల పదార్థములు చాలనుండరాదు. ఆచార్యరాయెగారు చెన్నరాష్ట్రమువారి ఆహారము చాలనీరసమైనదని నుడివి యున్నారు. వలయనవారు నీరుగల సాంబారు, చారు, మున్నగునవియే అధికముగ వాడుదురు. పప్పులు, కూరగాయలలో దేహమునకు బలమిచ్చుశక్తి నధికముగ గలదు కంది, పెసర, మినప, పప్పులు, శ్రేష్టమైనవి. వీనిని పొట్టుతోనే వాడవలయును. శనగ, బొబ్బెర, బటాణీ మున్నగుపప్పులు వాతముచేయును. కనుక వీనిని యెల్లప్పుడుపయోగింపరాదు. కూరగాయలలో దిగువ వ్రాయబడినవి ఆరోగ్య కరములు:—

కాయలు.	కూరలు
బీరకాయ	మెంతికూర
ఆనగపుకాయ నల్లది	పొన్నగంటికూర
పొట్లకాయ	చేమకూర
బుడమకాయ	పాలకూర
బెండకాయ	చక్రవర్తికూర
అవిశెకాయ	పులిసెంతకూర
అరటికాయ	గంగపాయలికూర
వంకాయలు లేతవి	నన్నపాయలికూర
నేతిబీరకాయ	దుంపబచ్చలకూర
దోసకాయ	తోటకూర
కాకరకాయలు తెల్లవి	

దుంపలు

చేమగడ్డ

పెండలము

కంద

గోబీ

ఆలుగడ్డ (కొద్దిగవాతము)

ఉల్లిగడ్డ

ఎల్లిగడ్డ

ముల్లంగిగడ్డ

భోజనానంతరము అయిదు తమలపాకులతో యింతకు పూర్వము చెప్పిన వస్తువులతో తాంబూలము వేసికొనవలయును. భోజనానంతరము వెంటనే పరుండరాదు. వృద్ధులు శిశువులు అశక్తులు రోగులు సంభోగము చేసినవారు తప్ప పగటిపూట పరుండరాదు. భోజనము తరువాత అరగంటవరకే పనియు చేయరాదు.

ఫలాహారము

సాయంత్రము మూడునుండి ... గంటలవరకు గల మధ్యకాలమున పండ్లు తినవలెను. మనో పరిశ్రమ చేయువారలు తేనీరు పుచ్చుకొనిన అలసట దీరును. ఉదయము కన్న ఈ కాలములో తేనీరు పుచ్చుకొనుట తక్కువ నష్టకరము. ఆరోగ్యకరము. ఫలాహారము తరువాత తీపి వస్తువులు మెక్కుట పాడిగాదు. దీనివలన వ్యాధులు సంభవించును.

ఖేలనము

యువకులు సాయంత్రము నాలుగు గంటలనుండి ౫-౬ గంటల వరకు వివిధ ఖేలనములు నాడవచ్చును. వయస్సు మీరినవారు ఒక మైలుదూరమైనను నడువవలయును.

రాత్రిభోజనము

రాత్రికి ౭ నుండి ౮ గంటల లోపల భోజనము చేయవలయును. భోజనాత్పూర్వము అనగా ౫-౬ గంటలకు మరల నొక పదునయిదు నిమిషములు దైవ ప్రార్థన చేయుటుత్తమము. రాత్రికి పెరుగు వేసుకొనరాదు. పాలుత్తమము అయినను మొదటినుండి పెరుగు వాడు నలవాటు కలవారు దానిలో కొద్దిగ నీరు కలిపి పుచ్చుకొన వలయును. భోజనానంతరము మూడు తమలపాకులతో తాంబూలము వేసికొనవలయును. కొందరు రాత్రికి పాలు త్రాగెదరు. అట్టి అభ్యాసము కలవారు పాలు త్రాగిన వెంటనే పరుండరాదు. భోజనము చేసిన పిమ్మట రెండు గంటల సేపటికి పరుండ వలయును.

నిద్ర

పగలంతయు చేసిన శ్రమతీరుటకుగాను ప్రతివ్యక్తి పరుండవలసియుండును. శిశువులు తప్ప మిగతవారందరును యెనిమిది లేక పది గంటలు పరుండవలయును. రాత్రి పది గంటల పిమ్మట మేల్కొని యుండరాదు.

दरिद्र संसार ।(आज)

26-...-1938

[लेखक—सीतारामं रावत 'कुशल', विशारद

दरिद्रते तेरी पीड़ा नरक पीड़ासे भी बढ़कर है। तेरी यातना यमयातनासे किसी बातमें भी कम नहीं है। तू ज्वालाहीन भूसीके अनलके सदृश सुलगती है और जीवनको धीरे धीरे जलाती है—सुलगाती है। जीवनपर सहसा वज्रपातका हो जाना अच्छा है, किन्तु तेरी व्यथा-अग्निमें आजन्म सुलगना अच्छा नहीं है, तू जीवनकी समस्त कोमलवृत्तियोंको, अपनी नीरसताकी जगतीमें खो जाती है और शनैः शनैः विलीन कर देती है। तू जीवनके समग्र सद्गुणोंको क्षीण बना देती है। यदि कभी कोई उठनेका साहस करता है तो तू ऐसा दबा देती है कि फिर कभी उसमें उभड़नेकी हिम्मत ही नहीं रह जाती।

तेरा भीषण नर्तन जब हृदयकी रंगभूमिपर होता है तो हृदय व्यथाके नीरनिधिमें निमग्न हो जाता है और त्राहि त्राहि मचाता है। करुणा क्रन्दनसे विश्वके कोने कोनेमें व्यग्रताकी तरल तरंगे अविच्छिन्न वेगसे, प्रवाहित कर देता है। तू ही विषमताकी जननी है, तेरे ही कारण अशान्तिका वायुमंडल उग्र रूप धारण करता है। तेरे राज्यमें तो रात दिन कलहकी आग ही धधकती रहती है। कभी चैनसे नहीं रहने देती।

तू किसी देश जाति या मनुष्यको केवल दरिद्र ही बनाकर, नहीं छोड़ देती है वरन् अनेक प्रकारके पैशाचिक बधनोंसे जकड़ देती है। निर्बलताके सब प्रकारके भावोंको भर देती है। साहस, विक्रम और उत्साह आदि अनेक स्वर्गीय गुणोंका संहार कर देती है। परतन्त्रताके पाशमें बांध देती है।

तू मेरे पल्ले पड़ी है। तू मेरा पिंड नहीं छोड़ती। तूने शरीर प्रतिबिम्बके सदृश मेरे संगमें अपना सामीप्य सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। जैसे देहकी छाया देहके साथ है वैसे ही तू मेरे साथ है। अर्द्धनिमेषके लिये भी अलग नहीं होती, मैं जहाँ जाता हूँ तू भी जाती है। मेरे जीवनका एक पल भी तुमसे रिक्त नहीं है। जीवन तंत्रीका हरएक तार तुमसे भरापूरा है। तंत्रीकी झंकारमें तू ही झंकृत होती है। उसके स्वरमें तेरी ही स्वर लहरी लहराती है। मेरी चालोंमें तेरी ही चाल है। मेरे बैठनेमें उठनेमें तू ही दृष्टिगोचर होती है। मेरे आमोदप्रमोदमें तेरा ही आमोद प्रमोद है। मेरी चितवनमें तेरी ही चितवन है। नेत्रोंमें तेरा ही दर्शन है। पुतलीमें तेरा ही निवास है। मेरी कटाक्षमें तेरी ही कटाक्ष है। मेरी भ्रूभंगिमामें तेरी ही भ्रूभंगिमा है। मेरी वाणीमें तेरी ही पुकार है। अक्षरोंमें तेरी ही शान है मेरे साहजिक दया उत्पन्न करनेवाले मुखपर तेरी ही आभा है। तू मेरे मुख विश्वमें अपनी विभीषिकाका नित्य प्रदर्शन तथा प्रदर्शन कराती है और उसपर अपनी अटल तथा अमिट मुद्राकी छाप लगा दी है। मेरे बालोंमें रोम रोममें तू ही बसी हुई है।

अस्थिचर्मावशिष्ट शरीर सहज ही तेरा विज्ञापन कर रहा है।

मेरे कान रात-दिन तेरा ही राग सुनते हैं। मेरे वस्त्रोंमें तेरा ही रूप है। मेरे हावभावमें तेरी ही अदा है। मेरे भोजनमें तेरा ही स्वाद है। मेरे जीवन संगीतमें तेरी ही ध्वनि है मेरे ध्यानमें मेरी पूजामें तेरा ही भाव है। चित्तमें, अन्तःकरणमें, बुद्धिमें, मस्तिष्कमें, मनमें, नाड़ियोंमें तेरी ही झलक है जागनेमें तू ही जागती है सोनेमें तू ही रहती है। स्वप्नमें तेरी ही लीला देख पड़ती है। सोता हूँ तेरी ही दुनियामें तेरी ही चिन्तामें जागता हूँ। तेरी ही चिंताके लिये। तेरे ही विश्वमें घूमता हूँ। तेरे ही प्रभावमें उठता हूँ। तेरे ही संसारकी हवा खाता हूँ। प्रभात कालका कोकिल-गान मुझे तुम्हारा ही गान सुनाता है। प्रातःकालकी हरियालीमें मुझे तूही देख पड़ती है। ऊषाकी सुहावनी ललित प्रभामें तूही चमकती है। मैं जिधर देखता हूँ तूही नजर आती है।

उजेली रातमें जब संसार मंगल मनाता है तब उसमें भी मुझे तेरा अमंगलमय रूपही अपनी झांकी दिखलाता है। तारागणोंमें चन्द्रमामें तेरा ही प्रतिबिम्ब झलकता है। जब मैं किसी वाटिकामें पहुंचता हूँ तो कलियोंमें, फूलोंमें, पत्तियोंमें, द्रुमोंमें लताओंमें पल-पलमें तेरे ही रूपका ताण्डव नृत्य देखता हूँ। सबसे तेरा ही अट्टहास पाता हूँ।

जब सारा संसार बसन्ती राग रस रंग में मस्त हो जाता है, अनेक प्रकारके रसीले कामोद्दीपक गीत गा-गाकर आमोद प्रमोद मनाने लगता है। आनन्दातिरेकसे उछल-उछलकर बसन्तका उल्लास व्यंजित करने लगता है। अनेक मनसूबे बांधने लगता है और जब बसन्त प्राणि मात्रमें स्फूर्ति पैदा कर बचाने लगता है, तो उस समय मेरी जीर्ण शीर्ण झोपड़ीमें तूही झूमित दृष्टिगोचर होती है। तू उस समय मेरी झोपड़ी में भयंकर प्रदर्शन कराती है। हृदय-द्रावक दृश्य दिखलाती है। जीवनसे सरसता चूसकर नीरसताकी धारा बहाती है। मलिनता तथा उदासी राक्षसीको, मेरे जीवनके रंग मंच पर नचाती है। जब सारा संसार हंसता है तो तू मुझे रुलाती है। जब विश्व आनन्द के आंसू बहाता है तो तू मुझको अत्यन्त व्यथित बनाकर करुणाकी अविरल अश्रु धारा बहाने लगती है। जब संसार मोदमें मलार गाने लगता है तो तू मेरे पास विषम संकट तथा अपने भयंकर त्रासदायी तान छेड़ती है।

जब ग्रीष्म कालमें शीतल मन्द सुगन्ध पवन वसुधामें स्फूर्ति तथा सरसता बरसाने लगता है, एक नयी स्वर्गीय लहर लहराने लगता है और जब उसकी मधुर तथा मंजुल तरंगोंमें प्राणि मात्र तरंगित होने लगता है, तो उस समय तू मेरी जीवन वाटिकामें शुष्कता तथा नीरसता निशिचरीका आभास कराती है पवनमें मुझे तुम्हारी ही कांति झलकने लगती है। मैं तुम्हारी ही लहरमें बेसुध बन जाता हूँ। बस मेरे लिये सारे जगतमें तुम्हारी ही मूर्ति झलकती है।

जब मूसलाधार वृष्टि होने लगती है तो उस समय तो तू गजब ढा देती है—मेरी चलनी जैसी झोपड़ीमें जब बूंदे पड़ने लगती है और मेरे क्षीण-काय बच्चे चिल्लाने लगते हैं—विकल हो जाते हैं तो उस समय मेरी विकलताकी सीमाका अन्त हो जाता है, विकलता भी विकल होकर मेरी विवशता तथा दर्दभरी आहको देखकर आहें भरने लगती है, मैं जीवन तथा भाग्यको कोसने लगता हूँ, बेहाल हो जाता हूँ। मेरा रक्षक कोई नहीं है ऐसा समझकर ईश्वरका अस्तित्व मिटाने लगता हूँ, उसको अनेक प्रकारसे कोसने लगता हूँ, आँसुओंकी धारासे समुद्रको भरने लगता हूँ। त्राहि त्राहि मचाता हूँ, किसी तरह जागकर रात काटता हूँ। सबेरे फिर तेरी ही चिंता रहती है। मेरा हृदय मसोस मसोस कर रह जाता है।

तूने मुझे परतन्त्रताके पाशमें ही नहीं जकड़ रखा है वरन वीरता, साहस, पराक्रम, उत्साह आदि सद्गुणोंसे हीन बना डाला है। मानवताका विनाश कर दिया है। मेरे हृदयमें अनेक प्रकारकी सुन्दर भावनाएं उठती हैं किन्तु तू उनको कुचल देती है। तूने मुझे ऐसा बना डाला है कि मैं यह नहीं जानता कि संसारके सुख और वैभव क्या है? परोपकार किसे कहते हैं इसका मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं।

तू ने मुझे बहुत सताया। क्या अब भी मेरा पिंड नहीं छोड़ेगी? क्या अस्थिचर्मावशिष्ट देहपर तुम्हें कुछ दया नहीं आती है? क्या तेरी महमनसाहत सतानेमें ही है?

जरा दयाकर, कर्कशा मत बन, इतनी निष्ठुरता शोभा नहीं देती। अब मेरे जीवन विश्वको छोड़, दूसरे विश्वमें जा, दूसरे संसारकी सैरकर, उसको भी देख, जरा मुझे भी सुख भोगका अनुभव करने दे। क्या प्रकृतिके परिवर्तनका नियम तुम्हारे लिये नहीं है? क्या तू अपनी एक अवस्था लिखाकर आई है। देख रे पिशाचिनी देख। तेरा भी अवसान होगा। जैसे तू मुझे रुलाती है, तू भी रोवेगी। अस्तु।

अच्छा है कि परिवर्तन, अवस्थाके पहले मुझसे अलग हो जा। यदि अभी अलग हो जावेगी तो मै तेरा कृतज्ञ हूँगा। नहीं तो रे निगोड़ी सहानुभूतिसे मत बाज आवेगी देख, जरा दयाकी निगाहें से देख अधिक मत सता। उन गगन चुम्बी भवनोंकी ओर जा। मुझे फुर्सत लेने दे। मेरा जीवन यों ही बीत रहा है, लालसाएं यों ही जा रही है। यदि उन लालसाओंको लिये इस लोकसे चला जाऊंगा तो इसका सारा दोष तुझपर ही लगेगा। तू पापकी भागी बनेगी। देख, सारा विश्व आनंदाधिक्यसे फूला नहीं समाता है आनन्द चैन कर रहा है, किन्तु हाय! तुझे न मालूम क्या पड़ी है कि तू मेरे ही पीछे पड़ी है। क्या तेरे लिये भोजन मैं ही हूँ? मैं दोनों हाथोंको जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, मुझको छोड़, उनलोगोंके पास जा। जरा उनको भी अपना मजा चखा जो मुझको देखकर हंसते हैं। मुझको अवकाश दे. मैं तुमसे सच्चे दिलसे कहता हूं जब मैं उनको अपनी अवस्थामें पाऊंगा तो मैं उनपर हंसूगा नहीं बल्कि उनके हंसनेके बदले उनसे समवेदना प्रकट करूंगा। जब वे आंसू गिरायेंगे तो मैं धन मद मस्त न रह कर, उनके आंसू पोछूंगा। उनकी भलाई करूंगा। क्या मुझको वैसा बनने देना तुमको स्वीकार है? यदि है तो तू मुझको त्याग। उनकी ओर जा। देख, और अच्छी तरह देख, अभी मेरे हृदयकी आह नहीं निकली है। यदि निकल जायगी तो तू क्या सारा संसार ही उसकी आगमें भस्म हो जायगा। तो फिर कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो उस आगको बुझा सके। संभल जा, होश कर। नहीं तो तेरा भी अस्तित्व नहीं रह जायगा। अतः जा अवश्य जा, विलम्ब न कर।

× × ×

हे भगवन्। क्या तुम भी मेरे लिये दरिद्र हो गये हो? तुम तो दीनबन्धु हो। इस बानेको न भूलो। दया करो। दरिद्रतासे मेरा पिण्ड छुड़ाओ। तुम अशरणशरण हो, मुझे शरण दो। मैं डूब रहा हूं, मेरी बांहें पकड़ो—पार लगाओ। इस दुखी जीवनको सुखी बनाओ। कृपा करो जिससे मुझे भी संसारके सामने अपनी कोमल वृत्तियोंके प्रदर्शन करनेके शुभअवसर मिले। आशा है मेरी दर्द भरी पुकार तेरे कानोंमें पड़ेगी।

నాగులకాంర ప్రేమో॥ 15.11.60

నాగజెముడును నిర్మూలించు టెట్లు?

తెల్లుగుదేశమున దీనికి చపాతికళ్లి, పాపాసికళ్లి, నాగజెముడు, రక్కిస యను పెక్కుమారు పేరులుగలవు ఇంగ్లిషులో దీనిని (Pricklypear) అందురు. ఇది గ్రామకంఠములందు, రస్తాలందు, అడవులందు చెరువులు, బావులందు, వెలగల సేద్యపు భూములయందు దేవాలయ గోపురములందు సైతము నిరాటంకముగ గుంపులు గుంపులుగ బెరుగుచు. జనసామాన్యమున కెంతె యుపద్రవకరముగ నుండునది విస్తరించి వ్రాయుటకన్న మీకే బాగుగ నెరిగియుండురు. బ్రహ్మ రాక్షసివలె వ్యాపించిన దీని ముండ్లవలన, దీని యందు వాసముచేయు (తేళ్లు పాములు, మండ్రగబ్బలు మొదలగు విషజంతువుల వలన ఎందరు బాధపొందుదురో, ఎందరు ప్రాణముల విడిచిరో, మీరే లెక్కించు కొనగలరు. జనసామాన్యమున కెంతె అనానుకూలము కష్టము, నష్టము ఉపద్రవకరమైనదో విచారింపుడు. దీనిని నిర్మూలించుటకు మీరెన్ని పుట్లధాన్యము, ఎన్ని నూరులు రూపాయలు ఖర్చు పెట్టియుంటిరో, ఎంత శరీర కష్టము వృధా చేసియుంటిరో, రస్తాలు యితర విధముగు అక్రమణల క్రింద ఎన్నిమారులు అపరాధములు, జుర్మానాలు చెల్లించి యుంటిరో ఏమాత్రపు లాభము పొందియుంటిరో బాగుగా నాలోచింపుడు.

ఇది హిరణ్యాక్షవృనివలె ఏ ఆయుధముచే లేగాని ఏయుపాయము చేతగాని ఎవరిచే క్రిందగా ని చావుకేకుండ వరముగలది. నరికివేసినమొల్ల మొడతెగక మొలుచును శ్రీరామునంతటి వాని కి విసుగుకలిగించిన రావణాసురుని తలలవలె దీని గర్భమున నమ్మిత కలశము నెన్నో గలవు. “ఇంతింతై వటుడింతయై .... సర్వంబుదానయై” విజృంభించిన వామనమూర్తివలె విశ్వవ్యాప్తినొందినది. లోకోపద్రవ కారులైన దుష్టరాక్షస గణమువలె ప్రజలకెక్కువ పీడాకరమైనది. ఈ ఉపద్రవము నుండి లోకమును సంరక్షించుట కెందరెన్ని విధముల ప్రయత్నించినను నిష్ఫలమైనట్లు, ప్రతి సంవత్సరమందును సర్కారువారేమి, జిల్లాబోర్డులు తాలూకా యూనియను బోర్డులు మునిసిపాలిటీలు గ్రామపంచాయితీలు, సామాన్యరైతులు, ఎవరి మట్టుకువారు వేలకొలది ధనమును, మితిలేని శరీర కష్టమును, సర్వశక్తులను ధారపోయుచున్నను దీని రూపుమాపుట మాత్రే మసాధ్యమై యుండగా లోకోపద్రవ నివారణమునకై దేవుడిపుడొక ప్రత్యేకావతార మెత్తవలసి వచ్చెనందురు. ఇది ఏకాదశావతారము కావచ్చును.

నేను మాగ్రామమున నీ బ్రహ్మరాక్షసితో గజేంద్రుడు కరితో పోరినట్లనేక వత్సరములు పెనగి పెనగి తుదకు వేసరి “ఎట్లోగదే ఈశ్వరా!” అని చింతించుచుండ నాబంధువులలో నొకరివలన నీక్రొత్త యవతార విషయమెరింగి సుమారు రెండేండ్లక్రిందట తూత్తుకుడి (Tuticoron) పశ్చిమ సముద్ర తీరప్రాంత్యమునుండి ఒకవిధమైన చీడపురుగు తెప్పించి మాగ్రామమున నాలుగుచోట్ల పరీక్షార్థముచేసి పెంచితిని, ఇప్పటికనేకచోట్ల నీ క్రిములకొలది యావరించియుండిన పొదలను మాడ్చివేసిబయలుగావించి సేద్యమున కుపయోగమగు మార్చినది. దీనివలన ముఖ్యముగా చపాతికళ్లి నిర్మూలమగుచుండుట కనులారచూచిదూరప్రదేశములనుండి కూడ రైతులనేకులువచ్చి గంపలతో బండ్లతో చీడపట్టలను తీసుకొని పోవుచున్నారు ఇతర జిల్లాలవారుకూడ యిటీవల రైలుపార్సలు ద్వారా పంపబడుచున్నది.

ఈ పురుగు లాశారిమున దోమలకంటె చిన్నవై రెక్కలు గలిగియుండును. చపాతిపట్టల పై దట్టముగ వ్యాపించు తెల్లని చీడవంటి పదార్థములో (బూజు) కోట్లకొలది పెరుగును. ఒక పుల్లతో నాబూజు కదలించిన వాని రక్తము కనిపించును. సూక్ష్మదృష్టితో పరిశీలించిననగాని మొదట పురుగులు కనబడవు. ఈబూజుపట్టినపట్టలు సంపాదించి దట్టముగా బెరిగియున్న చపాతి పొదల మొదళ్లలో నేల కానుకొనునట్లు వేసి వర్షాకాలము కానిచో కొన్నాళ్లు నీళ్లుపోయవలెను. నీళ్లు పోయకున్నను పురుగులు చావవుకాని అంత త్వరగా వ్యాపించవు. బూజుపట్టిన పట్టలపై నీరు పోయక అవి పడియున్నగుంపు మొదళ్లకే నీళ్లు పోయవలెను. వేసిన కొన్ని నెలలలో ఆబూజు పతిపట్టకు కాయకు పొదకు సందులేకుండ వ్యాపించి అగుపుపై సున్నము చల్లినట్లు తెల్లగ కన్పించును. పిదప కొన్నాళ్లకాపొదయంతయు పండుబారి పసుపువన్నెగామారి ఆవలనంతయు, వేళ్లతోకూడ నేలకు క్రుంగి మొండి మాడిపోవును. అపుడా యెండిన గుంపుకు అగ్గిపెటిన అంతయు బూడిదయగును. ఆ పొదక్రింద నేలనుమెత్తదనమునుబట్టి అర అడుగునుండి ఒక అడుగులోతు వరకు మంటిని బూడిదతో కలిపి త్రవ్వి దానిని మిరప, వేరుసెనగ, రాగి మొదలగుపైరులకు యెరువుగా వేయుట లాభకరము. దీనిలోపొటాషు నైట్రోజను విశేషముగా నుండుటచే పైరులకు శ్రేష్ఠమైన యెరువుగా నుపయోగపడును. ఈ పురుగులవలనగాని, యీ యెరువువలనగాని, యితర పైరుల కేవిధమగును చెరుపు కలుగదని దృఢపడియుండుటచే నీప్రాంత్యముల రైతులు దీనిని విస్తారముగా వాడుచున్నారు. దూరప్రదేశములందుండు రైతులుగూడ దీనినుపయోగించి లాభము పొందవలెను ఉద్దేశముతో నాయనుభవమును ప్రకటించితిని.

స్వయముగా నిచటికివచ్చి పరీక్షించి చీడపట్టలను కొనిపోదలచిన వారెటి ఖర్చులేకనే ఒక గంపతోవచ్చి మోసుకొన్నిపోవచ్చును. అట్లు వచ్చువారి కన్ని సౌకర్యములు సిద్ధము చేయబడుచున్నవి. దూరదేశములకు రైలుపార్సలుద్వారా పంపవలెనన్న ఒక గంపలోనో, బుట్టిలోనో పట్టలుంచి, ఆపురుగులకు దారిలో కావలసినంతయాహారమునకు కరువులేనట్లు మంచి పట్టలు కొన్ని యుంచి భద్రముగా ప్యాకుచేసి 12 మైళ్ల దూరమునగల అనంతపురము రైలుస్టేషనుకుపంపి ప్యాసు రిజిష్టరు పోస్టులో పంపవలసి యుండును గాన ఒకగంపకు సుమారు 2 రూపాయలు ఖర్చులగుచుండును. బహుజనోపయోగమున కెక్కువగా తెప్పించుకొనగోరు, లోకలుబోర్డులు, పంచాయతులు, రైతులకు జాజికాయ పెట్టెలలో విస్తారముగా పట్టలుంచి ప్యాకుచేసి పంపబడును. కావలసినవారికి అట్లుపంపుటకగు ఖర్చులవివరము వ్రాసినచో తెలుపబడును. దీని నుపయోగించుట వలన లభించు శ్రేష్ఠమైన యెరువుతో పోల్చిచూచిన యీఖర్చు లెక్కపెట్టతగిన కాదు.

పార్సలు తరగతి నముసరించి పార్సలు చార్జి ముందుగా చెల్లించువరకు రైల్వేవారు పార్సలుతీసుకొనరుగనుక చార్జి ముందుగా చెల్లింపవలెను. ముందుగాచార్జియింతయని నిర్ణయించి వసూలు చేసుకొనుటకానిపనిగాన, అడ్వాన్సు పంపిన మొత్తములో చార్జికి మిగులనిమొత లెక్కపెట్టవలసిన మొత్తమునకు రసీదును వి. పి. గా పంపుపద్ధతి నవలంబించుచును. ఇంతకంటె మంచి పద్ధతి లేని దీనిని ఆమోదించు సంగీకరించుచున్నాను.

పీలున్నవారు స్వంతముగావచ్చి తీసికొనిపోవచ్చును. పార్సలు ద్వారా పంపగోరువారు ఖర్చులకు 2 రూపాయలు ముందుగా పంపుచు తమ పూర్తిపేరు విలాసము సమీప రైల్వేస్టేషను విశదముగా వ్రాసిపంపినచో పార్సలు త్వరముగా చేరునట్లు పంపుచు రశీదు రి॥ పో॥ లో పంపబడును యెక్కువగా కావలసినవారును యింకను యితర సమాచారములు తెలుసుకొనగోరువారును ప్రత్యుత్తరమునకు అణాకవరు పంపిన వివరముగా తెలుపబడును.

రైతులు, స్థానిక సంస్థలు (లోకలు బోర్డులు) గ్రామ పంచాయతులును యీ అవకాశము నుపయోగించి విస్తారముగా దీనిని తెప్పించుకొని యీ బ్రహ్మరాక్షసిని నిర్మూలము గావింప తప్పక ప్రయత్నించెదరని దృఢముగా నమ్ముచున్నాను.

అనంతగిరి పేరయ్య. (ఏ. పి. కవి.)
వాండాడు
సనప పో॥ అనంతపురము తాలూకా

దశ సమస్యలు—జవాబులు

౧. మిక్కిలి సనాతనమైన వస్తువేది? — పరమాత్మ (ఆద్యంత రహితుడు)
౨. మిక్కిలి సుందరమైన వస్తువేది? — జగత్తు (భగవత్సృష్టి)
౩. మిక్కిలి గొప్పవస్తువేది? — ఆకాశము (సృష్టిలోని సర్వము దానియందున్నది)
౪. మానవుని సదా ఆశ్రయించియుండునదేది? — ఆశ (అంత్యమువరకుండును)
౫. సర్వోత్కృష్టమైనదేది? — నీతి (అది లేనిది మంచి నిలువజాలదు)
౬. మిక్కిలి వేగముగలదేది? — మనస్సు (మనోవేగము వాయువేగముకన్న గొప్పది)
౭. మిక్కిలి బలిష్ఠమైనదేది? — అక్కర (దీనివలన అన్నికష్టములు సహించవచ్చును)
౮. మిక్కిలి సులభమైనదేది? — పరుల కుపదేశించుట, (సులభసాధ్యము)
౯. మిక్కిలి కష్టమైనదేది? — తన్నుదా నెఱుంగుట
౧౦. మిక్కిలి జ్ఞానవంతమైనదేది? — కాలము (సర్వము దెలిసికొనును)

(ఆ. వేం.)

గాంధిమహాత్ముని స్వరాజ్యయాత్ర

సబర్మతి ఆశ్రమమునుండి దండివరకు మహాత్ముడు ప్రథమదళముతో కాలినడకను వెడలినమార్గము

వీరంగం
సబర్మతి
సబర్మతి ఆశ్రమము
అహమ్మదాబాదు
విద్యాపీఠం
అస్లాలి
బరేజా
నవగాం
వాస్నా
మతారు
నడియాడు
బోరియావి
ఆనందు
పెట్లాదు
నాపా
బోర్సదు
రాస
బరోడా
కాంబే
కరేలి
జంబుసారు
అమోద
బువా
బ్రోచి
అంకాలేశ్వరు
రాయమ
సూరతు
దండి
నవసారి
జలాల్పూరు
మట్వాడు

మహాత్ముని త్రోవ
రైలుమార్గము

१९३१ ची खानेसुमारी

प्रांताचीं नांवें	१९३१	१९२१	शें. वाढ अगर ऱ्हास (-)
मुंबई इलाखा	२५४२८७७२	२१५८२९९६	१७·८
१ मुंबई शहर	११५७८५१	११७५९१४	-१·५२
२ मुंबई उपनगर	१७५३९२	१५२८४०	१७·३
उत्तर भाग	४१९५८३७	३७१८७६५	१२·९
१ अहमदाबाद	९२३४३१	८९०९११	३·६४
२ भडोच	३३४००१	३०७७४५	८·५३
३ खेडा	७३९४९०	७१०९८२	४·००
४ पंचमहाल	४५४३९३	३७४८६०	२०·२
५ सुरत	९८८५८०	६७४३५१	३४·७
६ ठाणें	८३५९४२	७५९९१६	१०·००
मध्यभाग	७३७१३५३	६०५९११४	२१·६
१ अहमदनगर	९८७९४९	७३१५५२	३५·०
२ पूर्व खानदेश	१२०५३१५	१०७५८३७	१२·०
३ पश्चिम खानदेश	७७१७०४	६४१८४७	२०·२
४ नाशिक	१०१५५२१	८३२५७६	२१·९
५ पुणें	११३३५२८	१००९०३३	३२·१
६ सातारा	११७९७५१	१०२६२५९	१४·९
७ सोलापूर	८७७९८५	७४२०३०	१८·२
दक्षिण भाग	५४१९४२७	४९०५७०९	१०·४
१ बेळगांव	१०७८५६१	९५२९९६	१३·१
२ विजापूर	८६९६९७	७९६८७६	९·१३
३ धारवाड	११२२९०८	१०३६९२४	८·२९
४ कारवार	४१७७४२	४०१५२७	३·९८
५ कुलाबा	६२८८२५	५६२९४२	११·७
६ रत्नागिरी	१३०१६९४	११५४२४४	१२·७
सिंध	३८८३३०४	३२७९३७७	[illegible]
१ हैद्राबाद	६६१५८९	५७३४५०	१५·३
२ कराची	६४९३६७	५४२०६५	१९·८
३ लारखाना	६९३६७८	५९७९६०	१६·०
४ नवाबशहा	४९६·७२	४१८६६०	१८·६
५ सक्कर	६२३८७५	५१०९९२	२२·२
६ थरपारकर	४६८१२३	३९६३३१	१८·१
७ अप्पर सिंध फ्राँटियर	२९२००४	२४०६१९	२१·२
एडन	५०८०९	५६५००	-१०·०७
मुंबई इ. संस्थानें	४३७०४९५	३८६७८१९	१३·१
१ म्हैसकांठा एजन्सी	५१८९३८	४५०४७८	१५·१
१ रेवाकांठा एजन्सी	८८७९२४	७५३०५८	१७·९
२ सावंतवाडी	२३०६१५	२०६४४०	११·७
३ दक्षिण मराठा संस्थानें	१६४८०५२	१४४२०८८	१४·२
४ कोल्हापूर	९५६८६४	८३३७२६	१४·७
५ मोंगलाई	२५८५१२	२२३३२१	१६·८
६ भोर व	१४१५७०	१३०४२०	८·५८
इतर संस्थानें	७२३१८८	६९०२०४	४·४७
७ खैरपूर	२२७१६८	१९३१३१	१७·६
मध्यप्रांत आणि वऱ्हाड	१७५५११४७	१५९७९६६०	१२·३
ब्रिटिश मुलुख	१५४७२६२८	१३९१२७६०	११·२
नागपूर डिव्हिजन	३५७५५७८	३१४६२२८	१४·३
१ नागपूर	९३३१६८	७९९५२१	१७·७
२ भंडारा	८२४३७१	७१७७४७	१४·८
३ वर्धा	५१६३११	४६३६९६	११·३
४ चांदा	७५९५७४	६६०६३०	१४·९
५ बालाघाट	५६२१५८	५११६३६	९·८७
जबलपूर डिव्हिजन	२४४७४८१	२२९६५०८	६·६
१ जबलपूर	७५६३४६	७४५६८५	१·४२
२ सागर	५४५३३१	५२८३८०	३·२७
३ दमोह	३०५९२७	२८७१२९	६·५८
४ शिवणी	३९३८११	३४८८७१	१२·८
५ मंडला	४४६०६६	३८६४४६	१५·४
नर्मदा डिव्हिजन	२२५४००४	२०१३०२१	१२·०
१ हुशंगाबाद	४८४९०७	४४५७३३	८·८
२ निमाड	४६७४९०	३९६२५४	१७·८
३ नरसिंगपूर	३२१०७५	३१५१६२	२·०८
४ बैतूल	४०६५९२	४६३७३७	११·७
५ छिंदवाडा	५७३२९०	४९१८३५	१६·३
छत्तिसगड डिव्हिजन	३७३१८००	३३८१६८७	१०·३
१ रायपूर	१५२६८०३	१३९२७६६	९·६२
२ बिलासपूर	१३८६९१५	१२३१७६५	१२·०
३ दुर्ग	८१८०८२	७५७१५६	८·०४
वऱ्हाड डिव्हिजन	३४४३७६५	३०७५३१६	११·२
१ अमरावती	९४१९७५	८२८३८४	१३·७
२ यवतमाळ	८५७५७३	७४४८५५	१४·५
३ अकोला	८७७१०४	७९८५४४	९·८
४ बुलढाणा	७६७११२	६९५४२५	९·६

C. P. COUNCIL

Government Legislative Business

REVENUE AND TENANCY BILLS PASSED

(From Our Own Correspondent)

Nagpur, *Aug.* 25.

The question time at the resumed sitting of the C. P. Legislative Council today was quite lively and interesting and occupied about an hour. The Government members were heckled with numerous supplementary questions.

Mr. G. P. Burton, chief secretary to Government was heckled with numerous questions in connection with the reappointment of Lt.-Col. W. Tarr as civil surgeon. It was however elicited that due to dearth of European I. M. S. officers, the Government had no other go but to reappoint Lt.-Col. Tarr to discharge the obligation in accordance with the recommendations of the Lee Commission Report.

Abolition of Commissionership and Districts

Regarding the oft-repeated resolution of the Council for the aboli- [illegible]

Bill and moved that it be referred to a select committee. The Vaccination Act as it stood at present could be extended only to municipalities, cantonments and notified areas in the province. In view of the increasing number of mortalities from small-pox in rural areas, the Bill aims at making vaccination compulsory in rural areas under the authority of district councils.

Mr. M. P. Kolhe moved an amendment that the Bill be circulated for eliciting public opinion thereon, in view of serious opposition from the people of rural areas against such compulsion. Seth Thakurdas and Seth Sheolal supported the amendment.

The amendment was ultimately negatived and the original motion that the Bill be referred to a Select Committee was carried.

The Council then adjourned for the day.

C. P. COUNCIL

Nagpur, *Aug* 28.

The C. P. Legislative Council reassembled this afternoon, Mr. S. W. A. Rizvi presiding. The House congratulated Mr. Rizvi on his election as President and offered its support and cooperation to him. He was requested to be above party politics and impartial on the Hindu-Moslem question. Mr. Rizvi thanked and assured the House that he would discharge his responsible duties respecting their wishes. The House then proceeded with the legislative business and ad-

ORGANISING TENANTS

Congress Activities in U. P.

Allahabad, *Aug.* 28.

It is reported that organisation of Kisan Sabhas is being continued with success in the United Provinces in pursuance of a resolution recorded at the Provincial Political Conference held at Mirzapur.

According to information obtained from Mr. Mohan Lal Gautama, secretary of the provisional committee of the provincial Kisan league formed at the Provincial Political Conference, Kisan Sabhas have been organised already in about 25 districts. The object of organising these Sabhas is to enable the kisans to represent their grievances effectively by legitimate means and to obtain their redress.

Kisan Sabhas are also being formed, it is said, in different sub-divisions of Allahabad district and only a few days ago a public meeting was held in tahsil Meja under the presidentship of Mr. Sheo Murti, as a result of which a tehsil kisan committee was formed with Mr. Mangla Prasad, vakil, as president.

Mr. Sitla Sahai, an enthusiastic Congress worker in Rae Bareli, reports that serious efforts are being made to organise the tenants in the estates particularly of the Rae Bareli district for the last several weeks and it is believed that out of about 62 estates in that ditsrict about half a dozen estates have already been tackled by the workers and Sabhas have been formed there.

WIDOW 'SOLD' AS A MAIDEN

A Poona Case

Poona, *Aug.* 25.

Incidents which might provide material for a drama entitled 'The Indian Marriage Market' were narrated yesterday in the court of Mr. S. B. Vaidya, city magistrate, Poona. Tikam Soma, the villain of the piece, was sentenced for six months and to pay a fine of Rs. 1,000 or, in default, to suffer further rigorous imprisonment for six months. He was found guilty under sec. 120, I. P. C., of cheating a man by the name of Sarupchand Kushalchand of the village of Varude in the Khed Taluka.

The scene of the first act in the drama is laid in various places in Western India. The victim of the fraud is Sarupchand Kushalchand. The woman was Mani alias Umiya, whose history since she was about twelve years of age is full of adventure and romance, and the villain as already stated, is Tikam Soma, who, it is alleged, eked out a lucrative living by putting up girls for marriage at handsome prices. In this instance he made a mistake when he put up Mani as a maiden and as a member of a caste superior to that of her own.

It was on May 3 last that the complainant was informed by his brother that he could find a girl in Poona of whom the brother had heard through [illegible]

(California) after spending several years in England, America and Germany studying elocution and acting and specialising in the art of make-up. He has earned the appellation of 'Lon Chaney of the East'. He is

cinema world, and Emil Jannings, the famous German film actor, one of the most forceful personalities on the screen today.

Though he is an amateur actor he is a versatile genius in playing the

Make-up of Mr. J. M. SEN-GUPTA. (Time taken 9 hours 20 minutes.) *The difficult part of the make-up was nose and lips.*

"SHYLOCK THE JEW"

The expression is "curse be my tribe if I could forgive him."

role of a tragedian and a comedian as well. His command over English is superb and he is the first Indian to become a fellow of the Royal Shakespearean Society. He has acted in many Shakespearean plays in England as well as in America, and particularly his acting as 'Hamlet' and 'Shylock' attracted considerable attention and was spoken of in high appreciative terms by men of letters in England. While Mr. Sivar was staying in Germany studying the film industry, he came under the influence of that famous German film critic, Mr. Emil Jannings who took a personal interest in his studies and persuaded him to join the professional ranks.

His individual uniqueness is displayed in the art of make-up. He is a master of disguises and his impersonations of the famous men and women of India are really marvellous. The photographs published in this issue are representative examples of his art and will speak for themselves. One noteworthy feature of Mr. Sivar

(Concluded at foot of col. 5 p. 6).

Make-up of South Indian officer.
The difficult part of the make-up was making the nose.

నైజాము రాష్ట్రము—

యూరోపియన్ ఉద్యోగులు

వీరి వేతనముల పరిమితి.

[చెన్నపురినుండి సయ్యద్ ఆనముల్లాగారి సంపాదకత్వమున వెలువడుచున్న "హైదరాబాదు హెరాల్డు" నైజాము రాష్ట్రమునందలి యూరోపియన్ ఉద్యోగులసంఖ్య, వారివేతనముల పట్టిక నొకదానిని సిద్ధపరచి, ప్రకటించినది.]

పేరు	హోదా	వేతనములు (కల్దారులు)	అలవెన్సు (కల్దారులు)
1. లెఫ్టినెంటు కర్నల్ సర్. ఆర్. హెచ్. ట్రెంచ్.	భూమ్యాదాయ శాఖా మంత్రి	4, 000	1, 500
2. టి. జె. టాస్కర్ గారు	కార్యదర్శి, భూమ్యాదాయ శాఖ	3, 150	1, 2)1-1.80
3. బి. ఏ. కాలిన్సుగారు	డైరెక్టర్ జనరల్, పరిశ్రమల శాఖ	3, 200	1, 325
4. ఏ. యల్. బిన్ని "	యువరాజుల కంట్రోలర్	2, 750	958-5-0
5. కే. బర్నట్ "	"	1, 500	350
6. డబ్ల్యు. జె. ప్రిండర్ ఘాస్టు"	రాజసోదరుల కంట్రోలర్	1, 501 హాలీ	350 హాలీ
7. ఆర్. ఎల్. గ్యాంబ్లిన్"	టంకశాల యధికారి	2 000	500
8. ఓ. హెచ్. బ్రిన్ని "	" సహాయాధికారి	1, 300	100 హాలీ
9. సి. ఇ. ప్రిస్టన్ "	టంకశాలస్కూలు సహాయ	1, 400	....
10. డబ్ల్యు. ఇ. జె. బీచింగ్"	" ప్రొఫెసర్	1, 050	....
11. ఆర్. ఎస్. ఫార్ని "	"ఫ్యాక్టరీల ఇనిస్పెక్టర్	1, 200 హాలీ	550 హా
12 జె. ఇ. ఆర్మ్‌స్ట్రాంగు"	జిల్లాపోలీసు డైరెక్టర్ జనరల్	3000	250
13. జి. డబ్లు బెంటస్ "	డిప్యూటి డైరెక్టర్ జనరల్ సి. ఐ. డి.	1, 050	1772-7-4
14. ఎఫ్. వెబ్బర్ "	డైరెక్టర్, దేహపరిశ్రమశాఖ	1, 500	....
15. డబ్ల్యు. టర్నర్ "	నైజాము కాలేజి ప్రిన్సిపాల్	1, 000 హా॥	500 హా॥
16. మిస్. ఏ ఎస్. కెల్లి"	" స్త్రీ సూపరింటెండెంటు	500	150
17. ఇ. ఇ. స్పైట్ "	ఉస్మానియా విశ్వవిద్యాలయ ఇంగ్లీషుభాషా ప్రొఫెసర్	1, 500	100
18. ఎమ్. ఆర్. డబ్ల్యు. హార్ట్"	ఉ వి విద్యాలయ మెడికల్ కాలేజి ప్రొఫెసర్	1000 హా॥	500 245
19. ఓ. ఎఫ్. డ్యూరండ్ "	జాగీర్దారుకాలేజి ప్రిన్సిపాలు	1500	....
20. మిసెస్. జాన్సన్,	మహబూబియా స్త్రీ పాఠశాల	950	50
21. మిస్. అమినాహోప్ "	జెనానా హైస్కూలు ప్రిన్సిపాలు	915	370 హా॥
22. " జి. ఎమ్. లిసల్	ఉపాధ్యాయిని, మహబూబియాస్కూల్.	500	50
23. ఎచ్. బి. ఫెసల్	"	400	50
24. డి. సి. మెకివస్ ',	ఇంగ్లాండులో నైజాముస్టేటు విద్యార్థుల రక్షకుడు	875 హా॥	
25. నార్మన్ వాకర్ "	డైరెక్టర్, వైద్యశాఖ	3, 050	100
26. మదర్ అన్సన్సియా	అఫ్జల్గంజు అనువ.. మ్యాటన్	810 హా॥	......
27. కెనాప్టమ్స్ "	ప్రత్యేకాధికారి	1, 500	......
28. లెఫ్ట్. కర్నల్. జి. డి. లా. పి. (బెవ్ఫర్డుగారు	చీఫ్, ఆఫ్. దిస్టాఫు	2, 300	250 హ
29 మేజర్ లేప్	డివిజనల్ క్యాప్టర్ మాస్టర్	1, 100	250
30.	ప్రభుత్వ ఇస్సు డైరెక్టర్	1, 200	....
31, ఎమ్. పిక్తాల్‌గారు	చాదర్ఘాట్ స్కూల్ ప్రిన్సిపాల్	1, 200	300

రైల్వే శాఖ మరియు ఇంగ్లాండునందున్న బోర్డు అధికారులు ఇందు చేర్చబడ లేదు.

నిజాం రాష్ట్ర జనాభా

జిల్లా పేరు	మొత్తము జనులు	పురుషులు	స్త్రీలు	హెచ్చుతగ్గు ౧౯౨౧,౩౧
నిజాంరాష్ట్రము	౧౪,౪౩౬,౧౪౮	౭,౩౭౦,౦౧౦	౭,౦౬౬,౧౩౮	+౧౫.౮
౧హైదరాబాదునగరము	౪౬౬,౮౯౪	౨౪౨,౬౨౫	౨౨౪,౨౭౯	+౧౬.౦
౨అత్రాపుబల్దా	౪౯౯,౬౬౧	౨౫౩,౯౭౫	౨౪౫,౬౮౬	+౦.౪
౩వరంగల్లు	౧,౧౧౭,౬౯౩	౫౭౫,౮౧౯	౫౪౧,౮౭౪	+౨౦.౮
౪కరీంనగరు	౧,౨౪౧,౪౦౫	౬౩౪,౪౧౬	౬౦౬,౯౮౯	౧౩.౩
౫ఆదిలాబాదు	౭౬౨,౦౩౦	౩౮౯,౭౫౪	౩౭౨,౨౭౬	+౧౬.౨
౬మెదకు	౭౩౮,౬౬౫	౩౭౩,౪౭౫	౩౬౫,౧౯౦	+౧౪౯
౭నిజామాబాదు	౬౨౩,౨౨౫	౩౧౩,౫౫౬	౩౦౯,౬౬౯	+౨౧.౭
౮మహబూబునగరు	౯౭౧,౬౧౬	౪౯౪,౮౬౧	౪౭౭,౫౫౫	+౨౯.౪
౯నల్లగొండ	౧,౧౦౩,౪౭౯	౫౮౦,౮౯౭	౫౫౨,౫౧౨	+౧౯.౫
౧౦ఔరంగాబాదు	౯౪౦,౭౯౩	౪౮౦,౪౯౮	౪౬౪,౨౯౫	+౩౨.౫
౧౧బీడు	౬౩౩,౬౯౦	౩౨౫,౩౯౬	౩౦౮,౨౯౪	+౩౫.౫
౧౨నాందేడు	౭౨౨,౦౮౧	౩౬౭,౧౭౦	౩౫౪,౯౧౧	+౭.౬
౧౩పర్భని	౮౫౩,౭౬౦	౪౩౪,౭౭౭	౪౧౮,౯౮౩	÷౧౧.౫
౧౪గుల్బర్గా	౧,౨౨౫,౦౦౮	౬౨౧,౬౮౭	౬౦౩,౩౨౧	÷౧౧.౮
౧౫ఉస్మానాబాదు	౬౯౧,౧౬౮	౩౫౭,౪౮౯	౩౩౩,౫౭౯	÷౧౨.౩
౧౬రాయచూరు	౯౩౭,౫౩౫	౪౭౩,౧౬౧	౪౬౪,౩౭౪	÷౧.౬
౧౭బీదరు	౮౭౩,౬౧౫	౪౪౬,౨౫౬	౪౨౭,౩౫౯	÷౯.౯

జనసంఖ్య నుబట్టి ఈజనాభాయందుకూడ హైదరాబాదు నగరము భారత దేశము నందు గల పట్టణములలో నాలుగవదిగ నున్నది.

जातिभेद-रहस्य

विजेता ३१-१-३२

ले०—श्री अनिलवरण राय, पांडीचेरी

आज हिन्दू समाज जिन कमजोरियोंसे जर्जरित हो रहा है, उनमें अधिकांशकी जड़ प्रचलित जातिभेद है। अस्पृश्यताका अभिशाप भी इसी जातिभेदका एक चरम परिणाम है। भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें जो आज अब्राह्मण-आन्दोलन जोर पकड़ रहा है, यह भी युगयुगान्तर-व्यापी जातिभेदके अत्याचारोंके विरुद्ध एक अवश्यम्भावी प्रतिक्रिया है। प्राचीन समयमें एक-एक जाति प्रबल एकता-सूत्रमें बंधी थी; क्योंकि एक जातिके अन्दर सब मनुष्योंकी एक प्रकारकी ही शिक्षा-दीक्षा थी, एक प्रकारका ही आचार-व्यवहार था, एक ही व्यवसाय और स्वार्थ था। किन्तु आज वह ऐक्य नहीं रहा, अब कोई अपनेको जातीय व्यवसाय या जीवन-प्रणाली अवलम्बन करनेके लिये बाध्य नहीं समझता। एक ब्राह्मण जातिमें ही हम देखते हैं कि उत्तमसे लेकर अधमतक नाना स्तरके लोग हैं। किसीकी शिक्षा-दीक्षा और संस्कृति तो अत्यन्त उच्च है, और कोई मनुष्यत्वके निम्नतम स्तरमें पड़ा है। मनुष्यके लिये जितने प्रकारके पेशे या वृत्तियां खुली हुई हैं, उन सबोंका ब्राह्मणोंने बिना विचारे अवलम्बन किया है। सिन्ध देशमें अस्पृश्य ब्राह्मण हैं। उड़ीसासे बहुत-से ब्राह्मण आकर कलकत्तेके रास्तेमें झाड़ूदारका काम करते हैं। दक्षिण देशके ब्राह्मण कृषक, शिल्पकार, श्रमजीवी आदि हैं। साधारणतः सारे भारतवर्षकी यही अवस्था है। दूसरी ओर ब्राह्मणोतर जाति, यहांतक कि अस्पृश्य भी कई स्थानोंमें शिक्षा-दीक्षाके उच्च स्तरमें पहुंच गये हैं, अनेक क्षेत्रोंमें उन्होंने श्रेष्ठ वृत्तियोंका अवलम्बन किया है। प्राचीन जातिभेदकी वास्तविक शक्ति थी—जातिमें गभीर ऐक्य-बोध, सहानुभूति

...सामाजिक कार्यपरम्पराका ...केवल अर्थनीतिक विभाग। ...आज यह भूतकालके समान कहीं छिप गया है, इससे जातिका अभिमान आज भी प्रबल है और उसने एक जातिको बड़े जोरके साथ दूसरी जातिसे पृथक् कर रखा है। भारतके उत्तर-पश्चिम-सीमान्तके सम्बन्धमें एक किस्सा प्रचलित है—एक हिन्दू बालिकाका पठान अपहरण करते थे; किन्तु स्थानीय ब्राह्मणोंने इसे देखकर बालिकाकी सहायता करने या उसकी चेष्टा तनिक भी न की; क्योंकि लड़की बनियाकी थी! वर्तमान कालके हिन्दुओंमें—क्या जातिके अन्दर और क्या बाहर—कहीं भी एकता या सहानुभूतिका भाव नहीं दिखायी देता। ...जिस हिन्दुओंकी शिक्षा-दीक्षाने प्राचीन समयमें समस्त भारतकी विभिन्न जातियों, विभिन्न सम्प्रदायोंको एक विराट जीवन्त ऐक्य, विचित्र प्रकारके साम्यमें ढाल दिया था, वही शिक्षा-दीक्षा आज निर्जीव-सी हो रही है। और इसके अवश्यम्भावी फलस्वरूप हिन्दू समाज अलग अलग सैकड़ों भागोंमें विभक्त हो गया है।

पुराने समयमें जातिभेदकी जो उपयोगिता या सार्थकता क्यों न रही हो, आज वह अपनी प्रवीन सत्ताके प्रेतके रूपमें परिणत हो गया है और समाजका यह कितना अनिष्ट कर रहा है इसका कोई हद नहीं। विदेशी समालोचक मूल सत्यकी खोज नहीं कर पाते अथवा वे खोज करना चाहते ही नहीं। वे लोग आधुनिक कालमें प्रचलित अर्थहीन, अनिष्टकर, अत्याचार-पूर्ण इस जातिभेदको ही दिखाकर यह साबित करना चाहते हैं कि भारतीय शिक्षा-दीक्षा, संस्कृति और सभ्यता अत्यन्त हीन है। कोई-कोई तो विदेशी शासनका भी समर्थन जाति-भेदकी ही दुहाई देकर करते हैं। वे लोग कहते हैं कि भारतमें जो जातिविद्वेष फैला हुआ है, उसके रहते हुए यदि कोई शक्तिशाली विदेशी गवर्नमेंट विभिन्न जातियोंके अन्दर सामंजस्य

...त करनेके लिये यहां बराबर न ...तो यह मनुष्यत्वके प्रति अन्याय ...र अत्याचार होगा! इसके अतिरिक्त भारतके शत्रु हमारे समाजकी इस कमजोरीका व्यवहार किस प्रकार अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये करते हैं यह लिखना हमने यहां छोड़ ही दिया है। हमारा तो ख्याल है कि जाति-भेदने अन्दरसे हमारे सम्पूर्ण समाज-प्रतिष्ठानको विषाक्त कर दिया है। इस जातिभेदके कारण ही हिन्दू-समाज में यथायोग्य विवाह होना इतना कठिन हो गया है। जातिके अन्दर ही कन्याके विवाहकी व्यवस्था करनी होगी, इस निष्ठुर शर्त की मात्रा इतनी अधिक बढ़ गयी है कि यह लोगोंका सर्वस्व नाश कर देती है। वंशानुक्रम-से जातिकी संकीर्ण सीमाके अन्दर विवाह करनेसे हिन्दुओंका रक्त निस्तेज हो गया है। उनका स्वास्थ्य और प्राणशक्ति क्षीण हो गयी है और ...बीच वैज्ञानिकोंने हिन्दू ...ो ध्वंसोन्मुख जाति (The ...g race) कहना आरम्भ कर दिया है। इस मारात्मक दोषका प्रति...र करनेके लिये विभिन्न जातियोंमें स्थानुकूल विवाहका प्रचलन ...द शीघ्र नहीं किया गया तो ...संसारकी अन्यान्य कई प्राचीन सभ्य ...ातियोंकी तरह हिन्दू भी शीघ्र ही पृथ्वी-तलसे लुप्त जायंगे।

अतएव जाति-भेदको जड़-मूलसे उखाड़ फेंकना हिन्दुओंके लिये जीवन-मरणका प्रश्न है। किन्तु आज पर्यन्त यह आन्दोलन विशेष रूपसे आगे बढ़ा है, ऐसा नहीं मालूम होता। हमारे सुधारक केवल जोड़-तोड़ करना चाहते हैं; वे लोग विभिन्न जातियोंमें खान-पान (Interdining) जारी करते हैं, अस्पृश्योंके लिये विद्यालय, देवमंदिर खोल देते हैं, एक ही जातिकी विभिन्न श्रेणियोंमें विवाह प्रचलित करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु जबतक भिन्न जातिके साथ विवाह नहीं होने लगता तबतक जातिभेदका लोप हो गया, यह नहीं कहा जा सकता। विवाहके अतिरिक्त अन्य सब विषयोंमें आजकल जाति-... विवाहके अतिरिक्त और किसी समय ...कोई ख्याल नहीं करते;

और विवाह-कार्यमें किसी भी कारण-से जातिकी सीमा पार भी करना नहीं चाहते। ...जातिभेद नहीं माननेका साहस ... क्योंकि उनके मनमें न... एक खटका ... है। वे समझते हैं ...जाति-भेद उनके धर्मके साथ इस प्रकारसे जुटा हुआ है कि वह किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। उनकी यह अस्पष्ट धारणा है कि जाति छोड़ देनेका अर्थ ही है धर्म छोड़ना। प्राचीन भारतीयोंके जीवनमें जाति-भेदने जो एक विशेष आवश्यक स्थान ग्रहण किया था, इसी कारण इस आसक्तिकी सृष्टि हुई है और यद्यपि जातिभेदकी वह मूल आवश्यकता और उपयोगिता पूर्ण रूपसे लुप्त हो गयी है, फिर भी लोग अन्धविश्वासके कारण इसीको पकड़े रहना चाहते हैं। केवल जाति-भेदके ही विषयमें नहीं, वरन् हिन्दुओंकी अन्यान्य कई सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाओं और अनुष्ठानोंके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। उनके अन्तर्गत जो सत्य छिपा हुआ है तथा जो कुछ उनकी सार्थकता है, उसे लोगोंने भुला दिया है, केवल उनके बाहरी आकारको ही संस्कारके कारण आंख मूंदकर पकड़े हुए हैं। हिन्दुओंको अपने धर्म, शिक्षा-दीक्षा और संस्कृतिके प्रकृत सत्यके सम्बन्धमें जाग्रत होना होगा, उन्हें आत्मचैतन्य होना होगा। केवल इसीसे हिन्दू-समाज मिथ्या आचार-व्यवहार और अन्धसंस्कारके मारात्मक चापसे मुक्त हो सकेगा। हिन्दुओंको सचेत, आत्मचैतन्य करना ही हिन्दू-संघटनकी मूल बात है।

हिन्दुओंके मनके ऊपर वर्णाश्रमके आदर्शोंकी छाप बहुत अधिक पड़ी हुई है, किन्तु उन्होंने इस आदर्शका वास्तविक मर्म नहीं समझा है, अज्ञानताके कारण इसे जातिभेदके साथ मिलाकर गड़बड़ी पैदा कर दी है। अगर जाति-भेदके विकासके इतिहासकी आलोचना अच्छी तरह वे करें तो वे फिर इस प्रकारकी गलती करना उचित नहीं समझेंगे। वास्तवमें, जातिभेद प्राचीन चातुर्वर्ण्य-प्रथाके विरुद्ध है, बिलकुल उसकी उल्टी बात है—ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं है। समाजको सुनिर्दिष्ट श्रेणियोंमें विभक्त करना कोई बहुत अच्छी बात नहीं है और यह कोई आदि भारतीय जीवनका वैशिष्ट्य भी नहीं था। किन्तु इन सब सामाजिक विभागोंका जो आध्यात्मिक अर्थ और उपयोगिता भारतीयोंने निश्चित की थी वही भारतीय प्रतिभाकी विशेषता थी और इसी कारण जाति-भेदने भारतवासियोंके जीवन-पर इतना गंभीर और स्थायी प्रभाव डाल रखा है। प्राचीन समाजके मुख्य चार विभाग थे—विचार शील और और पुरोहित श्रेणी, शासक और योद्धा श्रेणी, उत्पादक और व्यवसायी श्रेणी, श्रमजीवी और दासश्रेणी, और संभवतः इनका आविर्भाव अपने आप ही समाज-जीवन और कर्मके स्वाभाविक विकासके साथ-ही-साथ हुआ था। किन्तु भारतके तत्त्वदर्शी ऋषियोंने इस सामाजिक श्रेणीविभागके अन्दर एक गभीरतर सत्यका-पता लगाया था। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार श्रेणियोंसे होकर मानव-समाज-में भगवानके चार गुण प्रकट होना

चाहते हैं—ज्ञान (Knowledge), शक्ति (power), सामंजस्य और श्रृङ्खला (Harmony) और कर्म (work)। इसीसे हम देखते हैं, वेदके पुरुष-सूक्तमें चारों वर्णोंको क्रमशः ब्रह्माके मुंह, बांह, जंघा और पैरसे पैदा हुआ लिखा है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहूराजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

उन्होंने देखा था कि भगवान् बीज रूपसे प्रत्येक मनुष्यके अन्दर वर्तमान हैं। किन्तु सर्वत्र उनका प्रकाश एक समान नहीं है। उन्होंने यह भी देखा था कि प्रत्येक मनुष्यको उसके स्वभाव, प्रकृति और शक्तिके अनुसार कर्म और साधनाके द्वारा आत्म-विकास करनेका सुयोग देना होगा। क्योंकि केवल इसी भावसे मनुष्य अपने अन्दर निहित भागवत सत्ताको पूर्ण रूपमें विकसित करनेके मार्गपर अग्रसर हो सकता है और यही परम पुरुषार्थ है। यही प्राचीन भारतीय चातुर्वर्ण्य प्रथाका मूल सत्य था। चातुर्वर्ण्य मानवसमाजमें भगवान्के चतुर्विध प्रकाशका रूपक माना जाता था; क्रमशः इसी प्रकाशको सत्य और सिद्ध करके दिखा देना होगा। और कार्यतः इसी विभागद्वारा मनुष्य अपने-अपने आत्म-विकासके मार्गका पता पाते थे, उसी मार्गका अवलम्बन करनेसे व्यक्तिगत और समष्टिगत रूपसे मनुष्योंके अन्दर भगवान्का प्रकाश पूर्ण हो उठेगा। किन्तु मूल नीति या आदर्श जो कुछ भी रहा हो, वास्तविक जीवन-क्षेत्रमें अधिक दिनतक मनुष्यके स्वभाव, शक्ति और गुणके हिसाबसे उसकी श्रेणी निश्चित कर देना और उसको अन्तरप्रकृतिके विकासके अनुकूल कर्म दिखा देना कार्यतः संभव नहीं हुआ। प्रकृति और शक्तिके अनुसार श्रेणी-विभागके स्थानमें जन्मके अनुसार श्रेणी-विभाग प्रचलित हुआ और भारतीयोंके मनपर वंशानुक्रम-नीतिका प्रभाव अधिक दिनतक रहनेसे प्राचीन चातुर्वर्ण्य शीघ्र ही सुनिर्दिष्ट जन्मगत भेदके रूपमें परिणत हो गया। यही जाति-भेदकी उत्पत्तिका वास्तविक रहस्य है। किन्तु आजकल जातिभेद जिस प्रकार केवल आचारगत हो गया है, पुराने समयमें यह ऐसा नहीं था। उस समय इसके द्वारा एक विशेष उद्देश्य सिद्ध किया जाता था। सुनिर्दिष्ट जातिरूप या आदर्शका विकास ही था लक्ष्य और इसी कारणसे एक जातिके अन्दर ही विवाह होता था। ब्राह्मण इस प्रकार मानसिक शक्तिका विकास करना चाहते थे जिससे मन बुद्धि उच्च विषयको सूक्ष्म आलोचना करनेके योग्य हो जाय। क्षत्रिय इस प्रकार चरित्रका विकास करना चाहते थे जिससे उनकी श्रेणीके लिये निर्दिष्ट कर्म और कर्तव्यके पालनमें वे लोग चतुर और तत्पर हों। वैश्य लोग विशेष शिक्षाद्वारा मन-बुद्धिको इस प्रकार गठित करते थे जिससे वाणिज्य-व्यवसायमें सहायता मिले। शूद्रोंको भी इस प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी जिससे वे निरहंकार होकर श्रद्धाके साथ सेवा-कार्य कर सकें और उच्च वर्णोंकी सेवा करनेको ही सम्मान का विषय समझें; क्योंकि इसी रूपमें वे क्रमशः विकासके उच्चतर स्तरमें उठ सकेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका आदर्श निश्चित हुआ था और प्रत्येक श्रेणीके आदर्श और धर्मको सब लोग श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। वह आदर्शतन्त्रका युग बहुत दिन हुए समाप्त हो गया; किन्तु उस समय जिन महान् आदर्शोंकी सृष्टि हुई थी, वे आज भी हिन्दुओंके मनपर अंकित हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके धर्म और आदर्शके जो ये चार जाति-रूप हैं, कुछ काल बाद विभिन्न जातियोंके सम्मिश्रणके कारण उन चार रूपोंको बचा रखना असंभव हो गया। लोगोंके मनमें वह सब केवल आदर्शके रूपमें ही रह गया, वास्तविक जीवनमें उसका कोई अस्तित्व न रह गया। उस समय फिर नैतिक आदर्शके अनुसार मनुष्य-श्रेणी निर्माण करना जाति-भेदका लक्ष्य नहीं रह गया, जाति-भेदका प्रधान लक्ष्य हो गया केवल आर्थिक दृष्टिसे समाजमें कार्य-विभाग करना और लोगोंका अर्थ-नीतिक जीवन क्रमशः जिस प्रकार जटिल होता गया, उसी प्रकार पेशा और वृत्तिके अनुसार बहुत-सी जातियां और उपजातियां उत्पन्न होती गयीं। कालक्रमसे यह अर्थनीतिक उद्देश्य भी लुप्त हो गया और समाजका अर्थनीतिक कर्म-विभाग इस प्रकार गोलमाल हो गया है कि अब उसका पुनरुद्धार करना असंभव ही है। आज सम्पूर्ण बातें ही एकदम मिथ्या और अर्थहीन हो गयी हैं। प्राचीन चातुर्वर्ण्यके उच्च आध्यात्मिक और नैतिक उद्देश्यकी बात तो दूर रहे, बादके समयमें जातिभेदके द्वारा समाजमें अर्थनीतिक सुविभागका जो उद्देश्य सिद्ध होता था, आज वह भी नहीं हो रहा है। (अपूर्ण)

श्रीअरविन्दने अपने 'दी साइकालोजी आफ सोशल डेवेलपमेंट' नामक ग्रंथमें लिखा है—"आदर्शतंत्र (The typal stage) से आचार-तंत्र (The conventional) में समाज स्वभावतः ही आ जाता है। समाजमें जब मूल सत्य या आदर्शोंका बाह्य रूप और तत्सम्बन्धी अनुष्ठान आदि ही आदर्शकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझे जाने लगते हैं तभी समाजके आचारतंत्रका युग आरम्भ होता है। इसी प्रकार जातिभेदका विकास हुआ, नैतिक चार वर्णोंका भेद सूचित करनेवाली जो कुछ बाहरी बातें थीं—जन्म, आर्थिक वृत्ति, धार्मिक विशेष आचार-अनुष्ठान, वंशगत प्रथा आदि—उन्होंने मूल उद्देश्यको छिपाकर प्रधान पद प्राप्त कर लिया। पहले समाजव्यवस्थामें जन्मको अधिक महत्व नहीं दिया जाता था, गुण और शक्तिका ही विचार किया जाता था। किन्तु क्रमशः जब ब्राह्मणादि वर्णोंका आदर्श निर्दिष्ट हो चुका तो उस समय लोगोंको शिक्षा और परम्परा (tradition) द्वारा उन आदर्शोंको सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई और शिक्षा और परम्पराने स्वभावतः ही वंशपरम्परा-का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार ब्राह्मणके लड़केको ब्राह्मण कहनेकी ही रीति चल पड़ी। और फिर उस लड़केके वंशपरम्परागत शिक्षा और संस्कृतिका अनुसरण करनेके कारण उसे ब्राह्मण माननेमें किसीको आपत्ति नहीं होती थी। इस प्रकार वंशपरम्पराका क्रम जैसे-जैसे दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित होने लगा वैसे-वैसे क्रमशः नैतिक आदर्शोंके अनुसार चरित्र और शक्तिका विकास करनेकी ओरसे दृष्टि हटती गयी। जो किसी समय जाति-भेदके अन्तमें केवल अलंकार बन गया,—और उसके न होनेसे भी काम चल जाने लगा। अवश्य ही विचारशील व्यक्तियों तथा आदर्शशास्त्रकारोंने नैतिक आदर्शकी रक्षा करनेकी आवश्यकता का खूब जोरोंसे प्रचार किया, किन्तु समाजके वास्तविक जीवनमें उसके लिये कोई स्थान नहीं रह गया। एक बार जब यह बात मनमें बैठ गयी कि इसके बिना भी काम चल सकता है, तब क्रमशः उसे छोड़ देना ही अवश्यम्भावी हो गया। अन्तमें जाति-भेदकी अर्थनीतिक भित्तिका भी नाश होना आरम्भ हो गया और जन्म और वंशप्रथा, नाना प्रकारके अर्थरहित धार्मिक अनुष्ठान और चिह्न आदिने जातिभेदको पकड़ रखा। जातिभेदका जिस समय पूर्ण अर्थनीतिक युग था उस समय पंडित और पुरोहित लोग अपनेको ब्राह्मण कहा करते, अभिजात सम्प्रदाय और सामन्त लोग क्षत्रिय समझे जाते, व्यवसायी और महाजन वैश्य तथा आधा पेट भोजन कर जीवन व्यतीत करनेवाले, धनहीन मजूर ही शूद्र माने जाते थे। जबसे इसका अर्थनीतिक आधार भी नष्ट हो गया है तबसे प्राचीन प्रथाकी जीर्ण तथा क्षुण अवस्था आरम्भ हुई है। अब यह केवल नाममात्रके लिये, परदे के रूपमें रह गया है—इसने एकदम झूठा रूप ग्रहण कर लिया है। अब इसे समाजके व्यक्तितंत्र-युगकी अग्निमें गलाकर नष्ट कर देना होगा, अन्यथा जो जाति अन्धभावसे इसे जोरोंसे पकड़े रहेगी उसे यह घातक दुर्बलता प्रदान करेगी और मिथ्यापूर्ण बना देगी।"

हम पहले ही देख आये हैं कि वर्तमान जातिभेदके इस घातक, मिथ्या प्रहसनको उठा देनेके मार्गमें बाधा-स्वरूप हिन्दुओंके अंधधार्मिक संस्कार खड़े हैं। हमारे बड़े-बड़े समाजसुधारक भी जातिभेदपर खुल्लमखुल्ला आक्रमण करनेका साहस नहीं करते। पुण्यस्मृति स्वामी श्रद्धानंदकी अपेक्षा अधिक निर्भीक और साहसी सुधारक हिन्दुओंमें आज कोई नहीं दिखायी देता। उन्हें भी यह कहना पड़ा था कि "हिन्दूसमाजको प्राचीन वर्णधर्मके आदर्शके अनुसार पुनः गठित करना कितना कठिन है यह मैं अनुभव करता हूं। किन्तु विभिन्न उपजातियोंको, यहांतक कि पंचम और अस्पृश्योंको भी चार प्रधान जातियोंके अन्तर्गत सम्मिलित कर लेना कठिन नहीं मालूम होता।" किन्तु हिन्दुसमाजको फिर उसी प्राचीन वर्णाश्रमके आदर्शके अनुसार संघटित करना कभी संभव हो सकता है, ऐसा हमारा विश्वास नहीं है। वास्तवमें यह आदर्श कभी भी वास्तविक रूपमें परिणत हुआ था या केवल आदर्शमात्र ही था, इस विषयमें भी अभीतक निर्णय नहीं हो सका; और सैकड़ों वर्षोंके सम्मिश्रण तथा गोलमालके कारण जो प्राचीन जाति-भेद छिन्नभिन्न हो गया है, उससे भी इसका अपने प्रधान चार जातियोंमें फिर लौट जाना कभी सम्भव नहीं होगा। इस जराजीर्ण जातिभेद-प्रथाको और किसी प्रकार जीवित रखनेसे समाजका कोई कल्याण नहीं होगा। किसी प्रकारसे इसका संस्कार और उन्नति क्यों न की जाय, लोगोंका युग-युगान्तरका जो अभ्यास है, वह शीघ्र ही वर्तमान अशुभ समूहकी पुनः सृष्टि कर देगा। धार्मिक उपाय है, जातिभेदको एक बारगी ही उठा देना प्राचीन चातुर्वर्ण्यके अन्दर उस समय लोगोंने देखा था, उसी सत्यके आधारपर देश-कालके लिये उपयोगी नवीन समाजतंत्रकी प्रतिष्ठा करना। वह सत्य यही है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने-अपने स्वभाव और शक्तिके अनुसार आत्मविकास करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता और सुविधा देनी होगी और इस प्रकारके विकासके अनुकूल कर्म करनेका सुयोग और सुविधा कर देनी होगी। यह सहज ही समझा जा सकता है कि जातिभेद मानवचरित्रकी इस मूल नीति, इस सनातन धर्मके विरुद्ध है, क्योंकि जातिभेद मनुष्यके स्वभाव और गुणका कोई हिसाब न कर जन्मके अनुसार ही समाजमें उसका स्थान और कर्म निश्चित कर देता है। हमारे महान् अध्यात्मशास्त्र गीताने प्राचीन चातुर्वर्ण्यके अन्तर्निहित इस सत्यको स्पष्ट तौरपर दिखा दिया है और गीताकी 'स्वभाव' और 'स्वधर्म' की नीतिद्वारा उसी सत्यको नये रूपमें स्पष्ट समझाया गया है। गीताकी वह नीति है—"सब कर्मोंका निर्देश भीतरसे ही होना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक मनुष्यकी अपनी एक विशेषता है, उसकी प्रकृतिकी एक विशेष नीति है, उसमें एक जन्मगत शक्ति है। वही उसकी अध्यात्मसत्ताकी मूल कार्यकारिणी शक्ति है, उसीने प्रकृतिके अन्दर उसकी आत्माको सजीव रूप दिया है, उसीको कर्मद्वारा प्रकट करना और पूर्ण रूपसे मूर्त्तिमान करना, जीवनके अन्दर उसीको कार्यकारिणी शक्ति बना देना उसका प्रकृत धर्म है। वही उसके आंतरिक और बाह्य जीवनका प्रकृत सत्य मार्ग दिखा देती है और उसीसे आरंभ कर वह उत्तरोत्तर आत्म-विकासके मार्गमें अग्रसर हो सकता है।" (श्रीअरविन्दके 'एसेज आन दी गीता' द्वितीय भागसे)

जातिभेद उठ जानेसे अवश्य ही हिन्दुओंके सामाजिक और नैतिक जीवनमें एक प्रकारकी सर्वतोमुखी क्रान्ति उपस्थित हो जायगी, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु आज जिन दोष और ग्लानियोंके कारण भीतर ही भीतर हिन्दूसमाज विषाक्त तथा नष्ट हो रहा है, उनसे पूर्ण रूपसे मुक्त होनेके लिये इस प्रकारकी क्रान्तिकी ही आवश्यकता है। किसी वस्तुको बांध रखनेवाली रस्सी जब पुरानी हो जाती है तो वह चीज एकदम पृथ्वीपर गिर पड़ती है। उसी प्रकार परिवर्तन होते समय कुछ गोलमाल और विश्रृङ्खलताका हो जाना असम्भव नहीं। किन्तु परिवर्तनके पीछे एक महान् आदर्श और निश्चित लक्ष्यका होना आवश्यक है। भारतको उसके अतीतसे पूर्णतः अलग कर पाश्चात्य आदर्शके अनुसार नये ढंगसे गठित करनेकी चेष्टा करना भारतके स्वधर्मके विरुद्ध होगा और उससे उसका कुछ भी कल्याण नहीं हो सकेगा। और जितने धार्मिक और सामाजिक संस्कार और प्रथाएं हिन्दुओंके अन्दर गहराईतक कील गाड़कर बैठी हैं, वे केवल मन-बुद्धिकी युक्ति और तर्कद्वारा समाजका आधुनिक हानि-लाभ विचारकर दूर नहीं की जा सकतीं। यद्यपि मन समझ सकता है, तथापि हृदय उसे नहीं स्वीकार करेगा और जिस प्राण-शक्ति और इच्छा-शक्तिके बिना कोई भी व्यापक क्रान्तिमय परिवर्तन नहीं होता, वह शक्ति भी प्रकट नहीं होगी।

भारतके इतिहासकी आलोचना करनेसे ऐसा मालूम होता है कि केवल आध्यात्मिक आन्दोलन ही भारतवासियोंके मर्मस्थानको सहज ही स्पर्श कर सकता है और उनके अन्दर वास्तविक जागृति और नवीन जीवन पैदा कर सकता है। यह भारतकी सुदीर्घ आध्यात्मिक साधना, आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा, सभ्यताका फल है। इस शिक्षा-दीक्षाने भारतवासियोंके मनको ऐसा बना दिया है कि वह सहज ही आध्यात्मिकताकी ओर आकृष्ट हो जाता है। बुद्धदेवने भारतमें जिस महान् आध्यात्मिक आन्दोलनका सूत्रपात किया था, उसने प्रायः जातिभेदको निर्मूल कर दिया था और हिंदू समाजके अन्दर बहुत दिनोंके संचित दोषों और ग्लानियोंकी जड़में कुठाराघात किया था। किन्तु उस समय भी ब्राह्मण-धर्मका प्रभाव नष्ट नहीं हुआ था और इसी कारण बौद्धोंने जो केवल त्याग, संन्यास और निर्वाणके आदर्शका प्रचार किया था, वह भारतवासियोंके मनके ऊपर स्थायी प्रभाव नहीं डाल सका। वैदिक युगसे ही भारतवासियोंने एक पूर्ण दृष्टि, पूर्ण भाव, प्राप्त किया है, जिसमें त्यागके साथ भोगका समन्वय है, आध्यात्मिकताके साथ पार्थिव जीवनका सामञ्जस्य है। इसी कारण अन्तमें बौद्ध-धर्म भारतवर्षसे बहिष्कृत हो गया और पुनः हिन्दूधर्मकी प्रतिष्ठाके साथ-साथ जातिभेद भी लौट आया। किन्तु वह अधिकांश परिवर्तित हो गया था। बङ्गालमें हम देखते हैं कि बौद्ध युगके बाद जब फिर जातिभेदकी स्थापना हुई तो केवल दो ही जातियां बन सकीं—ब्राह्मण और शूद्र, जैसे दक्षिण देशमें हैं ब्राह्मण और अब्राह्मण। उसके बाद भी जातिभेद और अन्यान्य अनिष्टकर प्रथाओं और आचार आदिको दूर करनेके लिये बार-बार उद्योग और आन्दोलन हुए हैं। किन्तु युक्ति और तर्कके द्वारा की गयी घातक समालोचना कभी पूर्ण रूपसे अग्रसर नहीं हुई और न गठन-शक्ति ही नवीन सृष्टिके लिये यथोचित और प्रशस्त आधारका निर्माण कर सकी। इसीसे ये सब आन्दोलन नाना प्रकारके फल पैदा कर सकनेपर भी जातिभेद आदि प्रथाओंको दूर नहीं कर सके, उलटे अनेक क्षेत्रोंमें उन्होंने नये-नये भेद और वैषम्योंकी दीवार खड़ी कर दी, नये-नये सम्प्रदाय और जातियोंकी सृष्टि कर दी।

अपने अन्तःकरणसे हिन्दूसमाज कभी जातिभेदको निकाल सकेगा, यह एक प्रकारसे असंभव ही मालूम होता था और इसीसे बाहरसे एक प्रकारका प्रबल आक्रमण करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती थी। किन्तु पाश्चात्य संघर्ष और प्रभावके द्वारा वह कार्य अब पूरा हो गया है। पाश्चात्य संघर्षके फलस्वरूप जातिभेद और अन्यान्य बहुतसे झूठे आचार और संस्कार दुर्बल और क्षीण हो गये हैं। किन्तु, केवल युक्ति-तर्कके ऊपर निर्भर करके अथवा पाश्चात्य सभ्यताको ही आदर्श रूपमें सामने रखकर हिन्दू-समाजको संस्कृत करनेका आन्दोलन करनेसे साधारणतः हिन्दुओंके जीवनमें कोई विशेष और गंभीर परिवर्तन नहीं हो सकेगा। हिन्दूसमाजको जातिभेदके अत्याचार और अन्यान्य अनिष्टकर प्रथाओंसे पूर्ण रूपसे मुक्त करनेके लिये एक ऐसा पूर्ण और व्यापक आध्यात्मिक आन्दोलन होना चाहिये जो बौद्ध आन्दोलनकी तरह केवल त्याग और संन्यासकी ओर ही अधिक न झुके अथवा साम्प्रदायिक धर्मोंकी संकीर्णता तथा थोथी दलीलोंसे अपनेको कलुषित न करे, बल्कि वह भारतके उसी पूर्ण आदर्शके द्वारा अनुप्राणित हो, जिस आदर्शमें सारा जीवन ही अध्यात्म-सत्य और शक्ति लाभ करनेकी साधना है, और आध्यात्मिकता पार्थिव जीवनको अस्वीकार करना या त्याग देना नहीं है, बल्कि उसे उन्नत और रूपांतरित करनेकी दिव्य शक्ति है। उस आन्दोलनको प्राचीन भारतीय शिक्षा-दीक्षा और धर्मके मूल, शाश्वत सत्यका आविष्कार कर उसे ग्रहण करना चाहिये, बाहरसे युग-युगमें जो धर्म, सभ्यता, शिक्षा दीक्षाके स्रोत भारतमें आये हैं, उनकी भी मूल ग्रहणीय वस्तुओं और सत्योंको सम्मिलित कर लेना चाहिये और केवल यही नहीं, मानवजीवन और मानव समाजको उन्नत और सुगठित करनेके लिये नये-नये सत्य, नयी-नयी शक्तियोंका अनुसंधान और प्रयोग उसे करना चाहिये। भारतमाता आज इसी प्रकारके एक विराट्, महान् अध्यात्म आन्दोलनकी बाट जोह रही है। केवल इसी प्रकारके आन्दोलनके द्वारा भारतवासी वास्तवमें नवजीवन प्राप्त कर जागृत हो सकेंगे, ऋषिपूज्या भारत-भूमि एक अभूतपूर्व महिमा और महत्वकी ओर निश्चित रूपसे अग्रसर हो सकेगी। —(प्रवासी)

ప్రాచీన భారత నాగరిక విజ్ఞానములు

(ఆం. ప్రవా. 31-8-32)

సర్ కూర్మా వెంకటరెడ్డిగారి యుపన్యాసము

పచ్చయప్ప కళాశాల ఆంధ్ర సంఘ ప్రారంభోత్సవము

ప్రాచీన భారతీయ విజ్ఞాననాగరకతలను గురించి సర్ కూర్మా వెంకటరెడ్డి నాయుడుగారు మంగళవారం సాయంత్రము పచ్చయప్ప కళాశాల ఆంధ్రవిద్యార్థి బృందమునకు ఉపన్యాసమొసంగిరి.

భారతవర్షము ప్రాచీనకాలమందు వివిధకళలయందు ఎంతటి మహోన్నతిని గాంచెనో, భారతీయ నాగరకత ఖండాంతరముల కెట్లు వ్యాపించెనో విదేశీయులు రచించిన చరిత్రల యాధారమునను, శాసనములు, శిలలు, పరిశోధనలు మొదలగు ప్రత్యక్ష ప్రమాణములచే రుజువుచేయుచు ఆంధ్రభాషయందు వచ్చటించిరి. పచ్చయప్ప కళాశాలాంధ్రపండితులు, విద్యార్థులును సభ నిండుగ నుండిరి.

కళాశాలాంధ్రోపాధ్యాయులగు శ్రీ గంటిజోగి సోమయాజులుగారు మొట్టమొదట సర్ కూర్మా వెంకటరెడ్డిగారిని గురించి పరిచయ వాక్యములనాడుచు శ్రీ రెడ్డినాయుడుగారిని పరిచయ మొనరింప యత్నించుట సూర్యునికి దివిటీతో చూపుట వంటిదనియు వారు లబ్ధప్రతిష్ఠులైన ఈ నరకో విపులమగు విఖ్యాతి సార్జించియుండిరనియు ముఖ్యముగా వారికిగల ఆంధ్రభాషాభిమానమును పాండిత్యమును బట్టియే వారిట్టి యుపన్యాసమున కెంతయు అర్హులనియు, శ్రీమంతులును ఉన్నతాధికారులయ్యును కళాభిరుచిగల శ్రీ రెడ్డిగారివంటి వారుపన్యాసకులుగ లభించుట భాగ్యవశమునకే యని పల్కిరి.

ఉపన్యాసము

సర్ కూర్మా వెంకటరెడ్డి నాయుడుగారు ఉపన్యాసమున నుపక్రమించుచు తొలుదొల్త తమ్ము పిలచి గౌరవించినందులకు సభవారికి వందనము లర్పించిరి. నాగరకత యనగా దేశమునందు గల సౌఖ్యములు, సౌకర్యములు మొదలైనవనియు, రైళ్లు, పాఠశాలలు, వాయువిమానము, వంటి వాహనములు మొదలైనవి నాగరకతయొక్క చిహ్నములనియు, విజ్ఞానము మనకు పశ్చిమ దేశములను బట్టి ఏర్పడుననియు ఉపన్యాసముల కెంతయు విజ్ఞానముల యర్థమును నిర్వచించిరి. పశ్చిమ దేశములందు సభ్యత, అసభ్యత అను పదములు (Parliamentary, unparliamentary) కొలదికాలమాత్రమే యేర్పడినవి. కాని భారతీయుల పూర్వకాలమునుండి సభ్యతాసభ్యతలను నిర్వచించిరి. దుర్భాషలాడుటయే అసభ్యత కాక, మాటలాడునపుడు ఏ వాక్యమైనగాని దుష్టముగా వినిపించులాగున నుచ్చరించినప్పటికిని అపద మసభ్యమని మనవారు విధించియుండిరి. కావున మనదేశములో విజ్ఞాన మంతయు సూక్ష్మముగా వ్యాపించియుండెను. ప్రస్తుతకాలమున పాశ్చాత్యులు నాగరకతయందు మనకంటె మిన్నలని చెప్పక తప్పదు. వారు వివిధశాస్త్రములను పఠించి, పరిశీలించి అనేకములగు నూతనసాధనములను, యంత్రములను కనిపెట్టిరి. కాని ప్రస్తుతము వారు కనిపెట్టియుంటిన వివేచనలే పూర్వకాలమున మనదేశమునందుండెననుటకు నిదర్శనములు కలవు. మనదేశములో పూర్వము వాయువిమానము లుండినటుల గ్రంథములందు వ్రాయబడియున్నది. గయుడు వాయుమార్గమున విమానమునందు దిరుగుచు శ్రీకృష్ణుని చేతిలో నిష్క్రమణమై చనని కలదు ఘటోత్కచుడును మేఘములందు దాగియుండి యుద్ధము చేయుచున్నటుల వ్రాయబడియున్నది. అప్పుడిట్టి విమానము లుండినను లేకున్నను, విమానములను నిర్మించుట సాధ్యమనియు విమానములందు చరించువారుండెడివారనియు మహాభారతము మొదలగు గ్రంథములవలన తెల్లమగుచున్నది. క్రీస్తునకు పూర్వము రెండువేలసంవత్సరముల క్రిందట ఆర్యులీ దేశమునకు వచ్చినట్లు చరిత్రలవలన తెలియుచున్నది. ఆంధ్రులు, తమిళులు, కర్ణాటులు ద్రావిడ జాతివారు, మన పూర్వులందరును తెలుగువారు ద్రావిడులేగాని ఆర్యులుకారు. ఈద్రావిడులకే ఈవాయువిమానము లుండెడివనియు, ఆర్యులగు సూర్య, చంద్రవంశజులగు పాండవులు, కౌరవులు, శ్రీరాముడు మొదలగు వారి కిట్టి విమానములాదిగా గలవి లేనట్లుగ కన్పించును. ఘటోత్కచునకు విమానముండెను గాని అర్జునునకుగాని, దుర్యోధనునకుగాని విమానములు లేనటుల మహాభారతము వలనను, శ్రీరామునకు వాయువిమానము లేక, పోగా విభీషణుని వద్దనుండి గైకొనినట్లు వాల్మీకి రామాయణము వలనను తెలియుచున్నది. అందుచే ఆదినుండి ఈదేశమున నివసించుచున్న ద్రావిడులే ఆర్యులకంటె నాగరకత యందు మిన్నగానుండినట్లు తెలియుచున్నది. అయోధ్యాపురి కంటెను గూడ లంకాపట్టణ మెక్కుడు నాగరికత కలిగియున్నట్లు వాల్మీకి రామాయణమునందు వర్ణింపబడియున్నది.

ఇటీవలనే సింధుదేశమున మొహెంజదారో పట్టణము త్రవ్వించుట ఉండెను. దాని క్రింద నొకటిగా మూడు పట్టణములు శిథిలమై యెలువడినవి. ఈ పట్టణములు క్రీస్తునకు పూర్వము 8000 సంవత్సరముల లో నిర్మింపబడినట్లు అచట లభించిన వస్తువులను బట్టి శాస్త్రజ్ఞులు నిర్ణయించుచున్నారు. ఇప్పటికి 5000 ల సంవత్సరములకుముందే ఇట్టి నాగరకతను ప్రపంచమున నేదేశమునగాని, ఏ జాతివారును గాంచియున్నటుల తెలియుటలేదు, మానవుడు మొదట జన్మించిన ప్రదేశము ఆఫ్రికాయైన కావలయును, లేదా భారతదేశమైనను కావలయునని శాస్త్రజ్ఞులు యూహించుచున్నారు. ఆఫ్రికా దేశమునకును, భారతవర్షమునకును పెక్కువేల సంవత్సరములనుండి వ్యాపార సంబంధముండి, నాగరకతా విజ్ఞానము లితర దేశములకు వ్యాపించినట్లు దృష్టాంతములు కలవు. క్రీస్తు పూర్వము 800 ల నాటివారలకే ఈ దేశమున ద్రావిడులు నాగరికాగ్రగణ్యులై యుండిరనుటకు పాశ్చాత్యుల చారిత్రిక నిదర్శనములనే పేర్కొందును. కే, బి, లక్షలో పూర్వము ఉరర్ అను పట్టణముండి యుండెను. అందు మ్యాకిరట్ జాజర్, పాల్మశేకర్ అను వారల సమాధులు త్రవ్వినపుడు ఆ ప్రదేశములో మన దేశీయులకును, బేబిలోని యులకును సంబంధమున్నట్లు తెలియచేయుగల వస్తువు లచట లభించెను. నెమళ్లు, ఏనుగులు, పూర్వము మనదేశమునందు మాత్రమే కలవు. వీని చిత్రము లా సమాధియందు చెక్కబడియుండెను. అవియును గాక మనదేశమునందు మాత్రమే లభించు టేకుద్రావుల చెక్కడములందు దొరికెను.

ఈజిప్టు దేశమునందు "ఎక్ఫ్యూ" పట్టణపనిపనుల నొక దేవళమునందు. ఆదేవళమును "సహభాను" అను వారను కట్టినట్లు ఆదేవాలయపు గోడలపై వ్రాయబడియున్నవి. "సహభాను" అను శబ్దము "స్వభాను" శాబ్దమ్మును. ఆశబ్దము సంస్కృతమే యైయుండవలెను. ఈ దేవాలయము క్రీస్తునకు పూర్వము 2000 సంవత్సరముల నాటిదని శాస్త్రజ్ఞులు "అగస్టసు" అను పాశ్చాత్యునకు పూర్వము మనదేశమునందుండు రాజులతో గొందరు ప్రతినిధుల నంపినట్లును వారికి పీఠికని రాయబారములు జరిగినట్లును పూర్వకాలమున మనదేశములో విశేషముగా ఖండాంతరముల వర్తకము జరుగుచున్నట్లును విదేశీయుల చరిత్రలవలననే తెలియుచున్నది.

పూర్వము మన దేశములో 15 మూరలు పొడవు గల వస్త్రము ఉంగరములో యిముడ్చునట్టి మస్లినులు తయారగుచుండెడివి. రోము దేశపు స్త్రీలు మనదేశపు మస్లినులను వాడుచున్నట్లును అందుచే వారిదేశమునుండి సంవత్సరమునకు ఐదుకోట్ల రూప్యములు మన దేశమునకు కరుగుచున్నట్లును, ఆదేశపు చరిత్రకారుడు విపించినాడు. ఆర్యాంగ్ల నాగరకసంపన్న ప్రభ్యాతికడకిన రోమనులే మనదేశపు మస్లినులను "గాలితో నేసినవస్త్రము" అని పొగడియుండిరి. ఈవస్త్రములనుధరించుటచేతను, స్త్రీలదేహము బహిరంగముగా తెలియుచున్నదనియు, అందువలన గౌరవము తగ్గునేమో యనియు ఆచరిత్రకారుడు భీతిని ప్రకటించెను. గ్రీసు, రోము దేశములలోని స్త్రీలు తమ పాదరక్షలపై మనదేశమునుండి వెడలు ముత్యములను పొదిగి ధరించెడివారట. ఇంత విలువగల పాదరక్షల మహమోగించి ధనమును వచ్చించుచున్నందుల కాతడు విచారపడెను" అనిరి.

పిదప ఉపన్యాసకులు ఆఫ్రికాదేశమున తాము సందర్శించిన కొన్ని తావులను గూర్చి మాటాడుచు ఆఫ్రికా దేశమునకును భారతీయ కళలు, నాగరకతయును ఎట్లు వ్యాపించెనో దృష్టాంతపూర్వకముగా వివరించిరి. జాంబాబియనుపది దక్షిణ రోడిషియాలో కలదు. అందొక పెద్దదేవాలయమున్నది. దానిలో 80అడుగుల ఎత్తుగల లింగ మొకటి కలదు. ఆ లింగము వలయము 30అడుగులు. ఆలింగము మనదేశములో లింగములవలె ఏకశిలలో చెక్కబడినది మాత్రముగాక చిన్న చిన్న శిలాశకలములతో నిర్మింపబడినది. దీనిప్రక్కనే యొక్క బురుజు కలదు. దానిపై అనేకముగా చిన్నచిన్న లింగములు కలవు. దీనిని గురించి అనేక కథలుగలవు, కాని ఇయ్యది మన దేశస్థులచేతనే నిర్మింపబడెననుటకు కొన్ని దృష్టాంతములు కలవు. వీనివలన తూర్పు ఆఫ్రికాదేశమునకును మన దేశమునకును పూర్వకాలమునుండి వ్యాపారసంబంధమున్నటుల తెలియగలదు. వారమునకు ఏడుదినములవిభజనయును, నవగ్రహములలోని పేర్లనే దినములకు పెట్టుటయును. భారతదేశమునందే మొట్టమొదట ఏర్పరుపబడినట్లు జ్యోతిశాస్త్రజ్ఞు లంగీకరించుచున్నారు, జింబాబి ఆలేది రెండు, మూడువేల సంవత్సరములకు పూర్వము కట్టబడినట్లు చెప్పుచున్నారు నవగ్రహచక్రమందు రాతిపై చెక్కబడియున్నది. రెండు, మూడువేల సంవత్సరములపూర్వ మీ నవగ్రహచక్రమును కనిపెట్టిన దేశమొక్క హిందూదేశమే. మనవారు దినమును 60 ఘడియలుగా విభజించిరి. పాశ్చాత్యులు 24 గంటలుగా విభజించిరి. హైందవులు నిర్ణయించిన 60 గడియల విభజనమే శాస్త్రసమ్మతముగాని, 24 గంటల విభజనము శాస్త్రసమ్మతము కాదని పాశ్చాత్యశాస్త్రజ్ఞులే అంగీకరించియున్నారు. రెండు మూడువేల సంవత్సరముల క్రితము నవగ్రహముల చక్రము నెరింగిన వారు హైందవులే కావున ఈదేవాలయమును, అందలి గోడలను నిర్మించినవారు హైందవ శిల్పులే యై యుండవలెను. ఏనిని చూచినపిదప తో శీలఅన్నబట్ట, కపటానులో ఉపన్యసించియుంటిని. పలువురు శాస్త్రజ్ఞులీ విషయముల నంగీకరించియుండిరి. ఈమధ్యకాలములోనే అచట త్రవ్వుచుండగా నొక చిన్న బంగరుపూసదొరికినది. అది సరిగా మన తెలుగుదేశపు స్త్రీలు వాడుకొన్నలో నెక్కాను నుంచుపూసను బోలియున్నది. బంగారమును కరిగించు పెద్దపెద్దమూసలందు కలవు. పూర్వము మనవారు బంగారమును దూచెడినట్టి సాధనములు ప్రదేశమున నిశ్శేషముగా కలవు హిందూదేశములో మాత్రము కన్పించు "జాకాబ్" చెట్లు అచట గలవు. లింగపూజ, నెమళ్లు మున్నగువాని నన్నిటినిబట్టి యిచ్చటినుండి మనదేశస్థులే వీనిని నిర్మించినట్లు తేలుచున్నది. స్త్రీయులు నిర్మించినట్టి యిటువంటి నెమళ్లుండుట కవకాశము లేదు. గచ్చులేని కట్టుబడియందు నూతన తొక్కిడముండు పూసలు రహస్యమార్గమునందు లోపలికి వచ్చునట్లు నిర్మింపబడియున్నవి. అదనాశ్యభాగమును జూచినపుడు ఇది కేవలము హిందూ దేశమునుండి వచ్చిన ఆచారముగా కన్పట్టును. ఏది యెట్లున్నను మన దేశస్థులు వ్యాపారార్థమై విశేషముగా అచటికి వెళ్లి నివసించినట్లు శాస్త్రజ్ఞు లంగీకరించుచున్నారు. వేలకొలది యేండ్లకు ముందే మనవారు శిల్పములందు నైపుణ్యము కలవారై యుండిరి.

[illegible]

भारतवर्ष के दो अमूल्य आविष्कार

देखनेवालों के आश्चर्य की सीमा नहीं रह जाती।

('सम्मेलन' के सम्वाददाता द्वारा)

28-12-31

भारतवर्ष आज अपनी अत्यन्तगिरी हुई अवस्था में भी वैसे बुद्धि-विशारदों से शून्य नहीं कहा जा सकता जिनकी चमत्कारिक शोधें विश्व को हैरानी में डाल दे सकती हैं। किन्तु दुर्भाग्य का विषय तो यह है कि, ऐसे महानुभावों को आर्थिक-सहयोग दे कर, उनकी कलाओं को व्यापक बनाने वालों को ही महान् त्रुटि है। नयी—रोशनी के लोग सहस्रों और लाखों रुपया खर्च करके विलायत की दौड़ लगाते हैं। अपना धर्म और धन दोनों ही वहां डुबाकर लौट आते हैं। फिर भी, उनका यह दावा होता है कि, हम स्वदेश-सेवक हैं, विलायत की कलाकारियां देखने गये थे जिससे अपनी देशी-कलाओं को हम जागृत कर सकें। किन्तु, खेद है कि, ये ही महानुभाव भारतीय—कला—कौशल को व्यवहारिक उत्तेजन देने का प्रश्न खड़ा होने पर बगलें झांकने लगते हैं। हां, उन्हें ऐसे भारतीय आविष्कारों को देखकर यह तो मान लेना ही पड़ता है कि, वस्तुतः-आविष्कार ला-जवाब हुआ है। आज हम दो महानुभावों की ऐसी ही अद्भुत कलाओं का आपको परिचय कराने जा रहे हैं। दोनों ही, सज्जन सौभाग्य से वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के सदस्य भी हैं। एक महानुभाव काशी-निवासी हैं और दूसरे हैं चन्दौसी के रहने वाले। हमें स्वतः अपनी आंखों से उनकी रचनाओं का निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

काशी-निवासी

ज्योतिषाचार्य पं० कल्याणदत्त जी ने प्राचीन ऋषि-शास्त्रों के आधार पर ज्योतिष—शास्त्र सम्बन्धी अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत किये हैं। इन चमत्कारों पर पं० मदन मोहन मालवीय आदि द्वारा आपको प्रशंसा—पत्र भी भेंट किये गये हैं। पं० जी ने (१) एक ऐसा दर्शनीय चित्रमय-चक्र आविष्कृत किया है जिसपर दृष्टि डालने से, आजतक उत्पन्न हुए और आगे भी उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्यों का दैनिक-भविष्य, विवाह-लग्न आदि सरीखा ज्योतिष-सम्बन्धी सभी बातें, थोड़े से अभ्यास के बाद, आप से आप आंखों के सामने नाचने लगती हैं। (२) एक गुलाब का फूल बनाया है जो हजार वर्ष आगे और हजार वर्ष पीछे तक का सन्, सम्वत्, महीना, तारीख, दिन आदि बतला देता है। (३) एक घड़ा बनाया है जो घड़ी, घण्टा, मिनट, घटा, पल, सूर्य टाइम, स्टैण्डर्ड टाइम आदि बतलाने वाला है। (४) एक बांस का ऐसी नली बनाया है जिससे दिन में हो तारे देखे जा सकते हैं। अभी आगे और भी अनेक चमत्कारिक आविष्कार करने में संलग्न हैं।

चन्दौसी-निवासी
पं० प्यारेलाल जी गौतम

ने एक ऐसा "राजकीय ठाट-बाट का बक्स" बनाया है जिस बक्स [illegible] वह हो जाता है कि, कहीं पर भी रहते हुए, आप राजकीय-वैभव सा

लगभग ३ फुट ऊंचा एवं चौड़ा तथा ४ फुट लम्बा है। इस बक्स में प्रयुक्त की गयी सारी चीजें खास श्री गौतम जी के तत्वाधान में बनाया हुई हैं; बाजार में कहीं भी मिलती नहीं। जिस समय सोने की इच्छा हो (१) यह बक्स खूब लम्बे चौड़े गद्देदार चारपाई का रूप धारण कर लेता है। चारपायी पर रमणीक मसहरी लगी हुई होती है। मोमजामा भी उसी के साथ प्रस्तुत रहता है कि, वर्षा के समय मैदान में सो जाइये। (२) इष्ट-मित्रों के साथ चौपड़ आदि खेलनी हो उस समय ८ आदमियों के बैठ सकने योग्य गद्देदार तख्त का रूप वह बक्स धारण कर लेता है। (३) आराम कुर्सी तो ऐसी नफीस बन जाती है कि, बस देखते ही बनता है। (४) सिंहासन के रूप में बक्स का बदल जाना देखकर राजकीय—दरबारों का नक्शा आंखों के सामने आ जाता है। (५) यही बक्स कोच—बक्स के समान भी बन जाता है। (६) खटका दबाते ही कोच पर मसलन्द लग जाती है। (७) लिखने-पढ़ने की इच्छा होते ही खटका दबाने से कोच के साथ एक टेबुल सामने हो जाता है। (८) खाने की इच्छा होने पर भोजन-भण्डार भी वहीं सामने आ जाता है। (९) केश संवारने की इच्छा करने पर कोच के बगल में सुन्दर आईना एवं टायलेट-बक्स आदि लगा होता है। (१०) लिखने के लिये कलमदान, पेपर—कैरियर भी खटके पर कोच के सामने आ जाते हैं। (११) पानदान (१२) सूट केस (१३) किताबों का कैरियर (१४) इत्रदान (१५) रुपये—पैसे के लिये गुप्त सेफ—बक्स आदि अनेक चीजें इस एकही बक्स के भीतर संकलित हैं। जिनकी आप आवश्यकता समझें आपके सामने वही चीजें, खटके पर आकर तैयार हो जाती हैं।

यह सारे गुण अभी भी बहुत थोड़े ही गिनाये हैं। श्री गौतमजी जिस समय उस बक्स के विभिन्न प्रयोगों का प्रदर्शन करने लगे—देखकर दंग रह जाना पड़ा। बात यह भी है कि, इस बक्स से प्रकट होने वाली चीजें खूब मजबूत, गहरी टिकाऊ और इस्तेमालमें आने की होती हैं। नुमायशी ही नहीं। इसपर भी, उन सारी चीजों की भव्यता ऐसी आकर्षक होती है कि, उसे राजकीय-वैभव ही कहना पड़ता है। कोई कठिनाई नहीं पड़ती, कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती—कुछ समय भी नहीं लगता। इच्छा कीजिये और वही चीज़ सेकेण्ड भर के श्रममें उस बक्स से आप के लिये तैयार होगी। रात्रि के समय रोशनी का भी उस बक्स के अन्दर ही खास प्रबन्ध है। श्री गौतम जी ने इस बक्स का मूल्य ३५०) रु० बतलाया है जो उसके गुणों के आगे कुछ भी नहीं के बराबर है। जैसी २ चीजोंको वह प्रस्तुत करता है अथवा जैसा २ रूप वह धारण करता है—उनमें से एक २ चीजों का मूल्य भी ८०) रु० और १००) से कम नहीं लगाया जा सकता।

दोनों ही महानुभाव अपनी २

वेदोंमें-अस्पृश्यता-विवेचन।)

ले०—अखिलानन्द शर्मा कविरत्न

भारतवर्षमें आज कलके कुछ मनुष्य "वेदोंमें अस्पृश्यता नहीं है" ऐसा अनर्गल प्रलाप करते हुए प्रायः हमको मिला करते हैं, उनके प्रश्नोंका समुचित रूपमें उत्तर देनेके लिये हम इस निबन्धका आरम्भ करते हैं। इसमें केवल वैदिक साहित्यके आधार पर ही समस्त प्रश्नोंका उत्तर दिया जायगा। पाठक धैर्यसे पढ़ें !!!

प्रथम प्रश्नः—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्य-
त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु,
शूद्रो नास्ति तु पंचमः॥

मनुके इस पद्यके आधार पर आज कलके कुछ अपठित मनुष्य शूद्रातिरिक्त-पञ्चम वर्णको माननेमें सङ्कोच करते हैं ? परन्तु ऋग्वेदके—

इन्द्रः पंचक्षितीनाम् १।७।९
येवाजनेषु पंचसु ९।६५।२३

इन दो मन्त्रोंमें शूद्रके अतिरिक्त निषादका-(पंच संख्याको पूरा करनेके लिये वर्णन है) "पंचक्षितीनाम्" इस पदका भाष्य करते हुए सायणाचार्य लिखते हैं कि [निषादपंचमानां वर्णानामनुग्रहीता] इत्यादि। निषाद है पंचम जिनमें उन वर्णोंका इससे ग्रहण होता है। निषाद इतर अस्पृश्य जातियोंका उपलक्षण मात्र है—इसीलिये यजुर्वेदके ३० अध्यायमें अनेक अन्त्यजोंका उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार दूसरे मन्त्रके भाष्यमें [निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः] ऐसा सायणाचार्य लिखते हैं।

"पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्"

यह ऋग्वेदका मन्त्र यास्काचार्यने निरुक्तमें उद्धृत किया है इसका भाष्य लिखते हुए यास्क कहते हैं कि [पंचजनाः मनुष्याः-निषादपञ्चमा वर्णाः]-इसकी पुष्टिमें वेदाङ्गभूत निरुक्त कहता है कि—

"गन्धर्वाः पितरो देवा,
असुरा रक्षांसीत्येके।
चत्वारो वर्णा निषादः,
पंचम इत्यौपमन्यवः।
निरुक्त ३-८

कुछ ऋषियोंके मतमें गन्धर्व-पितर-देव-असुर-राक्षस इनको पंचजन कहते हैं—व्याघ्रपाद ऋषिका पौत्र औपमन्यव ऋषि उनसे पृथक् पंचजनका अर्थ [चत्वारो वर्णा निषादः पंचमः] ऐसा करता है। वेदमें व्याघ्रपाद और उपमन्यु ये दोनों ही मन्त्रद्रष्टा ऋषि माने गये हैं—इसलिये इनका मत उपेक्षणीय नहीं हो सकता है। निषाद शब्दका अर्थ यास्कने [निषादः कस्मात्-निषण्णमस्मिन्पापकमिति नैरुक्ताः] ऐसा किया है—और [निषद्य हन्तीति निषादः प्राणिवधजीवनः] दुर्गाचार्यने लिखा है। इसलिये चार वर्णोंके अतिरिक्त "अन्तर प्रभव जातियोंका" मानना अत्यावश्यक है। धर्म शास्त्रोंमें उनको संकीर्ण-अन्त्यज कहते हैं। वेदोंमें दस्यु-अथवा-दास कहते हैं।

[दस्यु-और-दास्य]

ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंमें आर्य ...ति अतिरिक्त दस्यु जाति और चाण्डालादि अन्त्यज "कपूय योनि" में माने गये हैं।

नीचदांसा-उपसर्पन्त भूमिम्
(अथर्व. ५।११।६)
यथादश्च नयति दासमार्यः।
(ऋ० ५।३४।६)
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः॥
(ऋ० २।१२।४)

यह सभी वेदोंके मन्त्र हैं इनमें पहिला अथर्वका है और दूसरा ऋग्वेदका है। आर्य जातिके समक्ष दास जाति एक आसनपर कदापि नहीं बैठ सकती है। उसके लिये नीचे भूमिपर बैठना वेदानुकूल है। दास वर्ण अधर अर्थात् अवर अश्रेष्ठ है। इसी कारण आर्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) इस दासको अपने वशमें काबु में रखनेका प्रयत्न करें यही वेदकी आर्य जातिके प्रति आज्ञा है।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन
ऋ० १।३३।४
हत्वादस्यू आर्यं वर्णमावत
ऋ० ३।३४।९

ऋग्वेदके इन दो मन्त्रोंमें वेद आज्ञा देता है कि दस्यु जातिमें जो धनवान हो उसको मारकर आर्य वर्णकी रक्षा करनी चाहिये। दासः सेवकशूद्रयोः। निषादका पुत्र दास अथवा दस्यु कहा जाता है। आर्यावर्त्त में उसको कैवर्त्त कहते हैं वेदमें दस्यु का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

अन्यव्रतं अमानुषं
अयज्वानं अदेवयुम्।
क्षुम्राय दस्युं पर्वतः
(ऋग्वेद)

आर्यजातिसे भिन्न जिसका नियम हो तथा पाशविक वृत्तिसे जिसका निर्वाह हो—साथ ही यज्ञ और देव पूजनमें जिसका अधिकार न हो—उसको दस्यु अथवा दास कहते हैं। इस मन्त्रसे यह बात सिद्ध होती है कि अन्त्यजोंको यज्ञ और देवपूजनका अधिकार नहीं है।

ब्राह्मणो वैव राजन्यो वा वैश्यो वा तेहि यज्ञियाः। सर्वे न सर्वेण संवदेत। न वै देवाः सर्वेण संवदन्ते। ब्राह्मणेन वा राजन्येन वा वैश्येन वा।
(शतपथ)

श्रुति कहती है कि ब्राह्मणादि तीन वर्ण ही यज्ञके अधिकारी हैं। इसी कारण देवता उनसे बात करते हैं। सबस नहीं करते हैं। शूद्रका उद्भव वेदसे नहीं है। आर्य जातिका उद्भव वेदसे है। ब्राह्मणादि तीन वर्ण आर्य हैं। शूद्र अनार्य हैं। इसी कारण—

ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः।
यजुर्वेदं क्षत्रस्याहुर्योनिम्।
सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः।
३।१२।९।४४
(तैत्तरीय ब्राह्मण)

इस तैत्तिरीय श्रुतिमें वेदत्रयीसे क्रमशः तीन ब्राह्मणादि वर्णोंका उद्भव कहा गया है। शूद्रका किसी वेदसे नहीं है। इसी कारण इसका यज्ञमें अधिकार नहीं है। यज धातुका अर्थ देवपूजन है। यज्ञमें प्रायः देवपूजन ही होता है। शूद्रको देव पूजनाधिकार अप्राप्त है। इसी कारण इसके छूए हुए पात्रोंका यज्ञमें पुनः तापन मार्जन प्रोक्षण करना विधि अदिष्ट है।

दैन्याय कर्मणे शुंधध्वं देवयज्यायै। ... चक्षुषामि १।१३

यजुर्वेदके इस मन्त्रमें 'अशुद्धाः' पद प्रत्यक्ष है। अपवित्रको अशुद्ध अथवा अमेध्य कहते हैं। तक्षाः आदि अस्पृश्य जातियों द्वारा बनाये हुए यज्ञपात्रोंका प्रोक्षण इस मन्त्रसे किया जाता है।

अथ यज्ञपात्राणि प्रोक्षति। अन्नाशुद्धस्तक्षा। वा अन्यः अमेध्यः कश्चित् परादति। तदेवैषामेतद्-ध्रिमेध्यं करोति॥
(शतपथ) १२

शतपथ ब्राह्मणकी यह श्रुति पूर्वोक्त मन्त्रार्थका अनुगमन करती है पूर्वोक्त मन्त्र पर जो महीधर भाष्य है उसमें तो साफ ही (अशुद्धाः ...च जातयस्तक्षादयः —छेदन ...णादिकाले स्वकीय हस्त स्पर्श —अशुचित्वं चक्रुः) ऐसा लिखा है ... पर—"अशुद्ध अमेध्य-अशुचि" ... तीन पद विशेष ध्यान देने ...ना है। इससे अधिक अस्पृश्यताके ...रमें क्या कहा जा सकता है। ...हैं जातियां तो स्वयं अस्पृश्य ...की है। ... पर भी जिनको ...पनोंयोंकी अस्पृश्यतामें सन्देह ...र वा सनातन इन बातोंका ...चारेंगे। (क्रमशः)

वेदोंका जिन महानुभावोंने स्वाध्याय नहीं किया है व वेदोंमें जाति भेदका अस्तित्व नहीं मानते हैं, परन्तु यजुर्वेदके ३० अध्यायमें अनेक जातियोंका उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ हम नीचे जाति सूची उपस्थित करते हैं।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-मागध (३०।५)
सूत-शैलूष-रथकार-तक्षा (३०।६)
कौलाल (३०।७)
पौञ्जिष्ठ—नैषाद—व्रात्य—दास (३०।८)
गोपाल-अविपाल (३०।११)
वासः पल्पूली-रजयित्री (३०।१२)
अश्वसाद-अयस्ताप (३०।१४)
चर्मम्न (३०।१५)
धैवर-दाश-बैन्द-कैवर्त-पर्णक-किरात (३०।१६)
पौल्कस-हिरण्यकार (३०।१७)
गोव्यच्छ-गोघात (३०।१८)
ग्रामणी (३०।१०)
चांडाल-वंशनर्ती (३०।११)

इस वेदोक्त जाति सूचीमें ब्राह्मणसे लेकर नट तक ३४ जातियोंका निर्देश है। इनका विस्तृत विवेचन धर्मशास्त्रोंमें लिखा है। चतुर्थ्यन्त पदसे उनका कर्म निर्देश भी मिलता है। जैसे (तपसे शूद्रम्) इत्यादि। यहांपर (तपः शूद्रस्य सेवनम्) मनुके इस प्रमाणसे ब्राह्मणादि तीन वर्णोंकी सेवा करना ही शूद्रके लिये तप है। अन्य प्रकारका तप नहीं। तप करनेपर भी रामचन्द्रने शम्बूक नामक शूद्रको जो दण्ड दिया है उसका उल्लेख करना केवल इतिहासका श्रवण मात्र है। रामचन्द्रजीने कदापि अस्पृश्य जातिके हाथसे अन्न जल ग्रहण नहीं किया। वाल्मीकि रामायण इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाण है। देखिये अयोध्याकाण्ड—सर्ग ५० श्लोक ३३ से ४८ क्या लिखा है।

तत्र राजा गुहो नाम,
रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान्,
स्थपतिश्चेति विश्रुतः।
यदिदं भवता किंचित्,
प्रीत्या समुपकल्पितम्।
सर्वं तदनुजानामि,
नहिवर्ते प्रतिग्रहे।
५०।४३
ततश्चीरोत्तरासङ्गः,
संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
जलमेवाददे भोज्यं,
लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्॥
५०।४८

इन पद्योंका अर्थ स्पष्ट है। निषाद जातिके राजा गुहने श्रीरामचन्द्रजीके समक्ष जो जो पदार्थ उपस्थित किये थे—उनको देखकर भगवान्ने वापिस किया। कोई भी पदार्थ अङ्गीकार नहीं किया। लक्ष्मणके हाथसे जल मँगाकर पिया। यह रामचन्द्रजीका पवित्र आदर्श है यही बात शबरीके प्रसङ्गमें भी है। वाल्मीकि रामायणके अतिरिक्त इस विषयमें हमें अन्य प्रमाण मान्य नहीं है।

(तृतीय प्रश्न)

आज कल कुछ नन चले महानुभाव—यह भी प्रायः पूछा करते हैं कि—वेदमें संसर्ग दोषका वर्णन नहीं मिलता है ? परन्तु इनकी यह बात केवल बालचापल मात्र है। क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् मन्त्र कहता है कि—

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च
गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा च।
एते पतन्ति चत्वारः
पंचमश्चाचरंस्तैः (छां०५।१०।९)

सुवर्णकी चोरी, शराबका पीना, गुरुस्त्री गमन और ब्रह्महत्या यह चार महा पाप हैं। इनके करनेवाले पतित होते हैं। और इनके साथमें व्यवहार करनेवाला पांचवा भी पापी होता है। इस मन्त्रमें संसर्ग-दोषका प्रत्यक्ष वर्णन है। इसीका अनुवाद—

ब्रह्महत्या सुरापानं,
स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः,
संसर्गश्चापि तैःसह।११।५४

मनुने इस प्रकार दिया है। इन सबका मूल मन्त्र ऋग्वेदमें विद्यमान है। श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत। धर्मशास्त्रोंमें जो भी कुछ मिलता है उसका मूल वेद है :

सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः
तासामेकामिदभ्यंहुरोगात्।
(ऋग्वेद)

इस मन्त्रका सायण भाष्य—छान्दोग्य मन्त्रका समर्थक है। निरुक्तमें इस मन्त्रपर यास्क लिखते हैं कि (सप्तैव मर्यादाः कवयश्चक्रुः-तासामेकामप्यभिगच्छन् अंहस्वान् भवति) इत्यादि। गुरु शब्दसे यहां पर (वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः) इस प्रमाणसे ब्राह्मणका ग्रहण है। इतर वर्णोंके लिये ब्राह्मण पत्नीका गमन करना भी महापाप है—जिसका फल अथर्व वेदके ब्रह्मजाया सूक्तमें लिखा है। जो जाति ऐसा करती है—उनका संसर्ग करना महापाप है।

(चतुर्थ प्रश्न।)

कुछ महानुभाव कहते हैं कि शूद्रातिरिक्त अन्त्यजोंका वेदमें उल्लेख नहीं है—परन्तु—उनका यह प्रश्न बुद्धिमूलक नहीं है, क्योंकि यजुर्वेदके—

मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबः।
अशूद्रा अब्राह्मणास्ते
प्राजापत्याः ३०।२२

इस मन्त्रमें शूद्र-ब्राह्मण वर्जित प्रजापति देवताके मागधका प्रत्यक्ष निर्देश है। मागध न शूद्र है और न ब्राह्मण है। फिर कौन है ? उसी अध्यायमें (अतिक्रुष्टाय मागधं ३०।५) ऐसा और भी पाठ है। महीधर उसके भाष्यमें (क्षत्रियायां वैश्यपुंसो जातं) ऐसा लिखते हैं इसलिये शूद्र ब्राह्मणातिरिक्त अनेक अस्पृश्य जातियां वेदके आधार पर माननीय हैं।

(पंचम-प्रश्न)

कुछ मनुष्य यह भी प्रश्न उठाया करते हैं कि प्रतिलोम-अनुलोम भेदसे जिन अन्त्यजोंका उल्लेख किया जाता है उन अन्त्यजोंका आनुलोम्य-प्रातिलोम्य-वैदिक नहीं कहा जा सकता है—क्योंकि व्यभिचार मूलक मन्त्र पाठ अप्राप्त है इत्यादि। इस प्रश्नके उत्तरमें हम और कुछ न लिख कर केवल उन दो मन्त्रोंको ही उपस्थित करते हैं जिनमें व्यभिचारका स्पष्ट उल्लेख है।

शूद्रायदर्यजारा नपोषाय धनायति

धार्मिक-निरपेक्षता की आवश्यकता

...० आचार्य का वक्तव्य

धार्मिक-निरपेक्षता के लिये सर-...नासनों पर अब विश्वास

यजुर्वेदके इस मन्त्रमें शूद्र स्त्री के साथ वैश्यका जार कर्म वर्णित है। इस पर महीधर भाष्य इस प्रकार है। (वैश्यो यदा शूद्रां गच्छति तदा शूद्रः पोषाय न धनायति। मद्भार्यां वैश्येन भुक्ता सती पुष्टा जातेति न मन्यते। किन्तु व्यभिचारिणी जातेति दुःखितो भवति) इत्यादि। शूद्रका इस प्रकारके कर्मसे दुःखित होना इस कर्मकी निन्द्यताका द्योतक है। शूद्रकी स्त्रीमें वैश्यके वीर्यसे जो अनुलोम सङ्कर पैदा होता है-उसका वर्णन धर्म शास्त्रोंमें देखिये। अब प्रतिलोम सङ्करका सूत्रपात भी देखिये।

शूद्रोयदर्यायैजारोनपोषमनुमन्यते।
(यजुः २३।३१)

यजुर्वेदके इस मन्त्रमें वैश्य-स्त्रीके साथ शूद्रका जार कर्म निर्दिष्ट है। इस पर महीधर लिखते हैं कि (यदा शूद्रः—अर्यायै—जारो भवति—तदा वैश्यः पोषं नानुमन्यते मम स्त्री पुष्टा जातेति नानुमन्यते। किन्तु शूद्रेण नीचेन भुक्तेति क्लिश्यतीत्यर्थः) इत्यादि। वैश्यका भी इस प्रकारके कर्मसे क्लेशित होना इस कर्मकी निन्द्यताका द्योतक है। वैश्यकी स्त्रीमें शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ प्रतिलोम सङ्कर आयोगव कहाता है। यह परस्पर व्यभिचारका उपलक्षण है इसी कारण भगवद्गीतामें वैश्य शूद्रको एक साथ पापयोनिमें गिना है। वेदमें संकरोंको "अरण" कहते हैं (अरण-अपार्णः अपगतोदकसम्बन्ध इति दुर्गाचार्यः)

(छठा-प्रश्न)

कुछ आज कलके पण्डितंमन्य कहते हैं कि वेदमें अन्त्यजोंके नामके साथ जहां कहां पर "नमः" शब्द आता है वहां उनको प्रणाम करनेका आदेश है इत्यादि। परन्तु यह बात सर्वथा वेद विरुद्ध है। वेदमें "नमः" तीन अर्थोंमें आता है।

अन्नवाचक-नमःपद-नमः श्वभ्यः।
श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमः॥
इत्यादि मन्त्रोंमें व्यवहृत है।

प्रणामवाचक नमःशब्द केवल ईश्वर-देव-गुरु-आदिके लि[illegible] ही आता है। व[illegible] लिये व्यवहृत होता है। वैदिक कोष निघण्टुमें [illegible] प्रणाम यह तीनों [illegible] अपने सेवकोंको बार २ अन्न देना ही यहां पर विवक्षित है [illegible] अर्थ प्रसंग-विरुद्ध है।

पांचजन्य [illegible]
य[illegible]

ऐतरेय ब्राह्मण[illegible] इस श्रुतिमें वैश्वदेव पांचजन्य [illegible] है। पांचों प्रकारके मनुष्योंका [illegible] देवके साथ सम्बन्ध है। इसी [illegible] मनुमें—

शुनां च पतितानां च [illegible]
[illegible]

[illegible] तथा चाण्डाल आदि [illegible] भाग निकालना लिखा [illegible] उच्च वर्णके गृहस्थका [illegible] करना धर्म है।

पंच महायज्ञमें [illegible] समाविष्ट है। [illegible] अन्न देना ही [illegible] है वन्दन करना नहीं है।

२६-११-१९३२

वेदोंमें सवर्ण विवाह।

कुछ मनुष्य असवर्ण विवाहका समर्थन करते हुए वेदमें सवर्ण विवाह नहीं है ऐसा भी कहकर जनताके भ्रम फैलानेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु वेदमें स्पष्ट शब्दोंमें "सवर्ण" विवाहका समर्थन असवर्ण विवाहका नहीं। देखिये—

अघागृहयमृता मर्त्येभ्यः
कृत्वी सवर्णामदद्दुर्विवस्वते।

ऋग्वेदके [illegible] मंत्रमें मनुष्य जातिके लिये मनुष्य [illegible] विवाहका आदेश है। [illegible] शब्द [illegible] जातिके

[illegible] इस लिये वेद सवर्णके विवाहका ही समर्थक है। इसका ही अनुमोदन मनुके—

सवर्णाग्रे द्विजातीनां,
प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्ताना-
मिमाःस्युःक्रमशोऽवराः॥३।१२

इस पद्यमें है। द्विजातियोंके लिये सवर्णा विवाह [illegible] प्रशंसित है। इसी कारण [illegible] सम्बन्ध "कामतः [illegible] प्रमत [illegible]" नहीं। जहां कहींपर ऐसा [illegible] मिलता है वह कामवासना पूरी करनेके लिये ही मिलता है। धर्मके लिये नहीं "कामात्मता न प्रशस्ता" इति मनुः।

अप्रमत्तारक्षथ तन्तु मेतं
मावः क्षेत्रेऽपरे बीजान्यवाप्सुः।

इस श्रुतिमें वेदकी आज्ञा है कि प्रत्येक मनुष्य अपने अपने वंशको सुरक्षित रूपसे चलानेका प्रयत्न करें। अपनी सजातीय स्त्रियोंमें विजातीय पुरुष बीज वपन न करे। ऐसा करनेसे प्रजा वर्णसंकरी हो जाती है। इसका परिणाम भगवद्गीतामें बड़ा भयंकर लिखा है। निरुक्तकार यास्क-

"नहि ग्रभायाऽरणः सुशेवो
अन्यो दर्यो मनसा मन्तवाउ।

इस ऋग्वेदीय मन्त्रका विवेचन करते हुए लिखते हैं कि "अन्योदर्यो मनसापि न मन्तव्यो ममायं पुत्र इति।" इसका अभिप्राय स्त्री-रक्षामें है। सङ्कीर्ण वर्गसे अपने वंशको बचानेके लिये द्विजातियोंको प्राणपणसे प्रयत्न करना चाहिये अन्यथा सांकर्य दोष होनेकी सम्भावना है। ऐतरेय ब्राह्मणमें (७।१८) इस आदर्शकी पोषक एक आख्यायिका आती है। जो इस प्रकार है:—

तद्—ये ज्यायांसो न मेनिरे।
ता ननु व्याजहार। अन्तान्-
व प्रजा भक्षीष्टेति। तएते
अन्ध्राः पुंड्राः शबराः पुलिन्दाः
मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वा
मित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः-इत्यादि
(ऐ० ब्रा० ७।१८)

इसका प्रसङ्ग इस प्रकार है। 'विश्वामित्रने अनेक पुत्रवान होनेपर भी अन्य गोत्रिय 'शुनःशेफ'को प्रयोजन वश दत्तक पुत्र मान लिया। पर यह बात उनके औरसपुत्रोंको अवैदिक होनेके कारण बुरी लगी। अन्तमें हठी विश्वामित्रने पुत्रोंकी बात न मान कर अपना अभीष्ट सिद्ध किया। अन्तमें परिणाम इसका बुरा हुआ। विश्वामित्रके वंशमें सांकर्य दोष आ गया और उसके फलस्वरूप उनके वंशज क्रमशः अन्ध्र-पुंड्र-शबर-पुलिंद-आदि-दस्यु हुए। इसीका रूपान्तर-मनुमें "वृषलत्व गता लोके" इस पद्यमें मिलता है। शबर-पुलिंद-आदि अस्पृश्य अन्त्यजोंका वर्णन यजुर्वेदके ३० अध्यायके द्वारा हमने इसी निबन्धमें अन्यत्र दिखा दिया है

आज कलके कुछ मनुष्य कहते हैं कि आर्य जाति और दस्यु जातिमें आकार प्रकारका बाह्यभेद स्पष्ट प्रतीत न होनेके कारण इनमें भेद नहीं मानना चाहिये इत्यादि। परन्तु उनका यह कथन सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि ऋग्वेदके—

विजानी ह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रंधया शासदव्रतान्
ऋ० १।५१।७

इस मन्त्रमें कहा है कि हे मनुष्यो आर्य और दस्युको तुम पहिले खूब पहचानो? मन्त्रमें "विजानीहि" पद आया है जिसका अर्थ विशेष ज्ञान बीनके साथ [illegible] होती है जिसमें सन्देह होता है। छानबीनके अनन्तर जो अव्रत दस्यु हों उनको "रंधय" नष्ट करो!! यह ईश्वरका आदेश है। मन्त्रमें अव्रतान् पद दस्युका विशेषण है। अमरकोषमें आर्य शब्द "महाकुल कुलीन" [illegible]

वर्ण ही उत्तम हैं—यह बात वेद मन्त्रके द्वारा पहिले कही जा चुकी है।

त्रयः कुर्वन्ति भुवनेषु रेतः
तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें "तिस्रः" "प्रजा आर्याः" इस कथनसे आर्य शब्दसे त्रैवर्णिकोंका ही ग्रहण होता है चतुर्थ वर्णका नहीं। क्योंकि चतुर्थ शूद्र वर्ण एक जाति है। द्विजाति अथवा द्विजन्मा नहीं है। वेदमें द्विज द्विजन्मा आदिपद अनेक मन्त्रोंमें आते हैं जिनका उल्लेख हमने "वैदिकवर्णव्यवस्था" नामक ग्रन्थमें किया है।

हत्वादस्यून्-प्रार्यं वर्णमावत्।
ऋ० ३।३४।९

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें दस्यु जातिको मारकर आर्य वर्णोंकी रक्षाकी प्रार्थना की गयी है। सायण इसके भाष्यमें "आर्य—उत्तमवर्ण—त्रैवर्णकं" ऐसा अर्थ करते हैं आर्य शब्द विशेषण है। विशेष्य नहीं है। विशेषणका समन्वय जबतक विशेष्यके साथ न हो तबतक विशेषण निरर्थक ही रहता है। इस कारण मन्त्रमें "आर्य वर्ण" कहा है। वेदमें वर्ण शब्द जातिके अर्थमें व्यवहृत होता है इसी कारण—

यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः
ऋ० २।१२।४

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें दासके साथमें भी वर्ण शब्द जोड़ा गया है परन्तु साथ ही उसकी अपकृष्टता बतानेके लिये "अधरं" यह पद भी लगा दिया है। सायण इसके भाष्यमें (यश्च दासंवर्ण--दासं—उपक्षयितारं—अधरं—निकृष्टं—गुहा गुहायां—अकः—अकार्षीः) ऐसा लिखते हैं। इसी प्रकार

अगिरेर्दासं शबरं हन्।
ऋ० ६।२६।५

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें भी-दास शब्दका विवेचन लिखते हुए आप कहते हैं कि (दासं-यज्ञादि कर्मणां-उपक्षयितारं) इत्यादि। इन दोनों मन्त्रोंके उदाहरणसे यह बात अनायास ही सिद्ध होती है कि दास जाति अर्थात् शूद्र जाति सर्वदासे यज्ञादि उत्तम कर्मोंमें बाधा गेरा करती है। प्रस्तुतमें "आदि" पदसे देवमन्दिर प्रवेश उपादेय है। शूद्रोंका यज्ञानर्हत्व पहिले कहा गया है। यज्ञानर्हत्व ही देवमन्दिर प्रवेशानर्हताका उपलक्षण है। शूद्रसे देवगण अलग रहते हैं इसका कारण शूद्रका 'अयज्ञिय होता है। अथर्व वेदके-

यद्वा दासी आर्द्रहस्ता समंन्त
उलूखलं मुसलं शुंभ तापः
(अथर्व.)

इस मन्त्रमें दासकी स्त्री दासीके गीले हाथसे छूए हुए यज्ञपात्रोंका पुनः जलसे परिमार्जन करना आदिष्ट है। यज्ञपात्रोंमें "दृषदोलूखले" का भी गृह्यसूत्रोंमें समावेश है। यजुर्वेदका—

दैव्याय कर्मणे शुंधध्वम १।१३

यह मंत्र भी इसी बातका निदर्शक है। शूद्रस्पृष्ट यज्ञपात्रोंका पुनः प्रक्षालन वेद मंत्र सिद्ध है इसी कारण यज्ञमें शूद्र प्रविष्ट नहीं हो सकता है।

ऋधक्-कृपदासं कृत्व्यं हथैः।
ऋ० १०।९९।७

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें "ऋधक्" अलग करनेके अर्थमें व्यवहृत है ऋधक् अव्यय है। हथैः हनन करने योग्य शस्त्रोंसे कृत्व्यम्-हनन करने योग्य दास-नीचवर्णको-ऋधक्-कृ पृथक् करता है। यह इस मन्त्रमें ईश्वरीय आदेश है। इसी पदके आदे[illegible]
[illegible]
पदाङ्कार पाणिनिने—

शूद्राणामनिरवसितानाम्
२।४।१०

[illegible] इस सूत्रके द्वारा शूद्र जातिके दो विभाग किये हैं। उनमें एक निरवसित है। दूसरा अनिरवसित है इसपर पतञ्जलिका भाष्य विशेषरूपसे देखने योग्य है। उसमें अनेक प्रकारके विकल्प अनुकल्प उपस्थित किये गये हैं। प्राचीन समयके ऋषि स्पृश्यास्पृश्य विषयकी कहांतक मीमांसा करते थे। यह बात इस सूत्रके भाष्यसे अनायास ही अवगत हो सकती है।

(नवां—प्रश्न)

कुछ मनुष्य यह भी प्रश्न उपस्थित करते हैं कि आर्य जाति यहां पर उत्पन्न न होकर—अन्य देशोंसे यहां आकर बसी है—इस कारण—इस भूमि पर—उनका आधिपत्य नहीं होना चाहिये-इत्यादि। परन्तु यह बात वेद विरुद्ध होनेके कारण माननीय नहीं हो सकती है। वेदके—

अहं भूमिमददा-आर्याय
अहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
४-२६-२

इस मन्त्रमें ईश्वर कहता है कि मैंने भूमिका प्रदान आर्यजातिके लिये किया है (अहं-भूमि-आर्याय अददाम्) यह मांत्रिक पद आर्योंके निवासके लिये भूमिका प्रदान सिद्ध करते हैं। आर्यावर्त पुण्यभूमि है। विन्ध्य और हिमालयका मध्यभाग आर्यावर्त देश माना जाता है (आर्याः पुनः पुनरावर्तन्ते उद्भवन्ति यत्र स आर्यावर्तः) बार बार जिस देशमें आर्य जातिका जन्म हो वह आर्यावर्त देश माना जाता है। दस्यु अथवा दास्य जातिके रहनेका यह स्थान नहीं है महाभारत सभापर्व अध्याय २७ में लिखा है कि—

प्रागुत्तरां दिशं ये च,
वसंत्याश्रित्य दस्यवः।
निवसन्ति वने ये च,
तान्सर्वानजयत प्रभुः।२४
(महाभारत)

जो दस्यु जन पूर्व दिशा और उत्तर दिशा तथा जङ्गलोंमें निवास करते हैं उन सबको महारथी अर्जुनने दिग्विजयके प्रसंगमें हरा दिया। इन दस्युजनोंने अर्जुनके साथमें भी युद्ध किया था। तभी तो अर्जुनने उन सबको मार गिराया अन्यथा अर्जुनका क्या प्रयोजन था? इसी अध्यायके १६ में भी—

(दस्यून् पर्वतवासिनः)

ऐसा लिखा है। इस कारण दस्यु जातिका निवास स्थान भूमि नहीं है किन्तु-पर्वता दिवनप्रदेश है। मनुजी अध्याय १० श्लोक ४५ में भी (मुखबाहूरुपज्जानां.....सर्वे ते दस्यवः स्मृताः) ऐसा दस्यु जातिका निर्देश करते हैं। जो वास्तवमें मनन करने योग्य है।

कुछ मनुष्य कहते हैं कि वर्ण परिवर्तन नहीं होता है तब "सत्य काम, जाबाला, ऐतरेय, ऋषि, विश्वामित्र, मतङ्ग, आदि" का वर्णन परिवर्तन कैसे हुआ ? इसका उत्तर यह है कि—सत्य काम जाबाल—जन्मका ब्राह्मण था । इसी कारण—

तं होवाच । नैतद
ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति ।
समिधं सौम्य !
आहर । उपत्वानेष्ये ।
न सत्यादगाः । छांदोग्य ४।४ ।

छान्दोग्यकी इस श्रुतिमें उसको जन्मका ब्राह्मण माना गया । जन्मका ब्राह्मण मानकर ही उसका उपनयन हुआ है । त्रिकालदर्शी गौतमने योगदर्शनसे उसे ब्राह्मण जाना । इस कारण उसपर ब्राह्मण होनेका लक्षण नहीं लगाया जा सकता है । विश्वामित्रके विषयमें "वर्णपरिवर्तन" का आख्यान महाभारतमें प्रसिद्ध है । ब्राह्म चरुके प्रभावसे विश्वामित्र कई सहस्र वर्ष तप करनेके बाद जन्मान्तरमें ब्राह्मण बना । एक जन्ममें नहीं । मतंग सर्वथा ब्राह्मण नहीं बना । महाभारत इसकी साक्षी देता है । अब रहा ऐतरेयका प्रश्न ? ऐतरेय जन्मके ब्राह्मण थे । उनकी माताका नाम "इतरा" था । वेदमें तथा वैदिक कोष—"निघण्टु" में इतर शब्द नीचार्थक नहीं किन्तु अन्यार्थक है । वाल्मीकि प्रचेताके पुत्र प्राचेतसमें प्रचेता ब्राह्मणका पुत्र था । यह बात उत्तर काण्डस्थ अन्तिम सर्गके अन्तिम पद्यसे सिद्ध होती है । कवष ऐलूष दासीका पुत्र था, इसी कारण ऋषियोंने उसको यज्ञसे निकाल कर बाहिर किया । इसीसे शूद्र यज्ञका अधिकारी नहीं है—यही बात सिद्ध होती है । वह फिर मरु, (धन्व) देशमें जाकर मर गया । यह बात=

ते कवष मैलूषं सोमाद,
नयन् । दास्याः पुत्रः
कितव अब्राह्मणः कथं,
नो मध्ये दीक्षिष्टेति ।
ते बहिर्धन्व उदुवहन् ।,
अत्र न पिपासा हन्तु । १९

ऐतरेय ब्राह्मणकी इस श्रुतिसे सिद्ध होता है । "हन्तु" पद मन्त्रमें मृत्युका निदर्शक है । मरनेके बाद जन्मान्तरमें यदि इसने वैदिक ज्ञान प्राप्त किया तो इसमें हमें आपत्ति नहीं है । जन्मान्तरमें उत्तम वर्ण प्राप्त होगा सभी धर्माचार्य मानते हैं ।

कुछ लोग पूछते हैं कि आपके मतमें स्पृश्यता अथवा अस्पृश्यता जन्मगत है, किंवा कर्मगत ? इस प्रश्नके उत्तरमें हम उनसे कहते हैं कि यावन्मात्र संसारमें दोष गुण हैं, वे सबके सब द्रव्यनिष्ठ हैं । किसी न किसी द्रव्यका ही वे आधार लेकर रहते हैं । उदाहरणार्थ सुगन्ध गुण पुष्पादि द्रव्यका आश्रय लेता नहीं है । दुर्गन्ध गुण मलका आश्रय लेकर रहता है । द्रव्यका आश्रय ...

... निराली ... अभी तक किसी ... अपने ... महत्व ... द्रष्टव्य ... बृहद्ग्रन्थ ... पुस्तक ५ ... महोदयने ५ ... ५ बार यात्रा ... पुस्तक रूप दे दिया । पहले ..., मध्यभारत, राजपूताना, अजमेर, ... दूसरे भागमें पश्चिमोत्तर देशका और सिन्ध देश हैं । तीसरे भाग... छोटा नागपुर और स्वतन्त्र राज्य ... राज्य आसाम हैं । चौथे खण्डमें ... प्रेसीडेन्सी, मदरास प्रेसीडेन्सी, ... और कुर्ग हैं । पांचवें भागमें पार्वत्य ... है । इस प्रकार भारतवर्ष भरके ... ग्रामोंका ... गया है । ... और पुराण ... किया ... विषयमें सम्पू... का समा... सम्बन्धमें इतनी अमूल्य सूचनाका ... का प्रमाण देता है ।

... तक महत्व है ... वर्णन अंग्रेजी ... किया गया है । कबतक ... ा, कब मुसलमानोंने आक्रमण

सिद्ध होता ... यत" इत्यादि ... "अजायत" ... सिद्ध करता है ... जन्म प्रधान ... मिलता है कर्म ... कारण जाति ... जो ग्रन्थ ऐसा है ... होनेके कारण ... जाति परिवर्तन ... कर्माधीन नहीं है । ... विवरण [सनातन ... देखिये ।

ब्राह्मण पवित्र है । और वैश्य भी पवित्र है परन्तु इन दोनोंके संकरीकरण होजानेसे अम्बष्ठ इन दोनोंसे हीन है । वर्ण सांकर्यसे जो जातियां उत्पन्न होती हैं वह जन्मतः हीन होती हैं । इसी कारण मनुने क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न सूत "जातितः" हीन माना है । इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लीजिये । जातिके जन्मनिष्ठ होनेके कारण ...

यहां 'पर' शब्द अन्यार्थवाची है । अपने शत्रुको भी पर कहते हैं । अपने धर्मको छोड़कर शत्रुके धर्ममें प्रविष्ट होना बहादुरोंका काम नहीं है । कायरोंका काम है । कर्ण-शिवीजी मूतवाहन-दधीचि-हरिश्चन्द्र प्रताप-पद्मिनी-आदिने प्राण देना स्वीकार किया—परन्तु धर्म नहीं छोड़ा । जो लोग धर्म छोड़कर विधर्मी बनते हैं । वे वीर नहीं हैं । प्रत्युत कायर हैं । कायरोंसे कदापि धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती है । धर्म वीर दस अच्छे हैं, कायर सौ अच्छे नहीं । परधर्मको भगवान्="भयावह" कहते हैं । भय उसमें यही है कि उसमें जाकर हमारा स्वरूप नष्ट हो जाता है । जब हम-हमहीं=न रहे तो हमारी उन्नति क्या हुई ? अन्त्यज अन्त्यज न रहकर यदि उन्नति कर गया तो अन्त्यजकी क्या उन्नति हुई ? अपनी जाति नष्ट करके उन्नति करना उन्नति नहीं है । प्रत्युत घोरतर अवनति है । वर्तमान समयमें सुधारक गण जिस मार्गपर जाते हैं—वह मार्ग अधः-पतनका है । उन्नतिका नहीं है । ये लोग "धारक" नहीं—किन्तु पातक हैं । "पातयतीति पातकारः—धारयतीति धर्मः" । आज कल मनुष्योंने गिरानेवालेको उठानेवाला समझा है । और उठानेवालेको गिरानेवाला समझा है ! यही बुद्धिका भेद कोलाहलका कारण है । भगवान् कहते हैं ।

न बुद्धिभेदं जनयेत
अज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि
विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥
३।२६

कर्ममार्गमें प्रवृत्त अज्ञ जनोंके अन्दर बुद्धिभेद उत्पन्न करना विद्वानोंका काम नहीं है । मूर्खोंका काम है । जो स्वयं अपने कर्ममें लगा हुआ औरोंको भी अपने अपने कर्ममें प्रवृत्त करता है वही विद्वान् कहलाता है । आजकलके सुधारक बेरोजगार होनेके कारण इसी बहाने से कमाते खाते हैं । अज्ञ जन इस रहस्यको समझते नहीं हैं । इसी कारण वे उनका साथ देते हैं । कुछ दिनोंके बाद वे दोनों ही पछतावेंगे । भगवद्वचनका विरोध करना दोनोंके लिये उचित नहीं है । हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वे दोनोंको सुबुद्धि प्रदान करें । जिससे सुख और शांतिका साम्राज्य प्राप्त

५००० मनुष्य बेकार हो जाते हैं। यही भारतकी दरिद्रताका प्रधान कारण है।

कुछ मनुष्य [illegible] गीता) का मर्म न समझ कर केवल "पण्डिताः समदर्शिनः" इतना ही पढ़ करके सबको सम माननेका प्रश्न करते हैं। उनके प्रति हमारा यही उत्तर है कि पहिले आप किसी विद्वानसे आद्योपान्त गीता पढ़ लें-तब प्रश्न करें। भगवद्गीतामें—

विद्याविनयसम्पन्ने,
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च,
पण्डिताः समदर्शिनः।५। १८

इस पद्यमें विद्वान्-ब्राह्मण-गौ-हस्ती-कुत्ता-और भंगीको सुख दुःखमें सम देखना कहा है। "समवर्तिनः" नहीं कहा है। सुख और दुःखकी मात्रा सबमें समान देखनी चाहिये। यही इस पद्यका भाव है। इसका सम्बन्ध—

आत्मौपम्येन सर्वत्र,
समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं,
स योगी परमो मतः।६।३२

इस पद्यसे है। इसमें अपने समान सबमें; प्राणीमात्रमें सुख दुःखकी मात्रा समझना परम योगीका लक्षण कहा है। सुख दुःखमें साम्य मानना पाण्डित्य है और व्यवहारमें साम्य मानना मूर्खता है। संसारमें हाथीकी कीमत पांच हजार है और कुत्तेकी २) आना मात्र है। यह दोनों कीमतमें बराबर नहीं हैं। सुख दुःखमें बराबर हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण और चांडाल-व्यवहारमें एक नहीं हैं। सुख दुःखमें समान हैं। शीत-उष्ण-क्षुधा-पिपासा-सबको लगती है। इनका हटाना ही सबमें समान भावका रखना है। हर बातमें साम्यवाद संसारमें प्रचलित नहीं हो सकता है। व्यवहारमें साम्यवाद माननेपर ईश्वरका कर्मवाद ही निरर्थक हो जाता है। व्यवहारिकसत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। व्यवहारमें व्यवहारिक सत्ता ही मानी जाती है। अन्यथा माता-बहिन-बेटी और स्त्रीमें कुछ अन्तर ही नहीं रहता है। व्यवहार मानना जगत है। परमार्थ मानना जगतका प्रलय है। व्यवहारमें पञ्चतत्व भिन्न २ हैं। परमार्थमें सबका उद्भव स्थान एक ब्रह्म है। हमको अभी जगतमें रहना है। इस कारण व्यवहारमें साम्यवाद नहीं मानते हैं। मरनेके बाद देखा जायगा।

आप इस प्रश्नका दूसरे प्रकारसे उत्तर लीजिये। विराट पुरुष ब्रह्माण्ड व्यापी है। और इसका अंशभूत जीव भिन्न २ शरीरोंमें प्रत्यक्ष है और पांच कर्मेन्द्रिय भी प्रत्यक्ष हैं। इनमें कुछ स्पृश्य और कुछ अस्पृश्य हैं। उदाहरणार्थ नासिका स्पृश्य है और मृत्युसदन अस्पृश्य है। इन दोनोंके गुण कर्म स्वभाव भी अलग अलग हैं। मृत्युसदन छूनेसे हाथ धोना पड़ता है। और नासिकाके ऊपर "माध्व गौड़ सम्प्रदायके वैष्णव" तिलक लगाते हैं। आखोंमें अञ्जन और मृत्युस्थानमें मिट्टी लगाई जाती है। परन्तु दोनों प्रकारके अंग एक ही शरीरमें हैं। मृत्युसदन भी हमारा ही है। उसकी रक्षा भी हमको ही करनी पड़ती है। इसलिये प्रत्येक अङ्गकी स्वरूप रक्षाके लिये हमको प्रमाण करना चाहिये। अस्पृश्य जाति विराट पुरुषका मृत्युसदन है। इससे प्रयोजन मात्र संबन्ध रखकर बाकी उससे अलग रहना चाहिये। दृष्टान्तको एकदेशी मानकर काम करना उचित है। सर्वांशमें कोई दृष्टान्त कहींपर नहीं घटता है। अस्पृश्योंको एक देशमें मृत्युस्थान वह समझकर उनसे अलग रहना और कार्य कालमें तत्तद्योगोचित कार्यके लिये उनसे सहानुभूति रखना यही हमारा वक्तव्य है और यही उचित भी है।

कुछ मनुष्य यह भी प्रश्न उठाते हैं कि पहिले समयमें यवन नहीं थे इनका अस्तित्व १३ सौ वर्षसे है—इस कारण इसको शुद्ध करके अपनेमें क्यों न मिलाया जावे? इस प्रश्नके उत्तरमें हमारा यह वक्तव्य है कि यवन अनादि कालसे जगतमें विद्यमान हैं। क्योंकि यजुर्वेदके ३० अध्यायमें इनका नाम "गोघात" है। गौके मारनेवालेको गोघातक कहते हैं। वाल्मीकि रामायणमें वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध अति प्रसिद्ध है। कामधेनुको छीननेके लिये जब विश्वामित्र गया था तब कामधेनुने सैकड़ों यवन और शक जातियां उत्पन्नकी थीं। रामायणका समय वर्तमान समयसे बहुत पुराना है। इसको लक्षों वर्ष हो गये। पाणिनिने यवनोंकी लिपिका नाम "यवनानी" लिखा है। यूनान और मिश्र इनके रहनेका प्राचीन स्थान है। वहांसे यहांपर ये लोग आये हैं। अब रही शुद्धिकी बात उसके लिये हमारा यह वक्तव्य है।

यवनोंकी शुद्धि नहीं हो सकती है। गोरक्तसे जिनका रक्त और गोमांससे जिनका मांस बना है, उनकी शुद्धि कौन कर सकता है? जिस प्रकार पलांडुका दुर्गन्ध अनिवार्य है-उसी प्रकार यवनका जातिगत दोष अनिवार्य है। जो कि लोभसे अथवा अन्य किसी कारणवश जो हिन्दू विधर्मी बन जाते हैं—वे हमारे लिये अव्यवहार्य पतित हो जाते हैं। उनमें यवन संसर्ग दोष अवश्य आ जाता है। उदाहरणार्थ हम "नाबदानमें गिरा हुआ लड्डू" उपस्थित करते हैं। जिस प्रकार वह [illegible] बन जाता है—उसी प्रकार वह भी अव्यवहार्य

कुछ मनुष्य इस प्रश्नको भी उठाते हैं कि-"शूद्रका अन्न भोज्य है, किंवा अभोज्य? भोज्य यदि है तो कच्चा? अथवा पक्का? इत्यादि"। इन प्रश्नोंके उत्तरमें हमारा वक्तव्य यह है कि शूद्रका अन्न किसी भी दशामें भोज्य नहीं है। शूद्र सेवक दास है। त्रैवर्णिक द्विज उसके पोषण करनेवाले "पोषक" हैं। पोषक यदि देनेके बदले-उलटा उससे लेने लगें तो पोष्य वर्गका पोषण कैसे हो सकता है? इस कारण-दास शूद्रका अन्न सर्वथा अग्राह्य है। मनुजी लिखते हैं—

राजान्नं तेज आदत्ते,
शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नं,
यशश्चर्मावकर्तिनः।

इस पद्यमें-शूद्रान्न भक्षणसे ब्रह्मतेज नष्ट होता है,-यह बात अनायाससे सिद्ध होती है। वेद शूद्रके-स्पर्श तकका विरोध करता है-जो हमने पहिले दिखा दिया है। शूद्रश्मशान तुल्य है-यह बात।

पद्युहवा एतत्-श्मशानवच्छूद्रः

इस श्रुतिवाक्यसे सिद्ध होता है। संसारमें श्मशान अपवित्र माना जाता है। इसी कारण श्मशानमें जाकर स्नान करना पड़ता है। यही बात शूद्रके सम्बन्धमें भी है। शूद्र स्पृष्ट पात्र संस्कार "अग्निताप" से शुद्ध होता है। धातु गत दोष अग्निसे नष्ट होता है ऐसा अनेक धर्म शास्त्रोंका मत है।

शूद्राणामनिरवसितानाम्

इस सूत्रके भाष्यमें-शूद्रोंके दो विभाग मिलते हैं। उनमें तन्वा और अयस्कार यह दोनों शूद्र माने हैं। इनका छुआ हुआ पात्र अग्नितापसे ही पवित्र माना है। विना अग्नि-संस्कारके नहीं। जब शूद्र स्पृष्ट-पात्र भी अग्निदाहके बिना अग्राह्य है तब शूद्र पात्र पक्व अन्न कब ग्राह्य हो सकता है? इसीलिये—

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं,
विद्वानश्राद्धिनो द्विजः।
आददीताममेवास्मा,
दवृत्तावेकरात्रिकम्।

ऐसा मनुने लिखा है। शूद्रा-हका अनधिकारी है,-यज्ञानर्हत्वात्। इस कारण द्विज शूद्रके पात्रमें पका हुआ अन्न कदापि न खावे। तीन दिन तक यदि अन्न न मिले-तब प्राणरक्षार्थ-एक बार भोजनके योग्य कच्चा "अन्न" अन्न ले लेवे। यह मनुकी आज्ञा है। इसी कारण महाभारत-वनपर्व-अध्याय २०६ पद्य १८ में इस प्रकारका एक आख्यान मिलता है। दस्यु अथवा दाससे भी आपत्कालमें-केवल प्राण रक्षार्थ "आप" अन्न ग्रहण करना-महाभारत शांतिपर्व अ० १६ पद्य २० से २४ तकमें भी मिलता है। परन्तु आपत्कालके अतिरिक्त कालमें शूद्रान्न लेना सर्वथा निन्द्य है। आपत्काल-भुक्त शूद्रान्नका प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये यह बात भी धर्मशास्त्रानुमत है। इसी कारण ब्राह्मणगण इस प्रकारके अन्न ग्रहण करनेमें सङ्कोच करते हैं। इतिहासमें जहां कहींपर इस प्रकारके ऐतिह्य मिलते हैं, वहां सर्वत्र ही पूर्वापर प्रसंग देखनेसे यही बात सिद्ध होती है। वेदके मुकाबिलेपर इतिहासका प्रमाण कमजोर है इसीकारण इतिहासप्रसिद्ध विषयोंके विषयमें—

रामादिवत्प्रवर्तितव्यम १
न रावणादिवत् २

ऐसा नियम है। श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास इन चारोंमें प्राधान्य वेदका है। वेद विरुद्ध सब कुछ उपादेय है। वेद विरुद्ध कुछ भी उपा-[illegible]

किसी [illegible]
निषेध यदी [illegible]
न करना भी "[illegible]" [illegible]

यह [illegible] किया है। हमने प्रस्तुत विषयोंमें निबन्धके अन्दर वेदमन्त्रोंका उल्लेख किया है। उनपर विचार करना विद्वानोंका काम है।

कुछ मनुष्य यह भी प्रश्न करते हैं कि—"वेदमें तर्क करना चाहिये अथवा नहीं?" इस प्रश्नके उत्तरमें हमारा वक्तव्य यह है कि तर्कको प्राचीन मुनियोंने अच्छा नहीं माना है। व्यासजी तर्कके विषयमें महाभारतके अन्दर कहते हैं कि "तर्कोऽप्रतिष्ठः" इसीका अनुमोदन "तर्काप्रतिष्ठानात्" यह सूत्र भी कहता है-

नैषा तर्केणमतिरापनेया-

इन शब्दोंमें श्रुतियां तर्कका विरोध करती हैं इसलिये "अप्रतर्क्य" विषयमें तर्क करना शिष्टानुमत नहीं है। जिस विषयको प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते उसको वेद सिद्ध करता है। इसीलिये वेदके विषयमें—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा
यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन
तस्माद्वेदस्य वेदता ॥

ऐसा अभियुक्तोंका मत है पुनर्जन्म स्वर्गादि लोक मतस्थिति, ईश्वरका अस्तित्व, मृतपितृक श्राद्ध, आदि विषय मनुष्यदृष्ट नहीं हैं। इन अलौकिक विषयोंका प्रतिपादन करनेके लिये ही श्रीसायणाचार्यने ऋग्वेदकी भूमिकामें—

अलौकिकार्थप्रतिपादको वेदः-

ऐसा वेदका लक्षण किया है। यह वेदका "तटस्थ" लक्षण है। वेदका स्वरूप लक्षण-"मंत्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः" ऐसा अनेक मुनिमतानुमोदित है। कात्यायन अपने "प्रतिज्ञा सूत्र" में (मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम) ऐसा वेदका लक्षण करते हैं। शाखा प्रशाखा भेदसे वेद ११३१ शाखाओंमें विभक्त है-ऐसा महाभाष्यमें पतञ्जलि मानते हैं। "अनन्ता वै वेदाः" यह श्रुतिवाक्य वेदोंके अनन्त्यमें अकाट्य प्रमाण है; इसलिये वेदके स्वरूपमें श्रद्धा और विश्वासके साथ तर्क न करना ही सर्वत्र सिद्धान्त है। मनुने—

आर्षं धर्मोपदेशं च
वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते
स धर्मं वेद नेतरः ॥
१२।१०६

इस पद्यमें जो तर्कको-प्रामाण्य कोटिमें स्थान दिया है-वह केवल पूर्व लक्षण मात्र है। उसमें भी "वेदशास्त्राविरोधी" तर्कको ही स्थान दिया है-विरुद्ध तर्कको नहीं। केवल तर्कवाद मनुके मतमें मान्य नहीं है इसी कारण-सिद्धांत पक्षमें उन्होंने—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो,
धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये,
ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ।२।१०

ऐसा लिखा है। इस पद्यमें "अमीमांसस्य" पद वेदके विषयमें तर्कका सर्वथा निषेध करता है। तर्क प्रधान मीमांसा अन्यतर्कके विषयमें नहीं चल सकती है। थोड़ीसी देरके लिये यदि तर्कको "दुर्जन-तोषन्याय" से प्रमाण मान भी लिया जावे तो संसारमें कोई भी पुत्र अपने पिताको तर्कसे सिद्ध नहीं कर सकता है। क्योंकि पुत्रके लिये गर्भाधानका समय प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। यदि कहो कि हम अनुमानसे अपने पिताको मानते हैं-तो अनुमान-प्रत्यक्ष पूर्वक होनेपर ही माननीय होता है-अन्यथा नहीं। इस कारण-माताके कथनपर विश्वास करके ही अपने पिताका निर्णय करना पड़ता है। माताका कथन शब्द प्रमाण-मात्र है-अन्य कुछ नहीं। इसलिये हमारे मतमें तर्क प्रमाण मान्य नहीं है। केवल शब्द

... मनुष्य यह भी पूछा करते हैं ... इसमें "तपसे शूद्रम्" इस पदके ... पर भी शूद्रका तप करनेके ... क्यों माना जाता है? इस ... के उत्तरमें हमारा कहना यही ... है कि—"तप" शब्दका अर्थ ... के लिये भिन्न है। महाभारतमें ... के विषयमें "स्वधर्माचरणं तपः" ... लिखा है। अपने २ धर्मका अनुष्ठान करना प्रत्येकके लिये तप है। इसी लिये—

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं,
तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता,
तपः शूद्रस्य सेवनम्। ११।१३५

ऐसा मनुने लिखा है। ब्राह्मणके लिये ज्ञानोपार्जन करना तप है; क्षत्रियके लिये प्रजापालन करना तप है; वैश्यके लिये व्यापारके द्वारा धनोपार्जन करना तप है और शूद्रके लिये इन तीनोंकी सेवा करना तप है। धर्म रक्षाके लिये दुःख सहन करना तपका प्रधान अर्थ है। अपने धर्मके लिये कट मरना—मर मिटना सर्वोत्तम तप है। अपना जातीय धर्म छोड़कर विजातीय धर्मका ग्रहण करना तप नहीं है। शूद्रका जातीय धर्म सेवा करना है। सेवा करनेसे जन्मान्तरमें उसको उत्तम योनि प्राप्त हो सकती है।

शतं मे गर्दभाणां,
शतमूर्णावतीनाम्।
शतं दासा अति स्रजः। ऋ०।८।५६।३

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें शूद्रका दानादान प्रसङ्ग मिलता है। गदहे और भेड़ोंकी तरह वैदिक समयमें दास और दासियोंका भी आदान प्रदान होता था। इसी कारण मनुने सात प्रकारके दास कहे हैं। मनुमें उनके भेद इस प्रकार हैं।

ध्वजाहृतो भक्तदासो,
गृहजः क्रीतदत्त्रिमौ।
पैतृको दण्डदासश्च,
सप्तैते दासयोनयः। ८।४१५

संग्राममें जीता हुआ भोजन मात्रपर नियत—अपनी दासीका पुत्र मूल्यसे खरीदा हुआ—विवाहमें दहेज के साथ आया हुआ वंश परंपरागत—और ऋण अदा करनेके अर्थ स्वीकृत दास भाव; इतने प्रकारके दास होते हैं। भगवद्गीतामें परिचर्या करना शूद्रका स्वाभाविक कर्म कहा है। इस लिये शूद्रके लिये दास्य करना ही "तप" है।

कुछ मनुष्य यह भी प्रश्न करते हैं कि "पहिले एकही वर्ण था,—जाति भेद नहीं था,—वेद भी एकही था—उनके चार भेद नहीं थे" इत्यादि वह अपने प्रश्नका—मूल इस प्रकार उपस्थित करते हैं।

एक एव पुरा वेदः,
प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य,
एकोऽग्निर्वर्ण एव च।
देखो स्कन्ध ११ अध्याय १७
भागवत ९।१४।४८

न विशेषोस्ति वर्णानां,
सर्वं ब्राह्ममिदं जगत।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि,
कर्मभिर्वर्णतांगतम्।
महाशांति अ० १८८।१०

अमरेन्द्र! मयाऽबुध्या,
प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो।
एकवर्णाः समाभाषा,
एकरूपाश्च सर्वशः।
वाल्मी० उत्तर० सर्ग ३०। १९

इस प्रश्नके उत्तरमें हमारा वक्तव्य यह है कि—जिन ग्रन्थोंके ये वचन हैं—उनका पूर्वापर प्रसंग क्या है? पहिले इसका निर्णय होना चाहिये। इनके पूर्व प्रसंगमें—महाप्रलयका प्रकरण है। महाप्रलयमें वेद प्रणवरूपमें रहता है,—विष्णु "नारा" के अन्दर नारायण रूप रहते हैं,—अग्नि सूर्यादि रूपमें न रहकर—एक ईश्वरके रूपमें रहता है—और वर्ण "हंस" अव्यक्त रूपमें रहता है। इसके अनन्तर जब सृष्टि बनती है तब "यथा पूर्वमकल्पयत" के अनुसार—सब कार्यक्रम चलता है। वेदमें—अग्नि—हंस—मनु—आदि पद ईश्वरके लिये आते हैं।

तद्वाग्निस्तद्‌आदित्यः १
अहं मनुरभवं सूर्यश्च २
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसत ३

इत्यादि अनेक मन्त्र इस विषयमें प्रमाण हैं। महाभारतके पद्यमें—जो प्रसङ्ग है वह—आदि सृष्टिमें—मानसिक सर्गका समर्थन करता है,—मैथुनजन्य सृष्टिका उसमें वर्णन नहीं है। पद्य स्वयं कहता है—"सर्वमिदं जगत्—ब्राह्मं—ब्रह्मणा—पूर्वसृष्टत्वात्" दूसरी बात पद्यमें ध्यान देनेयोग्य "जगत" पद है। जगत सर्जन प्रकारमें—वर्ण सर्गका समावेश करना बुद्धिमांद्य है। पहिले पद्यमें 'पुरा' दूसरेमें "जगत्"—यह दोनों पद मानव सृष्टिसे सम्बन्ध नहीं रखते हैं। क्योंकि—

आत्मैवेदमग्र आसीत् १
ब्रह्मवाइदमग्र-आसीत् २
पुरुष एवेदं सर्वम् ३

इत्यादि श्रुतियोंमें—विविधसृष्टिसे पूर्व—एक मात्र ब्रह्मका ही अवस्थान वर्णित है। उसीसे सब कुछ बिम्ब प्रति बिम्बभावसे उद्भूत होता है। नाम रूपात्मक भेद—मायाका कार्य है। ब्राह्मणादि जाति भेद करना—मायाका स्थूल रूप है। महाप्रलयमें यह कुछ नहीं रहता है। अब रहा तीसरा उत्तर काण्डका पद्य! उसके अग्रिम पद्य यह है—

ततोहमेकाग्रमनास्ताः
प्रजाः समानसयम्। २०
सोऽहं तासां विशेषार्थ
स्त्रियमेकां विनिर्ममे।
पश्चात्प्रजानां प्रत्यङ्ग
विशिष्टं तत्तदुद्धृतम्। २१
ततो मया रूपगुण—
रहल्या स्त्री विनिर्मिता। २२

इत्यादि। उस प्रकरणमें—ब्रह्मा इन्द्रसे कहता है कि मैंने पहिले (अबुध्या) अपनी गलतीसे "तथा" वैसी प्रजा बना चुका जो सब रूप रंग और अवस्थामें एकसी है। ब्रह्माकी ऐसी प्रजा—सर्वदा एकरूपमें रहनेवाली—"बालखिल्य" ऋषि हैं जो सनक—सनन्दन—सनातन—सनत्कुमार नामसे विख्यात हैं। यह ब्रह्माकी मानसी अमैथुनी सृष्टि है। इन्होंने पिताकी आज्ञा नहीं मानी। तब ब्रह्माने "एकाग्रमन" होकर—मैथुनी सृष्टिको प्रवृत्त करनेके लिये एक स्त्री उत्पन्न की। उसके सहयोगसे प्रजाका भिन्न भिन्न अंग प्रकट किया। इस प्रसंगमें कहींपर भी मैथुनी सृष्टिका वर्णन नहीं है। "भानवतीका कुनवा जोड़ना" और बात है—और ग्रन्थकी पूर्वापर संगती मिलाकर यथार्थ अर्थ करना और बात है। आज कलके प्रश्न कर्ता उन्मत्त होकर अपना पक्ष उपस्थित करते हैं। ग्रन्थका समग्र भाग देखनेपर—इस प्रकारके प्रश्न—अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

कुछ मनुष्य "मनुष्यश्चैकविधः" इस सांख्यके पक्षको लेकर मनुष्य जातिको एक मानते हुए कहते हैं कि इसमें अन्य जातियोंके समान "उपजातिभेद" नहीं मानना चाहिये? क्योंकि दो विरुद्ध जातिके योगसे भी हमको सृष्टिके विषयमें अन्तराय नहीं दीखता है इत्यादि।

इस प्रश्नके उत्तरमें हमारा वक्तव्य यह है कि संसारमें जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, अण्डज यह चार प्रकारकी महाजातियां विद्यमान हैं, इनमेंसे तीनमें भेद मानकर एकमें भेद न मानना इसमें आपके पासमें क्या प्रमाण है? विना प्रमाणके किसी विषयको उपस्थित करना उचित नहीं है। प्रमाण कोटिमें "उपमान" प्रमाण माना जाता है। उपमानकी प्रवृत्ति सब महाजातियोंमें एक सी है। ऐसी अवस्थामें तीनमें भेद मानना और [illegible] यह अनुपयुक्त है। आपका प्रश्नही ठीक नहीं है इसलिये "अप्रमप्राप्त मा[illegible]पातः" हो गया।

अण्डजोंमें आप भेद मानते हैं। मनुस्मृतिके प्रथमाध्यायमें "अण्डका" वर्णन है (तदण्डमभवद्धैमं ... तदण्डमकरोद्द्विधा) इत्यादि अनेक प्रमाण इस अण्डज सृष्टिके समर्थक हैं। इस प्रकार मनुके मतमें समस्त सृष्टि अण्डज है। अमरकोषमें ब्रह्माको भी "अण्डज" कहा है। अण्डजसे अण्डजका ही उद्भव होना चाहिये अंडजोंमें आप प्रत्यक्ष भेद देखते हैं इस कारण अंडज [illegible] जातिमें मानना अनिवार्य हो गया है।

यदि आप मनुष्य जातिको अंडज मानकर जरायुज (जरायु—जेरसे पैदा हुई) मानते हैं—तो उसका भेद पशुजाति भी है। समस्त पशु जरायुसे पैदा होते हैं। इसी कारण अथर्ववेदके—

तवेमे पञ्चपशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजाऽवयः।

इस मन्त्रमें पशुओंके साथ ही पुरुषको भी पशु माना है। यजुर्वेद "अबध्नन्पुरुषं पशुम्" इस मन्त्रके द्वारा अथर्वका समर्थन करता है। पशु जातिका पति एकमात्र ईश्वर है। इसलिये वेदमें ईश्वरको "पशुपति" कहा है। पशुओंमें भेद मानना ही पड़ता है। इस कारण जरायुज विभागमें एकत्र भेद मानना और अन्यत्र न मानना यह अन्याय है। इसका खण्डन आजन्म कोई नहीं कर सकता है। इसी कारण यह सिद्धान्त अकाट्य है।

जरायुजमें हम देखते हैं कि गर्दभ और अश्व दोनों भिन्न हैं। दोनोंमें प्रकृतिकी किञ्चिद्भिन्न किञ्चित्सदृश धारा विद्यमान है।

इसी कारण पशुत्वमें दोनोंका साम्य है। सादृश्य—तद्भिन्न—और तत्सदृशमें होता है। इतने पर भी—विचार करनेपर—दोनों एक नहीं हैं। पशुमहाजातिकी दोनों उपजातियां अलग अलग हैं,—महाप्रलय तक यह दोनों एक जातिमें परिणत नहीं हो सकती हैं। प्रकृति नियमके विरुद्ध दोनों मिलकर एक तीसरी उपजाति उत्पन्न करते हैं—जिसका नाम "खच्चर" है। उस उपजातिमें जाते ही दोनोंका स्रोत सर्वदाके लिये बन्द हो जाता है। क्योंकि लोकमें खच्चरसे खच्चर उत्पन्न नहीं होता है।

जरायुजका—दूसरा विभाग मनुष्य है। अन्य जातियोंके समान इसमें भी उपजाति भेद है। प्रथम भागमें भेद मान कर दूसरेमें न मानना प्रमाण विरुद्ध है। इसका कारण अनुमानसे भेद मानना ही होगा। लीजिये यहांपर एक अनुमान उपस्थित करते हैं।

मनुष्य जात्यन्तर्गता उपजातयो
विभिन्नाः। विभिन्नबीजोद्भवत्वात्।
वक्षोपजातिभेदवत्॥

इस अनुमानसे—प्रत्येक उपजाति भेद सिद्ध है। नैयायिकोंके मतमें "नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं जातित्वम्" यह जातिका लक्षण है। इस लक्षण पर विचार करनेसे यावन्मात्र जातिभेद नित्य ही सिद्ध होता है। मनुष्य महाजातिके एक मानने पर भी उसके अवान्तर [illegible] नहीं हैं यह किस प्रमाणसे सि[illegible] होता है। अवान्तर भेदका अस्ति[illegible] ऊपरके अनुमानसे सिद्ध ही [illegible] यदि आपके मतमें "समानप्रसव[illegible]त्मिका जातिः" यह जातिका लक्ष[illegible] मान्य है तो समानप्रसव—पशु [illegible] पक्षियोंमें भी दृष्टि गत होता [illegible] प्रसव करना योनिका कार्य [illegible] प्रसवके प्रति योनि मात्र कारण [illegible] एतावता मनुष्य—पशु—पक्षि [illegible] सब एक मानने पड़ेंगे। इनमें [illegible] प्रत्यक्ष भेद है यह सर्वथा अनि[illegible] [illegible] नहीं है। यदि आप—"आ[illegible] ग्रहणा जातिः" यह जातिका [illegible]

मानते हैं तो प्रत्येक जातिमें एक आकृति दूसरी आकृतिसे नहीं मिलती है। प्रकृति भेदसे कुछ न कुछ भेद अवश्य मानना ही होगा। इस कारण जाति भेद अनिवार्य है। इसका हटाना ईश्वरीय नियमका उल्लंघन करना है।

यदि "मनुष्यश्चैकविधः" इसके आधार पर आप मनुष्य जातिमें भेद नहीं मानते हैं—तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। एक ही जातिमें दो भेद विद्यमान हैं। स्तनकेशवती होना स्त्रीका लक्षण है और लोमश होना पुरुषका लक्षण है। इसी लिये

स्तनकेशवती स्त्री स्यात,
लोमशः पुरुषो मतः।
उभयोरन्यथाभावे,
नपुंसक उदाहृतः॥ ?

ऐसा कहा है। एक विधत्वका खण्डन तो एतावन्मात्रसे ही हो जाता है। विधा प्रकारः। विध शब्दका अर्थ ही—प्रकारतानिष्ठ भेदका द्योतक है। एक ही आहार—धर्मगत भेदके कारण पुरुषमें वीर्य और स्त्रीमें रज उत्पन्न करता है। दोनोंकी एकताका यह प्रत्यक्ष व्याघातिक दोष है। यदि वास्तवमें दोनोंके अन्दर जातिगत भेद न होता तो एक आहारके दो परिणाम ही न होते—या तो रज ही होता—या वीर्य ही होता? दोका होना ही एकविधता का विनाशक है—इस कारण "मनुष्यश्चैकविधः" यह सिद्धान्त ही गलत है। अब हम प्रकृतिका विचार करते हैं।

प्रकृति क्षेत्र है पुरुष बीज है। उत्तम क्षेत्रमें बीज उत्तम फल देता है यह स्वाभाविक नियम है। ऊषरमें जाकर उत्तम बीज भी नष्ट हो जाता है। जब प्रकृति—धारा—नियम विरुद्ध मार्गमें लगायी जाती है तब खच्चरके समान मनुष्योंमें भी नपुंसक किंपुरुष जन्म पाते हैं। नपुंसकसे फिर सृष्टिका होना असम्भव है। अब प्रश्न यह उठता है कि खच्चर—अथवा नपुंसक पैदा क्यों होता है?

इसका उत्तर यह है कि—प्रकृतिमें पड़े हुए बीजका कुछ न कुछ परिमाण तो होना ही है—इस लिये संकरीभूत क्षेत्रमें पड़कर—प्रकृतिका अंतिम विकृतरूप हमारे समक्ष खच्चर अथवा नपुंसकके रूपमें आकर उपस्थित होता है। उससे अगाड़ी वंश नहीं चल सकता है। गुण भेदसे क्षेत्रोंमें उत्तम मध्यमाधम भेद होते हैं। उनमें जिस स्वभावका जो क्षेत्र होगा उसी आकार प्रकार वाला फल उसमें लगेगा यही प्राकृतिक नियम है। इससे एक मानव जातिमें अनेक उपजाति भेदका होना अनिवार्य है। समास—व्यास—भेदसे—आचार्योंने इसका अनेक रूपसे वर्णन किया है। ईश्वर कृष्णने अपनी कारिकामें जो वर्णन किया है वह "समास" संक्षेपसे किया है। विस्तार पूर्वक उसका वर्णन यदि देखना हो तो यजुर्वेदका ३० अध्याय देखिये।

कुछ मनुष्य यह प्रश्न उपस्थित करते हैं कि—सनातन धर्मके [illegible]

[illegible]ध्वजोंका— [illegible]हो सकता [illegible]र धर्मने— [illegible]किया है— [illegible] हमारा [illegible]बड़ा—इन— [illegible]हार—इनके [illegible]। इनको [illegible]नेक बार— [illegible]ए हुए। [illegible]ने लान— [illegible]। दूसरा— [illegible]ा शासन [illegible]आपत्काल [illegible]स्यात है।

मन्दिर
अ
दे
(१)

इस समय भारतके शासनकी बागडोर जिनके हाथमें है उसने ऐसी विधि [illegible] किया है कि जिससे हिन्दु समाजके [illegible] भारी उत्ते[illegible] जना [illegible] मयाममें होनेवाली एकता

इन सब आघातोंसे इनकी यथाशक्ति अबतक इनको सुरक्षित रूपमें रख... सनातन [illegible] कारण [illegible] दोषका भागी [illegible]

दूसरा उपकार इनका पालन पोषण करना है सनातन धर्मी वैदिक इनको अपना समझकर-इनके-प्रत्येक कार्यमें सहायता देते हैं। ये हमारे देशमें हमारे घरतकको-काम पड़नेपर-आपसमें एक-दूसरेके यहां गिरवी रख देते [illegible] कितना बड़ा-हमारा [illegible] इनका पारस्परिक व्यवहार [illegible] विधर्मी बननेपर नहीं रह सकता है। हमारे यहां प्रत्येक कार्यमें इनका भाग अलग निकाला जाता है। यह इनके पोषणका प्रत्यक्ष उदाहरण है। हम अपने अन्नसे अन्न-और वस्त्रसे वस्त्र इनके लिये अलग निकालकर-रख देते हैं। समयपर-इनके उपस्थित न होनेपर भी-इनका भाग हम इनको दे देते हैं। मंदिरोंमें, भगवानकी सवारी निकालकर-इनको देव दर्शन कराते हैं। तीर्थोंमें इनको साथ ले जाते हैं। वहां जाकर इनका सब खर्च उठाते हैं। इनको जातीय चन्दोंमें हम यथा शक्ति सहायता देते हैं। हर तरहसे हम इनको अपना मानकर-व्यवहारमें भी अपनाते हैं। यदि सनातन धर्मी न रहकर ये लोग हमारे साथ न रहेंगे तो हमारा इनके साथ-उतनाही प्रयोजन रहेगा-जितना कि एक मुसलमान या ईसाईसे रहता है। यही सनातन धर्मका इनके प्रति उपकार है।

(निबन्धका उपसंहार)

वेदोंमें—अथवा वैदिक साहित्यमें अस्पृश्यताका कहांतक समर्थन मिलता है ? इसका दिग्दर्शनमात्र हमने इस निबन्धमें लिखा है। बुद्धिमानोंको स्थालीपुलाक न्यायसे इतना दिग्दर्शन कराना [illegible] यदि आवश्यकता प्रतीत होगी तो [illegible] इस निबन्धका दूसरा भाग भी सप्रमाण जनताके समक्षमें उपस्थित करेंगे। धर्मका मूल स्रोत वे दही। वेदोंमें ही पवित्रता रखनेका आदर्श मिलता है। जो महानुभाव वेदोंमें इस विषयका अभाव मानते हैं-उन्होंने गुरुमुखसे वेदोंका अध्ययन नहीं किया है, इस कारण उनको ऐसा कहनेका [illegible] हुआ है। हमारा यह नम्र निवेदन उनके समक्ष में है जो अनादि कालसे वेदोंको अपना धर्म पुस्तक मानते हैं। जिनका धर्म पुस्तक "कुरान" अथवा "बाइबिल" है उनके लिये हमारा यह कथन नहीं अन्तमें तो उनके लिये हमारा यह कथन नहीं है। अन्तमें हम उस जगदीश्वर जगदाधार जगदन्तर्यामी भगवानको बार बार प्रणाम करते हैं जिनकी प्रबल प्रेरणासे प्रेरित होकर हमने यह निबन्ध लिखा है, साथ ही हम इस निबन्धको भी उन्ही श्यामसुन्दर भगवानके चरण कमलोंमें समर्पित करते हैं। मंगलमय भगवान श्रीबालकृष्णजी महाराज सबका कल्याण कर और धर्मकी रक्षा करें यही उनके समक्षमें अन्तिम विनीत वक्तव्य है।

[illegible] विराट सभा [illegible] महामण्डलकी यह सम्मति है [illegible] भारतवर्षके, सब प्रान्तों, सब नगरों और सब देवमन्दिरोंमें इसी व्यवस्थाके अनुसार कार्य होना उचित है।

[illegible] (रायबहादुर),
प्रधानाध्यक्ष।

मन्दिर [illegible]

काशीवासी पण्डितोंकी प्रतिकूल व्यवस्था; महात्माजीका निर्णय।

काशीके विद्वान् पण्डितोंने शास्त्रीय प्रमाणादिसे पुष्ट इस विषय में जो व्यवस्था प्रकाशित की है उसका हिन्दीरूप इस प्रकार हैः—

जैसा कि पाषाण काष्ठ और मिट्टी आदि की देवप्रतिमाएं प्रतिष्ठाके विधानसे देवत्व प्राप्त करती हैं। लोकदृष्टिसे प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित देवमूर्तियोंमें कोई विशेषता दिखलाई नहीं देती, जिससे उनका पूज्यत्व और अपूज्यत्वका भेद माना जाय। इस अलौकिक विषयमें अलौकिक बाधा होना युक्तियुक्त ही है वह बाधा शास्त्रोंके द्वारा ही जानी जाती है। और वह पूजक पूजा सामग्री तथा पूज्यके विचारसे तीन प्रकार की है। वे तीन प्रकारकी बाधाएं चाण्डाल आदि अस्पृश्योंके देव मंदिर में प्रवेश करनेपर एक साथ ही घटित होती हैं। अछूत जातिके हिन्दू वर्णाश्रमी हिन्दुओंके अंगरूप ही हैं पृथ्वीभरमें एक आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य जातिको चिरंजीवी बनानेके लिये पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने वर्णाश्रमकी वैज्ञानिक शृंखला बांधी है जिसका अस्तित्व जन्मसे ही है। उसी श्रृङ्खला में अछूत हिन्दुओंका भी स्थान रखा गया है। जैसे मनुष्यके शरीरमें सब ज्ञानेन्द्रिय और सब कर्मेन्द्रिय अपने अधिकारके अनुसार परमावश्यकीय और सहायक हैं उसी प्रकार वर्णाश्रम शृङ्खलामें अछूत जाति भी आवश्यकीय और आदरणीय हैं। अछूत जातिकी सब प्रकारकी यथा योग्य उन्नति करना उसको अपना अंग समझना उसका आदर करना और कराना तथा उसके साथ प्रेमकी वृद्धि करना और कराना आवश्यकीय है।

किन्तु उन अस्पृश्योंके देवमन्दिर प्रवेश सम्बन्धमें विचार यह है कि पूर्व जन्मार्जित कर्मविपाकसे चण्डाल आदि पतित योनियोंका स्थूल शरीर जीवको मिलता है। इसी पातित्यके कारण उनके स्पर्शसे उन्नत अधिकारी ब्राह्मण आदिमें जिस प्रकार स्पर्श दोष हो सकता है, देव विग्रहमें उससे अधिक दोष आ जानेकी सम्भावना है, यदि उस पीठमें विभिन्न संस्कारसे पूजा होती है। पीठमें अधिदैव शक्तिकी प्रधानता रहती है, उस अधिदैव शक्तिकी सत्ता, पीठ स्थापन करनेवालेके संस्कारके अनुसार आविर्भूत होती है और वहांकी उपासना पद्धतिके अनुसार सुरक्षित रहती है। इसके विरुद्धाचरण करनेसे पीठ शक्ति ह्रासको प्राप्त होती है। यही कारण है कि, देवमूर्तिमें स्पर्श दोष हो जानेसे अभिषेक आदिसे उस पीठकी शुद्ध करनेको शास्त्रोंमें कहा है।

चाण्डाल, अन्त्यज, प्रतिलोमज म्लेच्छ, गुरु निन्दा आदिके दूषितोंको स्पर्श न करना चाहिये विशेषतया देव मंदिरमें तथा पूजा करनेके समयमें। चाण्डाल आदि अस्पृश्य जातियोंके देव मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार दिये जानेपर मंदिरमें आये हुए पूजा करनेवाले ब्राह्मण आदि उनके स्पर्शसे अशौचभागी हो जायँगे, ऐसी दशामें पूजा करने योग्य नहीं रह सकते हैं, क्योंकि, पवित्र होकर पूजा करना चाहिये, ऐसा वेदमें विधान है। इस विषय में भगवान मनुने भी कहा है। चाण्डाल आदि अस्पृश्य जाति, रजस्वला एवं प्रसूतिका स्त्री और जिन्हें अशौच लगा है तथा शवको स्पर्श करनेवालोंको स्पर्श करके स्नान [illegible] महर्षि आंगिराका भी कथन है कि "चाण्डालसे स्पर्श हो जाने पर स्नान करना चाहिये, फिर भी उन्हीं महर्षिका कथन है कि यदि चाण्डालकी छाया ब्राह्मण पर पड़ जाय तो वह स्नान और घृतपान करनेपर शुद्ध होता है, अनजानमें स्पर्श होने पर स्नान और जानकर स्पर्श करने पर स्नान और घृतपानसे शुद्धि होती है। महर्षि पराशरका कथन है कि चांडालके देखने पर सूर्यका दर्शन करना चाहिये और चांडालसे स्पर्श हो जाने पर सवस्त्र स्नान करना चाहिये। पराशरने और भी कहा है कि यदि चांडाल घर (गृह प्रांगण) के भीतर आ जाय तो उसको घरसे बाहर करके घरके सारे मिट्टीके बर्तनोंको अलग कर देना चाहिये। इन प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि मन्दिरमें प्रवेश किये हुए चांडालोंसे स्पर्श की हुई सामग्रियोंसे देवपूजन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार श्री पञ्चरात्रके चर्यापादमें लिखा है कि प्रतिलोमजोंमें गर्हित चाण्डालादिकों के द्वारा मंदिरके प्रथम आदि प्रांगणके भूतल स्पर्श हो जानेपर उनकी शांति करनी चाहिये और देवमूर्तिका सहस्र कलशोंसे अभिषेक कराना चाहिये।

"उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि, चाण्डाल आदि अस्पृश्य जातियोंके देव मंदिरके प्रांगणमें जानेसे उस देवमंदिरकी शांति और देव मूर्तियोंकी अभिषेक द्वारा पवित्रता सम्पादित करनी पड़ती है। इसलिये शास्त्रोंमें अछूत जातियोंके लिये देवदर्शनका फल स्तूप दर्शनसे ही हो जाता है, अतः इस समय प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको यह विचार करना परमावश्यक है कि जहां जिस मन्दिरकी जैसी मर्यादा चली आती है उसकी रक्षा की जाय, उसीके साथ इस समय यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि, देवमंदिरके प्रांगणसे बाहर जिस मन्दिरमें स्तूपदर्शन और मंदिर चूड़ादर्शनरूप देवदर्शनकी सुविधा हो सके, वहां चाण्डाल आदि जातियोंके लिये सुविधा कर देनी चाहिये। परन्तु धर्म और मर्यादाके विरुद्ध कोई कार्य न होना चाहिये।"

(२)

इस व्यवस्थापर हस्ताक्षर करने वाले पण्डितोंके नाम इस प्रकार हैं:—

"पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य महामहाध्यापक, त्यक्तमहामहोपाध्याय पदवीक। ताराचरण भट्टाचार्य पण्डितभूषण, वाइसप्रिंसिपल बीकानेर टीकमणि संस्कृत कालेज बनारस। योगेश्वर पाठक ज्यो०। वामाचरण भट्टाचार्य तर्कतीर्थ न्यायाचार्य प्रो०। पूर्णचन्द्राचार्य व्याकरणाचार्य वैयाकरण केसरी प्रोफे० बीकानेर राज्य टीकमणि संस्कृत का० बनारस, मे० बोर्ड आफ गवर्न० सं० का० इक्जामिनेशन बनारस। गेनालाल चौधरी ज्योतिषाचार्य। रघुनाथ शर्मा। नारायणदत्त शर्मा। गौतमजी ज्योतिषी। रामयश त्रिपाठी पण्डितरत्न व्याकरणाचार्य प्रोफ़० गोयनका संस्कृत कालेज। धनुर्धारी मिश्र। गोपीनाथ कविराज एम० ए० प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस। देवकीनन्दन शास्त्री दर्शनालङ्कार, महामहाध्यापक, प्रिंसपल टीकमणि संस्कृत कालेज, बनारस। रमलशास्त्री वर्णीमाधवजी। भगवत्प्रसाद शर्मा मिश्र वेदाचार्य। गोपाल शास्त्री नेने प्रो० गव० सं० [illegible] प्रो० गव० सं० का० बनारस। चन्द्रशेखर झा ज्योतिष साहित्याचार्य प्रो० गोयनका महाविद्यालय। मुकुन्द झा शास्त्री [illegible] भट्टाचार्य विद्याविभूति प्रो० मारवाड़ी संस्कृत विद्यालय। [illegible] प्रसाद शुक्ल महामहाध्यापक, प्रिंसिपल गौरीशंकर गोयनका महाविद्यालय भास्करानन्द पर्वतीय। त्रिभुवननाथ मिश्र व्या० सा० आचार्य। शिवबालक शुक्ल व्याकरणाचार्य। हरिनाथ शर्मा। चन्द्रशेखर शर्मा। शुकदेव चतुर्वेदी। पं० पुरुषोत्तमजी कर्मकाण्डी। गोपालकृष्ण ज्योतिषी। चन्द्रिकादत्त मिश्र व्याकरणाचार्य। अग्निहोत्री गंगाधर दीक्षित। अमरनाथ शास्त्री दीक्षित। व्रजभूषण मिश्र एम० ए० काव्यतीर्थ व्याख्यान रत्नाकर। बाबू नन्दमिश्र अग्निहोत्री। श्रीरामनाथ शुक्ल। कमलनयनाचार्य शास्त्री। गोपालभट्ट भट्ट प्रो० सांगवेदविद्यालय। रामाचार्य अ० सां० वे० वि०। शिवराम शास्त्री अ० सां० वे० वि०। हरिशङ्करजी अग्निहोत्री अ० सां० वे० वि०। लाभशङ्कर अथर्ववेदी अ० सां० वे० वि०। नीलकण्ठशास्त्री देवज्ञ अ० सां० वे० वि०। शिवमंगल द्विवेदी न्यायाचार्य। रमाशंकर वैद्यशास्त्री। जोखीराम अग्निहोत्री। विद्याधरशर्मा प्रिंसिपल धर्म विज्ञान विभाग ओरियंटल कालेज हि० यू०। हरिनारायणशर्मा प्रो० गवर्न० सं० का० बनारस। पद्माकर द्विवेदी प्रो० गवर्नमेंट कालेज बनारस। सूर्यनारायण शुक्ल न्याय व्याकरणाचार्य प्रो० गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस। महादेव शास्त्री प्रो० गवर्नमेण्ट संस्कृतकालेज बनारस। नारायण शास्त्री। भगवान्दत्त अग्निहोत्री। नरसिंहशर्मा। रामनिहोर द्विवेदी ज्योतिषाचार्य। गयादत्त व्यास। मधुसूदन भट्टाचार्य। व्रजविहारी शर्मा व्याकरणाचार्य। काशीनाथ शास्त्री। जगन्नाथ मालवीय। दुर्गादत्त त्रिपाठी। रामसुन्दर पाठक। राधाकान्त झा न्यायाचार्य। गोपीनाथ कविरत्न। गङ्गाधरशास्त्री भारद्वाज प्रोफे० क्वींसकालेज बनारस। महावीरप्रसाद त्रिपाठी अध्यक्ष श्रीविश्वनाथ मंदिर काशी। कमलकृष्ण भट्टाचार्य स्मृतितीर्थ महामहाध्यापक। चन्द्रमणि मिश्र व्याकरणतीर्थ। चतुरानन वैद्य। गो० शिवनाथ पुरी महन्त श्रीअन्नपूर्णा मंदिर काशी। गोपीचन्द्र सांख्यतीर्थ। सदानन्द भट्टाचार्य नैय्यायिक। रजनीकान्त भट्टाचार्य। शशिभूषण भट्टाचार्य स्मृतिरत्न। विजयानन्द त्रिपाठी। अनन्तरामशास्त्री प्रिंसपल रणवीरसंस्कृत पाठशाला हि० वि० वि०। पंचानन भट्टाचार्य। ढुंढिराजशास्त्री नैय्यायिक। दाऊजी दीक्षित। अवधेश शास्त्री। सीताराम शर्मा। गंगाविष्णु शास्त्री महामहोपदेशक, प्रधानाध्यापक उपदेशक महाविद्यालय भारतधर्म महामण्डल। अवधेशप्रसाद शास्त्री सहकारी सम्पादक-"सूर्योदय"। श्रीअन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि महामहाध्यापक म०म०प्रो० ओरियण्टल कालेज हि० वि० वि०, उपसभापति मंत्री सभा श्रीभारतधर्म-महामण्डल। शशिभूषण स्मृतितीर्थ महामहाध्यापक अध्यक्ष धर्मव्यवस्थाविभाग श्रीभारत धर्म महामण्डल। महावीरप्रसाद मिश्र तीर्थपुरोहित। मोतीराम शास्त्री पर्वतीय व्याकरणाचार्य। जयगोपाल चटर्जी। बोधनाथ भट्टाचार्य। रमावधि शर्मा व्याकरणाचार्य। अनन्तशास्त्री फड़के व्याकरणाचार्य मीमांसातीर्थ प्रो० गवर्नमेण्ट सं० का० बनारस।"

ऊपर प्रकाशित काशीकी शास्त्रीय-सर्व सम्मत व्यवस्था भारतवर्षके सब प्रान्तोंमें मानने योग्य है, यह व्यवस्था काशीके सुप्रसिद्ध "सूर्य" नामक पत्रमें प्रकाशित भी हो चुकी है और 'सूर्य' पत्रके सुयोग्य सम्पादक महोदयके विशेष उद्योगसे काशीके माननीय पण्डितोंकी

विनियोगोंकी उपेक्षासे अनर्थ

श्री पं० माधवाचार्य शास्त्रीद्वारा,

दयानन्द और उनके अनुयायियोंने विनियोगके चौथे अङ्ग (-जिसमें कि 'अमुक मन्त्रको अमुक अनुष्ठानमें बर्त्तना चाहिये' ऐसी शिक्षा दी गई थी-) का सर्वथा बहिष्कार कर डाला है और मन गढ़न्त प्रसङ्ग उपस्थित करके मन्त्रोंका अर्थ लिखा है। परन्तु इस उच्छृंखलताके कारण उक्त समाजकी बदौलत जो वैदिक साहित्यके अर्थका अनर्थ हुआ है वह भी किसीसे छिपा नहीं है। यदि हमारे कथनपर विश्वास न हो तो नीचे लिखे उदाहरणोंपर विचार कीजिये।

(१) दयानन्दी 'संस्कारविधि'में नामकरण संस्कारके अन्तर्गत नीचे लिखा 'कोऽसि कतमोऽसि' आदि मन्त्र आता है, इसका विनियोग उक्त पुस्तकमें 'पिता बालकके नासिका द्वारसे बाहर निकलते हुए वायुका स्पर्श करके'—कहनेमें लिखा है, और दयानन्दी यजुर्भाष्य (७।२९) में तथा संस्कारप्रकाश आदिमें इसका निम्नलिखित अर्थ लिखा है। यथाः—

कोऽसि कतमोऽसि
कस्याऽसि को नामासि।
(यजुः ७।२९)

अर्थात्—तू (कः) कौन (असि) है। (कतमः) बहुतोंके बीचमें कौन सा (असि) है (कस्य) किसका पुत्र (असि) है। तेरा (कः) क्या (नाम) नाम (असि) है।

यह विधि बालकके जन्म दिनसे ११ वें रोज, अथवा १०१ वे दिन करनी लिखी है, अब इन बुद्धिके शत्रुओंसे कोई पूछे कि वह सद्योजात दूधमुहा बच्चा उक्त प्रश्नोंका क्या उत्तर दे सकता है? तथा "वह किसका पुत्र है" इस प्रश्नका उत्तर तो कदाचित् उसकी माता ही ठीक ठीक दे सकती है। अन्यथा ग्यारहके झमेलेमें अन्य किसी पुरुषको क्या पता लग सकता है। यह है दयानन्दियोंके वैज्ञानिक भाष्यका एक नमूना।

वास्तवमें कात्यायन सूत्र—इस मन्त्रको यज्ञस्थ प्रजापतिरूप द्रोण कलशकी प्रार्थनामें विनियुक्त करता है। यथाः—

कोऽसीति द्रोणकलशमिति।
(का० ९।७।१४)

उव्वट महीधर आदि सभी भाष्यकारोंने विनियोगानुकूल ही इसका अर्थ किया है कि—

हे द्रोणकलश! तू (कः) प्रजापति (असि) है (कतमः) अतिशयसे प्रजापति (असि) है। (कस्य) प्रजापतिका ही तू (असि) है। (को नामाऽसि) प्रजापति ही तेरा नाम है।

यहां व्यासोक्त 'अभिमानिनि व्यपदेशस्तु' के अनुसार कलशाधिष्ठित चेतन प्रजापतिकी स्तुति की गई है, परन्तु दयानन्द और उसके अनुयायियोंने 'कः' शब्दका अर्थ-'संस्कृत टीचर'-पाठी बालकोंकी भांति 'कौन' ही समझ रक्खा है।

कहना न होगा कि, यदि इस मन्त्रके प्रजापति देवताका या द्रोणकलशकी प्रार्थनामें इसके विनियुक्त होनेका विचार करके भाष्य किया जाता तो पण्डित समाजमें इस तरह की हँसी न होती।

(२) इसी प्रकार यजुर्वेदके 'यथेमां वाचं' आदि मन्त्रसे दयानन्दी भाष्यमें शूद्र अतिशूद्र आदिके लिये भी वेद पढ़नेका अधिकार प्रकट किया गया है और ईश्वरको इसका वक्ता ठहराकर नीचे लिखा अर्थ किया है:—

यथेमां वाचं कल्याणी-
मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय
चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥
(यजुः २६।२)

(दयानन्दार्थ) परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीका (आवदानि) उपदेश करता हूँ। वैसे तुम भी करो। परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने (ब्रह्मराजन्याभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रिय (आर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादिके लिये भी वेदोंका प्रकाश किया है।

(सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ७४)

प्रसङ्ग विगाड़ कर उपर्युक्त अर्थ करनेमें जो चालाकी की गयी है वह उल्टी स्वामीके गलेका हार हो गयी है। केवल 'वाचम्' शब्द का अर्थ चारों वेद हो सकता है यह बात कोई पश्चम अन्यथा सिद्ध ही मान सकता है। इसके अतिरिक्त—'परमेश्वर स्वयं कहता कि हमने'—इस वाक्यांशके साथ-'अपने भृत्य वा स्त्रियादि……के लिये भी वेदोंका प्रकाश किया है'-इस उपसंहारात्मक वाक्यका समन्वय करनेपर निराकार बाबाके बीबी बच्चे और नौकर चाकर भी निकल पड़ते हैं।

वास्तवमें उपर्युक्त मन्त्र-सब भाष्यकारोंने यजमान उक्तिमें विनियुक्त किया है अग्निष्टोमादि यज्ञके समय यजमान अपने समस्त कार्यकर्ताओंको शिक्षा देता है कि जैसे मैं चारों वर्णों और अपनों तथा परायों-सबके प्रति मीठी वाणी बोलता हूँ इसी प्रकार तुझे भी सबसे नम्र व्यवहार रखना चाहिये। इस मन्त्रके उत्तरार्धमें वही वक्ता नीचे लिखे शब्द कहता है:—

(दयानन्दार्थ) (मा) मुझे (अदः) वह परोक्ष सुख (उपनमतु) प्राप्त होवे—क्या दयानन्दियोंका ईश्वर भी किसी दूसरेसे सुखकी भीख मांगता फिरता है?

यदि हम दयानन्द भाष्यमें विनियोग मर्यादाकी उपेक्षाके कारण होनेवाले अनर्थोंका भांडा फोड़ करने लगें तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार होजाय।

यदि विनियोग शून्य दयानन्दी भाष्यके सम्बन्धमें विद्वानोंका मत जाननेकी आवश्यकता हो तो सर्व प्रथम आर्यसमाजके नेता-किन्तु सत्यवक्ता-पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थसे ही पूछ देखिये आप लिखते हैं कि:—

(१) "इस (दयानन्द कृत) भाष्यको देखकर प्रायः अंग्रेजी पढ़े संशय सागरमें पड़ जाते हैं और इस अभिप्रायपर पहुँचते हैं कि वेदोंमें प्रकरणबद्ध कोई बात नहीं सब जगह केवल ईश्वरका ही वर्णन आता है क्रम कोई नहीं।"

(आर्य समाजका इतिहास भाग १ पृ० १९५)

भला! विनियोग शून्य अपक्व अर्थोंका पूर्वापर सम्बन्ध कैसे ठीक बैठ सकता है! और ऐसे निरर्गल भाष्यमें क्रमबद्ध प्रकरणोंका क्या काम!!

पूर्वोक्त 'यथेमां वाचम्' मन्त्रके दयानन्द कृत भाष्यपर भी उपर्युक्त वेदतीर्थजी लिखते हैं कि:-

(२) "इस बातके माननेमें हमें नितान्त संकोच है कि यह मन्त्र मनुष्य मात्रको वेदज्ञानाधिकार देनेका विधान करता है। वस्तुतः यह मन्त्र राजधर्म प्रकरणका है……इस मन्त्रका देवता 'ईश्वर' है। परन्तु 'ईश्वर' से यहां 'परमेश्वर' अभिप्रेत नहीं किन्तु 'राजा' अभिप्रेत है। प्रायः जहां 'ईश्वर' देवता आया है वहां 'राजा' ही लिया गया है। परमेश्वरके लिये 'परमेश्वर' साक्षात् आया है। अर्थात् 'परमेश्वर' देवता लिखा गया है।

यह राजधर्म प्रकरणका क्यों है? इस लिये कि:-

(१) प्राचीन मन्त्र-द्रष्टाओंने इस मन्त्रका देवता राजा माना है।

(२) "राजाको देवता मान लेनेसे मन्त्रके पूर्वार्ध और उत्तरार्धके अर्थमें विरोध नहीं आता।"

(आर्य स० का इति० भाग १ पृ० १२२-२३)

मार्गशीर्षका शास्त्रीय विवाह।

(ले०-नीमचनिवासी पं० भवानीशंकर शर्मा मारवाड़ी चण्डू पश्चांगकर्ता)

श्रीवेंकटेश्वर समाचारके कार्तिक कृष्ण १४ के अंकमें पं० धन्नूलाल शर्माजीने मार्गशीर्ष महीनेके लग्नोंको अशास्त्रीय अधर्म संगत लिखा है और प्रमाणमें "अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्। व्रतोद्वाहादि चूडायामष्टाविंशति वासरान्॥" लिखके अतिचार दोष बताया है एवं मारवाड़ी पश्चांगोंको अशुद्ध बतलाकर उनके कर्ताओंसे मन्तव्य प्रकाशनार्थ अनुरोध किया है अतएव हम अपना मन्तव्य उद्धृत करते हैं।

पं० धन्नूलालजीने मुहूर्त चिन्तामणिके शुभाशुभ प्रकरणका पद्य ४८ की टीकाके श्लोकमेंसे यह लिखा है "वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्। व्रतोद्वाहादि चूडायामष्टाविंशति वासरान्" मिताक्षरामें इस पद्यके आगे इस दोषका अपवाद "त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः। यदा तदा प्राह शुभं विलग्नं हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः॥" लिखा है इसका भावार्थ यह है कि यदि कन्याको गुरु अपूज्य अर्थात् कन्याकी राशिसे ५।९।७।२।११ इतने स्थानमें होय तो गुरुके वक्रातिचारका दोष नहीं होता। इसी प्रकार लल्लाचार्य्यने भी कहा है "प्रविपिद्धोनोद्वाहो वक्रिणि जीवे तथातिचारगते। गोचरबलं प्रधानं लग्नं च पराशरः प्राह" पुनः इसी प्रकार दैवज्ञ गणपतिने लिखा है कि "त्रिकोणद्व्यायसंस्थे तु जीवे वक्रातिचारगे न। दोषस्तत्र विज्ञेयः कुर्यादुद्वाहनादिकम्" इत्यादि पूर्वाचार्य्य लिखित वचनोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यदि कन्याको गोचरमें गुरु श्रेष्ठ होवे तो वक्रातिचारका दोष अशेष हो जाता है। पंडितजीका "अष्टाविंशतिवासरान्" का प्रमाण इसके आगे ठहरता नहीं।

एतेऽपि तद्देशविशेषा अतस्तु आचार्येणोक्तसिंहराशिस्थदोषो जाह्नवीगोदवारी मध्यदेशादन्यत्रनास्त्येव परन्तु यत्र देशे सर्वजनवृद्धव्यवहारेण वर्जंते तद्देशे वर्जित एव एवमन्येषां वक्ष्यमाणानां दोषाणामपि देशकुलाचारतो व्यवस्था ज्ञेया।

अतः सदासे वक्रातिचार दोष मारवाड़ी पश्चांगकार नहीं मानते कई शताब्दियोंके गत मारवाड़ी पश्चांगको आप देखिये। पूर्वोक्त प्रमाण और मारवाड़ प्रदेशके देशाचार व्यवहारको मानव पश्चांगके कर्त्ता पं० मनीरामजीने भी सदासे मनन करके श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमें छपे सं० १९८९ के निज पश्चांगमें मार्गशीर्ष महीनेमें लग्न लिखे हैं।

इसी प्रकार मारवाड़ी पश्चांगकर्ता सिंहस्थ गुरुको समस्त राशिमें विवाह नहीं लिखते मेषके सूर्य ही तक लिखते हैं "मघादि पंचपादेषु" इस वचनको नहीं मानते और जो कोई मानते हैं उनको मार्गशीर्ष शु० २ व ९ के लग्नोंमें दोष नहीं है कारण मघाके पांच पाद निवृत्ति हो चुके हैं और भी मारवाड़ी पश्चांग कर्त्ता गुर्वादित्य (गुरु आदित्यदक) दोष अखिल राशि गत नहीं मानते सिर्फ कालांशागत मानते हैं एवं गुर्वादित्य (गुरु राशि ९।१२ पं आदित्य राशि ५ में गुरु) इस दोषको निःशेष मानते हैं एवं गुरु सितके बाल वृद्धमें "दिवसदशक" नहीं मानकर सिर्फ ३ ही दिन मनन करते हैं। पं० धन्नूलालजीको इस विशिष्ट बातोंपर जरा ध्यान देकर लेखनी उठानी थी उक्त प्रमाणको मनन कर सदा शिष्टा चारेण मारवाड़ी पश्चांग कर्त्ताओंने मार्गशीर्षमें लग्न लिखी हैं उन्हें अनिष्ट अधर्म कहना कहांतक संगत है आपने नाहक खेड़ियाजीको संकटमें डाल दिया है मुझे महान् आश्चर्य होता है कि कलकत्ते ऐसे विराट शहरमें ४० विद्वान् एकत्रित होकर इस मामूली प्रकणरका प्रमाण नहीं बतला सके यह असम्भव है जरूर बतलाया होगा मुझे अनुमान होता है कि पं० जीने पक्षपात किया हो आशा है कि उपर्युक्त प्रमाणको पंडितजी महाराज मनन करेंगे और मार्गशीर्षके लग्नोंको धर्म शास्त्रके विरुद्ध (अशास्त्रीय) कदापि नहीं समझेंगे।

क्या पुराण व्यास कृत नहीं है ?

लेखक श्री माधवाचार्य

2-12-32

आक्षेप—महाभारत (शांतिपर्व, अध्याय ३३२ या ३३३) से विदित होता है कि [illegible] शुकदेवजी परीक्षितके [illegible] जो पूर्व मर चुके थे फिर महाभारत युद्धसे ९६ वर्ष बाद परीक्षितको शुकदेवका भागवत सुनाना कैसे सम्भव हो सकता है ? परन्तु वर्तमान भागवत पुराणमें ऐसा उल्लेख है अतः परस्पर विरुद्ध दो बातोंके आजानसे महाभारतका निर्माता व्यास उक्त पुराणका लेखक नहीं हो सकता।

समाधान— प्रतिवादीने महाभारतके जिन अध्यायोंके प्रमाणसे श्रीशुकदेवजीके [illegible] मर चुके थे, लिखनेकी [illegible] है वास्तवमें इन अध्यायोंमें शुकदेवजीका सदेह ब्रह्मभूत हो जाना लिखा है। बात यह है कि जब योगी परमहंस दशामें आजाया करता है तो उसका पांचभौतिक शरीर भी दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हो जाया करता है, फिर वह जहां चाहे, जिस लोकमें चाहे, जा सकता है, सूर्य चन्द्र ध्रुव आदि दूरवर्ती लोकोंमें वह अव्याहत गति हो जाता है, परकायप्रवेश, अनेक रूप बना लेना, [illegible] और [illegible] [illegible] आन देना, इत्यादि सिद्धियें स्वभावतः उसके चरणोंमें आगिरती हैं, योगदर्शनके विभूति पादमें उक्त समस्त सिद्धियोंका कार्य कारण पूर्वक विशद विवेचन किया है, परन्तु प्रत्यक्षवादी दयानन्दियोंको वेदोंसे भी बढ़ कर 'दादावाक्य' प्रमाण है; एतदर्थ हम दयानन्दजीके शब्दोंमें ही इस रहस्यका निरूपण करना आवश्यक समझते हैं। दयानन्दी यजुर्वेद भाष्यमें लिखा है कि:—

(क) हे मनुष्यो ! जैसे किये हुवे योगके अनुष्ठान समय सिद्ध अर्थात् धारणा ध्यान और समाधिमें परिपूर्ण मैं पृथिवीके बीच आकाशको चढ़जाऊं, या आकाशसे प्रकाशमान सूर्य लोकको चढ़जाऊं, या सुख करने हारे प्रकाशमान इस सूर्यलोकके समीपसे अत्यन्त सुख और ज्ञानके प्रकाशको मैं प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो।

(यजुर्वेदभाष्य १७।६७)

(ख) जब मनुष्य अपने आत्माके साथ परमात्माके योगको प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती हैं उसके पीछे कहींसे न रुकनेवाली गतिसे अभीष्ट स्थानोंको जा सकता है, अन्यथा नहीं।

(यजुर्वेदभाष्य (भावार्थ) १७।६७)

(ग) जो अच्छे पण्डित योगी जन योगाभ्यासके पूर्ण नियम करते हुवेके समान अत्यन्त सुखकी अपेक्षा करते हैं वा आकाश और पृथिवीको चढ़ जाते हैं अर्थात् लोकान्तरोंमें इच्छापूर्वक चले जाते हैं।

(यजुर्वेद भाष्य १७।६८)

(घ) जो योगी पुरुष तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि योगके साधनोंसे योग (धारणा ध्यान समाधिरूप संयम) के बलको प्राप्त हो और अनेक प्राणियोंके शरीरोंमें प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अङ्गोंसे देखने आदि कार्योंको कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनोंका स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगोंको अवश्य सेवन करना चाहिये।

(यजुर्वेद भाष्य [भावार्थ] १७।७१)

(ङ) पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थे।
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ॥
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥
(श्वेताश्वतर २। १२)

अर्थात्—[दयानन्द शिष्य-पं० श्रीभीमसेनशर्मांकृतभाष्य] अर्थात् शरीरस्थ पृथिवी जल तेज वायु और आकाश रूप पञ्च तत्त्वोंके निकृष्ट मलिनांशका नाश होनेपर शुद्धांशकी प्रबलता वा उन्नति होनेसे इस प्रकार दिव्य गन्धादि विषयोंमें प्रकृष्ट साक्षात् प्रवृत्ति होनेपर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अति दूरके शब्दादि विषयोंका साक्षात् बोध होनेकी शक्ति प्रकट होने पर पंचतत्वकी शुद्धि द्वारा योगाग्निरूप शरीरको प्राप्त हुए योगी पुरुषको न रोग न निर्बलता, न मृत्यु सताता है। (भावार्थ—योगीका शरीर सहस्र वर्ष ठहरने वाला अविनाशी हो जाता है)।

(श्वेताश्वतर भाष्य २।१२)

इस प्रकार आदिमें चार प्रमाण स्वयं दयानन्दजीके भाष्यसे उद्धृत किये हैं, तथा अंतिम प्रमाण उपनिषद् और उसके भाष्यसे उतारा है, यह उपनिषद् भाष्य पं० भीमसेनजीने उस समय रचा था जब कि आप दयानन्द शिष्य होनेमें अपना गौरव समझते थे अतएव भाष्यके आवरण पृष्ठपर ही आपने अपने नामके साथ 'दयानन्द शिष्य' ऐसा लिखा है। उक्त प्रमाणोंकी विद्यमानतामें कोई भी समाजी योगसिद्धियोंके चमत्कारोंमें 'असंभव' 'नामुमकिन' का अड़ङ्गा नहीं लगा सकता। सो महाभारतमें भी शुकदेवजी महाराजका सदेह लोकान्तरचारी हो जाना ही लिखा है। यथा:—

शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं
कृत्वान्तरिक्षगाम् ।
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं
ब्रह्मभूतोभवत्तदा ॥
(महाभारत, शांति. २३३)

अर्थात्—शुकदेवजी वायुसे भी ऊंची, अन्तरिक्षमें चल सकनेवाली गतिको बनाकर अपना प्रभाव दिखाते हुए 'ब्रह्मभाव' को प्राप्त हो गये। वेद-जिन योगि जनोंको ब्रह्मत्व प्राप्तकर लेनेपर 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' 'अमृतास्ते भवन्ति' आदि वाक्यों द्वारा अमर सिद्ध करता है। महाशयजी उसी 'योग-प्रभाव-जनित लोकान्तर-गमन सिद्धिको 'मरना' कह रहे हैं।

यदि प्रतिवादी श्रीमद्भागवत पुराणवर्णित शुकदेवजीके आगमनको एक बार भी अपनी आंखों देख लेते तो इस प्रकारका अविवेक पूर्ण आक्षेप करनेको उद्यत न होते।

जिस समय महाराजा परीक्षित प्रायोपवेशन व्रत धारण किये गङ्गा तटपर बैठे थे उस समय श्रीशुकदेवजी आये उनका कैसा स्वरूप था सो निम्नलिखित श्लोकोंमें वर्णन किया गया है। यथा:—

तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो,
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो,
वृतश्च बालैरवधूतवेषः।
तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपाद-
करोरुबाहुंसकपोलगात्रम् ।
(श्री० भा० १।१९।२५-२६)

अर्थात्—इसी अवसरमें निष्काम विचरते हुए, अलक्षित शरीरवाले आत्म-सन्तुष्ट, अवधूत वेषधारी व्यास पुत्र शुकदेवजी आये जो सोलह वर्षके बालक विदित होते थे उनके चरण, कर, ऊरु, भुजा, सुकोमल कपोल एवं सर्व अंग परम मनोहर थे।

शुकदेवजीको देखकर सब ऋषिमुनि अपने अपने आसनोंसे उठे तथा राजाने शुकदेवजीका पूजन करके कहा कि मालूम होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ही मुझपर प्रसन्न हो गये हैं क्योंकि—

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं
नः कथं नृणाम् ।

अर्थात्—यदि ऐसा न होता तो जिनकी गति (चलना फिरना) अव्यक्त (अलक्ष्य नहीं) उन आप जैसे महर्षियोंके [illegible]

उपर्युक्त श्लोकोंमें 'अलक्ष्यलिङ्ग' और 'अव्यक्त गतेः' आदि विशेषणोंसे शुकदेवजीको पांचभौतिक शरीरधारी मनुष्योंसे विलक्षण, दिव्य देहसम्पन्न कहा है, योगी लोग स्वेच्छासे मुमुक्षु जनोंके हितार्थ दर्शन दिया करते हैं, वे सङ्कल्पमात्रसे जिस लोकमें जिस रूपमें जब जाना चाहें जा सकते हैं।

इस लिये दिव्यगुणोपेत, परमयोगी, शुकदेवजीका स्वेच्छासे लोकान्तचारी होनेके कारण राजा परीक्षितके प्रति श्री भागवतपुराण सुनाना सुसम्भव है और इस तरह महाभारत तथा भागवत लिखित एक वाक्यता होनेसे दोनों ही ग्रन्थ श्रीव्यासजीके बनाये हुए सिद्ध हैं।

आक्षेप—सब विद्वान मानते हैं कि अठारह पुराण महाभारतके बाद बनाये गये हैं क्योंकि पुराणोंमें तो महाभारतका नाम आता है परन्तु महाभारतमें पुराणोंका नाम नहीं आता इसलिये महाभारतका निर्माता पुराणोंका कर्ता सिद्ध नहीं होता।

समाधान—प्रतिवादीका यह आक्षेप बड़ा ही विचित्र है, ऐसा ज्ञान पड़ता है कि मानो महाशयजीने महाभारतको कभी आंखसे भी नहीं देखा, यदि ऐसा न होता तो वह कभी यह कहनेका साहस न करता कि महाभारतमें पुराणोंका नाम नहीं आता, यदि पाठक महाशयजीकी उक्तिकी सत्यता देखना चाहते हैं तो महाभारत पढ़ें, कमसे कम दर्जनों ऐसे प्रमाण वहां अङ्कित हैं कि जिनमें बार बार पुराणोंका नाम आता है, इसके अतिरिक्त महाभारतमें पुराणोंकी अष्टादश संख्याका उल्लेख एवं ब्राह्म आदि पुराणोंका सङ्केत भी स्पष्टतया मिलता है यथा:—

(क) अष्टादश पुराणानां
श्रवणाद्यत्फलं लभेत् ।
तत्फलं समवाप्नोति
वैष्णवो नात्र संशयः ।
(महाभारत स्वर्गारोहणाध्याय ६)

(ख) ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य
वर्तितव्यं विभूषता ।
(महाभारत अनुशासन १४३।५५)

यहां पहिले पद्यमें पुराणोंकी संख्या अठारह कही गई है और दूसरे पद्यमें उक्त कई अध्यायोंको उपलब्ध ब्रह्मपुराणसे ज्योंके त्यों उद्धृत करके उनको 'ब्राह्म मार्ग' के नामसे स्मरण किया।

यदि हम 'दुर्जनतोष' न्यायसे क्षणमात्रके लिये यह मान भी लें, कि 'महाभारतमें पुराणोंका नाम नहीं आता और अवश्य ही वे अठारहके अठारह ग्रन्थ महाभारतके पश्चात् निर्मित हुए हैं' तब भी पुराण अर्वाचीन हैं और व्यासकृत नहीं हैं यह कैसे सिद्ध हो जायगा ? क्योंकि प्रतिवादीके हेतुसे केवल यही बोध होता है कि अनेक ग्रन्थोंके कर्ताने अमुक ग्रन्थ प्रथम रचा और अमुक उसके पश्चात् जैसे दयानन्दने 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम रचा और 'संस्कार-विधि' उसके पश्चात् परन्तु दोनोंका कर्ता तो एक ही रहा न ? तथा कुछ दिन या कुछ वर्षोंके पूर्वापरसे एक ही कर्ताके रचे हुए दो ग्रन्थ—एक प्राचीन और दूसरा नवीन कैसे समझा जा सकता है यह भी हमारी समझमें नहीं आता ?

इसलिये प्रतिवादीका यह हेत्वाभास निरर्थक है जैसे पुराणोंमें महाभारतका नाम आता है इसी प्रकार महाभारतमें भी पुराणोंका नाम आता है, और श्रीवेदव्यासजीने अव्यवहित एक ही समयमें सर्व प्रथम वेद संहिताओंका फिर ब्राह्म आदि नवह पुराणोंका तत्पश्चात महाभारतका और सबसे पीछे भागवत पुराणका सङ्कलन किया है यह बात सची है परन्तु विषय व्यवस्थाके अनुसार वेदोंके चार, पुराणोंको अठारह और इतिहासको एक ग्रंथरूपमें निबद्ध [illegible] था यह स्वाभाविक है॥

आक्षेप—देवी भागवतमें लिखा है कि आर्यावर्तके एक राजाका पुत्र म्लेच्छ देश्यापर आसक्त हो गया—इससे साफ है कि—जब मुसलमान नहीं आये थे तब भारतमें मुसलमानी रण्डियां नहीं थीं, जब रण्डियां न थीं, तब उनपर कोई आसक्त भी कैसे हो सकता था—इसलिये देवी भागवत पुराण भारतमें—मुसलमानोंके आ जानेके बाद बना है व्यास कृत नहीं।

समाधान—इस आक्षेपका मूल केवल—देवी भागवतमें 'म्लेच्छ' शब्दका प्रयोग है और प्रतिवादीने म्लेच्छ शब्दका अर्थ समझा है मुहम्मद मतानुयायी मुसलमान ! हमें महाशयजीकी संस्कृत योग्यतापर दया आती है जिस व्यक्तिको शब्दार्थका भी बोध न हो दयानन्दी समाजमें उसे भी चतुर्वेद ज्ञाता ब्रह्मा समझा जा सकता है ! यदि म्लेच्छ शब्दके आ जानेसे पुराण व्यासोक्त नहीं हैं बल्कि आधुनिक हैं तो इसी तर्कके, आधारपर वेद भी कलके बने अवश्य सिद्ध हो जायंगे। क्योंकि वेदमें भी म्लेच्छ शब्द कई स्थानोंमें आया है यथा:—

(क) तस्मान्न ब्राह्मणो
म्लेच्छेदसुर्या हैषावाक् ।
(शतपथ ३।२।१।२४)

(ख) म्लेच्छो हवा यदपशब्दः
(पातञ्जल महाभाष्य १।१)

अर्थात्-(क) इस लिये ब्राह्मणको अस्पष्ट उच्चारण नहीं करना चाहिये क्योंकि अशुद्ध बोलना असुरोंकी वाणी है।

(ख) अपशब्द—अशुद्ध उच्चारणको म्लेच्छ कहते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि म्लेच्छ शब्दका अर्थ मुसलमान नहीं बल्कि असंस्कृत शब्दोंका उच्चारण करनेवाला व्यक्ति है, फिर चाहे वह किसी देश किसी जाति या किसी भी सम्प्रदायका क्यों न हो।

महाशयजीको विदित होना चाहिये कि संस्कृत भाषामें प्रत्येक शब्दका किसी न किसी धातु(Root) से सम्बन्ध अवश्य होता है अर्थात्—सभी शब्द किसी न किसी धातुसे ही उत्पन्न हुए होते हैं, सो म्लेच्छ शब्द भी 'म्लेच्छ अव्यक्त शब्दे' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है अस्पष्ट उच्चारण—अशुद्ध बोलना—गलत तलफ्फुज़ या (Wrong Pronunciation) महाभाष्यकार व्याकरणके पढ़नेका प्रयोजन बतलाते हुए आरम्भमें ही लिखते हैं कि—

ते असुरा हेलयो हेलय इति वदन्तः पराबभूवुः। तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः म्लेच्छामाभूमेत्यध्येयं व्याकरणम् ।

(महाभाष्य १। १)

अर्थात्—वे असुर हेलोहेलो (Halo Halo) ऐसा कहते हुए पराजित हो गये। इसलिये ब्राह्मणको कभी अस्पष्ट नहीं बोलना चाहिये, और नहीं अशुद्ध शब्दोंका उच्चारण करना चाहिये। अस्पष्ट और अशुद्ध उच्चारण ही म्लेच्छ है, हम म्लेच्छ न हों एतदर्थ व्याकरणको पढ़ना चाहिये।

इसलिये वेदादिकी भांति देवीभागवत पुराणमें भी म्लेच्छ शब्दका अर्थ अशुद्धभाषी है और इसमें ऐसी ही किसी शूद्रप्राय जातिकी वेश्याके ऊपर किसी राजकुमारकी आसक्तिका उल्लेख है, इससे उक्त पुराणके व्यास कर्तृत्वपर कुछ भी आक्षेप नहीं हो सकता।

आक्षेपमें लिखा है कि "नारदजी व्याकुल" अवस्थामें सनकादिकोंको मिले तब उन्होंने इस मलीनता होनेका कारण पूछा, तो उन्होंने कहा कि मैं पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरीके किनारे हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध तथा और तीर्थोंमें

कहीं भी मनके सन्तोषका करनेवाला कल्याण नहीं देखा, सम्पूर्ण आश्रम, तीर्थ, नदियां कुण्ड और देवताओंके स्थान मुसलमानोंसे भर गये हैं और अनेक स्थानोंको दुष्टोंने गिरा दिया है। जैसा कि:—

आश्रमा यवनैरुद्धा-
स्तीर्थानि सरितो ह्रदाः।
देवतायतनान्यत्र,
दुष्टैरुच्छेदितानि च ॥
(पद्म उत्तरखण्ड पृष्ठ १९२। ३५)

इतिहासोंके देखनेसे विदित होता है कि यह दशा भारतमें औरंगजेबके जमानेमें हुई थी अतः पद्म-पुराण इसके बाद बना, व्यासोक्त नहीं।

समाधान किसी भी कोशमें, किसी भी ग्रन्थमें-यवन शब्दका अर्थ मुहम्मद मतानुयायी मुसलमान नहीं लिखा है, हम मुहम्मद साहिबके जन्मसे भी हजारों वर्ष पूर्व बननेवाले आर्ष ग्रन्थोंमें 'यवन' शब्दका प्रयोग देखते हैं और यवन कहे जानेवाले लोगोंका विशेष परिचय पाते हैं, यथाः—

'यवनाल्लिप्याम्' (यवनानां लिपिः यवनानी)
(कात्यायनवार्तिक पाठ १०५)

यहां कात्यायन ऋषिने यवन शब्द भी समय लिखा [illegible]

(रघुवंश, [illegible])

अर्थात्-उस रघुने यवन देशकी स्त्रियोंके मुख पद्मोंसे उठनेवाली शराबकी गन्धको सहन नहीं किया। यानी-विलासी यवनोंको परास्त कर दिया।

और तो और हमारे लाल बुझक्कड़लालजीने अपने दादागुरु दयानन्दके वृथा पुष्ट किन्तु थोथे पोथे सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें समुल्लासको भी बांच डालनेका कष्ट नहीं किया-दयानन्दजीने भी तो वहां साफ लिखा है कि—

"यवन जिसको यूनान कह आये, और ईरानका शल्य आदि सब राजा राजसूय और महाभारतके युद्धमें आज्ञानुसार आये थे।"

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे जाना जाता है यवन शब्दका अर्थ मुहम्मद मतानुयायी मुसलमान नहीं बल्कि प्रसिद्ध यूनान देशवासी है, जैसे भारतवर्ष निवासी पुरुषोंको सदासे 'भारतीय' कहते हैं इसी भांति सन्निकटवर्ती यूनान देशके निवासियोंको 'यवन' कहा जाता है। प्राचीन इतिहास इस बातका साक्षी है कि यद्यपि कल्प तक भारतीय सम्राटोंका ही सर्वाधिपत्य रहा है, तथापि बीच बीचमें अन्यान्य देशवासियोंने भी भारतपर आक्रमण करनेमें कोई कसर बाकी न रक्खी थी। भगवती दुर्गाका योरुपीन विडालाक्षके साथ घोर घमसान युद्ध हुआ था प्रायः सबको विदित है। त्रेतायुगमें लवणासुरने मथुरापर हमला किया था, जिसके दमनके लिये भगवान् रामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको भेजा था, सत्ययुगमें कई बार दानव,

दैत्य, नाग आदि जातियोंका प्रभुत्व हो चुका है, इसी प्रकार कालयवनने भी अपने जीवनमें भारतीय नरेशोंको पर्याप्त तंग किया था। सो पद्मपुराणमें भी पूर्वकालीन यवन उत्पातोंको लक्ष्य करके ही 'आश्रमा यवनै रुद्धाः' आदि प्रसङ्ग वर्णित हुआ है इसमें सन्देह करनेका कारण ही क्या है? व्यासजीके समयसे पूर्व भी यवन लोग विद्यमान थे यह महाभारतके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है ऐसी दशामें पद्मपुराणके इस प्रसङ्गमें 'यवन' शब्दका अर्थ यूनान देशवासी न करके 'मुसलमान' करना अत्यन्त अनुचित है। व्यासजीके समयमें यूनान ईरान आदि देशोंमें धर्म-विप्लव मचा हुआ था इस बातका पता पारसियोंकी धर्मपुस्तक 'शातीर' से भी चलता है, उसमें लिखा है कि ईरान देशके राजा 'गस्तासप' ने एक भारी शास्त्रार्थका आयोजन किया था, जिसमें विदेशियोंकी तरफसे जरदस्त और भारतकी तरफसे व्यासजी वादी प्रतिवादी थे, अन्तमें व्यासजी ही इस शास्त्रार्थमें विजयी हुए थे, जिसका पता उक्त पुस्तककी नीचे लिखी पंक्तियोंसे चलता है यथाः—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज हिन्द आमद बस दाना कि अक्ल चुनां नेस्त।
(शातीर आयत १६२)

अर्थात्—व्यास नामका एक ब्राह्मण हिन्दुस्थानसे आया जो ऐसा दाना और बजुर्ग था कि अक्लमें उसके बराबर दूसरा कोई नहीं हो सकता।

इन सब कारणोंसे यह स्पष्ट है कि पद्मपुराणमें 'यवन' शब्दके उल्लेखसे और उनके प्रभुत्व वर्णनसे उक्त पुराणके व्यास कर्तृत्वपर कुछ भी आक्षेप नहीं आ सकता।

(यन्त्रस्थ ग्रन्थ 'पुराण दिग्दर्शन' से सङ्कलित)

उसके धूलि धूसर पांवमें अन्तर्हित हो गया, (इसी चरित्रका विस्तार 'वामन-पुराण' में किया गया है।)

ब्रह्माण्ड-पुराण—य आण्डकोशे भुवनं बिभर्ति। (तैत्तिरीय ३। १२)
अर्थात्—जो प्रजापति ब्रह्माण्डमें स्थित होकर भुवनकी रक्षा करता है (उसीकी महिमाका द्योतक 'ब्रह्माण्ड पुराण' है)।

इसी प्रकार अन्यान्य पुराणोंके भी साक्षात् नामोंको या तत्प्रतिपादित विशेष वृत्तान्तोंको वेदोंमेंसे निकाला जा सकता है। हम उपर्युक्त प्रमाणोंके सम्बन्धमें स्वयं कुछ न कहते हुए विज्ञ पाठकोंसे ही पूछना चाहते हैं कि दयानन्दी समाजकी अनुचित मांगका इससे बढ़कर और क्या उत्तर हो सकता है? जिस समाजका प्रवर्तक किसी पादरीके यह पूछने पर कि वेदोंमें 'तोप' का जिक्र नहीं मिलता, तो झटसे 'दुघुः शब्दः स्वरतो वणतो वा'''यथेन्द्रशत्रुः स्वर 'तोप' राधात्' पढ़कर—कानोंको फाड़ देने वाला धुंधु शब्द जिसका होता है, ऐसी भयङ्कर तोपसे राजाको अपने शत्रु मार डालने चाहियें—ऐसा अर्थ कर सकता है, तथा अध्यात्म-ज्ञानके भण्डार वेदोंमें तार, तोप, ट्राम, बिजलीका तुच्छतर भौतिक-विधान निकालनेके लिये समस्त ऋषि मुनियों एवं वेद भाष्यकारोंको अंगूठा दिखा सकता है—उसे और उसके समाजको—उनको ही आविष्कृत अर्थ-शैलीसे मूंहतोड़ जवाब देना पूरा इन्साफ़ है।

आशा है कि विज्ञ पाठक हमारे भावको समझकर उपर्युक्त प्रमाणोंका मनन करेंगे। (यन्त्रस्थ 'पुराण दिग्दर्शनसे।)

वेदोंमें अष्टादश पुराणोंके नाम।

समाजियोंको मुंहतोड़ जवाब।

[ले०—पं० माधवाचार्यजी शास्त्री, रिसर्च [illegible]।]

संकलन 12-2-1932

समाजियोंकी ओरसे कहा जाता है कि 'ब्राह्मण' ग्रन्थ मन्त्रोंका व्याख्यान हैं अतः वे वेद नहीं बल्कि पुराण होने चाहियें। यदि यह तर्क ठीक है तब तो सब मन्त्र भी अकेले ॐकारके व्याख्यान हैं, अतः वे भी वेद नहीं होने चाहियें। मन्त्रोंका व्याख्यानत्व और ओंकारका व्याख्येयत्व भलीभांति सिद्ध है। इसलिये जिस प्रकार प्रणवको व्याख्यानभूत समस्त मन्त्र-भाग वेद है इसी प्रकार मन्त्र भागका व्याख्यानभूत ब्राह्मण-भाग भी वेद ही हो सकता है, पुराण नहीं।

न कभी ब्राह्मण ग्रन्थोंकी 'पुराण' संज्ञा थी, और न कोई साक्षर भविष्यमें उन्हें 'पुराण' कहनेका साहस कर सकता है। वास्तवमें व्यास-कृत अष्टादश पुराणोंकी ही सदासे पुराण नामसे ख्याति चली आती है, तथा वेदादि शास्त्रोंमें भी उक्त अष्टादश ग्रन्थोंको लक्ष्य करके ही यत्र तत्र 'पुराण' शब्दका उल्लेख मिलता है, यह सर्वविदित बात है परन्तु कभी कभी दयानन्दी समाज की ओरसे पुराणोंका प्रामाण्य उड़ाने के लिये शास्त्रोक्त प्रमाण तथा युक्तियोंको छोड़कर हुज्जतबाजोंका भी आश्रय लिया जाया करता है, और 'डूबतेको तिनकेका सहारा' वाली लोकोक्तिके अनुसार इसी 'टांय टांय' के बल पर वे कुछ और देर तक किसी तरह सिसिकते रहना चाहा करते हैं।

प्रायः कह दिया करते हैं कि—'वेदादि शास्त्रोंमें 'पुराण' शब्द आ जानेसे वर्तमान अठारह पुराण थोड़े ही सिद्ध हो सकते हैं? यहां तो पुराण शब्दका अर्थ—'पुराण विद्या है यदि सामर्थ्य है तो वेदोंमें 'ब्रह्म पद्म-विष्णु-आदि—नाम दिखाओ' जिससे हम अनुमान कर सकें कि वास्तवमें, वेदादि ग्रन्थोंमें वर्तमान पुराणोंका उल्लेख है, इत्यादि……" यह है वह हुज्जत जिसके बल पर पुराणोंको उड़ानेकी कुचेष्टा की जाया करती है। यदि इन बुद्धिके हिमालयोंसे कोई पूछे कि यह पुराण-विद्या किस ग्रन्थमें वर्णित है? कुरानमें या बाईबिलमें? बस! जिस ग्रन्थमें यह पुराण-विद्या वर्णित है उसे ही हम 'पुराण' के नामसे पुकारते हैं। रहा अष्टादश—पुराणोंके नाम वेदमें दिखानेका प्रश्न—सो सूत्र ग्रंथों तकमें तो निर्विवाद 'भविष्यत् पुराणादि' का स्पष्ट नाम लिखा मिलता है, यह बात मि० एफ० ई० पार्जिटर आदि पाश्चात्य पंडितोंने भी एक स्वरसे स्वीकार की है, निःसंदेह सूत्र-काल वैदिक कालका अत्यन्त निकटवर्ती है। इतने पर भी यदि वेदोंमें ही पुराणोंके नाम देखनेका चाव है तो हम दयानन्दजीकी वेदोक्त तार विद्याकी तरह वेदोंमें भी अठारहों पुराणोंके नाम दिखा सकते हैं और पण्डित मण्डलमें आज जितना दयानन्द प्रदर्शित रेल, तार, बिजली आदिका वैदिकताका मूल्य है उससे भी अधिक हमारे चुने अष्टादश पुराणोंके नामोंका हो सकता है। लीजिये—आपकी रीति! आपकी नीति!! और आपकी ही तर्क प्रणाली!!! फिर वेदोंमें अठारह पुराणोंके नामोंका अभाव कैसा?

ब्रह्म-पुराण—(क) ब्रह्म जज्ञानं (यजुः १३। ३) (ख) ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम्। (बृहदारण्यक ६। ३। १८) अर्थात्—प्रथम पुराणका नाम ब्रह्म है, और उस अग्र्य पुराणको वे ऋषि लोग जानते हुए।

पद्म-पुराण—अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थुः। (ऋग्वेद १०—८२—६) अर्थात्—अजन्मा विष्णु भगवान्की नाभिमें एक अण्डरूप पद्म था, जिसमें समस्त भुवनोंकी स्थिति थी। सायणने यहां अण्डका उल्लेख किया है और पुराणोंमें इसी अण्डका पद्म रूपसे वर्णन किया गया है।

विष्णु पुराण—स (प्रजापतिः) यजुर्भिर्ऽधाविष्णुं (असृजत) (तैत्तिरीय २। ३। २। ४) अर्थात्—प्रजापति परमात्माने यजुर्वेद मूलक विष्णु पुराणको बनाया (यहां सर्जन रूप क्रियाके योगसे 'विष्णु शब्दका अर्थ, ग्रन्थ विशेष ही युक्तियुक्त है।)

अग्निपुराण—अग्निमें वाचिश्रितः (तैत्तिरीय ३। १०। ८। ४) अर्थ—अग्नि पुराण मेरी जिह्वा पर स्थित है, यानी कण्ठाग्र है।

दयानन्दी शैलीसे यहां अग्नि शब्द का अर्थ भौतिक अग्नि नहीं हो सकता क्योंकि वह किसीकी जिह्वा पर थोड़े ही ठहर सकता है, दूसरे निराकारकी जिह्वा भी नहीं हो सकती अतः यहां अग्नि शब्दका अर्थ अग्नि पुराण ही हो सकता है क्योंकि जिह्वा पर ग्रन्थ विशेषकी स्थिति ही सम्भव है।

भविष्य-पुराण—भविष्यत्प्रति चाहरत्। (तैत्तिरीय ३। १२। ६। ३)। अर्थ भविष्यत् पुराण (सृष्टि का) प्रत्याहरण करता हुआ यानी भविष्यत् पुराणमें उत्तरकालीन वर्णनोंसे सृष्टिके इतिहासका उपसंहार किया गया है।

गरुड-पुराण—तार्क्ष्यो वै पक्षतो राजेत्याह तस्य वयांसि विशः पुराणं वेद। (शतपथ १३। ४। ३। १३)। अर्थात्—पक्षियोंका राजा गरुड़ है और पक्षि ही उसकी प्रजा हैं, वह पुराणका ज्ञाता है।

कूर्म-पुराण—स यत्कूर्मो नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत। (शतपथ ७।५।१।५) अर्थात्—जो कूर्म नामक पुराण है, वह कूर्म रूपी परमात्मा द्वारा बनायी हुई सृष्टि का प्रतिपादक है।

मत्स्य पुराण—तस्य (मनोः) अवनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। (शतपथ १। ८। १। १—२)। अर्थात्—मनुजीके अवनेजन करते हुए एक मत्स्य अञ्जलिमें आ गया। इसी मत्स्यावतारका कथन किया हुआ पुराण (मत्स्य पुराण है)

वाराह-पुराण—वाराहेण पृथिवी संविदाना। (अथर्व १२। १। ४८) अर्थात्—वराहने पृथ्वीको प्रवृत्त किया (उक्त संवादको ही वाराह पुराण कहते हैं।)

वामन-पुराण—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। (ऋग्वेद १। २२। १७) अर्थात्—वामनावतारधारी विष्णुने इस ब्रह्माण्डको तीन चरणोंमें आक्रान्त कर पद धरे हैं और यह सब लोक

[शेष [illegible]-कालम १ में]

...पुरा अस्पृश्यता निवारण सम्मेलन

सभापति श्री भगवानदासजीका अभिभाषण

रविवार १ दिसम्बरको छपरेमें हुए अस्पृश्यता निवारण सम्मेलनके सभापति-पदसे ...श्री ... श्री भगवानदास जीने नीचे लिखा अभिभाषण पढ़ा—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ॐ॥

(आज) 19-12-32

...बन्धुबान्धव सज्जन,

...पुराणोंसे हम लोगोंको यह शिक्षा मिली है कि,

यं तु रक्षितुमिच्छन्ति न देवा पशुपालवत्।
बुद्धिमादाय रक्षन्ति सद्बुद्ध्या योजयन्ति तम् ॥

तथा,

यं तु हिंसितुमिच्छन्ति न देवा पशुमारवत्।
दंडमादाय हिंसन्ति, दुर्बुद्ध्या योजयन्ति तम् ॥

देवता जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने हाथमें स्वयं दंड लेकर, उसकी रक्षा ...नहीं करते, उसको सद्बुद्धि, उत्तम बुद्धि, देते हैं, जिसके बल वह आप अपनी भलाई सब ...की सहायतामें कर लेता है। वैसे ही, जिसको देवता हिंसा करना चाहते हैं उसको स्वयं ...हाथसे, कुंडेसे, नहीं मारते, उसकी बुद्धि बिगाड़ देते हैं, उसको दुर्बुद्धि देते हैं, जिससे ...आप अपना नाश कर डालता है।

भारत सैकड़ों वर्षसे नीचे गिरता ही चला जा रहा है, और इस अवनति अधो-...का मूलकारण आपसके भेदभाव, फूट, और वैरकी दुर्बुद्धि है—यह सबको अब ...सूझने लगा है। इसको सिद्ध करनेके लिये इतिहासकी उद्धरणी करके प्रमाण देनेकी ...आवश्यकता नहीं है। यदि यह दुर्बुद्धि पढ़ती ही जाती तो नाश भारत-जनताका निश्चयेन ...जाता। पर ऐसा जान पड़ता है कि अन्तरात्मा परमात्माको इस देश और इस जनता-...का नाश इष्ट नहीं है, प्रत्युत फिरसे इसको उन्नति, इसका उत्कर्ष, इष्ट है। क्योंकि साठ सत्तर ...से सद्बुद्धि देनेका यत्न कर रहा है।

वेदमें 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' की चर्चा है। यहाँ सहस्र शब्दका ...असंख्य है। भारतका जनसमुदाय द्वात्रिंशत्कोटिशीर्षा, बत्तीस करोर सिरवाला, ...पाद् पुरुष है। इनको सद्बुद्धि देनेका क्या उपाय है? तो सच्चे, अच्छे, सात्त्विक बुद्धि-...वाले, तपस्वी, विद्वान, निःस्वार्थी, अनुभवी, परार्थी, देशहितैषी, देशका भला चाहनेवाले ...नेता ही यह सद्बुद्धिरूप हैं। इधर साठ सत्तर वर्षसे भारतका भला चाहनेवाले ...नेताओंको इस देशमें उत्पन्न कर रहा है। यदि आप लोग सूक्ष्म दृष्टिसे देखेंगे तो ...आपको यही देख पड़ेगा कि जितना ही अधिक भेदभाव मिटानेका और एकता, ...सुहृदता, पढ़ानेका प्रयत्न जिसने किया उतना ही बड़ा और माननीय नेता वह हुआ। ...बारह पन्द्रह वर्षसे प्रधान नेताका स्थान और महात्माका पद भारतके हृदयने महात्मा ...गाँधीजीको दे रक्खा है। इसका हेतु यही है कि ये नितान्त सच्चे हृदयसे सबका मेल चाहते ...सच्चे अजातशत्रु हैं, किसीको अपना शत्रु नहीं समझते, न कोई इनको अपना शत्रु ...मानता है, भारतमें क्या सब पृथ्वीतलके रहनेवाले सब वर्गोंका, सब धर्म मज़हबवालोंका, ...और सौमनस्य च हते हैं, सबका भला मनाते हैं, इसके लिये दिनरात अन्तरात्मासे ...[illegible] और, बीच बीचमें अनशनरूप घोर तपस्या करते हैं। भीष्मने महा-...भारतमें कई बेर कहा है,

तपो नानशनात् परम्।
तपः परं त्वनशनान्नास्ति मे।

जिसने आहार त्यागा उसने सर्वस्व त्यागा। इससे बढ़कर तपस् हो नहीं सकता। ...ऐसे प्रधान नेताका मुख्य काम, उनकी इस सब घोर तपस्याका एकमात्र उद्देश्य,

यदि आप आँचाने तो यही जान पड़ेगा कि फूट बैर मिटाकर, भारतके परस्पर विवदमान कलहायमान वर्गोंमें, [illegible] भारतीय समाजके सब अंगोंमें, अर्थात् हिन्दू मुसलमान ईसाई सिख पारसी जैन बौद्ध आदिमें, हृदयकी एकता हो जाय, [illegible] भारी यत्न किया। और उसमें बहुत कृतार्थ भी हुए। पुरानी पुश्तपर चाहे प्रभाव कम पड़ा हो, पर तो भी पड़ा, और नयी पुश्तपर तो बहुत पड़ा है।

सच्चा महापुरुष वह है जिसके दर्शन स्पर्शनसे क्षुद्र पुरुष भी महापुरुष नहीं तो पुरुषार्थी पुरुष तो हो जायँ। सोनासे बहुत बढ़कर वह पारस पत्थर है जिसके परससे लोहा ताम्बा सीसा रांगा भी सोना हो जाय।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

जो महापुरुष अहिंसाके व्रतमें सच्चे प्रतिष्ठित परिनिष्ठित हो गये हैं, उनके चारो ओरकी हवामें ऐसा प्रभाव हो जाता है कि उनके पास जो आता है, यदि हिंस्र पशु भी हो, तो भी उसकी मनोवृत्ति बदल जाती है, और वह भी वैरभाव को त्याग देता है। सो महात्माजीने इस योगसूत्रको प्रत्यक्ष कर दिया है। जैसा शिष्ट सद्ज्ञानी तपस्वीके लिये मनुने लिखा है, 'श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः'। हजारों मनुष्य आज उनके अनुव्रत हो रहे हैं, तरह तरहकी तपस्याका अभ्यास कर रहे हैं, देशोन्नतिमें तत्पर हैं।

आचारेण शिक्षयति इति आचार्यः। जो अपने सदाचरण के उदाहरणसे दूसरोंको सदाचारकी शिक्षा दे वही सच्चा आचार्य। केवल मुखसे दूसरोंको उपदेश दे और आप न करे उसको कोई नहीं मानता प्रत्युत झूठा जानता है। ऐसी सच्ची तपस्याके ही बलसे, भारत-माताके चिरकालसे धूलमें लोटते हुए सिरको, महात्माजीने कुछ उठाकर धोया पोंछा है, और निरंतर ऊँचा उठाने, और स्वच्छ करने, और भारतमाताको अपने पैरों पर खड़ा कर देने, के यत्नमें लगे हैं। इसीलिये धार्मिक विवादोंके, विशेषकर हिन्दू मुसलमानोंके, विवादोंके मिटानेका आपने यत्न किया है। दोनों धर्मोंमें केवल शब्दोंका भेद है, मूल सिद्धांत एक ही हैं, यह इस यत्नकी पूर्तिके लिये—आवश्यक काम यह विशेष रूपसे दिखा देनेका दूसरोंके करनेका है। इस महायत्नके साथ साथ आपका भारी यत्न सदासे हिन्दू कहलाने वाले समाजके सब अंगोंमें परस्पर दुराव-बराबके भेदभाव और द्रोहभावको दूर करनेका होता रहा है। इन भेदभावोंको हटानेमें पुराने दूरदर्शी नेता भी श्रम करते ही रहे। पर महात्माजीने अद्भुत लगन और दारुण तपस्या से इस कामको उठाया है। और कुछ दिनोंसे अपनी सारी शक्ति, कारावासके भीतरसे, वर्त्तमान शासकवर्गकी अनुमतिसे, इसी कार्यमें लगा रहे हैं। बीते आश्विनके महीनेमें सौर तिथि ४ आश्विनसे १० आश्विन तक जो अनशनव्रत आपने किया उसका फल यह हुआ कि सैकड़ों मंदिरोंके द्वार सारे देशमें हरिजनोंके लिये खुल गये।

पर मुख्य कर्तव्य तो यह है कि त्रैवर्णिक कहलानेवाले सज्जनोंके हृदयोंके द्वार हरिजनोंके लिये खुल जायँ। अभी तक तो महात्माजीपर भक्ति श्रद्धा प्रेमके कारण, व्रतसे उनके शरीरका त्याग हो जानेकी सम्भावनाके भयके कारण, बहुतेरे मंदिरोंके किवाड़ खुले। अवश्य कुछके कपाट सच्चे सिद्धान्तके ग्रहणसे भी खुले। पर सारे देशमें भावके ठीक ठीक परिवर्त्तन हो जानेकी बड़ी आवश्यकता है। तभी यह कार्य व्रद्ध ल होगा। ऐसा होने के लिये आवश्यक है कि देशका जो महात्माजीपर घनिष्ठ प्रेम और भक्ति है, उसके साथ स प देशकी बुद्धिको भी यह निश्चय हो जाय कि यह रीति, जो महात्माजी चलाने चाहते हैं, वह ज्ञानसम्मत भी है, केवल हृदयसम्मत ही नहीं है। ज्ञानियोंकी दृष्टिसे सब प्रकारसे उचित भी है, केवल भावुकोंका भाव ही नहीं है। धर्मके अनुकूल है, धर्मका अंग है, धर्म है, धर्मके विरुद्ध नहीं है। धर्म तब तक सम्पन्न नहीं होता जब तक ज्ञान और भक्ति और कर्मका समन्वय, सम्वाद, न हो। मंदिरप्रवेश और देवदर्शनके धर्मांगके विषयमें भी ज्ञान और भक्ति और क्रियाका मेल हो जाना चाहिये।

(21-12-32)

अभी भी इस देशमें बहुत सज्जन, सत्स्त्री, सत्पुरुष, ऐसे हैं जिनका आजन्मका संस्कार यह है कि हरिजनोंका मन्दिरोंमें प्रवेश करना उचित नहीं है, धर्मविरुद्ध है, शास्त्रविरुद्ध है। ये लोग ऐसा सच्चे हृदय से मानते हैं। ऐसे सज्जनोंपर क्रोध करना, या उनसे बलात् मंदिर खुलवानेका यत्न करना, या उनके साथ किसी प्रकारकी उद्धतता उद्दंडता परुषता करना, यह घोर अन्याय है, यह महात्माजीके साथ द्रोह करना है, क्योंकि यह सब भाव हिंसाके अवांतर भाव हैं, और महात्माजीको सर्वथा

हिंसा त्यजनीय वर्जनीय है। जो लोग महात्माजीके सच्चे भक्त और अनुयायी हैं, उनका कर्तव्य यह है कि प्रेमसे, मृदुतासे, और लगनसे, समझा बुझाकर, उभय पक्षके गुणदोष दिखाकर, दूसरे प्रकारके संस्कार वालोंको अपने पक्षमें ले आवें। तभी उनका कार्य स्थिर होगा। अन्यथा केवल भावुक भावकी आँधीमें किया हुआ आजका कार्य, दूसरी आँधीसे कल फिर बदल जा सकता है। अभी १२ दिसम्बरको महात्माजीने पूनासे एक सज्जनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए लिखा है:—"जबर्दस्ती किसी भी मन्दिरको हरिजनोंके लिये न खुलवाना चाहिये। लोकमतको हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके अनुकूल बनानेका उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिये।"

तो अब प्रधान कर्तव्य यह है कि जनताके सामने यह सिद्ध किया जाय कि जिस रीतिका महात्माजी उपदेश कर रहे हैं वह धर्म है, सनातन-वैदिक-आर्य-मानवधर्म है, धर्मके विरुद्ध नहीं है।

आदिस्मृति, आदिधर्मशास्त्र, मनुस्मृतिका यह आदेश है, और इसमें किसी सनातनी हिन्दूको विवाद नहीं है, कि,

श्रुतिः स्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥

श्रुति अर्थात् सुना हुआ वेद, तथा मनुकी आदिस्मृति तथा पीछेसे देश-काल-अवस्थाके भेदोंके अनुकूल ऋषि महर्षियोंने उस आदिस्मृतिमें समय समयपर घटाव बढ़ाव करके दूसरी स्मृतियाँ, अपनी यादके अनुसार, जो बनाई, तथा शिष्ट साधु विद्वान् और रागद्वेषरहित तपस्वी सत्पुरुषोंका सदाचार, और अंततः अपनी आत्माको जो प्रिय हो, जिससे अपनी आत्माको सन्तोष हो, जिसको अपना हृदय कहे कि यह अच्छा है—यह चार धर्मके मूल हैं।

इन चारोंका क्या तारतम्य है इसपर आगे कहा जायगा।

धर्मकी महिमा और धर्म शब्दके अर्थपर दो शब्द पहिले कहना उचित जान पड़ता है। मनुका आदेश है,

धर्म एव हतो हंति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हंतव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

धर्मकी रक्षासे समाजकी रक्षा, धर्मके नाशसे समाजका नाश।

आजकालकी पच्छिमकी बोलीमें 'धर्म' शब्दके स्थानपर 'ला ऐंड आर्डर' शब्द कहते हैं। पर 'धर्म' शब्दका अर्थ बहुत अधिक विस्तृत है। इसमें इहलोकके सुखसाधक भी और परलोकके सुखसाधक भी, मनुष्योंके परस्पर बर्त्तावके भी, और मनुष्योंके, एक ओर देवताओंके, और दूसरी ओर पशुओंके, साथ बर्त्तावके भी, नियम, क़ायदे क़ानून, सब शामिल हैं। 'ला ऐंड आर्डर' की दृष्टि केवल मनुष्योंके इहलोकके बर्तावके ऊपर रहती है, इसलिये उसमें अक्सर बहुत कच्चापन रहता है, बहुत भूल होती है, और सुखके स्थानमें दुःख उत्पन्न होने लगता है। पर 'धर्म' का भी यही हाल देखा जाता है। कभी कभी तो और भी भयंकर दोष धर्ममें आ जाते हैं। स्वयं कृष्ण भगवान्ने सात्त्विकी राजसी तामसी बुद्धिका वर्णन करते हुए कहा है,

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽवृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बंधं मोक्षं च यं वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

मनुष्यकी प्रकृतिमें सत्व रजस् तमस् तीनों सदा मिले रहते हैं, नेकी भी और बदी भी। जब रजस्, तमस्, रागद्वेष, स्वार्थ, लोभ, लालच, काम, क्रोधका अधिक प्रभाव होता है ...उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है, वह धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म समझने लगता है।

...जब यह दारुण भाव मानव-संसारमें अधिक बढ़ जाता है और सज्जनोंको, दीन जनोंको, बहुत अधिक पीड़ा पहुँचने लगती है, तब अन्तरात्मा प्रायः उसी समाजमें अपनेको किसी श्रेष्ठ...

अधिकार-कर्त्तव्यकी मर्यादा बाँधकर, नहीं बनाया गया है, इससे बहुत अस्तव्यस्त है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः

जब यह ह्रास मात्रा मानव-संसारमें अधिक बढ़ जाता है और सज्जनोंको, दीन जनोंको, बहुत अधिक पीड़ा पहुँचने लगती है, तब अन्तरात्मा प्रायः उसी समाजमें अपनेको किसी श्रेष्ठ शरीरमें विशेष रूपसे [illegible] सच्चे धर्मका फिरसे संस्थापन व्यवस्थापन करता है। यह घटना पुनः पुनः मानव इतिहासमें होती रही है और होती रहेगी। जैसा स्वयं कृष्ण भगवान्ने फर्माया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहं॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

क्योंकि बिना सच्चे 'धर्म' के समाजकी स्थिति ही नहीं हो सकती। यदि पुराण कालको छोड़ भी दें, तो भी आधुनिक इतिहाससे भी जान पड़ता है कि बुद्धदेवके जन्मके पहिले भारतवर्षमें मिथ्याधर्मों, असद्धर्मों, धर्माभासोंका बहुत प्रचार हो गया था बुद्धदेवने, जिनको सभी सनातनी नवम अवतार मानते हैं, सद्धर्मका जीर्णोद्धार किया, धर्मका संस्थापन किया, पंचशीलकी शिक्षा दीक्षासे और अपने आचरणसे, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अशुद्ध भोज्य पदार्थ मद्यमांसादिका वर्जन, और इन्द्रियनिग्रहका प्रचार भारतवर्षमें किया, जो ही आज पुनः महात्माजी कर रहे हैं, जो ही आदिधर्मव्यवस्थापक आदिराज, महाराज परमर्षि मनु भगवान्ने आदेश किया है —

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एवं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन् मनुः॥

बुद्धदेवने एक शिष्यके उत्तरमें कहा था कि इस पुनर्व्यवस्थापित धर्मका प्रभाव प्रायः एक सहस्र वर्ष तक रहेगा। सो ही हुआ। राजस तामस बुद्धिका देशमें पुनर्वार सात्त्विक बुद्धिपर विजय हुआ, तंत्र मंत्र वाममार्ग आदिके भयंकर दोष उत्पन्न हुए, तरह तरहका अनाचार दुराचार फैलने लगा। फलतः पुनर्वार जीर्णोद्धारकी आवश्यकता हुई, और पुनः पुनः होती रही, और उसको शंकर रामानुज मध्व चैतन्य रामानन्द कबीर नानक आदि अपनी अपनी तपस्या, विद्या, और परिस्थितिके अनुसार करते रहे। आज इनके अनुयायियोंके भी, उसी राजस तामस भेदभावकी बुद्धिके ज़ोरके हेतुसे, छोटे छोटे परस्पर कलहायमान पंथ बन गये हैं। और इस अभागे देशकी फूट और वैर और परस्पर भेद और तिरस्कार और द्रोहकी हवाके अनुसार वर्णमें अवांतर उपवर्णमें अवांतर उपोपवर्ण, जातिमें अवांतर उपजातिमें उपोपजाति, वैसे ही पंथमें अवांतर उपपंथमें उपोपपंथ हो गये हैं, और

भूमि हरित तृन संकुल, समुझि परे नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवादतें, लुप्त भये सद्ग्रन्थ॥

यदि यह दुर्दशा बढ़ती गई तो निश्चय है कि हिन्दूसमाज छिन्नभिन्न अस्तव्यस्त होकर नष्ट हो जायगा। नष्ट होनेका क्या अर्थ है? हिन्दू कहलानेवाली वर्त्तमान जनताका, या इसकी सन्तानका, तो लोप होनेका नहीं, यह तो स्पष्ट ही है। लोप होगा हिन्दू कहलानेवाले धर्मके उस धर्ममूल और धर्मसारका, जिसको भगवान् मनुने पंचलक्षणक सामासिक धर्म चारों वर्णोंके लिये कहा है, और पुनः कुछ विस्तारसे दशलक्षणक कहकर चारो आश्रमोंके लिये आवश्यक कहा है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

यदि अवसर होता तो मैं यह दिखानेकी कोशिश करता कि अन्तरात्मा सूत्रात्माने यहूदी जातिमें मूसाके शरीरसे, चीन जातिमें कंफ्यूशसके शरीरसे, ग्रीक जातिमें सुकरातके, पुनर्वार यहूदी जातिमें ईसाके, तथा अरब जातिमें मुहम्मदके शरीरसे, जब जब धर्मसंस्थापन धर्मोद्धार किया तब तब इन्हीं पञ्चशील और दशलक्षण धर्मसारका ही उपदेश किया। बिना इनके मानवसमाज बर्बर अथवा जङ्गली पशुसमान सभ्यताहीन आचारहीन ज्ञानहीन हो जाता है। हिन्दूधर्म और हिन्दूसमाजके नाशका यही अर्थ हो सकता है। एक विशेष बात हिन्दूधर्ममें और है—अर्थात् बुद्धिपूर्वक चार वर्णों और चार आश्रमोंके द्वारा सामाजिक जीवन और वैयक्तिक जीवनका संग्रहण, व्यूहन। यह संग्रथन अन्य देशों और समाजोंमें भी मानव प्रकृतिके प्रभावसे है ही, पर बुद्धिपूर्वक, अभिसन्धिपूर्वक, जानबूझकर,

अधिकार-कर्त्तव्यकी मर्यादा बाँधकर, नहीं बनाया गया है, इससे बहुत अस्तव्यस्त है। तथा भारतवर्षमें भी इसकी मर्यादाओंमें भारी त्रुटियाँ आ गई हैं, जिससे अब यह धर्मके स्थानमें अधर्ममय, और सुखावहके स्थानमें महादुःखावह, हो गया है। इस सबके परिशोध और नवीकरणकी परम आवश्यकता है। धर्मसंस्थापनका अर्थ ही वर्ण-आश्रम-धर्मव्यवस्थापन। हिन्दूके जो पुराने अर्थसे भरे नाम हैं, यथा सनातनधर्म, वैदिकधर्म, मानवधर्म, आर्यधर्म, उनके साथ यह भी विशेषद्योतक मुख्य नाम है अर्थात् वर्णाश्रमधर्म।

अभी महात्माजीको इस ओर ध्यान देनेका अवसर नहीं मिला है। जिस दिन देंगे उस दिन लोकहित भावके तीव्र संवेगसे शुद्ध, पवित्र, निर्मल हृदय पर उसके तत्त्वका तत्क्षण प्रकाश हो जायगा, और वे इसके द्वारा समस्त मानवजातिके कल्याण साधनेमें प्रवृत्त हो जायँगे, और अपने तपोबलसे साध सकेंगे। क्योंकि बिना तपस्याके ज्ञान सर्वथा वंध्य है, व्यर्थ है। हम लोगोंकी क्षुद्र बुद्धि जहांतक समझ सकती है, यही जान पड़ता है, कि जैसे अनुभवी वैद्य किसी भयंकर शरीरव्यापी रोगके प्रत्येक चिह्न और फलरूपी विकारकी चिकित्सा नहीं उठाता, बल्कि उसके निदानको, मूलकारणको, पकड़कर, उसीके शमनमें लग जाता है, वैसे ही महात्माजीने हिन्दू समाजके महारोगरूपी भेदभावके उग्रतर स्थानको पकड़ा है, अर्थात् छूत-अछूत विवेकको, और देशकी सारी शक्तिको इसीके शमन दमनमें लगा दिया है। यदि यह विकार दूर हुआ तो अन्य विकार आपसे आप अथवा सहजमें थोड़े प्रयाससे, दूर हो जायँगे। तो अब यह विचारनेकी आवश्यकता है कि जो हमारे समाजके बहुतेरे सज्जन बन्धुबांधव यह संस्कार आजन्म धारण कर रहे हैं, कि कुछ जातिके मानव, स्त्री पुरुष बालक, जन्महीसे दूसरोंके लिये अस्पृश्य हैं, उनके शरीरको या वस्त्रको या और किसी वस्तुको या उनकी छुई हुई वस्तुको छू लेनेसे वे दूसरे अशुद्ध हो जाते हैं, और बिना स्नान दान आदिके फिरसे शुद्ध नहीं होते—यह धारणा सद्धर्म है, या मिथ्या धर्म और अधर्म है।

पहिले कहा कि सद्धर्मकी कसौटी चार हैं—(१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) सदाचार और (४) अपना अंतःकरण, अपना हृदय, अपना आत्मा। मुसलमान धर्ममें इनके नाम हैं—(१) कुरान (२) हदीस (३) इज्मा (४) कयास। ईसाई धर्ममें—(१) बाइबल (२) ट्रेडिशन—कैनोनिकल रेग्युलेशन—कानशेन्स। पश्चिमी कानून में—(१) ऐक्ट्स आफ लेजिस्लेशन या स्टैच्यूट—कस्टम—प्रेसीडेन्ट—एक्विटी, या एक्ट, रिवाज, नज़ीर, इन्साफ़।

इन चार कसौटियोंसे इस प्रश्नको जाँचना चाहिये। यह काम विशेषज्ञ लोग, आर्यहृदय, आर्यबुद्धि, रागद्वेषरहित, तपोविद्यायुक्त, विद्वान्, पंडितजन ठीक ठीक कर सकते हैं। मेरे लिये बड़ी कठिनता यह है, कि तपस्याका नितांत अभाव, और ज्ञान भी अत्यंत पल्लवग्राही। सारी उमर सांसारिक,व्यावहारिक झंझटोंमें बीती। किसी पूर्वजन्मके संस्कारसे पोथी पढ़नेका शौक तो रहा पर समय यथेष्ट नहीं मिला, और पोथियाँ असंख्य। जो कभी कथंचित् कदाचित् कुछ फुर्सत मिली तो पचीस तीस स्मृतियोंका, और सदाचारद्योतक मुख्य मुख्य इतिहास-पुराणोंका, जल्दी जल्दी, अपने मनसे, बिना गुरुमुखसे सुने समझे, पाठ कर लिया। वैदिक साहित्य कुछ भी न देख सका। यदि उपनिषत् वेदका अंग, वेदका अन्त, वेदकी पराकाष्ठा परागति, माने जायँ तो उनका भी केवल वैसा ही पाठ मात्र कर पाया। ऐसी दशामें शास्त्रों द्वारा प्रश्नोंके फसलेके कार्यका भार श्री ईश्वरशरणजी तथा अन्य विद्वानोंपर जो यहाँ पधारे हैं उनको उठाना होगा। मैं केवल चतुर्थ लक्षणके अनुसार कुछ दो चार विचार आप लोगोंके समक्ष रखनेका साहस करूँगा।

कुछ सज्जन कहा करते हैं कि 'तर्काच्छास्त्रं प्रमाणं तैं', धर्ममें बुद्धिको स्थान ही नहीं, जो पोथीमें लिखा है उसीके अक्षरके अनुसार कार्य करना चाहिये, क्योंकि यदि अन्तर्ध्वनि, अंतःकरण, आत्मप्रिय,'के अनुसार 'धर्म' हो, तो प्रत्येक मनुष्यका धर्म अलग हो जायगा, 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना'। इस शंकाकी उत्तररूप प्रतिशंका यों होती है, कि शास्त्र कहलानेवाली पोथियाँ भी सैकड़ों हैं, इसी कारणसे पंथ, उपपंथ, उपोपपंथ, सैकड़ों हो गये हैं, जिनके आचार विचारमें बहुत भेद है, किस पोथीको मानें, किसको न मानें। शंका प्रतिशंका दोनोंका समाधान महाभारतमें विदुरजीके मुखसे स्वयं व्यासजीने कर दी है,

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः
नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

जब ऐसा मौका आवे कि दोनों ओर तर्क प्रतितर्ककी परम्परा बढ़ती ही जाय, कहीं भी प्रतिष्ठित समाप्त न हो, तथा श्रुतियोंका भी द्वैध देख पड़े, भिन्न प्रकारके वेदवाक्य परस्पर विरुद्ध मिलें, और विविध स्मृतिकार ऋषियोंके भी वचनोंमें एकवाक्यता न हो, और धर्मका, किंकर्तव्यताका, तत्त्व मानो, गहिरी गुफामें, हृदयगुफामें, छिपा रह जाय, खोजनेसे न मिले, तब महाजन, जनसमुदाय, भूयसीय, बहुमत, जिस पथ पर चले उसी पथपर अपनेको भी चलना उचित है। प्रायः इसी प्राचीन नीतिको लेकर महात्माजी "रेफरेंडम" भी करा रहे हैं जिसमें विद्वान् अविद्वान् सभी गुरुवयूरके मन्दिरमें देवदर्शनके लिये जानेवालोंसे मत लिया जा रहा है, तथा शास्त्रका ज्ञान रखनेवाले पण्डितोंके परस्पर, शास्त्रके अर्थपर तत्त्वके बोधकी इच्छासे, वाद भी ता० २३ दिसम्बरको, करा रहे हैं, जिससे विद्वानोंका भी बहुमत मालूम हो जाय।

इस स्थानपर एक अद्भुत बातकी ओर आप सब सज्जनोंका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। अखबारोंसे मालूम होता है कि गुरुवयूरके मंदिरमें हरिजनोंका प्रवेश एकादशीके दिन चिरकालसे होता आया है। जब ऐसा है, तब तो उस मन्दिरके सम्बन्धमें शास्त्रीय शंका कोई बची ही नहीं। प्रवेश उचित है यह सिद्ध होगया। रहा यह कि पखवारेमें एक दिन हो कि पन्द्रहो दिन हो, यह बात शास्त्रीय नहीं किंतु सुविधा और रिवाज और परस्पर भावशुद्धि आदिकी बात है। प्रायः किसी श्रुति स्मृति या अन्य प्राचीन शास्त्रके ग्रंथमें यह विधि या नियम लिखा हो ही नहीं सकता कि गुरुवयूरका मन्दिर जब भविष्य कालमें बने तब उसमें केवल एकादशीके दिन हरिजनोंका प्रवेश हो। अस्तु।

कोई विद्वान् कहते हैं कि महाभारतके उक्त श्लोकमें महाजन शब्दका अर्थ बहुमत नहीं है, प्रत्युत महापुरुष है। यह बात नहीं बनती। दूसरे स्थानमें प्राचीन, पुराण इतिहासोंमें महापुरुषके अर्थमें महाजन शब्दका प्रयोग मेरी जानमें नहीं मिलता है। पर यहाँ मुझे भूल अवश्य हो सकती है। तो यह विचारना चाहिये कि इसी प्रजागरपर्वके विदुरनीत्यध्यायमें और दो स्थानोंमें यह शब्द आया है।

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः।

यहाँ महाजनका अर्थ जनसमूहके सिवाय और कुछ हो नहीं सकता। तथा यह भी विचारने की बात है कि श्लोकके पहिले दूसरे पादोंमें कह चुके कि वेदद्रष्टा मंत्रकर्त्ता ऋषियोंमें तथा स्मृतिकार ऋषियोंमें परस्पर विभिन्नता है। ऋषियोंसे बढ़कर और कौन महापुरुष हो सकता है। दूसरे स्थानमें तो और भी स्पष्ट है,

देशाचारान् समयान् जातिधर्मान् बुभुत्सते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति॥

विविध देशों समाजोंके विविध आचारों धर्मोंको जो जानता है, वह जहां कहीं भी पहुँच जाय 'महाजन' पर अधिपति हो जाता है। इस कारण बहुमतको समझाना समझना, बुद्धिका विनिमय करना और उसके निर्णयके अनुकूल चलना उचित ही है।

ऐसे अपूर्व अवसरोंपर सिवा परस्पर समझने समझाने वालोंकी बुद्धियोंसे काम लेनेके, केवल शास्त्रकी पोथीके अक्षरोंसे काम नहीं चलता। जिस किसी पुस्तकको आप शास्त्र मानें वह भी तो किसी पुरुषकी बुद्धिसे ही उत्पन्न हुआ है। जैसे शरीरसे लपेटे आत्माको जीव कहते हैं वैसेही शब्दोंसे उपहित किसीकी बुद्धिहीको शास्त्र कहते हैं।

सनातनधर्मवालोंका जो सबसे पवित्र वेदमंत्र है, गायत्री, सावित्री, वह सद्बुद्धिके लिये, धियः के लिये, परमात्मा जगत्सवितासे प्रार्थना करता है, शास्त्रोंके लिये नहीं। सद्बुद्धि ही तो सच्छास्त्रोंकी माता है। गायत्रीरूपिणी शुद्ध वेदोंकी माता है। अन्य वैदिक प्रार्थनाओंमें भी बुद्धिहीकी याचना की है, शास्त्रकी नहीं।

स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।

शास्त्रेण संयुनक्तु नहीं।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

शिवशास्त्रमस्तु नहीं। हनुमान जी 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' कहाते हैं, 'शास्त्रमतां' नहीं। भगवान् कृष्णने निश्चयेन कहा है,

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते।

पर यह बात ध्यान देनेकी है। शास्त्र शब्द गीतामें केवल पाँच बेर आया है, एक बेर १५-२० में, तीन बेर १६-२३, २४ में, और एक बेर १७-१ में। और १५-२० में स्वयं कृष्णने शास्त्रका अर्थ कर दिया है,

इति गुह्यतमं शास्त्रं।

सब शास्त्रोंमें गुह्यतम श्रेष्ठ शास्त्र, अर्थात् स्वयम् गीतामें कहा हुआ अध्यात्मशास्त्र। कृष्णने अर्जुनके कार्याऽकार्यकी घोर शंकामें और विषादमें बूढ़े हुए देखकर, वेदके वाक्योंका उद्धरण नहीं किया, स्मृतियोंके वाक्योंका हवाला नहीं दिया, प्रत्युत वेदके कर्मकांडी वाक्योंपर अतिश्रद्धाको अनुचित बताया, और

बुद्धौशरणमन्विच्छ........बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।

ऐसा कहा, अर्थात् बुद्धिमें शरण लो, बुद्धिके नाशसे मनुष्यका नाश हो जाता है। पहिले कहे श्लोकोंका भी आशय यही है कि देवता जिसका भला चाहते हैं उसको सद्बुद्धि देते हैं। तार्किक लोगोंका भी कहना है कि,

न बुद्धिरस्तीत्यपि बुद्धिसाध्यं।

बुद्धिकी गति आगे नहीं है—यह निर्णय भी बुद्धि ही करती है। लौकिक कहावत भी है

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं।

जिसके पास बुद्धि है उसीके पास सब बल है, बुद्धि नहीं तो बल कहां। शास्त्र यस्य नहीं कहा आदि धर्मशास्त्रकार भगवान् मनुने, शास्त्र बनाते हुए भी कहा,

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता॥
आर्षं धर्मोपदेशं तु वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

धर्मकी शुद्धि जो चाहते हैं उनको प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाण, और विविध आगमप्रमाण तीनोंसे काम लेना चाहिये। अध्यात्मविद्याके अनुकूल तर्क करके इस कर्मसे क्या होगा कि दुःख, इसको खूब विचार करके, जो धर्मका अनुसंधान, खोज, करता है वही सच्चे धर्मको पाता जानता है दूसरा नहीं।

कुल्लूक भट्टने भी टीकामें कहा है,

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिश्चयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥

केवल एक शास्त्रकी पोथीके अक्षरको पकड़ करके, बिना युक्ति देखे, जो काम करेगा वह अधर्ममें पड़ जायगा।

व्यासजीने भी महाभारतमें भीष्म, युधिष्ठिर, तुलाधार आदिके मुखसे कहा है,

अकार्यो हि नैवास्ति धर्मः सूक्ष्मोऽपि जाजले।
हेतुभिर्धर्ममन्विच्छेद् न लोकं विरसं चरेत्॥
न धर्मः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम्।
तस्मात्कौंतेय विदुषा धर्माधर्मविनिश्चये॥
बुद्धिमास्थाय लोकेऽस्मिन् वर्त्तितव्यं कृतात्मना॥
उत्सर्गेणापवादेन ऋषिभिः कपिलादिभिः।
अध्यात्मचिंतामाश्रित्य शास्त्राण्युक्तानि भारत॥
(शांतिपर्व, अ० २६८, २६६, १ १, ३६०)

लौकिक कहावत भी है,

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

अर्थात् बिना कारणके कोई छोटासे छोटा, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, भी धर्म नहीं है, इसलिये सबके हेतुको जानना आवश्यक है। अन्यथा लोकयात्रा नीरस कुरस हो जाती है।

केवल शास्त्रके पाठसे धर्मका ज्ञान नहीं होता। धर्म और अधर्मके निर्णयमें बुद्धिसे काम लेना चाहिये। कपिलादि महर्षियोंने, अपनी बुद्धिसे, आध्यात्मिक चिन्तन करके, शास्त्रोंको बनाया है। जिसका प्रज्ञा नहीं, बुद्धि नहीं, उसके लिये शास्त्र व्यर्थ है, जैसे नेत्रहीन मनुष्यके लिये दर्पण। देखिये—पहिले तो यही निश्चय करना कि यह शास्त्र है या शास्त्र नहीं है—यह बुद्धि ही का काम है। फिर यदि किसी विशेष ग्रन्थको मान भी लिया जाय कि यह शास्त्र है, तो उसके इस वाक्यका यह अर्थ है या यह दूसरा, यह भी बुद्धिहीका काम है। तथा यदि यह मान लिया जाय कि हमारी बुद्धि काम नहीं करती, दूसरेकी बुद्धिपर भरोसा करना चाहिये, तो यह निर्णय करना कि यह आप्त है, मानने योग्य है, या यह दूसरे सज्जन मान्य हैं—यह भी जिसको मानना है उसकी बुद्धिहीका काम है।

निचोड़ यह कि जो लोग शास्त्रको एक ओर और पूछनेवाले संशय करनेवालेकी बुद्धिको दूसरी ओर, उससे अलग कर देना चाहते हैं, और यह कहते हैं कि जिसको हम शास्त्र कह दें उसीको तुम शास्त्र मान लो, जो अर्थ हम कर दें उसीको तुम ठीक अर्थ मान लो, तुम अपनी बुद्धिको दखल मत दो—ऐसे लोग या तो आप भूलमें पड़े हैं, या दूसरेको भूलमें डालना चाहते हैं। कभी किसीकी बुद्धिको मिटा देनेका जतन नहीं करना चाहिये। प्रत्युत सच्चे आचार्योंका तो मुख्य लक्षण यही है कि दूसरोंकी बुद्धिको जगाते रहें, उनसे शङ्का और प्रश्न कराते रहें, उनको सब धर्मोंके हेतु बता बताकर उनका सन्तोष करते रहें। जो लोग दूसरोंको कहते हैं कि हेतु मत पूछो, अपनी बुद्धिको त्याग दो, वे धर्मके द्रोही हैं, मित्र नहीं।

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चितः॥ (म० भा०)
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्त्तुमर्हसि। (गीता)
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥ (गीता)
यल्लोकहितमत्यंतं तत्सत्यमिति न श्रुतं॥ (म० भा०)

जो जनताका धारण करे, उनको एक दूसरेसे बाँधे रहे, उनको बिखरने न दे, जो लोकका संग्रह करे, विग्रह न करे, जिससे लोकका अत्यन्त हित हो, वही सत्य धर्म है।

इस दृष्टिसे देखनेसे यह सिद्ध होता है कि समय समयपर धर्मको, आचारको, बुद्धिपूर्वक बदल देना भी आवश्यक होता है। आगे चलकर यह दिखानेका यत्न किया जायगा कि, किस प्रकार से, जो इधर कई शताब्दियोंसे इस देशमें छूत अछूतका दुराव बरताव, स्पृश्य-अस्पृश्यका विवेक किया जाता रहा है, वह शास्त्रसंमत भी नहीं है। पर उसके पहिले यह कह देना उचित होगा कि, यदि किसी समयमें यह शास्त्रसंमत रहा भी हो, तो अब लोकका धारक नहीं विच्छेदक, संग्राहक नहीं विग्राहक, हितकर नहीं अहितकर, काल अवस्था-पात्र आदिके भेदसे हो गया है, इसलिये, शास्त्रके सिद्धांतोंके ही अनुसार अब इसको बदल देना आवश्यक हो गया है।

युगभेदसे धर्मभेद होता है, यह स्वयं मनुजी आज्ञा देते हैं,

अन्ये कृतयुगे धर्माः, त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां, युगह्रासानुरूपतः॥

व्यासजीने भी ऐसा ही कहा है,

स एव धर्मः सोऽधर्मस्तं तं प्रतिनरं भवेत्।
पात्रकर्मविशेषेण देशकालावपेक्ष्य च॥ (शां० अ० ३१४)
अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः।
वेदवादाश्चानुयुगं ह्रसन्तीति च नः श्रुतम्॥
नहि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्त्तते।
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः॥
आचाराणामनैकाग्र्यं सर्वेषामेव लक्षये।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः।
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च॥
स एव धर्मः सोऽधर्मो देशकाले प्रतिष्ठितः।
आदानमनृतं हिंसा, धर्मो ह्यावस्थिकः स्मृतः॥ (शां० अ०)

निष्कर्ष इन श्लोकोंका यह है कि, देश-काल-निमित्त अवस्था-पात्र-अधिकारी आदिके भेदसे धर्ममें भेद होता रहता है, जो आज धर्म है वह कलको अधर्म हो जाता है, जो अधर्म है वह धर्म हो जाता है।

२५ प्रसिद्ध है कि अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, श्राद्धमें मांसपिंड आदि पहिले धर्म थे, कलियुगमें अधर्म हो गये। तत्रापि संन्यासको फिरसे धर्म मान लिया गया। अब विद्वानोंकी बुद्धिसे ही यह सब परिवर्तन किया गया।

मनुका साक्षात् आदेश है कि, जब ऐसी अवस्था उपस्थित हो, जिसके लिये आम्नाय-में, वेदादिमें, वचन न मिलें, तो शिष्ट, ज्ञानी, तपस्वी, लोग जो निर्णय कर दें वही उस अवस्थाके लिये धर्म होगा।

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥

रेलपर चढ़ना या न चढ़ना, रेल पर पानी पीना या न पीना, तारसे खबर भेजना और लेना या नहीं, जेबमें घड़ी रखना या नहीं—इत्यादि बातोंके लिये आम्नायमें वचन नहीं मिलनेका। अपनी बुद्धिसे ही निर्णय करना पड़ेगा।

मुझे याद है, पचास पचपन वर्ष पहिले, मेरे पूज्य पिता और पितृव्य जब रेलकी यात्रा करके आते थे, तो तीन दिन, फिर दो दिन, फिर एक दिन, घरसे अलग, बागीचेमें, रक्खे जाते थे, उनके कपड़े सब धुलवाये जाते थे, वे भी कई बेर नहलाये जाते थे, कुछ प्रायश्चित्तरूप दान कराया जाता था, तब घरमें आने पाते थे। मेरी परम पूज्य पितामही उस समय वर्तमान थीं। उनको उस समय यही शास्त्रोक्त धर्म बताया गया था। अब तो बताने वाले सज्जनोंके घर भी यह धर्म नहीं बर्ता जाता।

निष्कर्ष यह कि व्यवहारको सुकर बनानेके लिये शास्त्र बना और बनता है, शास्त्रके लिये व्यवहार नहीं बना। मान्य पुरुषोंकी बुद्धि शास्त्रोंको बनाती है, शास्त्र तो बुद्धिकी सृष्टि नहीं करते। इसीलिये जो बुद्धि शास्त्रका बनाती है वही उनको, उचित हेतु देखकर, बदल भी सकती है। युग युगमें अवस्थाके बदलनेसे लोकमत बदलता है, वह लोकमत किसी विशिष्ट नेताकी बुद्धिके द्वारा नवीन धर्म, नवीन आचार, नवीन शास्त्र, नये कानूनमें परिणत हो जाता है।

शास्ति यस्याधनोपायं पुरुषार्थस्य निर्मलम्।
पतच्छास्त्रस्य शास्त्रत्वं, नान्यदस्त्यस्य लक्षणम्॥
वासना वासुदेवस्य वासितं सकलं जगत्।
यस्माद्वसति लोकेषु वासुदेवस्ततः स्मृतः॥

चारों पुरुषार्थ, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में से किसीके साधनका सच्चा निर्मल उपाय जो शासन करे, बतावे, वही शास्त्र। लोकके हृदयमें बसनेवाले वासुदेवकी वासनासे वासित लोककी इच्छा, और उसकी पूर्तिद्वारा सुखके साधनके उपाय, युग युगमें बदलते रहते हैं। इसलिये शास्त्रका भी समय समयपर नया संस्करण आवश्यक होता है। ठीक वैसे ही जैसे इस सन-पद्धतिमें लेजिस्लेटिव कौंसिलमें बैठकर कुछ लोग कानूनमें घटाव बढ़ाव करते रहते हैं। दुःख यह है कि ये लोग जैसे चाहिये वैसे निस्वार्थी, अनुभवी, लोकहितैषी नहीं होते, इससे कानून बहुधा दुःखदायक बन जाते हैं, लोकोपकारक नहीं। ऐसे ही, धर्ममें, छिपे छिपे परिवर्त्तन होता ही रहता है, पर जिस प्रकारसे और जैसे लोगोंको, खुले रूपसे, करना चाहिये, वैसे नहीं होता, इससे लोकोपकारक नहीं होता।

इस बातके उदाहरणके लिये, कि ऋषियोंने व्यवहारके लिये शास्त्र बनाये, शास्त्रके लिये व्यवहार नहीं, एक दो वाक्य स्मृतियोंके देखिये। कहा जाता है कि चांडालको छू जानेसे सचैल स्नान करना उचित होता है। मनुस्मृतिकी प्रचलित मुद्रित पुस्तकोंमें लिखा है कि चांडालका छूआ और दिया हुआ भोज्य पदार्थ सवर्णके लिये भोजन करना धर्म है। और क्या, कुत्तेका जूठा खा लेना भी धर्म है। इसको कोई विश्वास नहीं करेगा। पर सुनिये,

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः, शकुनिः फलपातने।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः, श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥
श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत्।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चांडालाद्यैश्च दस्युभिः॥

कारीगरका हाथ, पक्षीकी चोंच, बछड़ेका मुँह, मृगयामें शिकारी कुत्तेका दांत—

... देवमंदिरमें, तीर्थयात्रामें, उत्सवोंमें, यज्ञोंमें, विवाहोंमें, छूआ... छूतका विचार नहीं करना। और अवस्थामें ...

किसी किसी प्रकारसे ...

कारीगरका हाथ, पक्षीकी चोंच, बछड़ेका मुँह, मृगयामें शिकारी कुत्तेका दांत—यह सदा शुद्ध [illegible] मारा हुआ मांस, या पलुए चीता आदिका, या चाण्डाल व्याधों द्वारा—सब शुचि और ग्राह्य है। जो सज्जन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि मांसका ग्रहण करते हैं, उनके लिये यह सब मनुके वचनसे धर्म ही है। कारीगरका हाथ यदि शुचि न माना जाय, चाहे वे कितनी भी तम्बाकू आदि पीते हों, नाक पोंछकर, सिर खुजलाकर, हाथ न धोते हों, तो देवप्रतिमा, देवपूजाके लिये पूजाकी माला, तर्कारी बेचनेवाली स्त्रियोंके हाथकी तर्कारियाँ जिनको वे उसी पानीसे छिड़कती रहती हैं जिससे साथके बच्चेकी आबदस्त, देती रहती हैं, इन सबका व्यवहार ही असम्भव हो जाय।

मनुकी आज्ञा है,

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च॥

धर्मके विरुद्ध जो अर्थ और काम हों उनका त्याग करना, और ऐसे धर्मको भी छोड़ देना जो सुखका विरोधी हो और लोकमत, 'रेफरेंडम', जिसके विरुद्ध हो गया हो।

प्रस्तुत प्रश्नपर विचार करनेसे जान पड़ता है कि जिस दृष्टिसे भी जाँचिये, हरिजनोंका देवदर्शनके लिये मंदिरमें प्रवेश करना किसी प्रकारसे धर्मविरुद्ध नहीं है, यदि वे शुचिताके नियमोंका उतना ही पालन करें जितना और लोग करते हैं। बल्कि उनको रोकना धर्मविरुद्ध है। वे भी ब्रह्मदेवकी संतान हैं। अग्रजन्माके अनुजन्मा हैं। आनृशंस्यकी, सहानुभूतिकी दृष्टिसे भी उनको साथ रखना ही उचित है। मनुने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है,

न धर्मेऽस्याधिकारोऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनं।
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मंत्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति, प्रशंसां प्राप्नुवंति च॥

अद्विजको धर्ममें अधिकार नहीं है, तो प्रतिषेधन भी नहीं है। यदि उनमेंसे कोई, सत्पुरुषोंके धर्मका अनुकरण करें, तो, वेदाध्ययनको छोड़, और सब धर्म कर्म करनेसे वे दोषी नहीं होते, प्रत्युत प्रशंसाके पात्र बनते हैं।

26/12 कुछ सज्जनोंको यह शंका होती है कि मंदिरमें हरिजनोंके प्रवेशसे देवमूर्त्ति दूषित हो जायगी, उसकी प्राणप्रतिष्ठा मिट जायगी, वह निष्प्राण हो जायगी। ऐसे सज्जनोंसे यह कहना चाहिये कि, हे भाई! आप अपने देवतापर और अपनेपर ऐसी अश्रद्धा, अविश्वास, मत करो। देवता ऐसा निर्बल दुर्बल नहीं है।

यथा रथ्यापयः शुचि भवति गंगौघमिलितं।

गंगामें तो पनालोंका पानी भी पड़कर आप पवित्र हो जाता है, गंगाको अपवित्र नहीं कर सकता। गंगाके जलमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि विषकीटोंको दो तीन घंटेमें नाश कर देती है, यह पश्चिमी वैज्ञानिकोंने निश्चय किया है। भक्तजनके दर्शनसे देव क्षीण हो जायँगे, यह तो देवकी निन्दा करना है। देव तो भक्तिको देखते हैं, वर्ण और जातिको नहीं। सारा संसार यह प्रत्यक्ष देखता है कि वैदिक देवता, अग्नि, वायु, रवि, वरुण, पृथ्वी, मलतम पदार्थोंको खादको, मनुष्यका खाद्य अन्न बना देते हैं, अपवित्रको पवित्र कर देते हैं। हुताशनका नाम ही पावक है। यदि मूर्त्तियोंकी सच्ची प्राणप्रतिष्ठा हुई है तो उनमें भी ऐसे गुण होने चाहियें।

हाँ, शारीर-शुचिताको अवश्य देखना चाहिये। और सवर्ण अवर्ण सबके लिये एकसाँ देखना चाहिये। प्रत्यक्ष मलयुक्त न हो, संचारी रोगका रोगी न हो, तभी मंदिरमें आवे।

उक्त चार कसौटियोंमें से अंतःकरणकी कसौटीकी तो ऐसी व्यवस्था देख पड़ती है। और तीनके विषयमें वेदके जाननेवालोंसे मैंने सुना है कि चांडाल शब्द वेदमें नहीं मिलता। उसके समीपका शब्द निषाद मिलता है। सो निषादके लिये यज्ञ आदिकी अनुमति वेदने दी है। 'यज्ञियासः पंचजना मम होत्रं जुषध्वं।' (ऋ०)। 'चत्वारो वर्णाः, निषादः पंचमः' (निरुक्त)। पुराणोंमें प्रथम निषादको राजा पृथुका सगा बड़ा भाई कहा है। अर्थात् आर्योंसे पहिलेसे जो लोग भारतमें बसते थे, 'द्रविण' थे, वे 'निषाद' कहाये, ('ऐबोरिजिनीज़।')

स्मृतियोंमें, अत्रि स्मृतिमें स्पष्ट लिख दिया है,

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च। उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥

किन्हीं प्रतियोंमें ऐसा भी पाठ है,

उत्सवे तीर्थयात्रायां देवतायतनेषु च। यज्ञेषु च विवाहेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥

...देवमंदिरमें, तीर्थयात्रामें, उत्सवोंमें, यज्ञोंमें, विवाहोंमें, छूआछूतका विचार नहीं करना। और व्यवहारमें नहीं हो रहा है। मुझे ब्राह्मण-पण्डितोंने कहा है कि काशीमें श्री विश्वनाथके मन्दिरमें तथा श्री दुर्गाके मन्दिरमें बाह्य कहलानेवाले भी भक्त, बराबर, स्त्री भी, पुरुष भी, नहा धोकर, स्वच्छ होकर जाते ही हैं, और दर्शन करते हैं। न वे किसीसे आह्वान पूर्वक कहते हैं कि हम अमुक बाह्य जातिके हैं, न कोई उनसे पूछता है कि तुम किस जातिके हो। बस यही ठीक मनुष्यताका, भलमंसीका, सद्बुद्धिका, देवभक्तिका, सच्चा व्यवहार है।

सदाचारकी कथा देखिये। रामजीसे बढ़कर कौन सदाचारी हो सकता है। मर्यादापुरुष, प्रमाणं सर्वभूतानां, प्रतिमानं महीभुजां—यह सब उनके विशेषण हैं। रामजीके पिता दशरथजीके परम सखा निषादराज थे, उन्होंने रामजी और सीताजी और लक्ष्मणजीको अपने हाथों नाव खेकर गंगापार उतारा। और रामजीके पैर बड़े सुन्दर थे, उनका पैर छूनेकी बड़ी उत्कण्ठा निषादराजको हुई। पर सोचा कि अपने पिताके वृद्ध मित्रको अपना पैर छूने न दें, इसलिये बहाना किया,

क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ, दारुदृशदोः किमंतरम्।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥

'नाथ! ऐसा लोग चारों ओर कहते हैं कि आपके पैरकी धूल छू जानेसे पत्थरकी शिला अहल्या हो गई। जब पत्थरकी यह दशा हुई तो मेरी काठकी नावका भी आपके पैरकी धूल छू जानेसे स्त्री बन जाना क्या अचरज है। और ऐसा हुआ तो मेरी तो सब जीविका मारी जायगी। इससे मैं आपके पैरोंको खूब धो पोंछके साफ किये बिना आपको नावपर चढ़ने न दूँगा।

रामजीके आर्यहृदयका क्या कहना है, पिताके दूसरे मित्र, जटायु गृध्र, की अंत्यक्रिया आपने अपने हाथसे किया। जंगलके वानर भालुओंको अपने गले लगाया। उनके आश्लेषण परिष्वजनकी चर्चा वाल्मीकिजीने कई बेर की है। भक्त शबरीका जूठा खाया। क्या इस सबसे बढ़कर सदाचारका निदर्शन चाहिये? देवता तो भक्तिके भूखे हैं। जात नहीं पूछते। महात्माजी भी इतना ही कहते हैं कि बाह्य-शुचिता देखो, जो शर्त सवर्णके लिये वही अवर्णके लिये रक्खो। और इस बातको उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रश्नसे और सहभोजन, सह-विवाह, का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह दूसरा विषय है। जिन समाजोंमें, यथा ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी आदिमें, वर्णभेद नहीं है और हिन्दुओंका-सा छूआछूतका विचार नहीं है, उनमें भी ख़ाहमख़ाह ज़बर्दस्ती सहभोजन सहविवाह तो नहीं है।

कोई सज्जन कह देते हैं कि महात्माजीको धर्ममें दखल नहीं देना चाहिये, राजनीतिमें जो चाहें करें। पर शासकवर्ग कहता है कि राजनीतिमें दखल मत दो, धर्ममें जो चाहे करो। और भीष्म पितामह शांतिपर्वमें कहते हैं।

सर्वे धर्मा राजधर्मे प्रविष्टाः सर्वा विद्या राजधर्मेषु दृष्टाः।
सर्वे योगा राजधर्मेषु युक्ताः धर्मो नान्यो राजधर्मात् विशिष्टः॥

धर्मशास्त्रके आदि ग्रन्थ मनुस्मृतिका प्रायः आधा भाग राजधर्म कहाता है, बाकीमें अन्य सब धर्म कहे हैं। कोई सज्जन कहते हैं कि, जब महात्माजी स्वयं कहते हैं कि मुझको शास्त्रोंका ज्ञान नहीं है, तब क्यों धर्मशास्त्रके विषयमें दखल देते हैं। हे भाई! हृदय शुद्धिसे निर्मल बुद्धि जिसको परमात्माने दे दिया, उसको विशेष विशेष शास्त्र नामक पोथियोंकी आवश्यकता नहीं रहती। 'मेधासि देवि विदिता खिलशास्त्रसारा'। वह तो शास्त्रप्रवर्त्तक होता है, सब शास्त्रोंके सार उसकी बुद्धिमें यों ही उपस्थित हैं।

वेदकी आज्ञा है,

संगच्छध्वम्, संवदध्वम्, संवोमनांसि जानताम्।

आपसमें संगति करो, एक साथ मिलके चलो, संवाद करो, विवाद मत करो, संज्ञान साधो, विरुद्ध ज्ञान मत रक्खो, मत फैलाओ। सर्वसंवादिनी स्थविरबुद्धिः। बूढ़ोंका मुख्य काम यह है कि नई पुश्तके झगड़ोंको मिटाकर उनमें सदा मेल कराते रहें। इस प्रश्नका भी निपटारा ऐसे ही शांत मनसे, परस्पर प्रीतिसे, लोकोपकार बुद्धिसे, ज़मानेको पहिचान करके, कर लेना चाहिये। महात्माजीके प्रेममय अनशनरूपी सत्याग्रहका लक्ष्य यही है कि ऐसा समझौता निपटारा हो जाय और आपसका भेदभाव घटे।

किसी किसी प्रकारसे स्यात् यह दिखाया जासके कि एक अकेले चांडाल जातिके लिये मनुजीने जन्मना अस्पृश्यता कही है। पर जो लक्षण उन्होंने चांडालका लिखा है उसका निश्चित रूपसे इस कालमें मिलना असम्भव है। इसलिये वह अंश स्मृतिका अब बेकार हो गया है। दूसरे जो अर्थ किये जाते हैं वे ठीक मनमें बैठते नहीं। अब तो सबको अपनानेकी आवश्यकता है, ऐसी शर्तोंसे जो सबपर लागू हों। किसीको भी, बिना उन शर्तोंके तोड़े, दूर करना, तिरस्कार करना, उसके मनमें क्रोध जगाना—यह बड़ी भूल है। अपना शरीर, सभीका, उत्तमतम वर्णका भी, भीतर मलमय है, जन्मना महा अस्पृश्य है।

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निस्यंदान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पंडिताह्यशुचिं विदुः॥

तो केवल बाह्य शुचिताकी ही जाँच होनी चाहिये। और यह भी ध्यान करनेकी बात है है कि प्रायः सभी सवर्णोंके यहां, जन्म, विवाह, और मरणके संस्कारोंमें, अवर्णोंके द्वारा, विशेष विशेष कृत्य करानेकी प्रथा चली आती है। फिर देवमंदिरसे देवभक्तको निकालना, किसी प्रकारसे उचित नहीं जान पड़ता है।

सब विचारका निष्कर्ष यह है कि, यदि आप मेरी प्रार्थनाको मानें तो, सब देवमंदिरोंपर ये दो श्लोक मोटे अक्षरोंमें लिखकर लगवा दें, और उनके अनुसार सब देवदर्शनाभिलाषियोंके साथ व्यवहार किये जानेका यत्न करें।

स्पृश्यास्पृश्यविवेके तु जातिनाम न कारणम्।
किंत्ववस्था मनुष्याणां समला निर्मलाऽथवा॥
भक्त्या पूतं मनो येषां देहः स्नानादिभिस्तथा।
ते सर्वे स्वागता ह्यत्र देवदर्शनकांक्षिणः॥

॥ ॐ ॥

सहास्मानवतु, सहास्मान्भुनक्तु, तेजस्विनो [illegible]तमस्तु, मा विद्विषामहै ॐ
ॐ शांतिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु, सौमनस्यमस्तु।

॥ ॐ ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

॥ ॐ ॥

ईश्वरके अवतार

[लेखक—पण्डित सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, एम. ए., भूतपूर्व डी. लिट्. स्कालर, इलाहाबाद युनिवर्सिटी]

सनातनधर्मियोंकी दृष्टिसे इस कलियुगमें धर्मका दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। शायद यह विचार अन्य सज्जनोंके मतसे अयथार्थ और अनुदार मतिका द्योतक हो। तथापि यह निःसन्देह है कि आजकलका नव-सुशिक्षित समाज धर्मके विषयमें प्रत्यक्ष विरोधी नहीं तो अत्यन्त उदासीन अवश्य हो रहा है। परंपरागत धार्मिक विधियोंका पालन, ध्यान, भजन, पूजन इत्यादि बातें उस समाजमें केवल अज्ञान, मूर्खता तथा अंधश्रद्धाके लक्षण समझे जाने लगे हैं। और यदि कोई नव-सुशिक्षित स्वयं इन धार्मिक समझे जानेवाले विषयोंका आचरण करता हो, तो बहुशः वह अपने समाजमें उपहासका विषय बन जाता है।

अधिकतर नव-सुशिक्षित अपने समर्थनमें कहते हैं कि प्रथम तो ईश्वरके अस्तित्वका वैज्ञानिक प्रमाण ही कुछ नहीं है। अर्थात् "मूले कुठारः" न्यायसे ईश्वराराधनविषयक धर्मकी और धार्मिकताकी आवश्यकता ही क्या रही? क्षणभर ईश्वरका अस्तित्व मान भी लिया जाय तो भी धर्माचरणकी आवश्यकता ऐहिक दृष्टिसे—और ऐहिक दृष्टिसे ही हमारा प्रयोजन है—सिद्ध नहीं होती। धार्मिक जनोंका ऐहिक जीवन धर्मोदासीन या धर्मविरोधी जनोंके जीवनसे अधिक सुखमय दिखाई देता तो भी कुछ बात थी। किंतु अनुभव तो प्रायः विपरीत ही दीख पड़ता है। दृष्टांतके लिये संक्षेपमें देख लीजिये कि प्रत्येक छोटे बड़े काममें धार्मिकताका संचार करानेवाला भारतवर्ष जहां अपना स्वातंत्र्य खो बैठा और सैकड़ों वर्ष पराधीनतामें रहकर अत्यंत हीन दशा को प्राप्त हो गया। वहीं धर्मोदासीन इंगलैंड अथवा स्पष्टतया धर्मविरोधी रूस इत्यादि राष्ट्र धर्मका बंधन शिथिल अथवा विछिन्न कर देनेपर परमोच्च स्थानपर जा बैठे।

नव-सुशिक्षितोंकी यह विचारशैली तार्किक या वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रायः निर्दोष है तथा उनके प्रदर्शित अनुभव, दृष्टान्त इत्यादि भी किसीसे छिपे नहीं हैं तब भी इस देशमें आज भी साधारण लोगोंके साथ साथ अनेक विचारशील और विद्वान सज्जन, जिनमें कुछ नव-सुशिक्षित भी शामिल हैं चाहे उनकी संख्या अत्यंत अल्पही क्यों न हो, ईश्वरका अस्तित्व ही नहीं वरन् उसका सर्वशक्तिमत्व, विश्वसंचालकत्व इत्यादि भी संदेहातीत दृष्टिसे मानते हुए धर्मका और धार्मिकताका यथाशक्ति पालन करते दिखाई देते हैं, इसका कारण क्या है? परमज्ञानी पुरुष फलके विषयमें निरपेक्ष ही कहे जाते हैं। अतः किसी भी दशामें उनका धर्माचरणमें तत्पर रहना आश्चर्यकारक नहीं हो सकता। किंतु वस्तुतः ऐसे पुरुषोंकी संख्या हाथकी अंगुलियोंपर गिनने योग्य भी न होनेके कारण इनको विचारमें लेनेकी भी आवश्यकता नहीं। अधिकतर धार्मिक जन, जिनमें अनेक विवेकशील विद्वान् तथा कुछ नवसुशिक्षित भी शामिल हैं, धर्माचरण किसी न किसी फलके सापेक्ष होकर ही करते दिखाई देते हैं। अतः ईप्सित फल न मिलने और विपरीत अनुभव आनेके बाद भी उनकी धार्मिकता नष्ट क्यों नहीं हो जाती और अनन्तर भी वे धर्माचरणमें तत्पर क्यों रहते हैं यह एक गम्भीर प्रश्न है।

सम्भवतः इसका उत्तर यही है कि इन लोगोंकी दृष्टि नव-सुशिक्षितोंकी तरह केवल ऐहिक नहीं है। ईश्वरको ये लोग तर्कशास्त्रातीत तथा आधुनिक विज्ञान शास्त्रकी प्रयोगकक्षाके अगोचर केवल हृदयश्रद्धागम्य मानते हैं तथा धर्मको उसके प्रसादन और प्राप्तिका साधन समझते हैं। धर्माचरणका ईप्सित फल आज न मिला तो और किसी दिन, इस जन्ममें न मिला तो और किसी जन्ममें, अवश्य ही मिलेगा तथा धार्मिकोंकी अवनति और अधार्मिकोंका उत्कर्षवाला दृश्य योग्य काल आते ही ईश्वर बदल देगा और हम धार्मिकोंका उद्धार करेगा ऐसी उनकी दृढ़ भावना रहती है। भगवद्गीता सदृश धार्मिक ग्रन्थोंको साक्षात् ईश्वरनिर्मित मानकर तदन्तर्गत वचनोंपर ये परम विश्वास रखते हैं।

विपरीत अनुभव आनेपर भी इन महानुभावोंकी ईश्वरास्तित्व-श्रद्धा और धर्माचरण प्रवृत्तिके करनेका काम उपर्युक्त ग्रन्थोंके वचन करते हैं। ऐसे वचनोंमें भगवद्गीतान्तर्गत निम्नलिखित ईश्वराश्वासन अत्यन्त महत्त्वका है—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
> (भगवद्गीता ४—७, ८)

वेन, रावण इत्यादिके अधर्मी शासनकालमें बीजरूपमें ही क्यों न हो धर्मका जो अस्तित्व रह सका उसका कारण यही भगवदाश्वासन है। अन्यथा, कंटकमय मार्ग आक्रमण करनेके बाद मिलनेवाले परोक्ष मधुर-रस फलकी निश्चितता किस प्रकार होती और अनायासलभ्य प्रत्यक्ष चारुदर्शन फलको छोड़कर उसीकी प्राप्तिके लिये उस समयके धार्मिक जन हठ क्यों करते? इस आश्वासनमें भगवान् कहते हैं कि जब धर्मका ह्रास और अधर्मका उत्कर्ष होता है तब धार्मिकोंका रक्षण और अधार्मिकोंका विनाश करनेके लिये समय समयपर मैं मनुष्यादिरूपसे पृथ्वीपर स्वयं अवतीर्ण होता हूं। ईश्वरके अवतार लेनेके इस तत्त्वका विकास पुराणादि ग्रन्थोंमें किस प्रकार हुआ है इसका संक्षेपमें विवेचन करना इस लेखका मुख्य उद्देश्य है।

ईश्वरके स्वरूप तथा मायाप्रपंच

आर्योंके ग्रन्थोंमें 'ईश्वर' संज्ञासे निर्दिष्ट तत्त्व एक ही है, यद्यपि उसका निर्देश ऋग्वेद संहितामें 'इंद्र', ब्राह्मण ग्रन्थोंमें 'प्रजापति', उपनिषदोंमें 'ब्रह्म' और अनन्तरके महाभारत पुराणादि ग्रन्थोंमें 'विष्णु', 'शिव' इत्यादि भिन्न भिन्न शब्दोंसे किया गया है। यह तत्त्व परम, नित्य, अशेष सामर्थ्ययुक्त है तथा दृश्य और अदृश्य विश्वका मूल आधार है।

ईश्वरके दो प्रकारके स्वरूप कहे जाते हैं—एक स्थूल या विराट् और दूसरा सूक्ष्म। विराट् स्वरूपका वर्णन महाभारत तथा पुराणोंमें प्रचुरतया पाया जाता है। (उदाहरणार्थ महाभारत २-४३; १२-२८६ इत्यादि, भागवत १-३; २-१; १०-४०,६३ इ० हरिवंश १-४१ इ०) इन वर्णनोंमें कहीं कहीं परस्पर भेद होनेपर भी इनका आशय यही है कि दृष्टि और कल्पनाका गोचर जो विश्व है वही ईश्वरका स्थूल स्वरूप है। इसी स्वरूपके विविधभागोंसे विविध लोकोंकी तथा पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। यह स्वरूप प्रायः दृश्य है और इसकी कल्पनाका बीज ऋग्वेदके पुरुष सूक्तमें* है।

ईश्वरका सूक्ष्म स्वरूप 'हृत्पुण्डरीकान्तरसंनिविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोवकाशम्। अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम्' इत्यादि वचनोंद्वारा निर्दिष्ट है। विश्वके चैतन्यका आधार यही है। विश्वान्तर्यामी होनेपर भी यह स्वरूप अदृश्य है और केवल ज्ञानीजन ज्ञानशक्तिद्वारा उसको स्वहृदयगोचर कर सकते हैं।

इस प्रकार जिसके स्वरूप वर्णित किये जाते हैं वह परमेश्वर निराकार और निर्गुण है। किन्तु उसकी अतुल शक्तिका 'माया' नामक एक अंग है। इस मायाके द्वारा वह अस्वाभाविक बात कर दिखाता है। एवं मायाके योगसे वह "शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं" इत्यादि शब्दोंसे विशिष्ट विष्णुरूपी आकार धारण कर लेता है। इस साकार विष्णुका अधिष्ठान भिन्न भिन्न स्थलोंमें 'वैकुंठ' (भाग० ३-१५ इ०), 'क्षीरसागर' (महा० २-४३-२६ इ०), बदरिकाश्रम अथवा नारायणाश्रम (हरि० १-५० इ०), 'श्वेतद्वीप' (महा० १२-३४३ इ०) से इत्यादि भिन्न भिन्न स्थान बतलाये जाते हैं।

एवं वस्तुतः निर्गुण होनेके कारण सत्त्व, रजस्, तमस् ये गुण ईश्वरकी प्रकृति नहीं हैं, किन्तु मायाके योगसे वह इन बाह्य गुणोंको भी स्वीय कर लेता है। अर्थात् ईश्वरका समय समयपर सात्त्विक, राजस या तामस होना यह वस्तुस्थिति नहीं है, किंतु उसके मायाकी लीला है। इस प्रकार रजस, सत्त्व और तमस्का आश्रय कर वह विश्वकी उत्पत्ति, पोषण और संहार अनुक्रमसे करता है। देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि भिन्न प्रकृति प्रजाका उत्पत्ति, उत्कर्ष, संहार इत्यादि होना ईश्वरकी स्वेच्छासे मायाद्वारा गृहीत त्रिगुणोंमें विषमांशकी उत्पत्ति या मिश्रण होनेका फल है। एवं जब वह तमोगुणको अत्यन्त अधिक अंशमें ग्रहण करता है उस समय दैत्य राक्षसादि अधर्मी प्रजाका अत्यन्त उत्कर्ष तथा देव, ऋषि, सिद्ध इत्यादि धार्मिक प्रजाका उसी अंशमें ह्रास होता है और फलतः पृथ्वी अत्यन्त पीड़ित हो जाती है। ऐसी दशाको बदलकर पुनः धर्म, धार्मिकता इत्यादिका उत्कर्ष करनेकी जब उसको इच्छा होती है तब वह अपने तमोगुणका ह्रास कर सत्त्वगुणको बढ़ा देता है। यह परिवर्तन करनेके उसके जो अनेक प्रकार हैं उन्हींमेंसे उसका 'अवतार' लेनेका प्रकार भी एक है। (अपूर्ण)

अवतार विषयक भिन्न मत

(अ) मायाके द्वारा विशिष्ट आकार धारण कर लेनेपर तथा त्रिगुणोंका स्वीकार कर लेनेपर विश्वसंचालनके लिये परमेश्वरको अनेक प्रपंच रचने पड़ते हैं। चतुर्व्यूहके विवेचनमें (महा० १२-३४७ इ०, ब्रह्मपुराण ७१ इ०) कहा गया है कि कर्मविभागके प्रयोजनसे ईश्वरने अपनी एक मूर्तिकी चार मूर्तियां बनायीं। पहिली अर्थात् मूल मूर्तिसे दूसरी मूर्ति उत्पन्न हुई, दूसरीसे तीसरी और तीसरीसे चौथी, इस प्रकारका इन चार मूर्तियोंका उत्पत्तिक्रम प्रायः ग्रंथोंमें देखा जाता है। इन चार मूर्तियोंके नाम अथवा नामक्रम, गुण, कर्म इत्यादि विषयोंमें मतभेद है तथापि प्रायः इनके नाम क्रमशः वासुदेव, संकर्षण अथवा शेष, प्रद्युम्न अथवा सनत्कुमार, तथा अनिरुद्ध दिये गये हैं। तात्त्विक दृष्टिसे इनके नामके पर्याय क्रमशः पुरुष, जीव, मनस् तथा अहंकार ये भी कहीं कहीं (महा० १२-३४७ इ०) दिये गये हैं जो इनके सूक्ष्म स्वरूपके निर्वाचक मालूम होते हैं।

इनमेंसे पहिली वासुदेवमूर्ति गुणातीत इत्यादि शब्दोंसे वर्णित की गयी है—

> एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः।
> ज्वालामालावनद्धांगी निष्ठा सा योगिनां परा ॥
> दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा।
> वासुदेवाभिधानासौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥
> रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः।
> आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥
> (ब्रह्म० ७१. १८–२१)

*—आजकलके विद्वान् पुरुषसूक्तका अर्थ चाहे जिस प्रकार करें, महाभारत–पुराणादिके लेखकोंके मतसे पुरुषसूक्तमें वर्णित 'पुरुष' विष्णुनारायण ही है तथा तन्निर्दिष्ट 'विराट् स्वरूप' विष्णुका ही स्थूल स्वरूप है। "पुरा नारायणो देवः स्वयंभूः प्रपितामहः सहस्रशीर्षा पुरुषो ध्रुवोऽनन्तः सनातनः ॥ सहस्रास्यः सहस्राक्षः सहस्रचरणो विभुः। इ० (महा० २–४३–१०–११) "जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः। ......"यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः इ०" (भाग० १–३–१–३) "......महाननः क्षत्रभुजो महात्मा विद्वूर[illegible]......इ०।"(भाग० २–१–२३–२५) इत्यादि वाक्योंसे यह स्पष्ट प्रतीत

दूसरी संकर्षण या शेषमूर्ति पृथ्वीको मस्तक पर धारण करनेका काम करती है, कहीं कहीं यह तमोगुणी कही गयी है—

> द्वितीय पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः।
> तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता ॥
> (ब्रह्म० ७१. २१-२२)

तीसरी प्रद्युम्न मूर्तिका काम है प्रजापालन, धर्म-संस्थान इत्यादि करना यह सत्व गुणी कही गयी है—

> तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा।
> सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्म संस्थानकारिणी ॥
> (ब्रह्म० ७१.२२-२३)

चौथी अनिरुद्ध मूर्ति महासागरमें पन्नगतल्पपर शयन करती है, यह रजोगुणी है और प्रजोत्पादनका काम करती है—

> चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा।
> रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि ॥
> (ब्रह्म० ७१. २३-२४)

स्थावर जंगम सृष्टिको निर्माण करनेवाले ब्रह्माकी उत्पत्ति इसी अनिरुद्ध मूर्तिसे हुई।

इनमें प्रद्युम्न नामक जो तीसरी मूर्ति है वही कारण पड़नेपर मनुष्यादि रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेती है—

> या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा।
> सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ॥
> प्रोद्धतानसुरान् हन्ति धर्मव्युच्छित्ति कारिणः।
> पाति देवान्सतश्चान्धर्मरक्षापरायणान् ॥
> यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ॥
> इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारं करोति च।
> प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥
> देवत्वेऽथमनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता।
> गृह्णाति तत्स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा ॥
> ददात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमाः।
> (ब्रह्म० ७१. ९५-४२)

अर्थात् इस मतसे विष्णुका अवतार केवल उसके चतुर्थ भागका ही पूर्णावतार या अंशावतार समझना चाहिये।

(आ) स्थानांतरोंमें इस विषयमें मतवेद पाया जाता है, कहीं कहीं विष्णुकी दो ही मूर्तियां होनेका उल्लेख है, उदाहरणार्थ हरि० १. ४१. १८-२० देखिये—

> तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तम।
> नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥
> द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ।
> प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम् ॥
> सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः।
> पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥

इस कथनानुसार विष्णुकी पहिली मूर्ति सदा द्युलोकमें रहती तपश्चर्या करती है। तथा दूसरी मूर्ति शयनपर योगनिद्रामें रत रहकर तपश्चर्याके कामको छोड़कर विश्वके सृष्टि, संहार इत्यादि जितने ईश्वरी काम हैं उनके करनेमें मग्न रहती है। सहस्रयुग निद्रा करनेके बाद विशिष्ट प्रयोजन वश यही मूर्ति अवतार लेनेका काम करती है। ब्रह्मा तथा अन्य देव इसी मूर्तिकी कलाएं हैं। अर्थात् पहिली मूर्ति के तपश्चर्या करनेके कामको छोड़कर सृष्टि, स्थिति, संहार, अवतार इत्यादि जितने काम हैं वे सब यही दूसरी मूर्ति करती है। टीकाकार नीलकण्ठ इन दो मूर्तियोंको अनुक्रमसे सात्विक और तामसो कहते हैं। ब्रह्म० ८३-२६ में—

> य एतत्परमं धाम य एतत्परमं पदम्।
> भवद्वासुदेवोऽसौ द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥

इस अक्रूरवाक्यमें इसी मतका भास होता है।

यद्यपि ईश्वरके चतुर्व्यूहकी कल्पना पुराणोंकी तरह महाभारतमें भी कहीं कहीं (१२-३४७ इ०) पायी जाती है, तथापि महाभारतमें ऐसे कई स्थल हैं जहांपर ईश्वरके केवल दो व्यूह (वासुदेव और संकर्षण) दिये गये हैं। ऐसे भी कई स्थल हैं जहांपर साधारण पाठमें केवल दो व्यूह हैं और कुछ स्वल्प प्रतियोंके पाठभेदरूपसे शेष दो व्यूह (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) बादमें जोड़ दिये गये हैं। (उदाहरणार्थ, महा० १२-२०६-१०-१३ देखिये) इससे यह कहना अयथार्थ न होगा कि दो व्यूहकी कल्पना प्राचीन है तथा अधिक परिणत चतुर्व्यूहकी कल्पना अनन्तर हुई है। भगवद्गीतामें चतुर्व्यूहका उल्लेख भी नहीं है। किंतु पतञ्जलिके व्याकरण महाभाष्यमें स्थलान्तरसे उद्धृत "जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थ एव" चरणमें चतुर्व्यूहका निर्देश मालूम होता है। अतः चतुर्व्यूहकी कल्पना भगवद्गीतासे अर्वाचीन होनेपर भी पतञ्जलिके समयसे अर्थात् ईसासे पूर्व द्वितीय शताब्दिसे कहीं प्राचीन है। यह मत विद्वद्वर्य डाक्टर सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकरने अपने ग्रन्थमें प्रदर्शित किया है और इसे स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं दीखती। दो व्यूहकी कल्पना चतुर्व्यूहकी कल्पनासे प्राचीन है यह भी ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट होगा।

(इ) यहांपर यह भी कह देना उचित है कि विशिष्ट अवतारोंके वर्णनोंमें ग्रन्थकारोंने चतुर्व्यूह या दो व्यूहकी कल्पनाका ध्यान हमेशा नहीं रखा। प्रायः वर्णनोंमें अवतारके प्रस्तावके समय विष्णुकी जिस मूर्तिका उल्लेख आता है वह वैकुण्ठवासी या क्षीरसागरवासी या नारायणाश्रमवासी विष्णुकी समग्र मूर्ति ही मालूम होती है, न कि उसकी अंशमूर्ति। उदाहरणके लिये महा० १-६५, ब्रह्म० ७२, विष्णु० ४-१५, हरि० १-५०-५५, भाग० ८-१७, १०-१-३ इत्यादिमें प्रायः सभी अवतारोंके प्रसंगके वर्णन देखिये। इन वर्णनोंसे प्रतीत होता है कि विष्णुकी समग्र मूर्ति ही अवतार लेनेका विचार कर अपना कुछ अंश२ पृथ्वीपर भेजती है।

२ यह अंश समग्र मूर्तिका आधा, चतुर्थ या बिलकुल स्वल्प भाग हो सकता है। कृष्ण और बलराम जैसे अत्यंत महत्त्वके अवतार भी वर्णनोंमें विष्णुके एक एक कृष्ण और श्वेत केश अर्थात् अत्यंत स्वल्प अंश कहे गये हैं।

विस्तृत कर्मविभाग करनेसे अधिक परिणत प्रतीत होनेवाली चतुर्व्यूहकी कल्पनासे जिस प्रकार स्वल्पकर्मविभागयुक्त दो व्यूहकी कल्पना प्राचीन है, उसी प्रकार दो व्यूहकी कल्पनासे कर्मविभाग बिलकुल न करनेवाली अर्थात् विष्णुकी एक ही मूर्तिसे अवतारादि सब कर्म करानेवाली यह कल्पना अधिक पुरानी है। ब्रह्म० ७२-२-४ के—

> यदा यदा स्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः।
> धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः ॥
> अवतारं करोत्यत्र द्विधा कृत्वात्मनस्तनुम्।
> साधूनां रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥
> दुष्टानां निग्रहार्थाय ह्यन्येषां च सुरद्विषाम्।
> प्रजानां रक्षणार्थाय आयतेऽसौ युगे युगे ॥

इस विवेचनमें यही तीसरा मत प्रतीत होता है। अन्य अध्यायोंमें प्रतिपादित चतुर्व्यूह या दो व्यूहकी कल्पनाका विशिष्ट अवतारोंके वर्णनोंमें उसी ग्रन्थमें विस्मरण हो जाना यह भी इस तीसरे मतके अधिक प्राचीनताका द्योतक है।

(ई) इन तीनों मतोंमें एक साधारण प्रतिपादन यह है कि अवतारके समय ईश्वर का कुछ अंश ही पृथ्वीपर आता है, शेष अंश मूलस्थानमें कायम रहता है। अर्थात् किसी विशिष्ट अवतारके पृथ्वीपर रहते हुए ईश्वरका मूलस्थानपर मूलरूपमें कोई कार्य करना (उदाहरणार्थ, महा० ११-८ में कृष्णावतारके पृथ्वीपर रहते हुए विष्णुका इन्द्रसभामें पृथ्वीसे सम्भाषण करना, इ०) तथा पृथ्वीपर ही विष्णुके भिन्न अवतारोंका परस्पर सम्मेलन या सम्भाषण होना (उदाहरणार्थ, परशुराम और रामका सीतास्वयम्बर के अनन्तर धनुर्भंग विषयक प्रसंग, हरि० २-३९ इ० में वर्णित परशुराम और कृष्णका सम्मेलन, इ०) इत्यादि वर्णनोंमें इन तीनों मतोंसे कोई असंबद्धता नहीं, क्योंकि ईश्वरके भिन्न भिन्न अंश ये काम एक ही समयपर कर सकते हैं, किन्तु ग्रंथोंके स्थलविशेषोंसे अस्पष्ट रूपसे क्यों न हो, प्रतीत होता है कि किसी प्राचीन समयमें ऐसा भी मत प्रचलित था कि पृथ्वीपर अवतार लेनेके समय ईश्वरका कुछ भी अंश उसके दिव्य अर्थात् मूल शरीरमें शेष नहीं रहता था। उदाहरणार्थ, मत्स्यपुराण ४७-३४ देखिये—

> स्वकला [illegible] तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते।
> युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः ॥

इस चतुर्थ और प्राचीनतम मतसे अवतार एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। (अपूर्ण)

18-11-33

अवतार लेनेके भिन्न भिन्न प्रकार

ईश्वरके अवतार लेनेके प्रकार भी भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं। 'अवतार' शब्दका अर्थ है उपरसे, नीचे उतरना अर्थात् 'ईश्वरके अवतार' का अर्थ है ईश्वरका ऊपरके स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोकसे प्रयोजनवश पूर्णतया या अंशतः पृथ्वीपर आना। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, हयग्रीव इत्यादि अवतार उनके वर्णनोंसे केवल विशिष्ट रूपान्तरसे प्रतीत होते हैं, ईश्वरकी समग्र मूर्तिने या उसके अंशने इन अवतारोंमें पृथ्वीपर आते समय ये ये रूप धारण कर लिये ऐसा वर्णन है। इन अवतारोंके गर्भवास, जन्म१ इत्यादिके वर्णन नहीं पाये जाते।

अतः इन अवतारोंको विशिष्ट रूपान्तर ही कहना उचित है।

वामन, परशुराम,२ राम, बलराम, कृष्ण, दत्तात्रेय, कपिल इत्यादि अवतारोंके प्रायः वर्णनोंमें भगवान्का गर्भवास, जन्म इत्यादिके स्पष्ट निर्देश हैं। ईश्वरके इस प्रकारके अवतार

अवतार लेनेकी रीतियां भी अनेक हैं जिनमेंसे दो तीन प्रधान रीतियोंका सोदाहरण विवेचन करना उचित है।

भाग० ३-२४-६ में कपिलावतारके वर्णनमें लिखा है—

> तस्यां (=देवहूत्यां) बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः।
> कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥

अर्थात् ईश्वरके अंशमें पृथ्वीपर आकार कर्दम ऋषिके वीर्यका आश्रय किया और वहांसे देवहूतिके गर्भमें प्रविष्ट होकर यथाकाल कपिलरूपसे जन्म पाया। एवं भाग० ८-१७-२१-२३ में वामनावतारके वर्णनमें लिखा है—

> अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः।
> उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥
> स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत।
> प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥
> सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम्।
> समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः ॥ इत्यादि

पयोव्रतका पालन करती हुई अदितिको भगवान् विष्णुने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसके इंद्रादिक पुत्रोंका संकट दूर करनेके लिये स्वयं उसके पुत्र रूपसे अवतीर्ण होनेका आश्वासन दिया। इसके अनन्तर भगवान्का अंश कश्यपके शरीरमें प्रविष्ट हुआ और यह बात कश्यपने योगबलसे जान ली। तब अदितिने कश्यपका वीर्य धारण किया जिसमें योग्य समयपर वामनरूपसे जन्म पाया। एवं भाग० १०-२-१६-१८ में कृष्णावतार वर्णनमें लिखा है—

> भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः।
> आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥
> स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः।
> दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥
> ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी।
> दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥
> इत्यादि।

अर्थात् प्रथम भगवान्के अंशमें वसुदेवके शरीरमें प्रवेश किया और तदनन्तर देवकीने वसुदेवसे भगवदंशयुक्त गर्भकी धारणा की।

---

१. भाग० ३. १३. १८ "सद्यःभिन्नस्य तो नासाविवरात्स्वडसानव। वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः" ॥

इस श्लोकमें युधिष्ठिर[?]की चिंता करते हुए ब्रह्मदेवके नासाविवरसे वराह रूपी भगवान् निकल पड़े ऐसा वर्णन है। किंतु नासाविवरसे निकल पड़नेकी अवस्थाको 'जन्म कहना, उचित न होगा।

२—परशुरामकी उत्पत्तिके तथा अन्य कई वर्णन ऐसे है जिनमें परशुरामके ईश्वरावतार होनेका निर्देश नहीं है। उदाहरणार्थ, महा० ३-९८, ३-११६-११७ इ०, ब्रह्म०। देखिये इ० के० जी० शंकर अध्याय ८ इ० देखिये। महाराजने रघुवंशके एकादश सर्गसे परशुरामके ईश्वरावतार होनेकी कल्पना कालिदासके समयमें नहीं थी ऐसा मत प्रदर्शित किया है। किंतु उसी सर्गके श्लोक ८० के 'पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्ररघुनन्दनोऽभवत्' इत्यादि वर्णनसे इस मतका खण्डन किया जा सकता है।

इस प्रकारके वर्णनोंमें ईश्वरके अंशमे नीचे आकर अपने भावी जनकके शरीरमें प्रवेश किया और उसके वीर्यद्वारा भावी जननीके गर्भमें प्रविष्ट होकर वहां यथाकाल वास करनेके बाद मनुष्य रूपसे जन्म पाया ऐसा कहा गया है। भगवान्‌के मनुष्य रूपसे अवतार लेनेकी यह एक प्रधान रीति है।

परशुरामकी कथा महाभारतमें तथा प्रायः सभी पुराणोंमें है, उदाहरणार्थ महा० ३-११६ इत्यादि, ब्रह्म० ८, विष्णु० ४-७ इत्यादि देखिये। भृगुने (किसी किसी वर्णनके अनुसार ऋचीकने) एक चरुके दो हिस्से कर अनुक्रमसे सत्यवतीको और सत्यवतीके माताको सन्तान होनेके लिये प्राशन करनेके लिये दिये। ऋषिके चले जानेपर दोनोंने अपने भाग विपर्यास कर प्राशन किये। यह बात मालूम होनेपर ऋषिने क्रोधवश होकर सत्यवतीसे कहा कि चरुविपर्यासके फलरूप तेरा पुत्र अत्यंत क्रूर प्रकृतिका ब्राह्मण होगा तथा तेरे माताका पुत्र ब्राह्मण प्रकृतिका क्षत्रिय होगा। सत्यवतीके बहुत कुछ कहनेपर ऋषिने अपना शाप बदलकर कहा कि तेरे पुत्रके बदले तेरा पौत्र क्रूरप्रकृति ब्राह्मण होगा। अनन्तर सत्यवतीको जमदग्नि नामक पुत्र हुआ जिसके पुत्र भगवान्‌के अवतार परशुराम हुए। ऋषिके शाप तथा उच्छापका विचार करनेपर सत्यवतीने जो चरुप्राशन किया उसका फल परशुराम ही समझना चाहिये, जमदग्नि नहीं। ब्रह्म० ८ में सत्यवतीके प्राशित चरुको "वैष्णवार्धांश" कहा है। तथा उसके माताके प्राशित चरुको "ऐन्द्र" चरु। नामसे यह प्रतीत होता है कि चरुके "वैष्णवार्धांश" में विष्णुका अंश प्रविष्ट था।

एवं दशरथके पुत्रकामेष्टि यज्ञसे दिव्य पायस उत्पन्न हुआ उसमें स्वयं विष्णु अंशतः प्रविष्ट हुए थे। उस पायसका प्राशनकर दशरथकी रानियोंने गर्भ धारण किया और यथाकाल चार भागोंमें विभक्त विष्णुको राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रूपसे जन्म दिया।

इस प्रकारके वर्णनोंमें कुछ अवतारोंके समय भगवान्‌के अंशने नीचे आकर चरु-पायसादि भक्ष्य पदार्थोंका आश्रयकर तद्द्वारा भावी जननीके उदरमें प्रविष्ट होकर यथाकाल मनुष्य रूपसे जन्म पाया ऐसा कहा गया है। ईश्वरकी मनुष्य रूपसे अवतीर्ण होनेकी यह दूसरी प्रधान रीति है।

कहीं कहीं भगवान्‌ने या उसके अंशने अवतारके समय किसी मध्यवर्ती पुरुष या पदार्थका आश्रय न लेते हुए एकदम भावी जननीके गर्भमें प्रवेश किया ऐसा भी वर्णन है। उदाहरणार्थ कृष्णावतारके प्रसंगमें ही विष्णु० ४-१५-३० देखिये। ईश्वरके अवतार असंख्य कहे जाते हैं—

> प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः।
> भूयश्चैव भविष्यन्ति इत्येवमाह पितामहः॥
>
> (ब्रह्म० १०४-२८)

अतः ईश्वरकी असंख्य अवतार लेनेकी रीतियां भी असंख्य हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

अवतारके प्रयोजन तथा अवसर

अवतारके अवसर तथा प्रयोजनका साधारण नियम भगवद्गीताके "यदा यदा हि धर्मस्य" इस प्रसिद्ध वचनमें है जिसका निर्देश इस लेखके प्रारम्भमें किया जा चुका है। अन्य स्थलोंपर यही वचन इन्हीं शब्दोंमें या कुछ परिवर्तनसे देख पड़ता है। अर्थात् धर्मग्लानि, अधर्मोत्कर्ष, साधुपीड़ा, पापिजनोन्नति इत्यादि अवस्था प्राप्त होना यही साधारणतया ईश्वरके अवतार लेनेका अवसर है तथा ऐसी अवस्थाका नाश कर धर्मसंस्थापन, अधर्मनाश, साधुपरित्राण, पापिजनसंहार इत्यादि करना यही साधारणतया उसके अवतार लेनेका प्रयोजन है।

इस विषयमें अवतारोंके वर्णनोंका विचार कर और भी कुछ कहा जा सकता है। अधर्म और अधर्मियोंके बढ़ जानेसे पृथ्वीका भार अवश्य बढ़ जाता है और ऐसे समय भूभार-हरण करना यह तो अवतारोंका प्रधान उद्देश्य है। कभी कभी धर्मके अच्छी तरह रहते हुए तथा अधर्मके न रहते हुए भी पृथ्वीका भार अन्य कारणोंसे बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ, वराहावतारके अधिकतर वर्णनोंमें पृथ्वीके रसातलमें डूब जानेका कारण पर्वतोंका आधिक्य इत्यादि दिया गया है, न कि अधर्मका प्रचार। एवं यद्यपि अधिकतर ग्रन्थोंमें कृष्णावतारका कारण भूभार-वृद्धिके साथ साथ कंसादिकोंके द्वारा होनेवाला अधर्म इत्यादि भी दिया गया है, तथापि यह उल्लेखनीय है कि हरिवंशमें विष्णु भगवान्‌के यह पूछनेपर कि पृथ्वी तथा देवादिकोंके भयका कारण क्या है, ब्रह्माने उत्तर दिया कि पृथ्वीपर धर्म बिलकुल सुस्थिर है, अधर्मका नाम भी नहीं है, किन्तु बलाढ्य राजाओं तथा क्षत्रियोंकी संख्या अत्यन्त अधिक बढ जानेके कारण पृथ्वी अपना भार सहन करनेको असमर्थ हो गयी है, अतः उसके विनय करनेपर उसका दुःख दूर करानेके लिये उसको लेकर हमलोग आपके पास आये हैं—

> सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः।
> पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्न विप्लवा॥
> युगान्तसदृशै रूपैः शैलोच्चलित बन्धना।
> जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः॥
>
> × × ×
>
> कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथांगता।
> यथा न सीदेत्तत्कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती॥
> अस्या हि पीडने दोषो महान्स्यान्मधुसूदन।
> क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद्भवेत्॥
>
> × × ×
>
> भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया॥
> सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजनो राष्ट्रवर्धनाः।
> नराणां च त्रयो वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः॥
> सर्वे सत्यपरं वाक्यं वर्णा धर्मपरास्तथा।
> सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः॥
> एवं जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात्।
> यथा धर्मवधो न स्यात्तथा मन्त्रः प्रवर्त्यताम्॥
> सतां गतिरियं नान्या धर्मश्चाद्यः सुसाधनम्।
> राज्ञां चैव वधः कार्यो धरण्या भारनिर्णये॥
>
> इत्यादि (हरि० १.५१.१९-३१)

इस प्रकारका-धर्म सहित और अधर्मरहित भूभार नाश करनेके लिये भगवान्‌ने कृष्णावतार लिया और कुरुकुल यदुकुलका संहार कराकर पृथ्वीका रक्षण किया, ऐसा इस वर्णनसे ध्वनित होता है।

एवं भूभार, वह चाहे जिस कारणसे हो, हरण करना यह भी ईश्वरके अवतारोंका एक प्रधान उद्देश्य है।

इसी प्रकार इन्द्रादिक स्वपक्षियोंका रक्षण तथा उनके विपक्षियोंका, चाहे वे अधर्मी न भी हों प्रत्युत परम धार्मिक हों, नाश करना यह भी अवतारोंका एक प्रधान उद्देश्य है। वामनावतारके वर्णनोंमें (उदाहरणार्थ मत्स्य० २४५-२४६, कूर्म० १७, भाग० ८-१८-२३ इत्यादि देखिये) कहा गया है कि बलि अत्यन्त धार्मिक था तथा उसने यज्ञयागादिक अनेक कराये, किन्तु उसने इंद्रादि देवोंको अस्तंगत कर डाला था, अतः इंद्रादि देव तथा उनकी माता अदिति परम भगवद्भक्त होनेके कारण उनके उद्धारके लिये भगवान्‌ने वामन अवतार लेकर बलिका वैभव नष्ट कर डाला एवं कई अवतारोंका प्रयोजन केवल स्वपक्षियोंका रक्षण, साहाय्य इत्यादि करना है।

अवतारोंके अन्य भी कई प्रयोजन पाये जाते हैं। हयग्रीव तथा मत्स्य अवतारका मुख्य उद्देश्य वेदोंका रक्षण करना था। मत्स्यावतारका दूसरा हेतु प्रलयकालमें मनुद्वारा सृष्टिके सत्त्वोंके बीजोंका रक्षण करना था। कपिलावतारका मुख्य प्रयोजन सांख्यशास्त्रका अर्थात् ज्ञानको एक प्रधान शास्त्राका आविष्कार करना और तद्द्वारा देवहूतिको तथा अन्य मुमुक्षुओंको मोक्ष-मार्ग प्रदर्शित करना था। कई जगह उदाहरणार्थ, मत्स्य० ४७-२४८, भाग० १. ३. २१, २. ७. ३६ इत्यादि) व्यास भी विष्णुके अवतार कहे गये हैं। उनका प्रधान कार्य अनेक शाखाएं बना कर वेदका विस्तार करना था। बुद्धावतारका उद्देश्य वेदके अनधिकारी दैत्यादिकोंकी बुद्धिका वेद-निन्दाके द्वारा भ्रमसें डाल कर उनको वेद मार्गसे निवृत्त करना और इस प्रकार वेदका रक्षण करना कहा जाता

एवं अवतारोंके प्रयोजन अनेक होते हैं। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि भगवद्भक्तोंकी दृष्टिसे जो दुःस्थिति है उसको दूर कर सुस्थिति उत्पन्न करना यही सब अवतारोंका साधारण प्रयोजन है।(१)

ईश्वरको मनुष्यादि रूपसे अवतार क्यों लेने पड़ते हैं इसके विषयमें कहीं कहीं (उदा० मत्स्य० ४७ इ० देखिये) एक दूसरा ही कारण दिया गया है। भृगु ऋषिकी पत्नीसे भयभीत होकर इन्द्रने एक बार विष्णुके शरीरमें प्रवेश किया। इन्द्रका रक्षण करनेके लिये विष्णुने उस स्त्रीका वध किया। इसपर भृगुने अपनी पत्नीको पुनरुज्जीवित करते हुए विष्णुको यह शाप दिया कि इस स्त्रीवधके फलरूप तुमको मनुष्य योनिमें सात(६) बार जन्म लेना पड़ेगा, एवं इस कथानुसार भृगुका शाप भी विष्णुके मनुष्य योनिमें अवतार लेनेका एक कारण है।

जिज्ञासुकी शंका

कई जगह जिज्ञासुओंको यह शंका उपस्थित की गयी है (ब्रह्म० ७०, हरि० १.४० इ०) कि वैकुंठके सुखमय और आनन्दमय जीवनका, अल्पकालके लिये क्यों न हो, त्याग कर इस निःसार और भयानक मर्त्यलोकमें जन्म लेकर क्लेशमय मानवी जीवन बितानेकी ईश्वरको बारम्बार इच्छा क्यों होती है? एक तो अपने विराट मूर्तिका संकोच कर किसी साढ़े तीन हाथकी भूचर स्त्रीके अत्यन्त लघु गर्भाशयमें प्रवेश करना, फिर अत्यन्त क्लेशमय गर्भवास भोगना, उसके बाद जन्म पाकर आधिभौतिक इत्यादि दुःखोंकी पीड़ा सहना, फिर शिशुपालादि अनेक शत्रुओंकी गाली सुनना, अनन्तर अनेक प्रकारके विरहादि दुःखोंसे त्रस्त होना इत्यादि इत्यादि मनुष्यजीवनके क्लेशोंको जानते हुए भी ईश्वर बारंबार मनुष्ययोनिमें

---

१. इस विषयपर दोनों प्रकारके अपवाद पुराणादि ग्रन्थोंमें मिलते हैं। एक अवसर रहनेपर भी ईश्वरका अवतार न लेना और दूसरे अवतारका कार्य अवतार न लेकर ही करना। पहिले अपवादका उदाहरण वेन राजाका अत्यंत अधर्मी शासनकाल है, जिसका वर्णन सभी पुराणोंमें है। धर्मका अत्यन्त क्षय होना, यज्ञयागादिक क्रिया तथा ईश्वरोपासना बंद किया जाना इत्यादि दुरवस्था उत्पन्न होनेपर भी वेनका नाश करनेके लिये ईश्वरने अवतार नहीं लिया किंतु ऋषियोंने ही अपने तेजसे उसका नाश किया। अनन्तर ऋषियोंके उसके शरीरका मन्थन करनेपर उसकी भुजाओंसे धार्मिक राजा पृथुकी उत्पत्ति हुई। अधिकतर ग्रन्थोंमें पृथुको भी विष्णुका अवतार नहीं कहा गया है। उदाहरणार्थ, मत्स्य० १०, कूर्म १४ (इसमें पृथुके यज्ञमें विष्णुभगवान्‌ने स्वयं प्रकट हो कर पृथुको अनेक वर दिये ऐसा वर्णन है!), ब्रह्म० २, विष्णु० १. १३ इत्यादि देखिये। हरिवंश १. ५ में भी पृथुके विस्तृत वर्णनमें उसको अवतार नहीं कहा है, किंतु १. ६. के अन्तके "पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः" इस वाक्यके "ब्रह्मयोनिः" (विष्णुः?) शब्दसे अस्पष्टरूपसे उसके विष्णुके अवतार कहे जानेका भास होता है। अन्तिम पुराण भागवतमें १. ३. १४. २. ७. ९, ४.१५. २—१० इत्यादि) तो पृथु स्पष्टरूपसे अवतार माना गया है। तो भी वेनका अन्त ऋषियोंने ही अपने तेजसे किया ऐसा वहांपर भी वर्णन होनेसे इस उदाहरणका अपवाद स्वरूप वहांपर भी कायम है।

दूसरे अपवादका उदाहरण देवोंका कालनेमि इत्यादि दैत्योंसे युद्ध (हरि० १. ४२-४८ इ० देखिये) है। इस युद्धमें देवोंकी असहाय स्थिति हो जानेपर उनकी ओरसे विष्णुने मूलस्वरूपमें ही युद्ध किया और दैत्योंको मारा। अर्थात् वामनावतारके सदृश प्रसंग होनेपर भी विष्णुने अवतार न लेकर मूल स्वरूपमें ही आवश्यक कार्य किया।

६. मत्स्य० ४७ में विष्णुके दस अवतारोंके दिव्य और मानुष ये दो विभाग किये गये हैं। उसके अनुसार नारायण, नृसिंह तथा वामन ये तीन दिव्य अवतार हैं और दत्तात्रेय, मान्धाता चक्रवर्ती, जामदग्न्य राम, दाशरथि राम, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि ये सात मानुष अवतार हैं जिनका कारण भृगु ऋषिका शाप है।

रों प्रकट होता है ? इस शंकाके उत्तर कई प्रकारसे दिये गये हैं। भृगुशाप, अदिति-प्रभृति भक्तोंके मनोरथपूर्ण करना, भूभार-हरण इत्यादि अनिवार्य कारणोंका उपस्थित होना इत्यादि बातोंका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। शेष उत्तरोंका संक्षेप यह है कि विष्णु वस्तुतः सर्वान्तर्यामी गुणातीत परमेश्वर हैं। विष्णुरूपी देह धारण कर वैकुंठादि लोकोंमें रहना इत्यादि सब उसकी मायाकी लीला है, वस्तुस्थिति नहीं है(१)। उसी प्रकार अवतारादि कृत्य भी उसके मायाके ही विलास हैं(२)। अतः वस्तुतः देहाभिमानी न होनेके कारण वैकुण्ठके सुखका अथवा मानवी जीवनके विविध क्लेशोंका उसपर कुछ भी परिणाम नहीं होता। अतः मानवी जीवन कष्टमय होनेपर भी ईश्वरका कारणतः उसे प्राप्त करनेमें बारंबार उद्युक्त होना कुछ भी आश्चर्यकारक नहीं।

दिव्य तथा मानुष अवतार

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन इत्यादि अमानुष या अतिमानुष अवतार केवल मनुष्यसामर्थ्यातीत अद्भुत घटनाओंसे भरे हैं। उनके अघटित स्वरूपोंका विचार करनेपर यह साहजिक भी मालूम होता है। परशुराम, राम, कृष्ण इत्यादि मानुष अवतारोंके प्राचीनतर वर्णनोंसे यह प्रतीत होता है कि इनके किये हुए कार्य अत्यन्त कठिन होनेपर भी प्रायः मानवी शक्तिकी मर्यादासे बाहरके नहीं थे। इन अवतारोंको भी दिव्य कर्म करनेका सामर्थ्य था तथा इस सामर्थ्यका उपयोग भी कभी कभी इन्हें करना पड़ा। किन्तु ऐसा उपयोग इन्होंने अपवादात्मक प्रसंगोंमें ही किया। मानवी सामर्थ्यके ही उपयोगकी पराकाष्ठाका आदर्श स्थापित करना इन अवतारोंके अधिकतर प्रसंगोंका ध्येय मालूम होता है।(३)

अवतारकी पहचान

वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि राम, कृष्ण इत्यादिकोंका ईश्वरावतारत्व विभीषण, भीष्म, नारद इत्यादि भगवद्भक्त तथा ज्ञानी पुरुष पहिचान सकते थे तथा रावण, दुर्योधन, शिशुपाल इत्यादि भगवद्वेषी(१) तथा अज्ञानी पुरुष नहीं पहिचान सकते थे। तेज, बल, पराक्रम, सौन्दर्य, ज्ञान इत्यादि गुणोंकी दिव्य तथा पवित्र पराकाष्ठा होना ईश्वरके मानुष अवतारकी पहिचानका लक्षण कहा जा सकता है। विष्णु० ४-१३-५२ में स्यमन्तक मणिविषयक युद्धमें कृष्णसे पराजित होनेपर जाम्बवान्के जो उद्गार दिये हैं उनसे यह बात सिद्ध होती है—

१ भाग० १ . ३०-३१ "एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः, मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनले। एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥" इत्यादि, महा० १२ ३४७. ४२—४४ "अहं हि पुरुषो ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः ॥ निर्गुणो निष्क्रियश्चैव निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते ॥ इच्छन्मुहूर्तान्नश्येयमीशोऽहं जगतो गुरुः। माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ॥" इत्यादि तथा समान अन्य स्थल देखिये।

२. ब्रह्म० १४०.१६२ इ०, हरिवंश १.४१.१७४ इत्यादि स्थलोंमें अवतारोंको "योगेश्वरयोगमायाः" कहा गया है।

३ उदाहरण महा० ५-७८ देखिये जहां कृष्ण पांडवोंसे कहते हैं कि आपके राज्यलाभके लिये शीघ्र ही कौरवसभामें मैं जो दूतकर्म करनेवाला हूं, वह मेरे दिव्य सामर्थ्यके उपयोग करनेसे अवश्य सफल होगा। किन्तु केवल मानवी सामर्थ्यका ही उपयोग करनेसे असफलता प्राप्त होगी यह अच्छी तरह जानते हुए भी मैं दिव्य सामर्थ्यका उपयोग कदापि न करूंगा।

१ कहीं कहीं इन लोगोंके भगवद्वेषिताको "विरोधभक्ति" संज्ञा दी गयी है तथा इस विरोधभक्तिका फल प्रत्यक्ष भक्तिसे भी उत्तम होता है ऐसा कहा गया है। भाग० ७-१-१० इ० देखिये।

(निर्जितश्च भगवता जाम्बवान्प्रणिपत्य व्याजहार) सुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसादिभिरप्यखिलैर्भवान्न जेतुं शक्यः, किमुतावनिगोचरैरल्पवीर्यैर्नरैर्नरावयवभूतैश्च, तिर्यग्योन्यनुसृतिभिः किमस्यद्विधैः, अवश्यं भवतास्मत्स्वामिना रामेणेव नारायणस्य सकलजगत्परायणस्यांशेन भगवता भवितव्यं, इत्युक्तस्तस्मै भगवानखिलावनिभारावतारणार्थमवतरणमाचचक्षे।

अवतार पहिचाननेके अन्य लक्षण भी कहीं कहीं दिये गये हैं। भाग० ४-१५-९-१० में वेनके प्रेतको मन्थन करनेपर उसकी भुजाओंमेंसे निकले हुए पृथुको ब्रह्मा प्रभृति देवोंने विष्णुका अवतार किस लक्षणसे पहिचाना इस विषयमें लिखा है—

> ब्रह्म जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः।
> वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः।
> पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम्।
> यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥

अर्थात् दाहिने हाथपर विष्णुके चक्रादि चिह्न तथा दोनों चरणोंपर कमल स्पष्टरूपसे होना यह ईश्वरके अवतार होनेका लक्षण है। भाग० ५-४-१ के विष्णुके अवतार कहे हुए ऋषभदेवके भी इसी प्रकारके चिह्न होना प्रतीत होता है।

अवतारावसानके भिन्न प्रकार

ईश्वरके अवतारोंके अन्त होनेके प्रकार भी अनेक हैं। मत्स्य, वराह, नृसिंह, हयग्रीव इत्यादि अवतारके कार्यसमाप्ति होनेपर अन्तर्हित हो जानेके अथवा अपने मूलप्रकृतिमें अर्थात् परमात्मस्वरूपमें मिल जानेके निर्देश हैं। वामन अवतारके कार्यसमाप्ति होनेपर कहीं कहीं (कूर्म० १७ इ०) अन्तर्हित होनेके निर्देश हैं, अन्यत्र (भाग० ८-२३ इ०) इंद्रने उनको स्वर्गमें ले जाकर उपेन्द्र पदपर स्थापित किया ऐसा वर्णन है। रामने अन्तमें देहत्याग कर द्युलोकमें गमन किया (हरि० १-४१-१५४ १५५ इ०) अथवा विष्णुस्वरूपमें प्रवेश किया (ब्रह्म० ६७-६१ इ०) इत्यादि वर्णन हैं। एवं बलराम(२) (भाग० ११-३०-२६ इ०) तथा कृष्ण (विष्णु० ५-३७, ब्रह्म० १०२, भाग० ११-३०, महा० १६-५ इ०) इन दोनों अवतारोंने अन्तमें अपने आत्माको अपने मूल परमात्मस्वरूपमें मिलाकर योगद्वारा देहत्याग किया इत्यादि वर्णन हैं। एवं राम, बलराम, कृष्ण इत्यादि अवतारोंमें ईश्वरने मनुष्य प्रकृति सहज मरणकी लीला भी दिखा दी। कपिल उत्तर दिशामें जाकर योगसमाधिमें मग्न हैं (भाग० ३-३३-३३-३५ इ०) तथा परशुराम अवतारकार्य समाप्त करनेपर पृथ्वी कश्यप ऋषिको दान देनेके अनन्तरसे अबतक महेन्द्र पर्वतपर तपश्चर्या कर रहे हैं (हरि० १-४१-११९, भाग० ९-१६-२६ इ०) ऐसे वर्णन हैं। अर्थात् इन दोनों अवतारोंका

मुख्य अवतारोंकी विभिन्न गणनाएं

विष्णुके अवतार असंख्य कहे जाते हैं। कहीं कहीं ब्रह्मा इत्यादि देव तथा छोटे बड़े सब प्राणी भी विष्णुके अवतार कहे गये हैं। उदाहरणार्थ।

> अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
> यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥
> ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
> कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥
>
> इ० (भाग० १-३-२६-२७)

> अहं (-ब्रह्म) भवो यूयमथोऽसुरादयो
> मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः।
> तस्यावतारांशकला विसर्जिता
> प्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥
>
> अथवा, भाग० ८-५-२१)

२ कहीं कहीं (महा० १६-५ ई०) बलराम के विषयमें कहा गया है कि प्राणत्यागके समय उनके मुखसे शेषनाग निकल पड़ा। कई जगह (महा० १-६८-१५२ ई०) बलराम शेषनागके ही अवतार कहे गये हैं इस बातका तथा शेषनागकी विष्णुकी प्रधान मूर्तियोंमें एक माना गया है (महा० [illegible] ई०) इस बातका भी ध्यान रहना चाहिये।

इत्यादि स्थल देखिये। इन असंख्य अवतारों में कुछ अधिक प्रधान हैं जिनको कहीं कहीं 'लीलावतार' कहा गया है, सामान्यतः इन प्रधान अवतारोंकी संख्या दस है तथा आजकलके प्रचलित मतसे उनके नाम क्रमशः मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि हैं। भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें इनमें से कई अवतारोंकी जगह दूसरे ही अवतार दिये गये हैं। कई जगह "पुष्कर", "व्यास", "हंस", "दत्तात्रेय", "मान्धाता चक्रवर्ती", इत्यादि दश अवतारोंमें गिने गये हैं। कई जगह 'कृष्ण' के स्थलपर 'बलराम' ही अवतार कहे गये हैं, कहीं कहीं बलराम और कृष्ण मिलकर एक अवतार कहे गये हैं। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें 'बुद्ध' को अवतार नहीं कहा गया है। (१)मत्स्यपुराण ४७ के दशावतारोंकी गणनामें वराह, कृष्ण, इत्यादि अवतारोंका निर्देश नहीं है, यद्यपि उसी ग्रन्थके अन्य अध्यायोंमें इनका अवतार-रूपसे विस्तृत वर्णन पाया जाता है। सांख्यशास्त्र प्रवर्तक तथा सगरके साठ हजार पुत्रोंको अपने तेजसे दग्ध करनेवाले कपिल महर्षिका निर्देश करते समय प्रायः सभी पुराणोंने उनको विष्णुका अवतार(२) कहा है यद्यपि उनकी गणना दशावतारोंमें प्रायः नहीं की गयी है। एवं दशावतारोंमें प्रायः न गिने गये "हयग्रीव" इत्यादि अन्य अवतारोंके वर्णन भी महाभारत (१२-३४७ इ०) तथा पुराणोंमें पाये जाते हैं।

१ उदाहरणार्थ महा० १२-३४८-४५ (जहां बुद्ध की जगह हंसको अवतार कहा गया है) इ० देखिये, रामायणमें तो 'यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः' इस वाक्यसे बुद्ध तथा उसके धर्मके प्रति अत्यन्त तिरस्कार प्रदर्शित किया गया है, फिर उसका अवतार माना जाना दूर रहा! महाभारतके प्रक्षिप्त तथा पाठभेदवाले स्थलोंमें ही बुद्धका अवतार-स्वरूपसे निर्देश है। अन्तिम पुराण भागवतमें स्पष्ट-रूपसे तथा उससे प्राचीनतर हरिवंशादि ग्रन्थोंमें अस्फुट रूपसे बुद्ध अवतार कहे गये हैं। वेद विरोधी धर्मके संस्थापक गौतम बुद्धका कालान्तरसे वेदस्वरूपी विष्णुका अवतार बन जाना ऐतिहासिक दृष्ट्या अत्यन्त मनोरंजक है। किंतु इसका अधिक विवेचन यहां नहीं किया जा सकता।

२ कपिल तथा उनके शास्त्रके प्रति भगवद्गीता में भी कई जगह अत्यन्त आदर प्रदर्शित किया गया है। किन्तु ब्रह्मसूत्र २.१. के भाष्यमें सांख्य मत का खण्डन करते हुए श्रीमच्छंकराचार्य कहते हैं— "......यातु श्रुतिः कपिलस्य ज्ञानातिशयं प्रदर्शयन्ती प्रदर्शिता न तया श्रुतिविरुद्धमपि कापिलं मतं श्रद्धातुं शक्यं, कपिलमिति श्रुतिसामान्यमात्रत्वात्। अन्यस्य च कपिलस्य सगरपुत्राणां प्रतप्तुर्वासुदेवनाम्नः स्मरणात्... ।" अर्थात् उनके मतसे श्रुतिविरोधी निरीश्वर सांख्य मतके प्रवर्तक कपिल तथा सगरपुत्रों को दग्ध करनेवाले कपिल ये दो भिन्न व्यक्ति हैं तथा भगवद्गीतामें जिनका आदरपूर्वक निर्देश किया गया है वे ये दूसरे कपिल हैं, सांख्यशास्त्र प्रवर्तक कपिल नहीं। महा० ३.१०६-१०७ इ० में सगरपुत्रोंको दग्ध करनेवाले कपिलका निर्देश "महात्मानं तेजोराशिमनुत्तमम्, तेजसा दीप्यमानं तु ज्वालाभिरिव पावकम्", "कपिलो मुनिसत्तमः, वासुदेवेति यं प्राहुः कपिलं मुनिपुङ्गवम्", "पुराणमृषिसत्तमम्" इत्यादि शब्दोंसे किया गया है। हरि० १.१४-१५ में इनको विष्णुका अवतार कहा गया है किन्तु इनका सांख्यशास्त्रसे सम्बन्ध ध्वनित भी नहीं किया गया है। विष्णु० ४.४.१२ में इनका वर्णन "...सकल विद्यामयमसंस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्यांशभूतं कपिलं..." इत्यादि शब्दोंसे किया गया है। यहांपर कदाचित् "सकल विद्यामयं" विशेषणसे इनका सांख्यशास्त्रप्रवर्तकत्व ध्वनित किया गया हो, पर उसका स्पष्ट निर्देश नहीं है। किन्तु भागवतके १.३.१० (पंचमः कपिलोनाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्। प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥) २.७.३., ३.२४-३३ इत्यादि स्थलोंमें स्पष्ट शब्दोंसे सांख्य-शास्त्रप्रवर्तक कपिल ही विष्णुके अवतार कहे गये हैं तथा ९.८ के सगराख्यानके कपिलके "यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम्" इत्यादि वर्णनमें सगरपुत्रोंका जिसके कारण उच्छेद हुआ वे कपिल येही थे ऐसा कहा गया है। एवं श्री शंकराचार्यने जिनको प्रसंग भेदसे भिन्न माना वे कपिल वस्तुतः एकही व्यक्ति थे तथा वे विष्णुके अवतार थे ऐसा भागवतमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है।

कूर्मपुराणमें अन्यत्र वराह, नृसिंह, वामन, राम इत्यादि अवतारोंका विस्तृत वर्णन है तथा अध्याय १४ में तो शौनकादि ऋषियोंको पुराण सुनानेवाले सूतजी भी स्वयं अपनेको विष्णुके अवतार कहते हैं। किंतु अध्याय ५१ में विष्णुके ये सात अवतार दिये गये हैं—रुचिप्रजापतिपुत्र, तुषितापुत्र, सत्यापुत्र, हर्यापुत्र, मानस (?), विकुण्ठापुत्र तथा अदितिपुत्र वामन। वहां यह भी कहा गया है कि विष्णुके सातही अवतार हुए—

इत्येतास्तनवस्तस्य, सप्तमन्वन्तरेषु वै।
सप्त चैवाभवन्विप्राः याभिः संवर्धिताः प्रजाः ॥

यद्यपि अनन्तर उसी अध्यायमें व्यासको भी विष्णुका पूर्णावतार कहा गया है—

कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम्।
अवातरत्स सम्पूर्ण स्वेच्छया भगवान् हरिः ॥
इत्यादि।

भागवत १-३ तथा २-७ में विष्णुके बाईस अवतार भिन्न क्रमसे दिये गये हैं। १—३ में सनत्कुमार, वराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्त, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कमठ, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि तथा २-७ में वराह, सुयज्ञ, कपिल दत्त, चतुःसन (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) नरनारायण, पृथु, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, गजेन्द्रमोक्षकर, वामन, हंस, धन्वन्तरि, परशुराम, राम, बलराम-कृष्ण, व्यास, बुद्ध और कल्कि ये अवतार क्रमशः दिये गये हैं। एवं एकही ग्रंथमें एकही स्कंधके अंतरसे केवल क्रमही नहीं, कुछ अवतार भी बदल गये हैं। अवतारोंकी संख्या बढ़ जाना तथा अवतार विज्ञानका अन्य ग्रन्थोंसे अधिक विकास प्रदर्शित होना यह इस ग्रन्थकी महाभारत-हरिवंशादि अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा अर्वाचीनता दिखाने वाले अनेक प्रमाणोंमें एक है।

ग्रन्थान्तरोंमें विष्णुके प्रधान अवतारोंकी संख्या भिन्न तथा इससे भी अधिक दी हुई है। किंतु उनका संक्षेपमें भी यहां वर्णन करना सम्भव नहीं है। (१)

१ ऊपरके विवेचनमें विष्णुस्वरूपी ईश्वरके ही अवतारोंका तथा उनके तत्त्वोंका संक्षेपमें उल्लेख किया है। ईश्वरके 'शिव', 'शक्ति' 'गणेश' इत्यादि अन्य स्वरूप भी इसी या कुछ भिन्न प्रकारसे अवतार लेते हैं तथा उनके वर्णन पुराणों तथा सांप्रदायिक ग्रंथोंमें प्रचुरतया मिलते हैं। उदाहरणार्थ, कूर्म० ११ में "शिव" के सम्बन्धमें लिखा है कि प्रथम उन्होंने अपनेको स्त्रीत्व तथा पुरुषत्वमें विभक्त किया तथा अनन्तर पुरुषत्वको कपालीश प्रभृति एकादश रुद्रोंमें और स्त्रीत्वको शक्तिसंज्ञक सौम्य, असौम्य, शांत तथा अशांत भागोंमें विभक्त किया। शिवके अंश अन्य कामोंके साथ साथ अवतार लेनेका काम भी करते हैं। कूर्म० ५३ में शिवके अट्ठाइस अवतारोंका, जो सब भिन्न भिन्न कलियुगोंमें हुए, वर्णन है। कूर्म० ३० में व्यास अर्जुनसे कहते हैं—

"कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।......
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः। श्रौतस्मार्त प्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया ॥ उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्। सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान्वेदनिदर्शनात् ॥ इ०" इस कथनमें शंकराचार्य शिवके अवतार थे इस भावनाका प्रतिबिम्ब मालूम होता है। दक्षयज्ञविध्वंसके लिये शिवके अपनी जटा फटकार कर निर्माण किये हुए वीरभद्रभी एक प्रकार से शिवके अवतार कहे जा सकते हैं। कूर्म० ११ इ० में वर्णित ईशानीके सती, पार्वती इत्यादि अवतार, प्रसिद्ध ही हैं। तब भी ग्रन्थोंसे यह बात स्पष्ट है कि अवतार लेनेके कामें प्रधानता ईश्वरके विष्णुस्वरूप को दी है अतः ईश्वरके अन्य स्वरूपोंके अवतार कर्म का अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं।

अवतार-कल्पनाके वैदिक बीज

प्रसंगतः ईश्वरके अवतार लेनेकी कल्पनाका विकास महाभारत, रामायण तथा पुराणोंके समयमें विशेष परिमाणमें हुआ यह निःसन्देह है। तथापि इस कल्पनाके बीज वेदकालमें भी दिखाई देते हैं। कात्यायनके सर्वानुक्रम(१) शौनकके बृहद्देवता(२) इत्यादि वेदविषयक वाङ्मयमें ही क्या, उपनिषदों(३) तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें(४) भी इच्छानुसार तथा प्रसंगतः देवादिकोंके भिन्न भिन्न रूप धारण करने तथा जन्म लेनेके वर्णन प्रचुरतया दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं, वरन् कहा जा सकता है कि ऋग्वेद संहितामें भी अवतारकी कल्पनाका बीज अस्फुट रूपसे वर्तमान है। यह सिद्ध करनेका स्वल्प प्रयत्न नीचे कुछ उदाहरणोंसे किया गया है।(५)

ऋक्० १०-५३-५ "पंच जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः। पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसो अंतरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥

इस ऋचाके भाष्यमें सायणाचार्य 'पंच जनाः' का अर्थ 'देवादयः' तथा 'गोजाताः' का अर्थ 'भूम्यामुत्पन्नाः, यद्वा पय आदिकं' ऐसा करते हैं। ऋक्संहितामें अनेक जगह 'गो' शब्दका अर्थ 'पृथ्वी' ही निःसन्देह है। अतः सम्पूर्ण ऋचाका विचार करनेपर सायणका 'गोजाताः' समासका प्रथम अर्थ ही स्वाभाविक मालूम होता है। 'पंच जनाः' का 'देवादयः' अर्थ अन्य विद्वानोंकी दृष्टिसे ठीक नहीं है तथा सायणने भी अन्यत्र इस शब्दसमूहका अर्थ अन्य प्रकारसे किया है। तथापि 'गोजाताः' तथा 'यज्ञियासः' इन विशेषणोंका तथा 'होत्रं जुषंतां' कर्म और क्रियापदका विचार करनेपर 'पंच जनाः' कर्तृपदका 'देवादयः' अर्थ योग्य मालूम होता है। यदि यह अर्थ योग्य हो तो इस ऋचामें देवादिकोंके पृथ्वीपर जन्म अथवा अवतार लेनेका निर्देश प्रतीत होता है। किंतु विशिष्ट शब्द संदिग्ध होनेके कारण इस ऋचाके अर्थका पूर्ण निश्चय होना तथा उसमें भासमान होनेवाले निर्देशके विषयमें आग्रह करना सम्भव नहीं है।

मायाके द्वारा इन्द्रके अनेक रूप धारण करनेके उल्लेख ऋक्संहितामें हैं। उदाहरणार्थ,—

रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्व परि स्वां।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैर नृतुपा ऋतावा ॥
(ऋक्०३-५३-८)

अथवा,

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्यहरयः शतादश ॥
(ऋक्० ६-४७-१८)

इत्यादि स्थल देखिये। 'माया' शब्दका वैदिक अर्थ प्रचलित अर्थसे कुछ भिन्न है तथा इन्द्रके अनेक रूप धारण करनेके वर्णनमें अवतारकी कल्पनाका पूर्णरूपसे नहीं किंतु अंशतः ही सादृश्य है। तथापि उपर्युक्त ऋचाओंमें महाभारत पुराणादिग्रन्थवर्णित ईश्वरके 'योगेश्वरयोगमायाः' संज्ञक तथा रूपान्तरादियुक्त अवतारोंका बीज है इसमें सन्देह नहीं।

यस्ते शृंगवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः।
न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ (ऋक्० ८-१७-१३)

इस ऋचामें इन्द्रको "शृंगवृषो नपात्" अर्थात् "शृंगवृषके पुत्र या पौत्र" ऐसा संबोधन किया गया है। सायणने इसका भाष्य "शृंगवृषा नाम कश्चिदृषिस्तस्य चेंद्रः स्वयमेव पुत्रतया जज्ञे इत्याख्यायिका। यद्वा··· आदित्यस्य रक्षितः······" ऐसा किया है। यदि उनकी दी हुई इन्द्रके शृंगवृषऋषिके पुत्ररूपसे जन्म लेनेकी आख्यायिका प्राचीन तथा अन्य ग्रन्थोंके आधारसे युक्त हो तो अवश्य ही इस ऋचामें अवतारवादका स्पष्ट निर्देश है। किंतु इस विषयमें आग्रह नहीं किया जा सकता, क्योंकि सायणने ही उक्त संबोधनका दूसरा पर्याय अर्थ भी किया है।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिंद्र सुन्वते
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या
(ऋक्०१-५१-१३)

इस ऋचामें इन्द्रकी प्रशंसामें कहा गया है कि वे वृषणश्व (नामक पुरुष) की मेना (नामक स्त्री या कन्या) बन गये थे। सायण अपने भाष्यमें लिखते हैं—"वृषणश्वस्य एतदाख्यस्य राज्ञः······मेना नाम कन्याका अभूः। तथा च शाट्यायनिभिः सुब्रह्मण्यामंत्रैकदेशव्याख्यानरूपं ब्राह्मणमेवमाम्नायते। वृषणश्वस्य मेन इति वृषणश्वस्य मेना भूत्वा मघवा कुले उवासेति। तां च प्राप्तयौवनां स्वयमेवेंद्रश्चकमे। तथा च तांडिभिराम्नातम्। वृषणश्वस्य मेना नाम दुहितास। तामिंद्रश्चकम इति। ······मेनेति स्त्रीनाम, मेनाग्ना इति पाठात्। मन ज्ञाने, मन्यते गृह कृत्यं जानातीति मेना।······मेना मानयंत्येना इति यास्कः।" अर्थात् इन्द्र वृषणश्व नामक राजाकी मेना नामक कन्या बन गये थे। यह अर्थ सायणका स्वकपोलकल्पित नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने इस अर्थके पक्षमें शाट्यायन तथा तांड्य इन दो ब्राह्मणोंके प्रमाण उद्धृत किये हैं। अर्थात् इस ऋचामें इंद्रका स्त्री रूपसे अवतार लेनेका निर्देश है। कमसे कम ब्राह्मण्यकालमें इस ऋचामें यह निर्देश पाया जाता था। इंद्रका मेना बन जानेका निर्देश ऋक्० १०-१११-३ में भी है।

उपरिनिर्दिष्ट तथा समान अन्य ऋचाओं में, संदिग्धरूपमें क्यों न हो, अवतारके कल्पनाके बीज उपस्थित हैं, यह कहना अयथार्थ न होगा।

३ उदाहरणार्थ, ऐतरेय उपनिषद्का प्रारम्भ देखिये।

४ उदाहरणार्थ, शतपथ ब्राह्मण ११-५-१ इत्यादि देखिये।

५ अवतारतत्त्वसे आत्माका अमरत्व एवं मरणोत्तर उसका अन्य लोकोंमें अथवा अन्य योनियोंमें अवस्थान तथा मनुष्ययोनिमें पुनर्जन्म इत्यादि विषयका श्रद्धासे निकट सम्बन्ध है, यह अलग कहनेकी आवश्यकता नहीं। ऋक्संहिताकालमें यह श्रद्धा प्रचलित नहीं थी ऐसा अनेक पाश्चात्य विद्वानोंका मत है। प्रोफेसर रा० द० रानडे महोदयने अपने "कांस्ट्रक्टिव सर्वे आव उपनिषदिक फिलासफी" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थमें (१४९ पृष्ठसे आगे) इस मतका सयुक्तिक खंडन कर ऋक्संहिताके १-१६४-४ 'को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था (अशरीर आत्मा) बिभर्ति। भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित्को विद्वांसमुपगात्प्रष्टुमेतत् ॥' १-१६४-३८ 'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो (अमर आत्मा) मर्त्येना (मर्त्य शरीर) सयोनिः। ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् ॥' १-१६४-३१ "अपश्यं गोपाम् (शरीरका अधिष्ठाता आत्मा) अनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति (क्रियापदके इस रूपसे आत्माका इस लोकमें बारम्बार लौट आना ध्वनित होता है) भुवनेष्वन्तरिति ॥' तथा १०-१६-३ 'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा (इस शब्दके प्रयोगमें उनके मतसे कर्मवादका प्राचीनतम ध्वनि प्रतीत होती है।) अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥" १०-५८-१-१२ 'यत्ते यमं वैवस्वतं मनो (आत्मा) जगाम दूरकं। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ इ०" इत्यादि स्थलोंसे उक्त श्रद्धाके सभी अंग ऋक्संहिताकालमें प्रचलित थे ऐसा सिद्ध किया है। एवं आत्माके मरणोत्तर अस्तित्वकी श्रद्धा मेध्य अश्वको कहे गये हुए १-१६२-२१ 'न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवां इदेषि पथिभिः सुगेभिः।" इत्यादि शब्दोंसे तथा पुनर्जन्मकी श्रद्धा वालखिल्य ४-७ "कदाचन प्र युच्छसि उभे नि पासि जन्मनी। इ०" इत्यादि अन्य प्रमाणोंसे भी ऋक्संहिताकालमें प्रस्थापित की जा सकती है। वालखिल्ययुक्त परिशिष्ट होनेपर भी प्रायः ऋक्संहिताके दशम मण्डलके बराबर ही प्राचीन हैं इस विषयपर विद्वानोंका ऐकमत्य है।

१ उदाहरणार्थ, ऋक्संहिता २-४२-४३ के देवता सर्वानुक्रममें कपिंजलरूपी इन्द्र कहे गये हैं।

२ उदाहरणार्थ, बृहद्देवता -११४, इ० देखिये - "······इन्द्रः सद्यः वर्तयिषु ॥ हर्यमिन्द्र··· ···
··· गतः ॥"

विशिष्ट अवतारोंके वैदिक बीज

कुछ विशिष्ट पौराणिक अवतारोंके बीज भो वैदिक वाङ्मयमें पाये जाते हैं। ऋक्संहिताके "त्रीणि पदा विचक्रमे" इत्यादि विष्णु के वर्णनमें वामनावतारका बीज है। ऐतरेय ब्राह्मण ६-१५, शतपथ ब्राह्मण १-२-५ तथा १-९-३, तैत्तिरीय संहिता २-१-३, तैत्तिरीय ब्राह्मण १-६-१ इत्यादि स्थलोंमें वामनावतारके इस बीजका उत्तरोत्तर विकास प्रदर्शित होता है। शतपथ ब्राह्मण १-८-१ में प्रलयसे मनुको बचानेवाले। मत्स्यका विस्तृत वर्णन, जो पुराणोंके वर्णनसे प्रायः मिलता है, पाया जाता है, यद्यपि मत्स्यका वहां विष्णुका अवतार नहीं कहा है एवं शतपथ ब्राह्मण ७-५-१, तैत्तिरीय आरण्यक १-२-३ इ० के प्रजोत्पादन करनेके समय प्रजापतिके कूर्मरूप धारण करनेके वर्णनमें कूर्मावतारका मूल पाया जाता है। ऋक्० १-६१-७ तथा ८-६६-१०, तैत्तिरीय संहिता ६-२-४ तथा ७-१-५, काठक संहिता ८-२ तथा २५-२, शतपथ ब्राह्मण १४-१-२, तैत्तिरीय ब्राह्मण १-१-३, इत्यादि स्थलोंमें वराहावतारका बीज तथा उसका विपरीत विकास पाया जाता है। एवं मत्स्य, कूर्म, वराह तथा वामन अवतारोंके वर्णनोंके बीज वैदिक वाङ्मयमें हैं। (१)

ईश्वरके अवतार विषयक तत्वका संक्षेपमें इतना विवेचन करके अब यहीं विराम लेना उचित है। यद्यपि अवतारतत्त्वका विकास आर्योंके विभिन्न दर्शनोंमें विशिष्ट सम्प्रदायोंके (आगम) ग्रन्थोंमें तथा परदेशियों और परधर्मियोंके तत्त्वग्रंथोंमें भी भिन्न भिन्न प्रकारसे स्पष्टतया अथवा संदिग्धतया हुआ है, तथापि उनका आदर्श उद्धृत करना स्थलाभाव और कालाभावके कारण इस लेखकके लिये आज ही संभव नहीं है। कालान्तरमें यह कार्य करनेकी सामर्थ्य सर्वशक्तिमान् दयाघन ईश्वरकी कृपासे प्रस्तुत लेखकको प्राप्त होगा इतनी आशा प्रदर्शितकर आज जो कुछ स्वल्प सेवा बन सकी वह सच्चिदानन्दमय अवतितीर्षु ईश्वरके चरणारविन्दपर अत्यंत भक्तिपुरः सर समर्पित की जाती है। (२)

१ विशिष्ट अवतारोंमें कुछ वैदिक हैं तथा अन्य पौराणिक हैं इस बातका ज्ञान पुराणकारोंने भी कभी कभी प्रदर्शित किया है। उदाहरणार्थ, हरि० १-४१ में वामनावतारवर्णनके अन्तमें श्लोक १०३ में कहा है—"एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः॥" तथा रामावतारवर्णनके उपसंहारमें श्लोक १४९ में कहा है—"गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः। रामे निबद्धतत्त्वार्थां माहात्म्यं तस्य धीमतः॥ इ०॥"

२ इस लेखमें महाभारत तथा पुराणग्रन्थोंके निम्नलिखित मुद्रणोंका उपयोग किया गया है—१ महाभारत—कुम्भकोण मुद्रण, २ मत्स्यपुराण—आनन्दाश्रम मुद्रण, ३ कूर्मपुराण—बिब्लिओथिका इंडिका मुद्रण, ४ हरिवंश तथा ५ ब्रह्म और ६ विष्णु पुराण—वेङ्कटेश्वर प्रेस मुद्रण ७ भागवत—गणपत कृष्णाजी मुद्रण तथा ऋक्संहिताका सायण भाष्य—मैक्समूलर मुद्रण। अन्य संदर्भग्रंथ प्रायः पाठभेदविरहित ही हैं।

सना० धर्ममें शूद्र तथा अन्त्यजोंका आदर

(लेखक रायसाहिब पं० दुर्गादत्तजी पन्त)

वेद-पुराण धर्म ग्रन्थोंमें लिखा है ब्राह्मण परमात्माके मुखसे उत्पन्न हुए क्षत्रिय भुजासे वैश्य उरूसे शूद्र चरणोंसे प्रकट हुए। शूद्रोंके दो भेद रखे गये एक सत् शूद्र—"सच्छूद्रौ गोप-नापितौ" ग्वाल नापित आदि सच्छूद्र कहे गये। शेष दूसरे अन्त्यज माने गये। इस प्रकार वर्णोंकी उत्पत्ति हुई। जिस ईश्वरके मुख आदि अंगोंसे द्विज अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्योंने जन्म लिया उन्हीं साकार भगवानके चरण कमलोंसे शूद्र-अन्त्यजादि-जन्मे। जिन चरणोंका ध्यान ऋषि मुनि धरते हैं जिन चरण कमलोंसे श्रीगंगाजी निकलीं। वही चरण शूद्र-अन्त्यजोंकी उत्पत्तिका स्थान बताया गया है। इससे अधिक शूद्र अन्त्यजोंका आदर किसी धर्ममें जानेसे नहीं हो सकता। शूद्रों तथा अन्त्यजोंमें जो भगवत भक्त और महात्मा हुए उनकी प्रशंसाके भजन द्विज लोग स्वाध्यायमें पढ़ते हैं। और गाते हैं जैसा कि उदाहरणमें एक भजन दिया जाता है। "यह चादर झीनी रे झीनी गुरुने ओढ़ी प्रह्लादने ओढ़ी ओढ़ी सदन कसायी। दास कबीरा ऐसी ओढ़ी ज्योंकी त्यों धर दीन्हीं॥" इन लोगोंके रचित भजन जहां वेद पाठ होते हैं विष्णुसहस्रनाम आदि स्तोत्र पढ़ जाते हैं। उन्हीं पवित्र भगवत् मंदिरोंमें पूजाके समय इनके पद्य पढ़े जाते हैं। इससे अधिक प्रेम और आदर क्या हो सकता है। रहा अस्पृश्यताका प्रश्न सनातनधर्मावलम्बी दिनभरमें अनेक वार अपने प्राणप्रिय पुत्र-पुत्रियों तकका भी स्पर्श नहीं करते जब कि पूजा-उपासना-भोजनादिमें बैठते हैं। सभीको उस समय अस्पृश्य मानते हैं। किसीको भी नहीं छू सकते प्रत्येक मासके तीन दिवस अपनी अर्द्धांगिनी धर्मपत्नीको भी अछूत मानते हैं। तो क्या इनका अनादर करते हैं। इसी प्रकार अन्त्यजोंको प्रत्येक दिन नहीं छूते एक दिन इन अन्त्यजोंको छूने यहांतक कि गले लगाने का दिन निश्चित किया हुआ है। अर्थात् होलीके प्रभातमें धूलिवन्दना-धुलहड़ी चैत्र कृष्ण प्रतिपदाको भारत माताकी धूलिको परस्पर शिरोंमें डालते चांडाल पर्यन्त सबको गले लगाकर मिलते हैं। उस दिनके लिये यहांतक धर्मशास्त्रमें बताया है—कि अन्त्यजोंके स्पर्शसे एक वर्षतक शरीर आरोग्य रहता है। अस्पृश्योंका स्पर्श करनेकी विधि बतायी गयी है। नित्य प्रति स्पर्श नहीं करते यह मर्यादा रक्खी गयी है जो सनातन धर्मकी इन बातोंको नहीं जानते वह लोग अथवा आर्य समाजी—इन, अछूतोंको समझाते हैं कि सनातन धर्मी तुम्हें ठुकराते हैं, अनादर करते हैं जो ठीक नहीं है।

जो आज कल पाश्चात्य विद्या पढ़े हुए सुधारक लोग इन्हें छूते हैं उनपर यह कहावत चरितार्थ होती है। "दाना घास कुछ नहीं घोड़े पर खुरेरा-बुरस बार बार"—अर्थात् इन अछूतोंके योग क्षेम आजिविकाकी इन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं। केवल छू लेना। एक दिन इन्हें साथ बैठाकर इन लोगोंके हाथ भोजन कर लेना बस इतना ही देखा गया है। पुनः यही सुधारक (रिफार्मर) जब जाति सभाओंमें खड़े होकर स्पीचें झाड़ते हैं तो उस कालमें इन अछूतोंके मुंहका टुकड़ा छीन लेनेमें कसर नहीं रखते। स्पीचोंमें कहते हैं कि विवाहोंमें-मृतक श्राद्धोंमें-दावतोंमें-अधिक पक्वान्न-मिष्टान्न-नहीं परोसना चाहिये उतना ही रक्खा जाय जितना कि एक मनुष्य खा सकता है। यह सब व्यर्थ जाता है यह भेङ्गी—चमार मुफ्त ले जाते हैं। यह सुधारक इस अवसर पर इनका भोजन बन्द कराते हैं। सनातनधर्मी उदारतासे प्रशस्त भोजन इसी उद्देश्यसे रखते हैं कि बचा रहे। इसे अन्त्यजोंको दिया जाय। एक सनातन धर्मीके मृतक श्राद्धमें इतना भोजन इन्हें मिल जाता है जिसे यह कई सप्ताह तक खाया करें इन सुधारकोंके डिनर-या पार्टीमें क्या रक्खा है वहां अधिक परोसना व्यर्थ व्यय है। थोड़ी चाह और बिसकुटका टुकड़ा है उसे ले जावो। पहले विवाहोंमें वर-वधू-पर रुपये लुटाते थे जिन्हें अन्त्यज लोग लूटते थे वह इन बाबुओंने बन्द करा दिया दुशाले-हाथोंके आभूषण इन बेचारे अन्त्यजोंको विवाहादि उत्सवोंपर मिलते थे वह सब इन सुधारकोंने देने बन्द करा दिये यह तो केवल छू लेना जानते हैं। और कुछ नहीं अछूत मरें या जीयें इनका कुछ सम्बन्ध फिर नहीं रहता। गरीब चमारोंके हाथके बने जूते नहीं खरीदते। इन बाबू लोगोंको चाहिये फैन्सी जोड़े। कञ्जरोंके हाथके छीके—सूप-इनके बंगलोंमें नहीं मिलेंगे। वह मिलेंगे पुराने चलनमें चलनेवाले सनातन धर्मियोंके गृहोंमें। इसी शताब्दिमें इन लोगोंपर यह सुधारक करुणा-सिन्धु बनकर इनपर दया बरसाते हुवे इनको छूनेने लगे हैं इससे प्रथम इन्हें भूले हुए थे।

सन् २१ से इन अछूतोंपर इन सुधारकोंको दया आई है इससे पहले कभी यह ध्यान नहीं आया यह कौन हैं? सनातनधर्मी सैकड़ों वर्षसे अछूतोंसे प्रेम रखते आये हैं हमारे नगरके एक प्रतिष्ठित धनी अपने पुत्रका विवाह करने दूसरे नगरमें गये वहां एक भंगीकी लड़कीसे यह कहते सुना कि यह वरके पिता मेरे बाबा हैं। यह सुनकर वह धनी बोले तू क्या हमारे शहरकी है? उसने कहा कि बाबा मैं तुम्हारे घरके मेहतरकी लड़की हूँ यहीं व्याही हूँ। तो धनीने कहा अपने पतिको बुलाला वह ले आयी धनी बोले यह हमारी बेटी है तू इसका पति है तेरा हक है ५) रु० देकर विदा किया। इस प्रकार अन्त्यजोंसे नाता बरतते थे, लेखकको याद है बाल्यावस्थामें मैं अपनी बूढ़ी महतरानी (भंगन) को बुआजी कहता था। इस तरह अन्त्यजोंका आदर किया जाता था। वह सुधारक सिर्फ स्वार्थ इन लोगोंसे निकालते हैं प्रेम कुछ नहीं रखते। भगवत नाम संकीर्त्तनमें जितना अधिकार द्विजोंको है-उतना ही समान अधिकार अन्त्यजोंको भी है। यह इस कालमें उनकी इच्छा विरुद्ध भी उन्हें मंदिरोंमें ले जानेको कहीं कहीं मजबूर करते हैं। इन लोगोंके [illegible] चार चार कुवे होते हुए भी द्विजोंके कुवोंपर इन्हें ले जानेमें देशोन्नति जाति उन्नति समझते हैं। अंकुश चाहते हैं हमारी खोटें सुरक्षित रहें। सुधारक कहते हैं पानी पियो-मंदिरमें चलो। भूखा मांगता है हमें रोटी दो। दाता कहता है खांसीकी गोली खाओ। यही कहावत [illegible] हैं। पचास वर्षमें आर्य समाजी लोग जिस उद्योगमें लगे हुए थे उनको अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेका यह सुनहरी मौका हाथ लग गया। वह मंदिरोंमें विराजमान भगवत प्रतिमाओंको पत्थर मानते हैं। आप उन्हें पूजना घृणित समझते हैं अन्त्यजोंसे कहते हैं मंदिरोंमें चलो भगवानके दर्शन करो वह समदर्शी हैं। अपने स्वार्थ साधनमें उन्हें साक्षात् भगवान मानते हैं। जिनका खण्डन सदा करते रहे हैं एक महतरने एक ग्राममें मुंह तोड़ उत्तर दिया कि पहले तुम मंदिरमें उस मूर्तिकी पूजा करो मस्तक नवाओ पश्चात् हम भी पूजा करेंगे। तुम्हारे दादा परदादा उन्हें पूजते थे। तुमने जब जिहालत और ठगविद्या अंधविश्वास कहकर मंदिरमें मूर्ति पूजा त्यागदी तो पुनः हमें क्यों उस अंधविश्वासके गढ़ेमें ढकेलते हो? यह सुनकर वह आर्यसमाजी मौन साधकर चले गये। इन बातोंसे यही ज्ञात होता है देशोन्नतिके बहाने यह लोग केवल सनातनधर्मकी मर्यादा तोड़नेके ही अभिलाषी हैं जिस धर्म मर्य्यादाकी रक्षाके लिये सनातनधर्मियोंने अपने प्राणोंकी आहुति दी। महान कष्ट सहन किये महाराणा प्रतापके इस महावाक्यको कदापि न भुलाना चाहिये-जो पति राखे धर्मको तेहि राखे कर्त्तार। धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः (मनुः)—

प्रेम

[लेखक—श्री गजानन्द केडिया ।]

प्रेम एक दैवी विभूति है। इसका महत्त्व सर्वमान्य है। मनुष्य हृदयमें जो सुकुमारसे सुकुमार भाव उठते हैं प्रेम उन सबमें बढ़कर है। सृष्टिका रक्षक तथा धर्मकी नींव दृढ़ करनेवाला प्रेम है। प्रेमकी एक लहरसे जीवन-सागरमें ज्वारभाटा होने लगता है—इसका एक हलकासा झोंका मनुष्यके पाषाण हृदयको कोमल बनानेके लिये पर्याप्त है। प्रेम-संग्राहक भी है और संयोजक भी। विधेयात्मिकताके दिव्यतम भाव इसमें कूट कूटकर भरे हुए हैं। प्रेम देवताके सम्मुख आते ही स्वार्थका पिशाच भस्मीभूत हो जाता है। तन्मयता और मृदुलताका जनक प्रेम एक शस्त्रधारी वीर पुरुष है जो द्वैत भाव शून्यताकी ढाल बांधकर स्वार्थ निलय के कवचसे अपनी रक्षा करता है। विश्वकी रंगस्थली प्रकृतिकी केलि-लीलाका स्थान है। इसमें प्रेम नटी मधुरतामें व्यस्त होकर निरन्तर थिरकती रहती है। प्रेम वह प्याला है जिसको ओठोंसे लगाते ही सुधाकी बिजली नस नसमें प्रवाहित होने लगती है।—तन्मयता पराकाष्टाको पहुंच जाती है, मृदुलतासे प्लावित मनोभाव हृदय गगनके नक्षत्र मण्डलको स्पर्श करने लगते हैं। प्रेममें सहानुभुति है, सत्यता है, अहंकार शून्यता है, मादकता है और व्यंजकता भी है। यह संसार सागरमें डूबते हुए भ्रान्त मनुष्यके लिये एक मात्र अवलम्ब है, थाह है, तिनका है, सहारा है। प्रेममें सौन्दर्य ज्ञानका विकास है—सेवा और दयाकी प्रतिभा है—उन्मत्त और सुधिबुधि हीन होनेका साधन है। प्रेम सृष्टिपालक है, नियन्ता है, ईश्वरका रूप है। मधुर भावोंकी सत्ता तथा प्रभावशाली ऐश्वर्यका उद्गम स्थान प्रेम है। प्रेम पवित्रसे पवित्र, उच्चसे उच्च और निःस्वार्थसे निःस्वार्थ भावनाओं तथा कर्मोंको भी बल प्रदान करता है। प्रेमके प्रभावसे आदर्श प्रकृतियोंमें भी सुधार तथा उच्चता स्थापित होती है। उच्च और पवित्र प्रेरणा करनेवाली मनुष्यता भी प्रेम बन्धन द्वारा दृढ़तम गाठोंसे जकड़ी रहती है। प्रकृतिकी लीलाओंमें, उसके प्रत्येक क्रीड़ा स्थलमें प्रेम बाजीगरका चमत्कार प्रत्यक्ष है। हरे भरे मैदानकी सब्जीमें भी प्रेमका रहस्य है। पुष्पोंके सुरभियुक्त सौंदर्यमें प्रेमकी छाप है। झिल्लीकी झंकार और कोयलकी कूकमें प्रेमकी मस्ती है। वनोंकी निःस्तब्धताको भंग करनेवाले पक्षियोंके कलरव प्रेमके ही असंख्य गीत हैं। जीवनकी स्वर लहरीमें प्रेम वीणाकी झंकार है। प्रेम गुण ग्राहक है। केवल सौन्दर्योपासना ही प्रेम नहीं है वरन् समस्त सुन्दर वस्तुओंका, आनन्ददायी पदार्थोंका ज्ञान और स्वीकार भी प्रेम हीसे होता है। कलाकी आत्मा प्रेम है। इसमें सच्चे सौंदर्य और आनन्दका रसास्वादन है। प्रेम हमारे हृदयाकाशका एक उज्वल तारा है।

विवेकमें स्फूर्ति, मनोभावनाओंमें पवित्रता कल्पना शक्तिमें उड़ान ये सब गुण प्रेमहीसे मिलते हैं। प्रेमके अभावमें रमणीयताका प्रादुर्भाव असम्भव है। इसकी अनुपस्थितिमें धरातलका समस्त सुख व्यर्थ है, निरुपयोगी है। प्रेम ज्ञानियोंको भी पथ प्रदर्शित करता है, वैरागियोंका भी मान मर्दन करता है। प्रेम एक नशा है। इसको आनेपर मनुष्य पागल बन जाता है, उसे अपनी सुधि नहीं रहती। अपनी मस्तीमें वह मस्त रहता है। सारे दुःख सुख हो जाते हैं, कंटक प्रसूनवत् दृष्टिगोचर होते हैं। यह वह घूटी है जिसको पीतेही मनुष्य अमरालयमें पहुंच जाता है। स्वर्गके समस्त सुख उसके सामने व्यर्थ हैं। प्रेमका उपचार प्रेम हीमें है। यही इसकी महान् विशेषता है। शृंगार रसका स्थायी भाव प्रेम ही है। विद्वानोंके कथनानुसार प्रेमहीकी बदौलत शृंगार सब रसोंका राजा माना गया है। प्रेम समस्त स्थायी भावोंका सिरताज है। हास्य क्रोध, भय, विस्मय और जुगुप्सा प्रेमके आगे अपना मस्था

शोक और प्रेममें समता करना मूर्खता है। मिलन और मरणमें जो भेद है वही शोक और प्रेममें है। प्रेममें करुणाका सन्निवेश है किन्तु शोकका आभास भी नहीं। प्रेमके विरहमें करुणाके दर्शन हो सकते हैं किन्तु उसमें शोक ढूंढना मानो गंगाकी धारामें शेरकी मांद तलाश करना है।

उत्साहमें उत्तेजनाकी अधिकता है तथा संग्राहकत्वका अभाव है, अतएव वह भी प्रेमकी समता नहीं कर सकता। उत्साह प्रेमका आश्रित है। प्रेमसे उत्साह स्वयं फूट पड़ता है। यह प्रेमकी महत्ता है। रह गये शान्ति और निर्वेद। यहां भी प्रेमका पल्ला भारी है। शान्ति संसारसे विरागमें है किन्तु प्रेम अनुरागमें है। निर्वेदमें सुखका अभाव है, प्रेममें आनन्दका अगम्य समुद्र है। एक ओर आलस्य और क्रियाशून्यता है, दूसरी ओर मनोहरता और उत्साहपूर्ण मृदुल जीवन है। सारांश यह कि अवनीतल के प्रत्येक स्थलमें प्रेमका डंका बज रहा है। सर्वत्र प्रेमहीकी विजय है। प्रेम प्रकृति सुन्दरीका चहेता और कविता कामिनीका कान्त है। नवल वधूटियोंकी आशा और भक्तोंका उत्साह प्रेम है। ज्ञान मार्गका प्रकाश और अज्ञान तमके लिये सूर्य रश्मि प्रेम है। सफलता मन्दिरका उद्भ्रान्त पथिक प्रेम है। प्रेमकी महिमा अगम्य है। एक अंग्रेज विद्वानने यहांतक कह डाला है कि "गाड इज लव ऐण्ड लव इज गाड" ईश्वर प्रेम ही है और प्रेम ईश्वर है। ईश्वर प्राप्तिका सबसे सरल और सीधा मार्ग प्रेम है।

कामवासना तृप्तिको प्रेम कहना प्रेमके गुणोंका निरादर करना और उसका अपमान करना है। प्रेम परम पवित्र तथा अकल्मष है। इन्द्रिय लोलुपता घोर जघन्यता है, यह प्रेमका विकृत रूप है। प्रेमके देवता श्री कृष्णचन्द्रजी माने गये हैं। वे योगिराज थे, गीताका अमर पाठ उन्होंने पढ़ाया। राधाकृष्णका प्रेम शुद्ध प्रेम था। स्वार्थान्ध सूर्यपर भी थूकते हैं। कृष्ण भगवानपर आक्षेप करना इनका कर्तव्य है। स्पष्टतः इसमें उनका स्वार्थ है। मीरा बाईका प्रेम भी शुद्ध प्रेम था। यह प्रेम काही बल था कि विषका प्याला अमृत हो गया। प्रेमकी गोदमें पले हुए कष्ट, कष्ट नहीं होते। प्रेममें आत्म त्याग है और अपने आपको मिटा डालनेकी अद्भुत क्षमता भी है। दीपकपर पतंगका कितना प्रगाढ़ प्रेम है! वह अपने आपको मिटा डालनेके लिये व्याकुल हो उठता है, उसे इसीमें आनन्द मिलता है। प्रेम ही जीवनके उत्सर्गका पाठ पढ़ाता है। प्रेमके उत्थानमें विकासकी वृद्धि है। इसके पतनमें मानव हृदयका पतन अवश्यम्भावी है। इस संसार रूपी समुद्रमें प्रेम पार ले जानेवाली नौका है। प्रेम भगवान्से मिलाता है इसलिये भगवान्काही रूप है। एक तरहसे भगवानसे भी ऊंचा दर्जा इसे प्राप्त है। ईश्वर साध्य है, प्रेम साधन है। प्राप्त वस्तुसे उसे प्राप्त कराने वाली वस्तुका अधिक आदर आदर होता है। यह संसारका नियम है। विधाताका विधान है।

भा॰ज॰ २६-५-३८